इस प्रकार ब्राण्ड में नाम हो सकता है, कुछ शब्द हो सकते हैं, एक डिजायन हो सकती है, या इन सबको मिलाकर एक ब्राण्ड बनाया जा सकता है। भारत में ब्राण्ड का प्रयोग आधुनिक बृहत् उत्पादन वाले निर्माताओं के द्वारा किया जाता है जैसे—हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, बम्बई का "खजूर छाप डालडा घी"; एसोसिएटेड सीमेण्ट कम्पनी का "ए० सी० सी० सीमेण्ट"; डालमियाँ सीमेण्ट कम्पनी का "बी० बी० बी० सीमेण्ट"; केमलिन प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई की बनी "ऊँट छाप स्याही" व वैस्टर्न इण्डिया मैच कम्पनी की "टिक्का छाप दियासलाई।"

ट्रेडमार्क किसी नाम को विशिष्ट ढंग से लिखने से भी बन जाता है; जैसे—बाटा इण्डिया लिमिटेड या 'बाटा' या बी० एस० सी० का चिह्न। साधारणतया ब्राण्ड व ट्रेडमार्क (Trade Mark) में कोई अन्तर नहीं माना जाता है लेकिन वास्तव में दोनों में अन्तर है। दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं।

(3) **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन** (American Marketing Association) के मत में, "ट्रेडमार्क एक ब्राण्ड है जिसको वैधानिक संरक्षण दे दिया गया है क्योंकि इसको कानून के अन्तर्गत केवल एकमात्र विक्रेता द्वारा ही अपनाया जा सकता।"[1]

(3) **स्टाण्टन** (Stanton) की राय में, "सभी ट्रेडमार्क ब्राण्ड है और इस प्रकार इनमें वे शब्द, लेख या अंक शामिल हैं जिनका उच्चारण हो सकता है। इसमें तस्वीर की डिजाइन भी शामिल है।"[2]

भारत में ट्रेडमार्क के रजिस्ट्रेशन के लिए Trade and Merchandise Marks Act, 1958 है जिसके अन्तर्गत रजिस्ट्रेशन हो जाने पर उस चिह्न, नाम, शब्द या डिजायन के प्रयोग करने का एकमात्र अधिकार रजिस्ट्रेशन कराने वाली संस्था को मिल जाता है। भारत में इस सुविधा का प्रयोग बहुत-सी संस्थाएँ करती हैं; जैसे—दवाई बनाने वाली कम्पनी 'साराभाई केमिकल्स' को SQUIBB, आगफागेवर्ट इण्डिया लिमिटेड का AGFA जो फोटो लेने वाले कैमरों को बनाती है, आयुर्वेद सेवाश्रम लिमिटेड, उदयपुर द्वारा निर्मित "गाय छाप काला दन्त मन्जन।"

ब्राण्ड एवं ट्रेडमार्क में अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN BRAND AND TRADE MARK)

(1) ब्राण्ड एक शब्द, नाम, चिह्न, डिजायन या इनके सहयोग से बना हुआ एक सम्मिश्रण है लेकिन जब इसी शब्द, नाम, चिह्न, डिजाइन या सम्मिश्रण का कानून के अन्तर्गत पंजीकरण करा लिया जाता है तो वह ट्रेडमार्क बन जाता है।

---

1 Trademark has been defined as "a brand which is given legal protection because under the law it has been appropriated exclusively by one seller."
—*Ibid.*

2 'All Trademarks are brands and thus include the words, letters or numbers which may be pronounced; they may also include a pictorial design."
—Stanton : *Fundamentals of Marketing*, p. 217.

(2) ब्राण्ड की नकल अन्य प्रतियोगी संस्थाओं के द्वारा की जा सकती है जिसके परिणामस्वरूप उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नही की जा सकती है लेकिन ट्रेडमार्क की नकल करने वालों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही हो नहीं की जा सकती है, बल्कि उनसे हर्जाना भी वसूल किया जा सकता है।

(3) ब्राण्ड शब्द का क्षेत्र सीमित है जबकि ट्रेडमार्क का विस्तृत है। ट्रेडमार्क में ब्राण्ड शामिल है। पहले ब्राण्ड तय करते हैं तब फिर उसका पंजीकरण कराकर उसी को ट्रेडमार्क कहने लगते हैं।

(4) सभी ट्रेडमार्क ब्राण्ड हैं लेकिन सभी ब्राण्ड ट्रेडमार्क नही हैं।

(5) एक ट्रेडमार्क का उपयोग केवल एक ही निर्माता या विक्रेता कर सकता है। उसी को उपयोग करने का कानूनी अधिकार प्राप्त होता है लेकिन एक ब्राण्ड का उपयोग कई निर्माता या विक्रेता कर सकते हैं।

एक अच्छे ब्राण्ड की विशेषताएँ
(ESSENTIALS OF A GOOD BRAND NAME)

एक निर्माता के द्वारा अपनी वस्तु के लिए कोई भी ब्राण्ड चुना जा सकता है और ऐसा करने के लिए कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं है लेकिन इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ब्राण्ड ऐसा नहीं होना चाहिए कि जिसका प्रयोग पहले से किसी निर्माता द्वारा किया जा रहा है। एक अच्छे ब्राण्ड में साधारणतया निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए :

(1) **साधारण व सूक्ष्म** (Simple & Short)—ब्राण्ड नाम साधारण होना चाहिए तथा साथ ही सूक्ष्म भी। सूक्ष्म का अर्थ है कि ब्राण्ड या चिह्न का नाम छोटा होना चाहिए जिससे उसे याद रखा जा सके। (2) **सरल उच्चारण** (Easy Pronouncement)—ब्राण्ड नाम में सरल उच्चारण की विशेषता भी होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि उसका नाम इस प्रकार का होना चाहिए कि उसको बच्चे, बूढ़े, जवान, पढ़े-लिखे एवं बिना पढ़े लिखे सभी आसानी से ले सकें अर्थात् बोल सकें और साथ ही उसका उच्चारण भी विभिन्न भाषाओं में आसान हो। (3) **पहचानने योग्य** (Recognizable)—ब्राण्ड में यह विशेषता भी होनी चाहिए कि उसको आसानी से पहचाना जा सके। (4) **स्मरणीय** (Memorable)—ब्राण्ड इस प्रकार की होनी चाहिए कि उसको आसानी से याद रखा जा सके। (5) **समयानुसार** (Timley)—ब्राण्ड समयानुसार होना चाहिए अर्थात् समय के अनुकूल होना चाहिए। कुछ समय के बाद पुराने ब्राण्ड अप्रचलित हो जाते हैं। अतः ब्राण्ड समय-समय पर बदलते रहते हैं। एक अच्छा ब्राण्ड वही है जो समय के अनुरूप हैं। (6) **आकर्षित करने वाला** (Attractive)—ब्राण्ड में यह विशेषता भी होनी चाहिए कि वह बोलने व सुनने में तो मधुर लगे ही साथ ही उसमें आकर्षित करने का गुण भी होना चाहिए। (7) **मितव्ययिता** (Economical)—ब्राण्ड को पैकिट पर छपवाने या विज्ञापन में देने में मितव्ययिता का गुण

भी होना चाहिए। मितव्ययिता का अर्थ है कि उसमें व्यय कम होना चाहिए। (8) **सुझावात्मक** (Suggestive)—ब्राण्ड का नाम सुझावात्मक होना चाहिए जिससे कि ग्राहक पर उसका अच्छा प्रभाव पड़े। (9) **अश्लीलता न हो** (Lack of Obscence)—ब्राण्ड में अश्लीलता भी नहीं होनी चाहिए अर्थात् ब्राण्ड सामाजिक दृष्टि से अश्लील नहीं होना चाहिए। (10) **पंजीकरण योग्य** (Registerable)—ब्राण्ड में यह विशेषता भी होनी चाहिए कि वह Trade and Merchandise Marks Act, 1958 के अन्तर्गत पंजीकरण योग्य हो।

भारत में इस प्रकार के बहुत से ब्राण्ड हैं जो उपर्युक्त विशेषताओं में से अधिकांश विशेषताओं को धारण किये हुए हैं। इसमें गोल्डस्पाट, कोका-कोला, उषा, गोदरेज, डालडा, लेक्मे, बजाज, मोदी, बाटा, फिलिप्स, पनामा, आग्फा, टाटा, आदि काफी प्रसिद्ध हैं।

ब्राण्ड का वर्गीकरण अथवा ब्राण्ड के प्रकार

(CLASSIFICATION OF BRANDS OR TYPES OF BRANDS)

ब्राण्डों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है लेकिन मुख्य आधार निम्न हैं :

(अ) स्वामित्व के आधार पर (According to the Ownership)	1. निर्माता का ब्राण्ड (Manufacturer's Brand) 2. मध्यस्थों का ब्राण्ड (Middlemens' Brand)
(ब) बाजार क्षेत्र के आधार पर (According to the Market Area)	3. स्थानीय ब्राण्ड (Local Brand) 4. प्रान्तीय ब्राण्ड (Provincial Brand) 5. क्षेत्रीय ब्राण्ड (Regional Brand) 6. राष्ट्रीय ब्राण्ड (National Brand)
(स) वस्तुओं की संख्या के आधार पर (According to the Number of Products)	7. पारिवारिक ब्राण्ड (Family Brand) 8. व्यक्तिगत ब्राण्ड (Individual Brand)
(द) प्रयोग के आधार पर (According to the Use)	9. लड़ने वाली ब्राण्ड (Fighting Brand) 10. प्रतियोगी ब्राण्ड (Competitive Brand)

(1) **निर्माता का ब्राण्ड** (Manufacturer's Brand)—निर्माता द्वारा प्रयोग किया जाने वाला ब्राण्ड निर्माता ब्राण्ड कहलाता है जैसे, फिलिप्स कम्पनी द्वारा निर्मित रेडियो, बल्ब, ट्रांजिस्टर, आदि पर Philips की छाप लगी रहती है। ए० सी० सी० कम्पनी द्वारा निर्मित सीमेण्ट पर A.C.C. की छाप। जब एक निर्माता द्वारा निर्मित सभी उत्पादनों पर एक ही छाप होती है और यह उत्पादन उसी एक ब्राण्ड

के नाम से सम्पूर्ण देश में बेचे जाते हैं तो इसको राष्ट्रीय ब्राण्ड (National Brand) कहते हैं।

(2) **मध्यस्थों का ब्राण्ड** (Middlemens' Brand)—जब निर्माता अपने उत्पादनों पर किसी भी प्रकार की छाप या मुहर का प्रयोग नहीं करता है तो बड़े-बड़े थोक व्यापारी या फुटकर व्यापारी उन उत्पादनों पर अपनी ब्राण्ड की मुहर या छाप लगाकर बेचते हैं तो इस प्रकार की ब्राण्ड को मध्यस्थ ब्राण्ड कहते हैं। इस ब्राण्ड का वर्गीकरण **थोक व्यापारी की ब्राण्ड** (Whole-salers' Brand) **व फुटकर व्यापारी की ब्राण्ड** (Retailers' Brand) में भी किया जा सकता है। इसी प्रकार जब ब्राण्ड का मुहर वितरक द्वारा लगायी जाती है तो यह **वितरक ब्राण्ड** (Distributors' Brand) कहलाती है। कुछ विद्वानों के द्वारा मध्यस्थों द्वारा लगाई गयी ब्राण्डों को **पुनः विक्रेता ब्राण्ड** (Re-sellers' Brand) भी कहा जाता है।

(3) **स्थानीय ब्राण्ड** (Local Brand)—वह ब्राण्ड जो एक स्थान विशेष पर ही लोकप्रिय है उस ब्राण्ड को स्थानीय ब्राण्ड कहते हैं। बहुत से निर्माता विभिन्न बाजारों का लाभ प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की नीति अपनाते हैं।

(4) **प्रान्तीय ब्राण्ड** (Provincial Brand)—वह ब्राण्ड जो एक राज्य विशेष में ही प्रचलित है उसको प्रान्तीय या राज्य ब्राण्ड (State Brand) कहते हैं।

(5) **क्षेत्रीय ब्राण्ड** (Regional Brand)—जब एक निर्माता राष्ट्र को अपने विक्रय के लिए कई क्षेत्रों में बाँट लेता है और प्रत्येक क्षेत्र में नयी-नयी ब्राण्डों का प्रयोग करता है तो उसकी इन ब्राण्डों को क्षेत्रीय ब्राण्ड कहते हैं।

(6) **राष्ट्रीय ब्राण्ड** (National Brand)— यह ब्राण्ड निर्माता ब्राण्ड भी कहलाती है। जब एक निर्माता सम्पूर्ण देश के लिए केवल एक ही ब्राण्ड का प्रयोग करता है तो उसकी यह ब्राण्ड राष्ट्रीय ब्राण्ड कहलाती है।

(7) **पारिवारिक ब्राण्ड** (Family Brand)—जब एक निर्माता अपनी सभी प्रकार की वस्तुओं की ब्राण्ड जिनका कि वह निर्माण करता है एक ही रखता है तो ऐसी ब्राण्ड को पारिवारिक ब्राण्ड कहते हैं जैसे, जय इन्जीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, कलकत्ता द्वारा निर्मित बिजली के पंखे, सिलाई मशीन, प्रेशर कुकर, वाटर कूलर, आदि सभी पर 'उषा' का नाम है। इसी प्रकार टाटा ग्रुप के सभी उत्पादनों पर टाटा की मुहर है जैसे, टाटा स्टील, टाटा के धोती जोड़े आदि। बजाज ग्रुप द्वारा भी सभी उत्पादनों पर बजाज शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे, बजाज स्कूटर, बजाज बल्ब व ट्यूब, बजाज आयरन, बजाज टोस्टर, आदि। इसी प्रकार सौन्दर्य प्रसादन सामग्री बनाने वाली संस्था 'लक्मे'। इसके सभी उत्पादन 'लक्मे' ब्राण्ड के नाम से बेचे जाते हैं। पारिवारिक ब्राण्ड के अन्य उदाहरण गोदरेज, अतुल, किसान शक्ति, आदि हैं।

कुछ विद्वान पारिवारिक ब्राण्ड को ही समूहगत ब्राण्ड (Blanket or Umbrella Brand) का नाम देते हैं लेकिन कुछ विद्वान इनमे अन्तर करते है।

अन्तर करने वाले विद्वानों का कहना है कि पारिवारिक ब्राण्ड का उपयोग वस्तु पंक्ति में किया जाता है जबकि समूहगत ब्राण्ड का वस्तु मिश्रण में। हमने इस अध्याय में पारिवारिक एवं समूहगत ब्राण्ड का उपयोग एक ही अर्थ में किया है।

(8) **व्यक्तिगत ब्राण्ड** (Individual Brand)—जब एक निर्माता पारिवारिक ब्राण्ड की नीति नहीं अपनाता है और प्रत्येक वस्तु के उत्पादन पर अलग-अलग ब्राण्ड की मुहर लगाता है तो इसको व्यक्तिगत ब्राण्ड कहते हैं जैसे, हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड के नहाने के साबुन लाइफबॉय, लक्स, रेक्सोना, लक्स सुप्रीम, लिरिल आदि के नाम से बेचे जाते हैं तथा अन्य उत्पादन अनिक, डालडा, विम व सुपर सर्फ के नाम से बेचे जाते हैं।

इसी प्रकार अन्य कम्पनियाँ भी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिए पृथक-पृथक ब्राण्डों का उपयोग कर रही हैं जैसे, एक ब्लेड बनाने वाली कम्पनी ने एक प्रकार के ब्लेड की ब्राण्ड 'प्रिन्स' रखा है तो दूसरे प्रकार के ब्लेड की ब्राण्ड का नाम 'सिलवर प्रिन्स' रखा है। इसी प्रकार एक अन्य कम्पनी ने 'इरास्मिक' एवं 'सुपर इरास्मिक'।

(9) **लड़ने वाली ब्राण्ड** (Fighting Brand)—जब बाजार में प्रतियोगिता अधिक होती है तो निर्माता के द्वारा एक कम मूल्य की वस्तु तैयार कर बाजार में प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार की वस्तु की ब्राण्ड को लड़ने वाली ब्राण्ड कहते हैं।

(10) **प्रतियोगी ब्राण्ड** (Competitive Brand)—जब एक निर्माता की वस्तु की प्रतियोगिता अन्य निर्माताओं की वस्तुओं से होती है और उन सभी निर्माताओं की वस्तुओं के आकार, प्रकार, गुण एवं मूल्य आदि में कोई विशेष अन्तर नहीं है तो इस प्रकार की ब्राण्डों को प्रतियोगी ब्राण्ड कहते हैं जैसे, कपड़े धोने वाले साबुनों में 'सर्फ ब्राण्ड' व 'मैजिक ब्राण्ड'। यह दोनों ब्राण्ड एक-दूसरे के प्रतियोगी ब्राण्ड हैं।

ब्राण्ड या ट्रेडमार्क के लाभ या महत्व
(ADVANTAGES OR IMPORTANCE OF BRANDS OR TRADE MARK)

ब्राण्ड या ट्रेडमार्क को प्रयोग में लाने से विभिन्न समुदायों को लाभ होता है। इन्हीं लाभों को ब्राण्ड या ट्रेडमार्क के महत्व के रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है। कुछ विद्वान इन लाभों को ब्राण्ड या ट्रेड मार्क के प्रयोग के कारण (Reasons for the use of Brands or Trade Marks) भी कहते हैं। इन लाभों का अध्ययन निम्न तीन मदों के आधार पर कर सकते हैं: (i) उत्पादकों को लाभ (Advantages to Producers), (ii) मध्यस्थों को लाभ (Advantages to Middlemen), व (3) उपभोक्ताओं को लाभ (Advantages to Consumers)।

(I) उत्पादकों को लाभ (Advantages to Producers)

ब्राण्ड नीति अपनाने से उत्पादक को बहुत से लाभ मिलते हैं जैसे, मूल्य नियन्त्रण, बाजार नियन्त्रण, पुनः विक्रय को प्रोत्साहन, प्रतियोगिता से बचाना, आसानी से मध्यस्थ उपलब्ध होना, प्रवर्तन व्ययों में मितव्ययिता।

(1) **मूल नियन्त्रण** (Price Control)—एक निर्माता ब्राण्ड निश्चित करने के साथ-साथ उस ब्राण्ड का मूल्य भी निश्चित कर देता है जिस पर उस वस्तु को उपभोक्ताओं को (मध्यस्थों एवं विक्रयकर्ताओं द्वारा) बेचा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मध्यस्थ या विक्रयकर्ता मूल्यों में मनमानी नहीं कर सकते हैं और इस प्रकार वह निर्माता अपनी वस्तु के विक्रय मूल्य पर नियन्त्रण कर सकता है। (2) **बाजार नियन्त्रण** (Market Control)—ब्राण्ड निश्चित होने से बाजार पर नियन्त्रण किया जा सकता है अर्थात् निर्माता जिन बाजारों में वस्तु को बेचना चाहता है उन्हीं बाजारों में उसको बेच सकता है, शेष में नहीं। यदि उसकी वस्तु पर कोई ब्राण्ड नहीं है तो वस्तु को मध्यस्थों द्वारा कहीं भी बेचा जा सकता है। जिसका पता उसको नहीं लग सकता है। (3) **पुनः विक्रय को प्रोत्साहन** (Incentive to Repeat Sales)—यदि ग्राहक ब्राण्ड वाली वस्तु से सन्तुष्ट है तो उसी वस्तु को पुनः खरीदेगा। ऐसा होने से पुनः विक्रय को प्रोत्साहन मिलता है। यदि वस्तु ब्राण्ड वाली नहीं है तो दुकानदार उस वस्तु के समाप्त होने पर या उसकी दुकान पर न होने के कारण दूसरी वस्तु उससे अच्छी बताकर दे सकता है और इस प्रकार पहली वस्तु के साथ अन्याय कर सकता है। (4) **प्रतियोगिता से बचाना** (Save from Competition)—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के क्रेताओं में ब्राण्ड के प्रति वफादारी (brand loyalty) पैदा हो जाती है और वे उसी ब्राण्ड की वस्तु को क्रय करते हैं। उसकी यह आदत निर्माता को प्रतियोगिता से बचाती है। (5) **आसानी से मध्यस्थ उपलब्धता** (Easy Availability of Middlemen)—ब्राण्ड वाली वस्तु को बेचने के लिए मध्यस्थ आसानी से मिल जाते हैं। साथ ही अच्छी ब्राण्ड वाली वस्तु को बेचने के लिए इन मध्यस्थों को पारिश्रमिक भी कम देना पड़ता है। (6) **प्रवर्तन व्ययों में मितव्ययिता** (Economy in Promotional Expenses)—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में विज्ञापन आदि करने में व्यय कम ही होते हैं क्योंकि ब्राण्ड के नाम से ही काम चल जाता है। साथ ही ऐसे विज्ञापन कम स्थान घेरते हैं। (7) **अन्य लाभ** (Other Advantages)—ब्राण्ड से एक निर्माता को उपर्युक्त लाभों के अतिरिक्त (अ) वस्तु पहचान (product identification) का लाभ, (ब) ब्राण्ड का पंजीकरण होने से नकल न होने के लाभ भी मिल जाते हैं।

(II) **मध्यस्थों को लाभ** (Advantages to Middlemen)

ब्राण्ड चिह्न अपनाने से मध्यस्थों को समझाने में आसानी, कम जोखिम, प्रवर्तन की आवश्यकता न होना एवं साख वृद्धि के लाभ मिलते हैं।

(1) **ग्राहकों को समझाने में आसानी** (Easyness in Consumers' Understanding)—ब्राण्ड निश्चित होने से मध्यस्थों को अपने ग्राहकों को समझाने में आसानी रहती है। साधारणतया यह देखा जाता है कि ग्राहक स्वयं ही उस वस्तु को

माँगते हुए आते हैं। यदि वे वस्तु को माँगते हुए नहीं भी आते हैं तो अच्छे ख्याति-प्राप्त निर्माता की वस्तु के लिए उसको थोड़े समय में ही समझाकर सन्तुष्ट किया जा सकता है। (2) **कम जोखिम** (Less Risk)—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के मूल्यों में घटा-बढ़ी बहुत ही कम होती है अतः मध्यस्थों की मूल्यों की घटा-बढ़ी सम्बन्धी जोखिम भी कम रहती है। (3) **प्रवर्तन की आवश्यकता न होना** (No need for Promotion)—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के लिए मध्यस्थों द्वारा प्रवर्तन व्यय करने की आवश्यकता नहीं रहती है क्योंकि ब्राण्ड वाली वस्तुओं का विज्ञापन एवं प्रवर्तन कार्य तो स्वयं निर्माता द्वारा ही किया जाता है और ऐसे विज्ञापनों में उस मध्यस्थ का नाम भी दिया रहता है। कभी-कभी मध्यस्थ भी प्रवर्तन व्यय कर देता है लेकिन उसके व्ययों की क्षतिपूर्ति उस वस्तु के निर्माता द्वारा कर दी जाती है। (4) **साख में वृद्धि** (Enh ncement in Goodwill)—जो मध्यस्थ अच्छे ख्यातिप्राप्त निर्माताओं की ब्राण्ड वाली वस्तुओं को बेचते हैं उनकी साख बाजार में बढ़ जाती है।

(III) **उपभोक्ताओं को लाभ** (Advantages to Consumers)

वस्तुओं पर ब्राण्ड चिह्न होने के कारण उपभोक्ताओं को क्वालिटी स्थिरता, मूल्य स्थिरता, गारण्टी, सुगम पहचान एवं अच्छे पैकिंग के लाभ मिलते हैं।

(1) **क्वालिटी स्थिरता** (Stability in Quality)—ब्राण्डवाली वस्तुओं की क्वालिटी स्थिर रहती है। उसमें सामान्यतया गिरावट नहीं आती है। यदि सम्भव होता है तो उसमें सुधार ही किया जाता है। ऐसा होने से उपभोक्ता को अच्छी क्वालिटी की वस्तु मिलती रहती है। (2) **मूल्य स्थिरता** (Price Stability)—ब्राण्ड वाली वस्तुओं के मूल्य निर्माता द्वारा निश्चित किये जाते हैं और उन मूल्यों में निर्माता द्वारा परिवर्तन बहुत ही कम किया जाता है। मध्यस्थों को मूल्यों में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं होता है। इसका परिणाम यह होता है कि मूल्यों में स्थायित्व रहता है और उपभोक्ता के साथ धोखा नहीं किया जा सकता है। (3) **गारण्टी** (Guarantee)—सामान्यतया ब्राण्ड वाली वस्तुओं की उनकी उपयोगिता के बारे में गारण्टी भी दी जाती है कि यदि वस्तु में कथित उपयोगिताएँ न हों तो वस्तु को बदलने या उसका मूल्य वापस करने का आश्वासन दिया जाता है। ऐसा होने से उपभोक्ताओं को वस्तु अच्छी क्वालिटी की मिलती है। यह गारण्टी बीमा का काम करती है। (4) **सुगम पहचान** (Easy Identification)—ब्राण्ड वाली वस्तु को आसानी से पहचाना जा सकता है और दुबारा क्रय करने में सुविधा रहती है। यदि वस्तु ब्राण्ड वाली नहीं है तो उसके देखने एवं उसके बारे में सोचने में समय लग सकता है। (5) **अच्छा पैकेजिंग** (Good Packaging)—साधारणतया यह पाया जाता है कि अच्छे ब्राण्ड की वस्तुओं का पैकेजिंग भी अच्छा होता है जिससे वस्तु सुरक्षित रहती है। यदि वस्तु प्रयोग से बच जाती है तो उसको उसी पैकेजिंग में काफी लम्बे काल तक रखा जा सकता है।

ब्राण्ड या ट्रेडमार्क चुनते समय ध्यान देने योग्य कानूनी बातें (Legal Points to be considered while Selecting Brands & Trade Marks) :—

ब्राण्ड या ट्रेडमार्क चुनते समय निम्न कानूनी बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

(1) ब्राण्ड या ट्रेडमार्क ऐसा होना चाहिए जो पहले से रजिस्टर्ड न हो।

(2) पहले से रजिस्टर्ड ब्राण्ड या ट्रेडमार्क से यह मिलता-जुलता नहीं होना चाहिए।

(3) ब्राण्ड या ट्रेडमार्क ऐसा नहीं होना चाहिए जो Emblems Names Act, 1950 के अन्तर्गत निषिद्ध हो।

(4) ब्राण्ड या ट्रेडमार्क सरकार की दृष्टि में अवांछनीय नहीं होना चाहिए।

क्या ब्राण्ड सामाजिक दृष्टिकोण से उचित है
(IS BRANDING SOCIALLY DESIRABLE)

क्या ब्राण्ड का उपयोग सामाजिक दृष्टिकोण से उचित है ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका कोई एक उत्तर नहीं हो सकता। कुछ विद्वानों की दृष्टि में इसका **उपयोग सर्वथा उचित** है क्योंकि (1) उपभोक्ता को चुनाव करने में आसानी रहती है। (2) मध्यस्थों द्वारा मूल्य वृद्धि नहीं की जा सकती है। (3) इनके द्वारा धोखेबाजी की सम्भावनाएँ भी कम हो जाती हैं। (4) फुटकर मूल्य साधारणतया स्थिर रहते हैं। (5) निर्माता को भी अपनी वस्तु की क्वालिटी में स्थिरता रखनी पड़ती है जिससे उपभोक्ता को क्वालिटी-वस्तु मिलती रहती है।

लेकिन **कुछ विद्वान ब्राण्ड के प्रयोग को सामाजिक दृष्टिकोण से उचित नहीं मानते हैं** और उनके द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं कि (1) ब्राण्ड उपभोक्ता को विवेकहीन (irrational) बना देता है और अच्छी वस्तु उपलब्ध होने पर भी वह अच्छी वस्तु का उपयोग नहीं कर पाता है। (2) इससे उसको अपने धन का उचित प्रतिफल नहीं मिल पाता है और उसको वस्तु की क्वालिटी की तुलना में अधिक धन देना पड़ता है। (3) जब निर्माता या विक्रेता द्वारा एक ब्राण्ड के विषय में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली जाती है तो वह उसकी क्वालिटी की ओर अधिक ध्यान नहीं देता है। (4) भविष्य में उसके द्वारा मूल्य वृद्धि कर अधिक लाभ कमाने का प्रयत्न किया जाता है।

कुछ भी क्यों न हो लेकिन यह तो उचित ही है कि यदि ब्राण्ड के विषय पर कुछ कानूनी प्रतिबन्ध लगा दिये जायें या उपभोक्ता अवरोध (Consumer resistance हो तो उसका उपयोग सामाजिक दृष्टिकोण से भी वांछनीय है क्योंकि इससे समाज को लाभ अवश्य ही मिलता है।

लेबिल का अर्थ
(MEANING OF LABEL)

(1) **विलियम जे० स्टाण्टन** (William J. Stanton) के मत में, "लेबिल वस्तु का वह भाग है जिस पर वस्तु या विक्रेता (निर्माता या मध्यजन) के बारे में मौखिक सूचना दी जाती है। यह एक पैकेज का भाग हो सकता है या वस्तु से प्रत्यक्ष रूप से संलग्न एक चिट के रूप में हो सकता है।"[1]

(2) **मैसन एवं रथ** (Mason & Rath) की राय में, "लेबिल सूचना देने वाली चिट, लपेटने वाला कागज या सील है जो वस्तु या उसके पैकेज से जुड़ी हुई है।"[2]

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं से निष्कर्ष निकलता है कि **लेबिल एक सूचना देने वाली चिट होती है जो वस्तु या उसके पैकेज के साथ लगी होती है तथा जिस पर वस्तु के बारे में या उसके विक्रेता के बारे में सूचनाएँ होती हैं।** यह सूचनाएँ लपेटने वाले कागज या सील के रूप में भी हो सकती हैं।

भारत में इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। कैमिल स्याही की दवात पर एक चिट चिपकी रहती है जिस पर रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क व ISI की मुहर व Camel Ink लिखा रहता है। साथ ही स्याही की किस्म (ब्लू या रॉयल ब्लू, आदि) भी लिखी रहती है। इसी प्रकार E. S. Patanwala की वैसलीन की शीशी पर उसका पता Bombay-77 लिखा है साथ ही वैसलीन की मात्रा, लाइसेन्स नम्बर व उत्पादन का बैच नम्बर भी लिखा हुआ है। इसी प्रकार का लेबिल स्वास्तिक ऑइल कम्पनी के बालों के तेल "ब्राह्मी हेयर ऑयल" की शीशी पर भी लगा होता है। दवाओं की शीशियों पर तो लेबिल आम तौर पर चिपके होते हैं जिन पर दवाई निर्माता का नाम व पता व एक टिकिया या गोली या एक चम्मच, दवा में कौन-कौन-सी दवाएँ मिली हैं, आदि लिखा रहता है। कपड़े के थानों व सिले-सिलाये कपड़ों पर भी लेबिल लगे रहते हैं, जो उनकी क्वालिटी, आकार व मूल्य, आदि से परिचित कराते हैं।

पैकेजिंग शब्द का अर्थ एवं परिभाषा
(MEANING AND DEFINITION OF THE WORD PACKAGING)

आजकल पैकेजिंग का काफी महत्व है, इसी कारण उपभोक्ताओं को बाजार में वस्तुएँ कागज के डिब्बों, सुन्दर आकार की शीशियों तथा टिन या प्लास्टिक के डिब्बों में पैक की हुई मिलती हैं। यही नहीं, उन पर सुन्दर व आकर्षक लेबिल, रंग-बिरंगे

---

1 "The label is that part of a product which carries verbal information about the product or the seller (manufacturer or middlemen). A label may be a part of a package, or it may be a tag attached directly to the product."
—Stanton : *Fundamentals of Marketing*, p. 232.

2 "The label is an informative tag, wrapper, or seal attached to a product or product's package."
—Mason & Rath : *Marketing and Distribution*, p. 212.

रगों में लगे रहते है तथा उन डिब्बों के अन्दर एक-एक छपा हुआ कागज भी साधारणतया रखा रहता है जो उस वस्तु के प्रयोग व उसके मिश्रण की सूचना देता है। यह सभी वस्तु-नियोजन (Product Planning) के अंग है। पैकेजिग का अर्थ भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इस प्रकार लगाया है।

(1) **प्रो. विलियम स्टाण्टन** (William J. Stanton) के अनुसार, "पैकेजिंग को वस्तु-नियोजन की उन सामान्य क्रियाओं के समूह की तरह परिभाषित किया जा सकता है जिसमें किसी वस्तु के लिए लपेटने या आधानपात्र (Container) का उत्पादन करने और उनका डिजायन बनाने एवं उत्पादन करने से सम्बन्धित है।"[1]

(2) **प्रो. डावर** (Davar) के शब्दों में, "पैकेजिंग वह कला और/या विज्ञान है जो एक वस्तु को किसी आधानपात्र में बन्द करने या आधानपात्र को वस्तु के सवेष्ठन के उपयुक्त बनाने हेतु सामग्रियों, ढंगों और साज-सज्जा के विकास एवं प्रयोग से सम्बन्धित है जिससे कि वस्तु वितरण की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरते समय पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे।"[2]

(3) **मैसन व रथ** (Mason & Rath) के मत में, "आधानपात्र (Container) व लपेटने वाले सामान का उपयोग पैकेजिंग है जिसमें लेबिल लगाना व सजाना भी शामिल है जिससे वस्तु सुरक्षित रहे, उसकी बिक्री करने मे सहायता मिले तथा उस वस्तु को उपभोक्ता के द्वारा काम में लाने मे सुविधा रहे।"[3]

इन परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पैकेजिग में आधानपात्र व लपेटने वाले सामान ही नहीं आते बल्कि उनका निर्माण करना भी आता है। इन दोनों बातों के अतिरिक्त इसमें लेबिल लगाना, आधानपात्र की डिजायन बनाना व उनको सजाना भी शामिल है।

पैकेजिग एवं पैकिग में अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN PACKAGING AND PACKING)

कुछ विद्वान पैकेजिग व पैकिग (Packaging and Packing) में कोई अन्तर नहीं मानते हैं और उनकी दृष्टि में दोनों शब्द पर्यायवाची है। लेकिन कुछ विद्वान

---

1 "Packaging may be defined as the general group of activities in product planning which involve designing and producing the container or wrapper for a product."
—Stanton : *Fundamentals of Marketing*, p. 229.

2 "Packaging may be defined as the art and/or science concerned with the development and use of materials, methods and equipment for applying a product to a container or *vice versa* designed to protect the product throughout the various stages of distribution."
-Rustom S. Davar : *Modern Marketing Management*, p. 233.

3 "Packaging is the use of containers and wrapping materials plus decoration and labelling to protect the product, to help and promote its sale and to make it convenient for the customer to use the product."
—Mason & Rath : *Marketing and Distribution*, p. 286.

पैकेजिंग को पैकिंग (Packing) का ही एक भाग मानते हैं और उनका कहना है कि जब वस्तुओं को छोटे-छोटे पैकिटों, डिब्बों या बोतलों में पैक किया जाता है तो यह पैकेजिंग के अन्तर्गत आता है। लेकिन जब बहुत से छोटे-छोटे पैकिट, डिब्बे या बोतल एकत्रित कर भेजे जाते हैं तो उनको पैकिंग के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रकार पैकेजिंग पैकिंग का एक अंग है।

भारत में पैकेजिंग की ओर अब कुछ ध्यान दिया जाने लगा है। अतः हम देखते हैं कि नहाने के साबुन आकर्षक कागजों में लिपटे हुए आते हैं, बालों के तेल सुन्दर बोतलों व कागज के डिब्बों में पैक किये हुए मिलते हैं, और कीमती वस्त्र पोलीथीन की थैली में सजे हुए बिकते हैं जबकि दवाइयाँ टिन या प्लास्टिक के डिब्बों में मिलती हैं।

पैकेजिंग के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF PACKAGING)

प्रो. स्टाण्टन ने पैकेजिंग के चार उद्देश्य बताये हैं : (i) सुरक्षा (Protection), (ii) पहचान (Indentification), (iii) सुविधा (Convenience), एवं (iv) लाभ वृद्धि की सम्भावनाएँ (Increase in Profit Possibilities)। लेकिन कुछ विद्वानों ने इनमें वृद्धि कर दी है और उनके अनुसार पैकेजिंग के उद्देश्य निम्न हैं :

(1) **सुरक्षा** (Protection)—सुरक्षा पैकेजिंग का प्रथम उद्देश्य है जिससे कि वस्तु धूल, मिट्टी, पानी, नमी, कीड़े-मकोड़े आदि से खराब न हो और उसके गुण में किसी प्रकार की कमी न हो। प्रायः यह देखा जाता है कि वस्तु खुली रहने से उसका रंग फीका पड़ जाता है। उसके गुणों में कमी आ जाती है। कभी-कभी तो वस्तु खुली रहने के कारण वातावरण में मिल जाती है जैसे, स्प्रिट, शराब आदि। पैकेजिंग का यह उद्देश्य भी है कि वस्तु में किसी भी प्रकार की मिलावट या चोरी मध्यस्थों द्वारा न की जा सके।

(2) **सुविधा** (Convenience)—पैकेजिंग का दूसरा उद्देश्य सुविधा प्रदान करना है। यह सुविधा वस्तुओं को लाने एवं ले जाने, उठाने, पकड़ने एवं भण्डार आदि करने में होती है। अच्छी प्रकार से पैक की हुई वस्तुओं को ही परिवहन साधन लाने-ले-जाने के लिए स्वीकृत करते हैं अन्यथा वे इन्कार कर देते हैं।

(3) **मितव्ययिता** (Economy)—यह पैकेजिंग का तीसरा उद्देश्य है। पैकेजिंग से कुछ मितव्ययिता हो जाती है जैसे, वस्तु रास्ते में खराब नहीं होती और इस प्रकार उसको बदलने की आवश्यकता नहीं रहती है। इसी प्रकार उसमें छीजन काटने की भी आवश्यकता नहीं होती है।

(4) **प्रवर्तन** (Promotion)—आजकल प्रवर्तन भी पैकेजिंग का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य माना जाने लगा है। पैकिटों पर जो लिखा व चित्रित होता है वह विज्ञापन व विक्रय प्रवर्तन का कार्य करता है और उपभोक्ता के पास जब तक उस वस्तु का

पैकेजिंग वाला डिब्बा या शीशी या थैला बना रहता है तब तक उसको वस्तु के बारे में याद दिलाता रहता है।

(5) **अन्य उद्देश्य** (Other Objects)—पैकेजिंग के अन्य उद्देश्यों में (i) वस्तु छवि (product image) में वृद्धि करना; (ii) उपभोक्ता को वस्तु की ताजगी की सूचना देना (यह उस समय होता है जबकि वस्तु के निर्माण की तारीख उस पर दी हुई है); (iii) वस्तु के मूल्य की जानकारी देना; (iv) वस्तु के उपयोग के बारे में सूचना देना कि वस्तु का उपयोग किस प्रकार किया जाय; (v) वस्तु के पहचानने में सहायता प्रदान करना; (vi) वस्तु विभिन्नीकरण में सहायता प्रदान करना है (यह विभिन्न वस्तुओं का पैकेजिंग विभिन्न प्रकार करके किया जा सकता है)।

पैकेजिंग के कार्य
(FUNCTIONS OF PACKAGING)

पैकेजिंग के बहुत-से कार्य हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं : (1) सुरक्षा (Protection), (2) सुविधा (Convenience), (3) परिचय (Identification), (4) भण्डार (Storage), (5) विज्ञापन (Advertising), व (6) लाभ सम्भावनाएँ (Profit-possibilities)।

(1) **सुरक्षा** (Protection)—पैकेजिंग का प्रमुख कार्य वस्तु को धूल, पानी, नमी, कीड़े-मकोड़ों व मिलावट से बचाना है। कुछ वस्तुएँ खुली रहने से खराब हो जाती हैं। उनका गुण समाप्त हो जाता है तथा उनका रंग फीका पड़ जाता है। पैकेजिंग इन सम्भावनाओं से वस्तु को सुरक्षा प्रदान करता है।

(2) **सुविधा** (Convenience)—वे वस्तुएँ जो अच्छे प्रकार से पैक होती हैं उनको लाने और ले जाने में सुविधा रहती है और इस प्रकार पैकेजिंग उपभोक्ता एवं मध्यस्थों को सुविधा देने का कार्य करता है।

(3) **परिचय** (Identification)—जब प्रतियोगी निर्माताओं की वस्तुओं में कोई खास अन्तर नहीं होता तो ऐसी स्थिति में वस्तुओं को पहचानने के लिए भी उनका पैकेजिंग कर दिया जाता है जैसे, पेच एक ही आकार व प्रकार के होते हैं लेकिन भिन्न-भिन्न निर्माताओं में भिन्नता लाने के लिए प्रत्येक निर्माता अपने-अपने ढंग के डिब्बों में पैक कर बेचते हैं। इस प्रकार पैकेजिंग का कार्य परिचय-प्रदान करना है।

(4) **भण्डार** (Storage)—वस्तुओं को उचित रूप में भण्डार करने के लिए भी पैकेजिंग किया जाता है जिससे भण्डार गृह में उनको उचित रूप से रखा जा सके और वे खराब न हों।

(5) **विज्ञापन** (Advertising)—पैकेजिंग का पाँचवाँ कार्य विज्ञापन करना है। जब तक एक उपभोक्ता के घर में एक वस्तु का पैकेजिंग सामान (Packaging material) रहता है तब तक वह वस्तु के सम्बन्ध में उसकी याद दिलाता रहता है और इस प्रकार यह एक मूक विक्रयकर्ता की तरह कार्य करता है।

(6) **लाभ सम्भावनाएं** (Profit-possibilities)—अच्छे पैकेजिंग के कारण एक उपभोक्ता से अधिक मूल्य लेने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं जो लाभ को बढ़ाने में सहायक होती हैं और इस प्रकार पैकेजिंग का यह अन्तिम कार्य है।

पैकेजिंग का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF PACKAGING)

कार्य के आधार पर पैकेजिंग का वर्गीकरण (1) मार्ग पैकेजिंग (Transit Packaging) व (2) उपभोक्ता पैकेजिंग (Consumer Packaging) में किया जा सकता है। लेकिन इसके अतिरिक्त तीन प्रकार के पैकेजिंग और पाये जाते हैं—(3) वस्तु पंक्ति पैकेजिंग (Product Line Packaging), (4) बहु इकाई पैकेजिंग (Multiple Packaging) व (5) पुन: प्रयोग पैकेजिंग (Re-use Packaging)।

(1) **मार्ग पैकेजिंग** (Transit Packaging)—प्रत्येक वस्तु को उसके उत्पादन केन्द्र से उसके उपभोक्ताओं तक विभिन्न साधनों के माध्यम से पहुँचाया जाता है। लेकिन इसके पहुँचाने के लिए उन वस्तुओं को इस प्रकार पैक किया जाता है कि वे मार्ग में हिलने से एवं स्थान-स्थान पर चढ़ाने व उतारने से खराब न हों। उनको मार्ग में इन सम्भावनाओं से बचाने के लिए जो कार्य किया जाता है उसे **मार्ग पैकेजिंग** कहते हैं। कुछ विद्वान इसी को **वितरण पैकेज** (Distribution Package) का नाम भी देते हैं। इस कार्य के लिए वस्तुओं को जूट के बोरों में, लकड़ी की पेटियों में तथा टीन के कनस्तरों में पैक किया जाता है।

(2) **उपभोक्ता पैकेजिंग** (Consumer Packaging)—यह वह पैकेज है जिसमें वास्तव में उपभोक्ता को वस्तु मिलती है। इसमें गत्ते के डिब्बों, काँच की बोतलों व टीन के छोटे-छोटे डिब्बों, का प्रयोग किया जाता है और वस्तु इन गत्ते के डिब्बों, बोतलों व टीन के डिब्बों में रखी होती है। इन दोनों प्रकार के पैकेजिंग के अतिरिक्त निम्न तीन प्रकार के पैकेजिंग और पाये जाते हैं :

(3) **वस्तु-पंक्ति पैकेजिंग** (Product Line Packaging)—इस प्रकार के पैकेजिंग में सभी प्रकार की वस्तुओं पर, जो एक निर्माता बनाता है, एक-सा पैकेजिंग किया जाता है तथा सभी पैकेजों पर सामान्य लक्षणों का प्रयोग होता है अर्थात् सभी वस्तुओं के पैकेज एक जैसे ही दिखायी देते हैं। यह पैकेजिंग **पारिवारिक पैकेजिंग** (Family Packaging) के नाम से भी पुकारा जाता है। इस प्रकार के पैकेजिंग का विकास पारिवारिक ब्राण्ड के साथ हुआ है। इस नीति के अपनाने से लाभ यह है कि नयी वस्तुओं को पुरानी वस्तुओं की प्रसिद्धि सम्बन्धी लाभ मिल जाते हैं तथा ग्राहकों को वस्तु पहचानने में आसानी रहती है। साधारणतया इस नीति का प्रयोग उसी समय किया जाता है जबकि वस्तुएँ समान प्रकार की होती हैं।

इस नीति के अपनाने में एक कमी है। एक मध्यस्थ दुकानदार की दुकान पर एक ही ब्राण्ड के पैकेज चारों ओर दिखायी देते हैं जिससे उनको छाँटने में कठिनाई होती है। ग्राहक भी यह सोचने लगता है कि उसके यहाँ केवल एक ही निर्माता का माल है। अतः वह अन्य प्रतियोगी दुकानदारों की ओर चला जाता है।

(4) **बहु-इकाई पैकेजिंग** (Multiple Pakaging)—इसमें एक ही पैकेजिंग में कई इकाइयाँ एक साथ पैक की जाती हैं जैसे, खेलने की गेंद, साबुन, बनियानें, सिले-सिलाये तैयार कपड़े, पैन आदि। वे वस्तुएँ जो छोटी हैं उनके लिए बहु-इकाई पैकेजिग बहुत ही सुविधाजनक है। इस प्रकार के पैकेजिंग से फुटकर विक्रेताओं को विशेष रूप से लाभ होता है क्योंकि प्रत्येक इकाई को बार-बार नहीं उठाना पड़ता है और न प्रत्येक इकाई पर अलग-अलग मूल्य ही लिखने पड़ते हैं। इस प्रकार उनके समय व श्रम की बचत होती है।

(5) **पुनः प्रयोग पैकेजिंग** (Re-use Packaging)—पैकेजिंग के इस ढंग का प्रयोग आजकल बहुत बढ़ रहा है। इसमें मूल वस्तु के उपयोग होने पर उसके पैकेजिंग को अन्य कार्यों में प्रयोग किया जाता है जैसे, वनस्पति घी का एक या दो किलो का डिब्बा खाली होने पर गृहणी के द्वारा ग्रहस्थी का अन्य सामान रखने के लिए काम में लाया जाता है। इसी प्रकार ऊन व बच्चों की मिठाइयों के टीन के डिब्बे अन्य कार्यों में गृहिणी द्वारा लाये जा सकते हैं। इस नीति में ग्राहक को विश्वास दिलाया जाता है कि उसको पैकेजिंग का डिब्बा मुफ्त या बहुत ही कम मूल्य पर मिल रहा है। इस प्रकार का पैकेजिग पुनः खरीद को प्रोत्साहित करता है।

पैकेजिंग के लाभ
(ADVANTAGES OF PACKAGING)

पैकेजिग के लाभों का अध्ययन तीन दृष्टिकोणों से किया जा सकता है: (I) निर्माताओं को लाभ (Advantages to Manufactures); (II) मध्यस्थों को लाभ (Advantages to Middlemen); व (III) उपभोक्ताओं को लाभ (Advantages to Consumers)।

(I) **निर्माताओं को लाभ** (Advantages to Manufactures)—(1) पैकेजिंग वस्तु को खराब होने से बचाता है तथा उसकी क्वालिटी में अन्तर नहीं आने देता है। (2) वस्तुओं में मिलावट (Adulteration) की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। (3) पैकेजिंग में विज्ञापन करने एवं उन पर ब्राण्ड छापने में आसानी रहती है जो विक्रय प्रवर्तन का कार्य करता है। (4) वस्तु को बिकने तक के समय तक आसानी से भण्डार किया जा सकता है। (5) अच्छा पैकेजिग निर्माता की ख्याति में वृद्धि करता है।

(II) **मध्यस्थों को लाभ** (Advantages to Middlemen)—(1) मध्यस्थों को पैकेजों को भण्डार करने, (2) उनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने, (3) उनको ग्राहकों को दिखाने में आसानी रहती है, एवं (4) अच्छा पैकेजिग वस्तु का स्वयं ही विज्ञापन करता है जिससे उसको वस्तु बेचने में सुविधा रहती है।

(3) **उपभोक्ताओं को लाभ** (Advantages to Consumers)—(1) पैकेजिंग उपभोक्ताओं को वस्तु लाने एवं ले जाने में सुविधा प्रदान करता है। (2)

उपभोक्ताओं को वस्तुएँ मूलरूप में मिलती हैं और उनमें मिलावट की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं । (3) पैकेजिंग के साथ छपा हुआ साहित्य उपभोक्ताओं को वस्तु के उचित प्रयोग (Proper use) की सलाह देता है जिससे उपभोक्ता उसका पूरा-पूरा लाभ उठा लेते हैं ।

पैकेजिंग का महत्व
(IMPORTANCE OF PACKAGING)

पैकेजिंग का महत्व धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है लेकिन आज भी वे संस्थाएँ इसके महत्व व आवश्यकता को स्वीकार नहीं करती हैं जिनकी वस्तुओं के सम्बन्ध में निर्माता-बाजार (Producers' Market) पाये जाते है । यही कारण है कि उन्होंने अभी तक आधुनिक विपणन एवं विक्रय प्रवर्तन सम्बन्धी बातों को नहीं अपनाया है ।

प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्तियों ने पैकेजिंग के महत्व को उभारकर ऊपर ला दिया है । **स्वयं-सेवा** (Self-Service) **व विक्रय मशीनों** (Vending Machines) **ने इसके प्रयोग में वृद्धि की है** क्योंकि बिना वस्तुओं को उचित प्रकार से पैक किये न तो स्वयं सेवा ही की जा सकती है और न मशीनों द्वारा उनका विक्रय ही सम्भव है ।

आज के युग में जहाँ समय का अभाव प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करता है वहाँ विक्रेता भी बार-बार वस्तु की तोल-नाप नहीं करना चाहता है और वह भी पैक की हुई वस्तुओं को ही बेचना चाहता है । आज पैकेजिंग व्यावसायिक क्रिया का एक अंग बन गया है और वस्तु के विक्रय मूल्य का एक अच्छा भाग पैकेजिंग की लागत होती है । यह कहा जाता है कि अमरीका में प्रत्येक डालर जो वस्तुओं के क्रय में व्यय किया जाता है उसके चार सेण्ट पैकेजिंग की लागत आती है ।

आजकल **पैकेजिंग वस्तु की सुरक्षा, सुविधा एवं भण्डार आदि के कारणों से ही आवश्यक नहीं है बल्कि विपणन एवं विक्रय के कारण भी आवश्यक है** । इसको दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि पैकेजिंग सम्बन्धी विचारधारा उत्पादन सम्बन्धी न होकर विपणन सम्बन्धी है जो वस्तु के विक्रय में सहायक होती है तथा उपभोक्ता सन्तुष्टि में वृद्धि करती है ।

पैकेजिंग का महत्व **जन-साधारण की आय में एवं उनके रहन-सहन में वृद्धि** उनकी स्वच्छता की आकांक्षा में वृद्धि, आदि कारणों से काफी बढ़ गया है ।

भारत जैसे देश में, जहाँ शिक्षा का प्रसार हो रहा है, रहन-सहन के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो रही है, शहरों में जनसंख्या बढ़ रही है, नयी-नयी उन्नत वस्तुओं के निर्माता सामने आ रहे हैं; वहाँ पैकेजिंग के महत्व को समझा ही नहीं जा रहा है बल्कि इस ओर निर्माताओं के द्वारा अपना ध्यान केन्द्रित किया जाने लगा है और बहुत-सी संस्थाएँ पैकेजिंग सम्बन्धी सलाह देने व पैकेजों को तैयार करनेलिए स्थापित हो गयी है जिनमें Metal Box का नाम उल्लेखनीय है ।

भारत में पैकेजिंग
(PACKAGING IN INDIA)

भारत में पैकेजिंग अभी नया है लेकिन अधिकांश निर्माता इसका सहारा लेने लगे हैं। इसी का परिणाम है कि दिन-प्रतिदिन नये नये, सुन्दर व आकर्षक पैकेज सामने आ रहे हैं। इधर भारतीय उपभोक्ता की आय में बराबर वृद्धि हो रही है तथा शिक्षित जनसंख्या भी दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। इस सबका परिणाम है कि अब उपभोक्ता पैक की हुई वस्तु चाहता है।

भारत में पैकेजिंग पदार्थ जिनका प्रयोग किया जा रहा है इसमें लकड़ी की पेटी (Wooden Boxes), गत्ते के डिब्बे (Cardboard Containers), जूट के कपड़े एव बोरे (Jute Cloth and Bags), कागज के थैले (Paper Bags), काँच की बोतल (Glass Bottles), टीन के डिब्बे (Tin Containers), प्लास्टिक की थैली (Plastic Bags), घास की टोकरी (Straw Baskets), एल्यूमीनियम के डिब्बे (Alluminium Containers), आदि आते है। योजना आयोग के अनुसार पैके-जिग पदार्थों की माँग में बराबर वृद्धि हो रही तथा उसमें तेज गति से वृद्धि की सम्भावना है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार इस समय देश में 400 इकाइयाँ हैं जो 350 करोड़ रुपये के मूल्य की पैकेजिग वस्तुओं का निर्माण करती हैं, जिनमें 15% सार्वजनिक कम्पनियाँ व 20% प्राइवेट कम्पनियाँ हैं।

"भारत में पैकेजिग व्यय बहुत ही कम है, यहाँ पैकेजिंग पर प्रति व्यक्ति व्यय 6 रुपये है जबकि अमरीका में 460 रुपये, ब्रिटेन में 280 रुपये व जापान में 217 रुपये हैं।"

पैकेजिग के महत्व को देखते हुए भारत में बहुत-सी संस्थाएँ स्थापित हो गयी है जो निर्माता एव विक्रेताओं को उनकी पैकेजिंग सम्बन्धी समस्याओं के हल करने में सलाह ही नही देती बल्कि बने-बनाये खाली पैकेज उसी के आकार-प्रकार के बनाकर उनको देती है, जिन आकार-प्रकार की उनको आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में METAL BOX नामक संस्था का नाम उल्लेखनीय है। यह संस्था इस सम्बन्ध में अच्छी सेवा कर रही है। भारत में पैकेजिग की लागत बहुत आती है जिससे वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है अतः पैकेजिग लागत एक समस्या है। भारत में सीमेण्ट जूट के बोरों में पैककर बेचा जाता है जिसकी लागत कुल लागत का 16 प्रतिशत बैठती है। इसी प्रकार काफी की पैकेजिग लागत 40 प्रतिशत है।

भारतीय पैकेजिग संस्थान
(INDIAN INSTITUTE OF PACKAGING)

पैकेजिग के महत्व को देखते हुए सन् 1966 में भारतीय पैकेजिंग उद्योग-पतियों एवं भारत सरकार के सहयोग से बम्बई में भारतीय पैकेजिंग संस्थान (Indian

Institute of Packaging) के नाम से एक संस्था स्थापित हुई है। इस संस्था की प्रमुख बातें निम्न प्रकार हैं :

(I) **उद्देश्य** (Objectives)—पैकेजिंग के सम्बन्ध में अनुसन्धान प्रोग्राम के माध्यम से उन साधनों एवं रास्तों को तय करना जिससे पैकेजिंग सम्बन्धी मशीन, डिजायन एवं पैकेजिंग सामान में उन्नति की जा सके। (2) निर्यात एवं आन्तरिक पैकेजिंग का अध्ययन करना जिससे उनके डिजाइन में उन्नति की जा सके। (3) पैकेजिंक सम्बन्धी सभी प्रकार की सूचनाओं का प्रसारण करना तथा इनके लिए प्रशिक्षण प्रोग्राम, विचारगोष्ठी, आदि की व्यवस्था करना।

(II) **कार्य** (Functions)—उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु इस संस्थान ने विभिन्न प्रोग्राम चलाये हैं और उनके लिए तीन कार्यकारी खण्ड (Functional Divisions) बनाये हैं– (1) अनुसन्धान एवं विकास (Research & Development); (2) प्रशिक्षण एवं सूचना (Training & Information); व (3) प्रशासन (Administration)।

(1) **अनुसन्धान एवं विकास** (Research & Development)—यह खण्ड विशेषज्ञ की तरह कार्य करता है और यदि उद्योगों के द्वारा पैकेजिंग सम्बन्धी कोई सलाह माँगी जाती है तो यह सलाह देता है। साथ ही यदि पैकेजिंग सम्बन्धी माल के परीक्षण (Testing) की आवश्यकता होती है तो यह परीक्षण भी करता है। इस कार्य के लिए यह फीस लेता है।

(2) **प्रशिक्षण एवं सूचना** (Training & Information)—देश में प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी है। इसके निवारण हेतु संस्थान ने दो प्रकार के प्रोग्राम चलाये हैं—(i) अल्पकालीन, व (ii) दीर्घकालीन। अल्पकालीन प्रोग्राम 2 से 4 दिन तक होते हैं जबकि दीर्घकालीन 3 माह के होते हैं। दीर्घकालीन प्रोग्राम प्रतिवर्ष जुलाई-अक्टूबर के बीच चलाये जाते हैं।

अब तक 41 अल्पकालीन प्रोग्राम चलाये जा चुके हैं और इनमें 1,000 से अधिक व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। इसी प्रकार दीर्घकालीन प्रोग्राम भी संचालित किये जा चुके हैं जिसमें 70 व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया गया है।

सूचनाओं के प्रसारण हेतु इस संस्थान के द्वारा NEWSLETTER, PACKAGING ABSTRACTS, PACKAGING INDIA व PACKAGING DIRECTORY नामक प्रकाशन किये जाते हैं। प्रथम दो का प्रकाशन मासिक है जबकि तीसरे का त्रैमासिक और अन्तिम का प्रत्येक दो वर्ष बाद।

(3) **प्रशासन** (Administration)—प्रशासन खण्ड का प्रमुख अधिकारी एक संचालक है। इसकी सहायता के लिए दो सहायक संचालक हैं जो क्रमशः अनुसन्धान एवं विकास तथा प्रशिक्षण एवं सूचना विभागों की देखभाल करते हैं। एक सचिव भी है जो संस्था का सामान्य कार्यकारी अधिकारी है। अब इस संस्थान ने एक क्षेत्रीय कार्यालय मद्रास में खोल दिया है।

• इस संस्था को आर्थिक सहायता भारत सरकार एवं उद्योगपति देते हैं। यह संस्था सलाहकारी सेवाओं व प्रशिक्षण प्रोग्रामों से कुछ आय कर लेती है।

प्रश्न

1. ब्राण्ड शब्द की व्याख्या कीजिए और ब्राण्ड के विभिन्न तरीकों को समझाइए।
   Explain the term 'brand' and discuss the various types of brands.
2. "पैकेजिंग" के शब्द से आप क्या समझते हैं ? एक अच्छे पैकेजिंग में कौन-कौन-सी प्रमुख बातें होनी चाहिए ?
   What do you understand by the term 'Packaging' ? What are the essentials of a good packaging ?
3. पैकिंग की विपणन में आवश्यकता क्यों पड़ती है ? इसके प्रयोग से क्या लाभ हैं ?
   Why packing is needed in marketing ? What are the advantages of its use ?
4. विपणन में ब्राण्ड और व्यापार चिह्न का महत्व बताइये। इनके चुनाव और पंजीकरण में किन-किन वैधानिक व्यवस्थाओं को ध्यान में रखना चाहिए।
   Explain the importance of brands and trade marks in marketing. What legal provisions should be taken into consideration for their selection and registration.

11

मूल्य नीतियाँ एवं मूल्य निर्धारण के ढंग

[PRICING POLICIES AND METHODS OF SETTING PRICES]

व्यवसाय में मूल्य निर्धारण बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि मूल्य माँग एवं पूर्ति दोनों को ही प्रभावित करता है। यदि मूल्य अधिक होता है तो उसकी माँग कम होती है, लेकिन यदि मूल्य कम होता है तो माँग अधिक होती है। इसी प्रकार पूर्ति भी मूल्य से प्रभावित होती है। कभी-कभी यह पाया जाता है कि वस्तुओं में भिन्नता उत्पन्न करके ऊँचे मूल्य प्राप्त किये जा सकते हैं, क्योंकि ऊँचे मूल्य वस्तु की टिकाऊपन एवं प्रतिष्ठा छवि के परिचायक होते हैं।

एक विपणन प्रबन्धक को मूल्य सम्बन्धी निर्णय लेते समय उन सभी पक्षों का ज्ञान होना चाहिए जो कि वस्तु से सम्बन्धित होते हैं जिससे कि मूल्य समयानुकूल सैद्धान्तिक एवं उचित आधारों पर निश्चित किये जा सकें। मूल्य निर्धारण में उद्योग, समाज, कानून, आदि महत्वपूर्ण योग देते हैं।

मूल्य निर्धारण एक कला है, विज्ञान नहीं। अतः मूल्य निर्धारण एक ठोस निर्णय (sound judgement) पर आधारित होना चाहिए। मूल्य सदा ही ट्रायल (trial) पर रहते हैं। एक निर्माता की सफलता उसके प्रबन्धकों के न्यायोचित एवं गतिशीलता निर्णय पर ही निर्भर करती है।

मूल्य-नीति सम्बन्धी विचार
(PRICE POLICY CONSIDERATION)

विपणन में मूल्य का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। मूल्यों का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि एक निर्माता या विक्रेता को उस सम्बन्ध में किये गये व्यय ही नहीं मिल जायें बल्कि कुछ लाभ भी मिल जाये जिससे कि वह सम्बन्धित क्रियाओं को व्यवस्थित ढंग से चालू रख सके और उपभोक्ता या क्रेता की सेवा अच्छी प्रकार से कर सके।

अतः बहुत-सी संस्थाएँ विक्रय-मूल्य को निर्धारित करने के लिए नियोजित नीति अपनाती हैं जिसको **विक्रय-मूल्यों के लिए नियोजित** (Planning for Sale-Prices) **कहते हैं**। जिन संस्थाओं के द्वारा यह कार्य सुनियोजित ढंग से किया ताज

है वे अपने लाभ को अधिकतम करने में समर्थ हो जाती हैं लेकिन जो संस्थाएँ इस पर उचित ध्यान नहीं दे पाती हैं वे अपने आप को खतरे में डाल लेती हैं और वे भाग्य के भरोसे पर चलती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि उनका जीवन अनिश्चित-सा बना रहता है।

मूल्यों को नियोजित करते समय एक अच्छी संस्था कुछ घटकों पर अवश्य विचार करती है, जिनको हम **मूल्य-नीति सम्बन्धी विचार** (Pricing Policy-considrations) कहते हैं। इन्हीं विचारों को **मूल्य सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करने वाले घटक** (Factors Affecting Pricing Decisions) भी कहते हैं। यह निम्नलिखित हैं :

(1) वस्तु की माँग (Demand of the Product),
(2) वस्तु की विशेषताएँ (Product Characteristics),
(3) वस्तु की लागत (Cost of the Product),
(4) वस्तु के वितरण मार्ग (Distribution Channels of the Product),
(5) ग्राहकों की विशेषताएँ (Customers' Characteristics),
(6) प्रतियोगिता (Competition),
(7) व्यापारिक परम्पराएँ (Trade Traditions),
(8) देश का आर्थिक एवं राजनीतिक वातावरण (Economic and Political Environment of the Country),
(9) निर्माता के उद्देश्य (Objectives of the Manufacturer), एवं
(10) सरकारी नियन्त्रण (Government Control)।

(1) **वस्तु की माँग** (Demand of the Product)—वास्तव में वस्तु की माँग एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है जिस पर मूल्य-नीति निर्धारण में अवश्य ही विचार किया जाना चाहिए। यह एक आधारशिला है। वस्तु की माँग पाँच प्रकार की होती है : (i) जब वस्तु के मूल्य में अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन होने पर या परिवर्तन न होने पर माँग में बहुत अधिक वृद्धि या कमी हो जाती है तो वस्तु की माँग **पूर्णतया लोचदार** कहलाती है। वास्तविक जीवन में इस प्रकार की माँग का उदाहरण नहीं मिलता है। लेकिन जब किसी वस्तु की माँग में मूल्य के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक आनुपातिक परिवर्तन होता है तो ऐसी दशा को (ii) **अत्यधिक लोचदार माँग** कहते हैं जैसे, यदि किसी वस्तु के मूल्य में 10 प्रतिशत की कमी होती है, परन्तु उसकी माँग मे 20 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है तो ऐसी वस्तु की माँग अत्यधिक लोचदार कहलाती है। यदि किसी वस्तु की माँग में परिवर्तन ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसके मूल्य में परिवर्तन हुआ है तो ऐसी वस्तु की माँग को (iii) **लोचदार माँग** कहते हैं जैसे, यदि किसी वस्तु के मूल्य में 10 प्रतिशत कमी होती है और उसकी माँग में ठीक 10 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है तो ऐसी वस्तु की माँग

लोचदार माँग कहलाती है। लेकिन जब किसी वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु के आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को (iv) **बेलोच माँग** कहते हैं। जैसे, यदि किसी वस्तु के मूल्यों में 40 प्रतिशत कमी हो जाती लेकिन माँग में केवल 8 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो ऐसी माँग बेलोच माँग कहलाती है। जब किसी वस्तु के मूल्यों में परिवर्तन होने पर भी उसकी माँग में परिवर्तन नहीं होता है तो ऐसी स्थिति को (v) **पूर्णतया बेलोच** माँग कहते हैं। यह एक काल्पनिक माँग है और वास्तविक जीवन में इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता है।

एक निर्माता को अपनी वस्तु के मूल्य नियोजित करते समय वस्तु की माँग का विस्तार से अध्ययन कर लेना चाहिए कि वह उपर्युक्त प्रकारों में से किस प्रकार की है जिससे कि उसी अनुसार मूल्यों को निश्चित किया जा सके। उदाहरण के लिए, यदि निर्माता की वस्तु बेलोचदार या पूर्णतया बेलोच माँग के अन्तर्गत आती है तो वस्तु का मूल्य मनमाना रखकर अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है।

(2) **वस्तु की विशेषताएं** (Product Characteristics)—वस्तु सम्बन्धी विशेषताएँ भी मूल्य सम्बन्धी नीति पर प्रभाव डालती हैं अतः इन पर भी विचार कर लिया जाना चाहिए। यह विशेषताएँ बहुत-सी होती हैं लेकिन उनमें मुख्य इस प्रकार हैं : (i) **वस्तु का जीवन चक्र** (Life-cycle of the Product)—यदि वस्तु बाजार परिचय की अवस्था में है तो वस्तु का मूल्य कम रखा जाना चाहिए जिससे कि उसकी माँग उत्पन्न हो सके। इसी प्रकार यदि वस्तु बाजार वृद्धि की अवस्था में है तो अपने ब्राण्ड की ओर ग्राहकों को आकर्षित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, यदि वस्तु बाजार परिपक्वता या बाजार अवनति की अवस्थाओं में है तो गिरती हुई बिक्री को रोकने के लिए मूल्य कम करना आवश्यक है। (ii) **वस्तु की नाशवानता** (Perishability of the Product)—वस्तु का विनाशता सम्बन्धी गुण भी वस्तु के मूल्य को प्रभावित करता है। यदि वस्तु की प्रकृति शीघ्र सड़ जाने या खराब हो जाने की है तो वस्तु खराब होने से पूर्व ही बेच दी जानी चाहिए। अतः उसका मूल्य ऐसा निश्चित किया जाना चाहिए कि उसकी बिक्री जल्द-से-जल्द हो जाय। फैशन भी इसी के अन्तर्गत आता है। (iii) **वस्तु का प्रतिस्थापन** (Substitution of the Demand)—वे वस्तुएँ जिनकी प्रतिस्थापित वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं उनका मूल्य सोच-विचार कर निश्चित किया जाना चाहिए क्योंकि प्रतिस्थापित वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि उस वस्तु की माँग में तुरन्त कमी कर देती है। अतः इस प्रकार की वस्तुओं के मूल्य कम ही रखे जाने चाहिए। इस प्रकार के उदाहरणों में चाय व कॉफी, मक्खन एवं घी को रखा जाता है। (iv) **वस्तु की माँग का स्थगन** (Postponability of the Demand)—यदि वस्तु इस प्रकार की है कि उपभोक्ता उसके सम्बन्ध में अपनी माँग को कुछ समय के लिए स्थगित कर सकता है तो इस स्थगित करने की प्रवृत्ति का वस्तु के मूल्यों के नियोजन पर प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार

की वस्तुओं में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएँ (consumer durables) आती हैं जैसे, मोटर कार, स्कूटर, फ्रिज, स्टील की अलमारी, फर्नीचर, आदि।

(3) **वस्तु की लागत** (Cost of the Product)—मूल्य सम्बन्धी नीति पर विचार करते समय वस्तु की लागत पर विचार किया जाना चाहिए। लागत तीन प्रकार की होती है : (i) **स्थायी लागत** (Fixed Cost)—वह लागत जो उत्पादन के घटने व बढ़ने के साथ बढ़ती व घटती नहीं है स्थायी लागत कहलाती है। इसमें भूमि व मकान के टैक्स, किराया, मशीनों का ह्रास, चौकीदारी के व्यय, आदि शामिल किये जाते हैं। (ii) **चल लागत** (Variable Cost)—वह लागत जो उत्पादन से सम्बन्धित है और उत्पादन के घटने व बढ़ने पर उसी अनुपात में घट या बढ़ जाती है, चल लागत कहलाती है। इसमें मजदूरी, बिजली का व्यय, पैकिंग व भण्डार का व्यय, माल भेजने का व्यय, आदि शामिल किये जाते हैं। इस लागत को कुल चल लागत में उत्पादित इकाइयों का भाग देकर निकाला जाता है। (iii) **संवृद्धि लागत** (Incremental Cost)—वह लागत जो उत्पादन के एक स्तर से दूसरे स्तर पर जाने से बढ़ जाती है उसको हम संवृद्धि लागत कहते हैं जैसे, अधिक उत्पादन बेचने के लिए नये बाजारों में प्रवेश करने के सम्बन्ध में व्यय करना। यह व्यय स्थायी व चल दोनों प्रकार के होते हैं। विपणन संवृद्धि लागत बहुत ही महत्वपूर्ण होती है।

मूल्य-नीति सम्बन्धी नियोजन करते समय वस्तु की लागत का पता अवश्य ही लगा लिया जाना चाहिए। वस्तु की लागत उसके मूल्य पर प्रभाव डालती है। साधारणतया कोई भी निर्माता बिना अपनी कुल लागत को प्राप्त किये वस्तु का विक्रय नहीं करता है। व्यवसाय लागत प्राप्त करने के लिए ही नहीं किया जाता बल्कि उससे अधिक प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

(4) **वस्तु के वितरण-मार्ग** (Distribution Channels of the Product)—वस्तु किन-किन वितरण मार्गों से उपभोक्ता तक पहुँचती है तथा इस सम्बन्ध में छूट सम्बन्धी नीति क्या अपनायी जाती है यह दोनों बातें मूल्य-नीति को प्रभावित करती हैं। यदि वस्तु का वितरण-मार्ग लम्बा है अर्थात् निर्माता व उपभोक्ता के बीच कई मध्यस्थ हैं तो उन सभी मध्यस्थों को उचित लाभ देते हुए वस्तु का मूल्य अधिक निश्चित करना होगा। इसके विपरीत, यदि वितरण-मार्ग छोटा है तो वस्तु का कम मूल्य निश्चित किया जा सकता है।

(5) **ग्राहकों की विशेषताएँ** (Customers' Characteristics)—मूल्य सम्बन्धी नीतियों के नियोजन में ग्राहकों की विशेषताओं पर भी विचार कर लिया जाना चाहिए। यदि क्रेता औद्योगिक क्रेता है तो इसका अर्थ यह है कि वस्तु बहुत ही प्रतियोगी मूल्यों पर देनी होगी क्योंकि औद्योगिक क्रेताओं को साधारणतया इस सम्बन्ध में काफी ज्ञान होता है। इसके विपरीत, यदि वस्तु के क्रेता उपभोक्ता-क्रेता

हैं तो ऐसे क्रेता से कोई भी मूल्य लिया जा सकता है क्योंकि उनको बाजार का पूरा ज्ञान नहीं होता है।

(6) **प्रतियोगिता** (Competition)—जब निर्माता वस्तुओं की मूल्य नीति का नियोजन कर रहा है तो उसको प्रतियोगिता का भी ध्यान रखना चाहिए। यह ध्यान भी कई दृष्टिकोणों से हो सकता है : (i) उसी प्रकार की वस्तु से प्रतियोगिता होने पर जैसे, कोका-कोला पेय निर्माता फैण्टा पेय निर्माता के मूल्यों पर निगाह रखता है। (ii) प्रतिस्थापन वस्तुओं से प्रतियोगिता होने की सम्भावना में जैसे, जूट के बोरों की प्रतियोगिता मोटे कागज के थैलों या प्लास्टिक के थैलों से हो सकती है अतः इनके निर्माता इन वस्तुओं के मूल्यों पर अपनी नजर रखते हैं। (iii) उस प्रकार की वस्तु के निर्माता कम होने पर—जैसे, भारत में मोटरकार व ट्रक बनाने वाली संस्थाएँ कम हैं। यदि किसी वस्तु की प्रतियोगिता कम है तो मूल्य अधिक रखे जा सकते हैं।

(7) **व्यापारिक परम्पराएँ** (Trade Traditions)—मूल्य नीतियों का निर्धारण करते समय व्यापारिक परम्पराओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरण के लिए, बिजली के पंखे, सिलाई की मशीनें, रेफ्रीजरेटर, रेडियो आदि के लिए गारण्टी देना एक परम्परा बन गयी है। इसका अर्थ यह है कि मूल्यों में इस सेवा का मूल्य भी अवश्य ही जोड़ लेना चाहिए। इसी प्रकार बच्चों की मिठाइयाँ या आइसक्रीम का मूल्य 5 पैसा या 10 पैसे रखने की परम्परा-सी बन गयी है।

(8) **देश का आर्थिक एवं राजनीतिक वातावरण** (Economic and Political Environment of the Country)—मूल्य सम्बन्धी नीति के सन्दर्भ में देश का आर्थिक वातावरण भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि देश में आर्थिक सुस्ती (recession) है तो मूल्य गिरावट नीति अवश्यम्भावी है। इसी प्रकार यदि उस सुस्ती में सुधार हो रहा है तो क्रमशः मूल्य वृद्धि की नीति अपनायी जा सकती है।

राजनीतिक वातावरण भी मूल्य नीतियों पर प्रभाव डालता है। यदि राजनीतिक वातावरण मूल्य वृद्धि पर नियन्त्रण लगाने का है तो इसका अर्थ यह है कि एकाधिकारी मूल्य निश्चित नहीं किये जा सकते हैं।

(9) **निर्माता के उद्देश्य** (Objectives of the Manufacturer)—कम्पनी या निर्माता के उद्देश्यों का प्रभाव उस कम्पनी या निर्माता की मूल्य नीतियों पर भी पड़ता है। एक निर्माता के जिस प्रकार के उद्देश्य होंगे उसकी मूल्य नीति भी उसी अनुरूप होगी।

(10) **सरकारी नियन्त्रण** (Government Control)—विक्रय मूल्यों सम्बन्धी नीति पर सरकारी नियन्त्रणों का भी प्रभाव पड़ता है। अतः मूल्य नीति को नियोजित करते समय इसका भी ध्यान रखा जाना चाहिए। यदि किसी वस्तु के मूल्य बढ़ जाते हैं और उसकी पूर्ति उचित रूप से नहीं हो पाती है तो सरकार ऐसी वस्तुओं का सम्पूर्ण उत्पादन, वितरण एवं मूल्य निर्धारण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेती

है। भारत में सरकार को यह अधिकार आवश्यक वस्तुएं अधिनियम (Essential Commodities Act) व औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम (Industries Development and Regulation Act), भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rules) के अन्तर्गत मिले हुए हैं जिनके परिणामस्वरूप बहुत-सी वस्तुओं की पूर्ति एवं उनके मूल्यों पर सरकारी नियन्त्रण विद्यमान है।

मूल्य-नीतियाँ
(PRICE-POLICIES)

"मूल्य-नीतियाँ निर्देश सिद्धान्त की सामग्री उपस्थित करती हैं जिसके अन्तर्गत मूल्य-रीति नीति तय और कार्यान्वित की जाती है।"[1]

मूल्य-नीतियों में परिवर्तन बार-बार नहीं किया जाना चाहिए लेकिन उनकी समीक्षा अवश्य करते रहना चाहिए जिससे कि वे समयानुसार बनी रहें और संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति ही न कर सकें बल्कि विपणन स्थिति को भी उचित रूप से सम्भाल सकें।

मूल्य-नीतियाँ कई प्रकार की होती हैं। अत: अध्ययन की सुविधा के लिए इन नीतियों को चार भागों में बाँटा जा सकता है: (1) लचनशीलता के आधार पर (On the basis of Flexibility), (2) मूल्य स्तर के आधार पर (On the basis of Price-level), (3) विशेषता के आधार पर (On the basis of Speciality), (4) भौगोलिक स्थिति के आधार पर (On the basis of Geographic Condition)।

(1) **लचनशीलता के आधार पर** (On the basis of Flexibility)

लचनशीलता के आधार पर मूल्य-नीतियाँ दो प्रकार की होती हैं:

(i) **एक मूल्य-नीति** (One Price Policy)—यह वह नीति है जिसमें उन सभी क्रेताओं से एक ही मूल्य वसूल किया जाता है जो एक समाज में व एक मात्रा में वस्तुओं को क्रय करते हैं। इसमें एक बार जो मूल्य-निर्धारित कर दिये जाते हैं वे दीर्घकाल तक चलते रहते हैं।

विक्रेता इस नीति को इसलिए अच्छा मानते है कि इसमें सभी क्रेताओं से एक ही मूल्य वसूल किया जाता है तथा लाभ एवं बिक्री का पूर्वानुमान ठीक प्रकार से लगाया जा सकता है। वस्तुओं के विक्रय में मोल-भाव नहीं करना पड़ता है जिससे समय की बचत होती है और विक्रय-व्ययों में कमी होती है। साथ ही किसी भी ग्राहक को यह अवसर नहीं मिल पाता कि संस्था ने उसके साथ अन्याय किया है। कभी-कभी इन मूल्यों को **प्रचलित मूल्य** (Customary Price) भी कहते हैं। बहुत-सी संस्थाएँ जो ठण्डा पेय, शराब, आइसक्रीम, आदि बेचती हैं, इस नीति को अपनाती

---

1 "Price policies provide the guidelines within which pricing strategy is formulated and implemented." —Cundiff & Still : *Basic Marketing*, p. 465.

हैं। जब कभी भी वस्तुओं की लागत घट या बढ़ जाती है तो पैकेट के अन्दर की वस्तु की मात्रा को घटा या बढ़ाकर वही मूल्य बनाये रखे जाते हैं। मूल्यों को बनाये रखने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि उपभोक्ता उन प्रचलित मूल्यों को देने का आदी हो जाता है और यदि उनमें परिवर्तन होता है तो उस पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है जो निर्माता के विरुद्ध हो सकता है।

(ii) **लचकीली मूल्य-नीति** (Flexible Price Policy)—इस नीति में भिन्न-भिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल किये जाते हैं। यह मूल्य विक्रेता और ग्राहक की मोल-भाव करने की क्षमता (bargaining power), ग्राहक की देय क्षमता, ग्राहक का विक्रेता से पारिवारिक सम्बन्ध व अन्य बहुत-सी बातों पर निर्भर है।

अविकसित व विकासशील देशों में बहुधा यही मूल्य-नीति अपनायी जाती है। भारत में भी इस प्रकार की नीति विभिन्न विक्रेताओं के द्वारा अपनायी जाती है। साधारणतया यह नीति कपड़ा बाजार, अनाज मण्डी, सौदागरी के बाजार, आदि में अधिक पायी जाती है। यह नीति उन वस्तुओं के सम्बन्ध में खासतौर पर पायी जाती है जो वस्तुएँ प्रमापित नहीं हैं।

इस नीति के अपनाने में विक्रेता स्वतन्त्र रहता है और प्रतियोगिता के अनुसार मूल्य निर्धारित कर सकता है। लेकिन इस नीति में अवगुण यह है कि जब क्रेता को इस बात का पता लग जाता है कि उसको वस्तु अधिक मूल्य पर मिली है तो उसका विश्वास ऐसे विक्रेता से हट जाता है और वह ऐसे विक्रेता से वस्तुएँ क्रय करना बन्द कर देता है। इसमें विक्रेता व क्रेता को अधिक समय देना पड़ता है।

एक निर्माता या व्यवसायी को उपर्युक्त दोनों में से कौन-सी नीति अपनानी चाहिए इसका निर्णय तो स्वयं उसी को लेना है लेकिन प्रशासन की दृष्टि से एक-मूल्य-नीति अच्छी मानी जाती है।

(2) **मूल्य-स्तर के आधार पर** (On the basis of Price-Level)

मूल्य-स्तर के आधार पर मूल्य-नीतियाँ तीन प्रकार की होती हैं :

(i) **प्रतियोगिता मिलन नीति** (Meeting Competition Policy)—इस नीति को अपनाने में मूल्य-स्तर तथा प्रतियोगिता को ध्यान में रखा जाता है जिसके अनुसार प्रतियोगी संस्थाओं की जो मूल्य-नीति होती है उसी अनुरूप मूल्य-नीति अपना ली जाती है। यदि प्रतियोगी संस्थाएँ मूल्य कम कर देती हैं तो इस नीति को अपनाने वाली संस्था भी अपनी वस्तु का मूल्य कम कर देती है। इसके विपरीत, यदि प्रतियोगी संस्थाएँ मूल्य बढ़ा लेती हैं तो इस नीति को अपनाने वाली संस्था भी अपने मूल्य बढ़ा लेती है।

यह नीति अत्यधिक प्रतियोगी अवस्था में अपनायी जाती है जैसे, मिट्टी का तेल, डीजल व पैट्रोल में। इन तीनों वस्तुओं के विक्रेता लगभग सभी स्थानों पर पाये जाते हैं और उनमें काफी प्रतियोगिता पायी जाती है। भारत में पैट्रोल व डीजल

बेचने के स्टेशन सभी स्थानों पर सड़कों के आस-पास पाये जाते हैं। जब कभी भी कोई एक कम्पनी—इण्डियन आयल लिमिटेड, या हिन्दुस्तान पैट्रोलियम प्रोडक्ट्स लिमिटेड—मूल्य परिवर्तित करती हैं तो अन्य कम्पनी भी उसी प्रकार का परिवर्तन अपने मूल्यों में कर लेती हैं।

(ii) **बाजार के अधीन नीति** (Under the Market Policy)—यह वह नीति है जिसमें एक व्यवसायी अपने मूल्य सदा ही उन मूल्यों से कम रखता है जो बाजार में चल रहे हैं। इस नीति को अपनाने का उद्देश्य बाजार में प्रवेश करना एवं उसका विस्तार करना होता है। प्रारम्भिक अवस्था में एक व्यवसायी इस नीति को अपनाकर बाजार में प्रवेश पा सकता है और लम्बे काल तक इसको अपनाने से अपनी वस्तु के बाजार का विस्तार कर सकता है।

(iii) **बाजार से ऊपर नीति** (Above the Market Policy)—इस नीति में अन्य प्रतियोगियों के मूल्यों से अधिक मूल्य निर्धारित किये जाते हैं। इस नीति को वे संस्थाएँ अपनाती हैं जिन्होंने अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर ली है और उपभोक्ता को उचित संतुष्टि दे रही हैं। इस कार्य के लिए वस्तु के सम्बन्ध में गारण्टी भी दी जाती है और विज्ञापन भी खूब किया जाता है।

(3) **विशेषता के आधार पर** (On the basis of Speciality)

विशेषताओं के आधार पर भी मूल्य नीतियाँ बहुत-सी होती हैं लेकिन उनमें प्रमुख मूल्य नीतियाँ निम्न हैं :

(i) **ललचाने वाली मूल्य नीति** (Bait Pricing Policy)—यह वह नीति है जिनमें दो वस्तुओं का निर्माण किया जाता है—एक कम मूल्य वाली व दूसरी अधिक मूल्य वाली। एक विक्रेता के द्वारा पहले कम मूल्य वाली वस्तु दिखायी जाती है और जब क्रेता उस वस्तु को (कम मूल्य होने के कारण) खरीदने में दिलचस्पी दिखाता है तो फिर उसको अधिक मूल्य वाली वस्तु दिखायी जाती है और कम मूल्य वाली वस्तु के दोषों को बताया जाता है। इस नीति में विक्रेता द्वारा पहले कम मूल्य वाली वस्तु को दिखाकर ललचाने का कार्य किया जाता है और फिर उसको अधिक मूल्य वाली वस्तु की बिक्री करने का प्रयत्न किया जाता है। इस नीति का उद्देश्य कम मूल्य पर आकर्षित कर अधिक मूल्य की वस्तु बेचना है।

(ii) **मूल्य-रेखा नीति** (Price-lining Policy)—इस नीति में वस्तुओं के मूल्य इस प्रकार निर्धारित किये जाते हैं कि दो मूल्यों के बीच एक निश्चित अन्तर होता है और इन अन्तरों में कोई मूल्य निश्चित नहीं किये जाते हैं जैसे, एक पैन बनाने वाली कम्पनी अपने पैनों के मूल्य 2 रुपये, 4 रुपये, 6 रुपये, 8 रुपये, व 10 रुपये रखती है। इसका अर्थ यह है कि 2 रुपये व 4 रुपये के बीच कोई पैन नहीं है और आगे भी यही स्थिति है। यदि कोई क्रेता पैन खरीदना चाहता है तो वह या

तो 2 रुपये वाला पैन खरीदेगा या इसी क्रम से अधिक मूल्य वाला। दो पैनों के बीच के अन्तर में किसी भी पैन का मूल्य निर्धारित नहीं किया गया है।

(iii) **पूरी पंक्ति मूल्य नीति** (Full-line Pricing Policy)—जब एक निर्माता बहुत-सी वस्तुओं को बनाता है तो उसके लिए वस्तु की स्थाई लागत निकालना कठिन होता है। अतः वह अपनी वस्तुओं का मूल्य उनकी माँग के अनुसार निर्धारित कर देता है जिससे कि कुछ वस्तुओं के मूल्य बहुत अधिक (very high) व कुछ के मध्यम तो कुछ के बहुत ही कम (very low) निश्चित कर दिये जाते हैं। ऐसा करने से उसकी कुल स्थायी लागत निकल आती है और कुल लाभों में वृद्धि होती है।

(iv) **नेता मूल्य नीति** (Leader Pricing Policy)—एक निर्माता इस नीति में कुछ वस्तुओं को चुन लेता है और उनका मूल्य बहुत कम रखता है जिससे कि उनकी बिक्री बढ़ जाय तथा जनसाधारण को यह बता सके कि उसके यहाँ कम मूल्य पर वस्तुएँ मिलती हैं। यह नीति उन वस्तुओं के सम्बन्ध में अपनायी जाती है जिनको उपभोक्ता द्वारा एकत्रित नहीं किया जाता है जैसे, चाय, काफी, सिगरेट, डबलरोटी, मक्खन, आदि।

(v) **मलाई उतारने वाली मूल्य नीति** (Skimming Pricing Policy)—इस नीति में मूल्य बहुत अधिक रखे जाते हैं और बाजार से अत्यधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है, अतः इस नीति को मलाई उतारने वाली नीति कहते हैं। यह नीति नयी वस्तुओं के सम्बन्ध में अपनायी जाती है और तब तक चलत रहती है जब तक कि प्रतियोगी संस्थाएँ सामने नहीं आ जाती हैं। इस नीति को अपनाने में यह डर रहता है कि यदि ग्राहकों द्वारा अधिक मूल्य पर वस्तु को नहीं अपनाया गया तो सारे प्रयत्न असफल हो सकते हैं।

(vi) **प्रवेशक मूल्य निर्धारण नीति** (Penetration Pricing Policy)—इस नीति को अपनाकर जब मूल्य निर्धारित करते हैं तो वस्तुओं के मूल्य बहुत ही कम रखे जाते हैं। इसका उद्देश्य यह है कि किसी प्रकार बाजार में प्रवेश किया जाय और जब बाजार में प्रवेश कर लें तो फिर इस नीति को छोड़ दें व अन्य लाभकारी नीति को ग्रहण कर लें। इस नीति में जो मूल्य निर्धारित किये जाते हैं उनको 'Stay Out Price' कहते हैं।

(vii) **मनोवैज्ञानिक मूल्य-नीति** (Psychological Pricing Policy)—यह मूल्य निर्धारण नीति ग्राहक के मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर निश्चित की जाती है। इसमें मूल्य इस प्रकार निर्धारित किये जाते हैं कि ग्राहक पर यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़े कि मूल्य कम हैं जैसे, 3 रुपये 90 पैसे, 6 रुपये 95 पैसे, 9 रुपये 90 पैसे, आदि। यह नीति फुटकर वस्तुओं के सम्बन्ध में अपनायी जाती है। भारत में यह नीति बाटा इण्डिया लिमिटेड (Bata India Ltd.) द्वारा अपनायी जाती है।

(4) **भौगोलिक स्थिति के आधार पर** (On the basis of Geographical Condition)

वस्तुओं को विक्रेता के स्थान से क्रेता के स्थान तक पहुँचाने में कुछ परिवहन व्यय होते हैं। यह परिवहन व्यय साधारणतया क्रेता के द्वारा वहन किये जाते हैं लेकिन यदि विक्रेता इन व्ययों में योग देना चाहे तो दे सकता है। इस प्रकार परिवहन व्यय दोनों के द्वारा भी बाँटे जा सकते हैं। इसका उद्देश्य मूल्यों को इस प्रकार निर्धारित करना है कि परिवहन व्यय किसी खास स्थान तक विक्रेता द्वारा वहन किये जायें। अतः इन मूल्य नीतियों को भौगोलिक मूल्य नीति के आधार पर निर्धारित करते हैं। यह नीतियाँ पाँच प्रकार की होती हैं :

(i) **एकसमान सुपुर्दगी मूल्य-नीति** (Uniform Delivery Pricing Policy)—इस नीति में विक्रेता के द्वारा सभी ग्राहकों से एक-सा मूल्य वसूल किया जाता है। देश के किसी भी भाग से आदेश देने वाले को एक ही मूल्य देना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि विक्रेता के मूल्य में वस्तु का मूल्य+परिवहन व्यय शामिल है। यह परिवहन व्यय क्रेता के रेलवे स्टेशन या पास के समुद्री बन्दरगाह तक होते हैं। जिनको विक्रेता द्वारा ही वहन किया जाता है। इस प्रकार की नीति में जो मूल्य निर्धारित किये जाते हैं उन्हें F.O.B. at the Buyers Location मूल्य कहते हैं और इस नीति को डाक टिकट मूल्य नीति (Postage Stamp Pricing Policy) कहते हैं। जिस प्रकार डाकखाने की दरें देश के अन्दर के लिए एकसमान हैं और 15 पैसे का पोस्टकार्ड पड़ौसी को भी भेजा जा सकता है व हजारों मील दूर जम्मू या कश्मीर से कन्याकुमारी तक भी। उसी प्रकार एक विक्रेता द्वारा पास के एवं दूर के सभी ग्राहकों से एक-सा मूल्य लिया जाता है।

यह नीति उन संस्थाओं के द्वारा अपनायी जाती है जो ऐसी वस्तुओं को भेजती हैं जिसे भेजने में व्यय कम पड़ता है तथा जो क्रेता को इस प्रकार की सुविधा देना चाहती हैं। लेकिन इसकी आलोचना वे क्रेता करते हैं जो विक्रेता के पास के हैं। दूर वाले क्रेताओं को तो लाभ रहता ही है। विक्रेता की दृष्टि से इस प्रकार की नीति इसलिए अच्छी है कि वह इस नीति से मूल्य-नियन्त्रण कर सकता है और अपने विज्ञापनों में वितरण मूल्यों का उल्लेख कर उपभोक्ता को पूरी सूचना दे सकता है व एक से विज्ञापन अपना सकता है। कानून की दृष्टि में भी इस प्रकार की नीति अनुचित नहीं है।

(ii) **क्षेत्रीय सुपुर्दगी मूल्य-नीति** (Zonal Delivery Pricing Policy)—इस नीति में ग्राहकों को उनके स्थान के अनुसार क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है और जब एक ही क्षेत्र के विभिन्न स्थानों के ग्राहकों से आदेश प्राप्त होते हैं तो उन सभी से एक ही मूल्य लिया जाता है और एक ही दर से माल के परिवहन व्यय प्राप्त किये जाते हैं लेकिन विक्रेता द्वारा परिवहन व्यय का भुगतान विभिन्न स्थानों के लिए भिन्न-भिन्न किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी विक्रेता ने पूरे उत्तर प्रदेश को

एक क्षेत्र मान लिया है और विक्रेता स्वयं मेरठ में है तो बनारस, आगरा, कानपुर, आदि स्थानों के ग्राहकों से आदेश प्राप्त होने पर उनसे मूल्य व एक निश्चित परिवहन व्यय लिया जायेगा लेकिन विक्रेता द्वारा तो रेलवे या ट्रक मालिक को विभिन्न किराया देना होगा।

इस नीति को अपनाने से एक क्षेत्र में एक मूल्य रखे जा सकते हैं। यह नीति एकसमान सुपुर्दगी मूल्य नीति जैसी है।

(iii) **आधारित-केन्द्र मूल्य नीति** (Basing-Point Pricing Policy)—यह मूल्य निर्धारण की वह नीति है जिसमें विक्रेता या निर्माता क्रेता से दो वस्तुओं को मूल्य के रूप में लेता है : (अ) वस्तु का मूल्य उसके निर्माण या संग्रह के स्थान पर, तथा (ब) क्रेता के स्थान तक के परिवहन व्यय 'किराया पुस्तक' के अनुसार। 'किराया पुस्तक' एक पुस्तक होती है जिसमें विभिन्न शहरों या स्थानों के नाम दिये जाते हैं और साथ ही उन स्थानों के आगे वह किराया भी लिखा रहता है जिसको क्रेता से लिया जावेगा। इस किराये के निर्धारण का आधार वह किराया होता है जो वास्तव में परिवहन संस्थाएँ किराये के रूप में वसूल करती हैं लेकिन इसके लिए कुछ स्थान ही चुने जाते हैं जहाँ से किराये की गणना की जाती है। इन स्थानों को Basing-Points कहते हैं। वास्तव में यह वे स्थान होते हैं जहाँ पर अन्य प्रतियोगी संस्थाएँ वस्तुओं का निर्माण कर रही हैं या उनका संग्रह कर रही है लेकिन आवश्यक नहीं है कि वे सभी स्थान निर्माण स्थान या संग्रह स्थान हों। इस नीति को सभी प्रतियोगी संस्थाएँ मिलकर ही अपनाती हैं और उन्हीं के द्वारा 'किराया पुस्तक' बनायी जाती है।

इस नीति की आलोचना इस दृष्टि से की जाती है कि यह नये उद्योगपतियों को उस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए कठिनाई पैदा कर देती है, मूल्यों में प्रतियोगिता को समाप्त करती है तथा मूल्यों को स्थिर बनाने में सहायक होती है। लेकिन इसमें यह अच्छाई भी है कि स्थानीय एकाधिकार को बढ़ने नहीं देती है।

(iv) **उत्पादन-केन्द्र मूल्य नीति** (Production-Point Pricing Policy)—अधिकांश संस्थाओं द्वारा यही नीति अपनाई जाती है। इस नीति के अपनाने वाली संस्था वस्तु की सुपुर्दगी फैक्टरी के दरवाजे या गोदाम पर करती है और वहाँ से गाड़ी में चढ़ाने व आगे ले जाने का व्यय क्रेता वहन करता है। इस प्रकार के मूल्य **फैक्टरी मूल्य** (Factory Price) कहलाते हैं। वस्तु को ले जाने की जोखिम क्रेता की होती है। विक्रेता तो माल की सुपुर्दगी अपने गोदाम या फैक्टरी के दरवाजे पर करके आगे के उत्तरदायित्व से बच जाता है। कुछ विद्वान इस नीति को F. O B. Fa tory P.i.e P. licy और मूल्यों को F. O. B. Factory or Mills Price कहते हैं।

यह नीति अच्छी है। इसमें क्रेताओं के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता है और संसार के सभी स्थानों व देशों में यह नीति सामान्य रूप से पाई जाती है।

(v) **किराया-सोख मूल्य नीति** (Freight Absorption Pricing Policy)—मूल्य निर्धारण की यह वह नीति है जिनमें विक्रेता या निर्माता कुछ किराये को अपने ऊपर ले लेता है अर्थात् वह उसे सहन करता है, इसलिए इसको किराया-सोख नीति कहते हैं। यह नीति बाजार के विस्तार के समय अपनायी जाती है और विशेषतः उन क्रेताओं को लाभ देने के लिए जो प्रतियोगी संस्थाओं के निकट हैं। उदाहरण के लिए, यदि सीमेण्ट की फैक्टरियाँ ग्वालियर (मध्य प्रदेश) व मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) में हैं और उत्पादन एवं वितरण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है तथा वस्तु की क्वालिटी व मूल्य एक हैं और यदि आगरा (उत्तर प्रदेश) में सीमेण्ट का खरीददार है तो उसके लिए ग्वालियर सिर्फ 100 किलोमीटर दूर है जबकि मिर्जापुर 500 किलोमीटर से अधिक—वह ग्वालियर से ही सीमेण्ट खरीदना पसन्द करेगा क्योंकि उसका परिवहन व्यय कम पड़ेगा। लेकिन मिर्जापुर फैक्टरी आगरा वाले खरीददार को यह प्रस्ताव कर सकती है कि वह वस्तु का मूल्य तथा आगरा से ग्वालियर तक का किराया दे। इनका अर्थ यह हुआ कि बाकी का किराया मिर्जापुर फैक्टरी वहन करेगी। इस प्रकार यह नीति अपनायी जा सकती है।

इस नीति से प्रतियोगिता सुदृढ़ होती है और एकाधिकार पनप नहीं पाता है। लेकिन एक बात अवश्य है कि इसको वे संस्थाएँ ही अपना सकती हैं जिनकी उत्पादन सम्बन्धी स्थायी लागत तो अधिक है लेकिन सीमान्त लागत घट रही है।

लागत का अर्थ
(MEANING OF COST)

मूल्य निर्धारण में वस्तु की लागत एक महत्वपूर्ण अंग है। इस लागत में वर्तमान लागत एवं भावी लागत दोनों ही आती हैं। वर्तमान लागत का अर्थ है कि वर्तमान में उस वस्तु की लागत क्या है? इसी प्रकार भावी लागत का अर्थ है कि भविष्य में उस वस्तु की लागत क्या हो सकती है? मूल्य निर्धारिण की नीति बनाने व वास्तविक रूप से वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करते समय लागत को अवश्य ही ध्यान में रखा जाता है। यह लागतें इस प्रकार की होती हैं : (i) **स्थायी लागत** (Fixed Cost)—यह वह लागत है जो उत्पादन के घटने व बढ़ने के साथ घटती व बढ़ती नहीं है और स्थायी रहती है चाहे उत्पादन हो अथवा नहीं जैसे, भूमि व मकान के टैक्स, किराया, चौकीदारी के व्यय, प्रशासनिक व्यय, आदि। (ii) **चल-लागत** (Variable Cost)—यह वह लागत है जो उत्पादन से सम्बन्धित है और उत्पादन के घटने व बढ़ने पर उसी अनुपात में घट या बढ़ जाती है जैसे, मजदूरी, फैक्टरी के बिजली के व्यय, पैकिंग व्यय, भण्डार के व्यय, आदि। (iii) **औसत लागत** (Average Cost)—कुल उत्पादन लागत में कुल उत्पादित इकाइयों का भाग देने से जो लागत आती है उसको औसत लागत कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि 5,000 इकाइयों के उत्पादन में 50,000 रुपये व्यय होते हैं तो औसत लागत बराबर है। 50,000 ÷ 5,000 =

10 रु० प्रति इकाई। (iv) **सीमान्त लागत** (Marginal Cost)—वह लागत जो अन्तिम इकाई की होती है सीमान्त लागत कहलाती है।

मूल्य निर्धारण के ढंग
(METHODS OF SETTING PRICES)

मूल्य निर्धारित करने के भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न ढंग बताये हैं लेकिन ये ढंग मूल रूप से दो प्रकार के हैं : (I) लागत पर आधारित मूल्य निर्धारण ढंग (Pricing Methods based on Cost), (II) बाजार दशाओं पर आधारित मूल्य निर्धारण (Pricing Methods based on Market Conditions)।

(I) **लागत पर आधारित मूल्य निर्धारण ढंग** (Pricing Methods based on Cost)

यह ढंग निम्न तीन प्रकार के होते हैं :

(1) **लागत-धन-मूल्य निर्धारण ढंग** (Cost-plus-Pricing Method)—यह बहुत ही सादा तरीका है। इसमें एक निर्माता पहले प्रति इकाई औसत लागत निकालता है और फिर उसमें इच्छित लाभ को जोड़कर उस वस्तु का मूल्य निर्धारित कर देता है। यह इच्छित लाभ प्रतियोगिता को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाता है। इस ढंग का गुर (नियम) निम्न है :

विक्रय मूल्य = इकाई की कुल लागत + इकाई पर इच्छित लाभ
Selling Price = Unit Total Cost + Derived Unit Profit

भारत जैसे देश में अधिकांश निर्माताओं के द्वारा यही पद्धति अपनायी जाती है। थोक एवं फुटकर व्यापारी इस पद्धति को अपनाते हैं।

(2) **सीमान्त या वृद्धिशील लागत मूल्य निर्धारण ढंग** (Marginal or Incremental Cost Pricing Method)—लागत पर मूल्य निर्धारित करने का यह दूसरा तरीका है। इसमें मूल्य-निर्धारण का आधार सीमान्त लागत या एक अतिरिक्त इकाई पर आने वाली लागत होती है। एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने में जो अतिरिक्त लागत आती है उसको सीमान्त लागत कहते हैं। मूल्य-निर्धारण के इस ढंग में इस सीमान्त लागत को आधार मानकर और फिर इसमें इच्छित लाभ जोड़कर मूल्य निर्धारित किये जाते हैं।

यह तरीका मन्दी के काल में श्रमिकों को नौकरी में बनाये रखने या तालाबन्दी को रोकने के लिए अच्छा है।

इस तरीके में स्थायी व्ययों को ध्यान में नहीं रखा जाता है और चल लागत को वसूल करने का प्रयत्न किया जाता है। यह तरीका उन संस्थाओं के लिए अच्छा है जो नयी वस्तुओं का निर्माण कर रही हैं जिससे कि वे बाजार में ठहर सकें। लेकिन अन्त में स्थायी व्ययों को भी आगे चलकर वसूल करना होगा। इसका अर्थ यह है कि यह तरीका अनिश्चित काल के लिए नहीं अपनाया जा सकता है। केवल कुछ समय के लिए ही अपनाया जा सकता है।

(3) **सम-विच्छेद मूल्य निर्धारण ढंग** (Break-even Pricing Method)—यह तीसरा तरीका है जिसमें लागत का ध्यान रखा जाता है। सम-विच्छेद मूल्य निर्धारण के लिए एक तालिका बनायी जाती है जिसके आधार पर इस बात का पता लगाया जाता है कि लाभ किस स्थान पर सबसे अधिक है तथा वह कौन-सा स्थान है जहाँ कुल लागत (Total Cost) व कुल आगम (Total Revenues) बराबर हो जाते हैं। **वह स्थान जहाँ पर कुल लागत व कुल आगम बराबर होती है उसे** Break-even-Point **कहते हैं**। सम-विच्छेद बिन्दु उत्पादन की वह मात्रा है जिसके विक्रय पर संस्था को न तो लाभ होता है और न हानि। इसीलिए इसे 'न लाभ न हानि' (no profit, no loss) विधि भी कहते हैं। इस बिन्दु से कम मात्रा में उत्पादन करने पर संस्था को हानि होती है। जबकि इससे अधिक उत्पादन करने पर लाभ होता है।

(II) **बाजार दशाओं पर आधारित मूल्य निर्धारण ढंग** (Pricing Methods based on Market Conditions)

मूल्यों का निर्धारण लागत के अतिरिक्त बाजार दशाओं के आधार पर भी हो सकता है। वास्तव में आधुनिक व्यापारिक जगत में यही ढंग सर्वाधिक रूप से काम में लाया जाता है। यहाँ बाजार दशाओं से अर्थ प्रतियोगिता से लगाया जाता है। सामान्यतया यह ढंग निम्न तीन प्रकार के हैं :

(1) **प्रतियोगिता का सामना करने वाला मूल्य निर्धारण ढंग** (Pricing to meet Competition)—मूल्य निर्धारण का यह ढंग सबसे सरल है। इसमें प्रतियोगी वस्तु का जो मूल्य होता है वही मूल्य अन्य निर्माता भी रख लेते हैं और इस प्रकार इसमें न तो लागत का ही ध्यान रखते हैं और न लाभों का। वास्तव में इसमें लागतों एवं लाभों को प्रतियोगी संस्थाओं के समान करना पडता है। इस ढंग का प्रयोग चार अवस्थाओं में किया जाता है : (i) जबकि बाजार में अत्यधिक मूल्य प्रतिस्पर्द्धा हो और वस्तु में प्रतियोगी वस्तुओं से भिन्नता करना सम्भव न हो। (ii) जबकि वस्तुओं के सम्बन्ध में परम्परागत मूल्य स्तर विद्यमान हों। ऐसा बच्चों की टॉफियाँ, आइसक्रीम तथा हल्के पेय पदार्थों के सम्बन्ध में पाया जाता है। बच्चों की टॉफी या आइसक्रीम का मूल्य 10 पैसे, 15 पैसे या 20 पैसे की तरह ही रखा जाता है चाहे उसको बनाने एवं बेचने की लागत कुछ भी है। यदि इनकी लागत में परिवर्तन होता है तो वस्तु की मात्रा या क्वालिटी में परिवर्तन कर दिया जाता है। (iii) जबकि बाजार में निर्माताओं और उनकी वस्तुओं में कोई विशेष अन्तर न हो तथा वस्तु की माँग लचकीली न हो। (iv) जबकि किसी उद्योग में मूल्य-नेता (Price Leader) पाया जाता है। नेता द्वारा जो मूल्य निर्धारित किया जाता है उसी मूल्य को अन्य भी अपना लेते हैं।

(2) **प्रतियोगी स्तर से कम मूल्य निर्धारण ढंग** (Pricing below Competitive Level)—इस ढंग में विद्यमान प्रतियोगी मूल्य से कम मूल्य निर्धारित

किये जाते हैं। यह नीति उन संस्थाओं के लिए उत्तम है जो अपने क्षेत्र में नयी हैं या नये बाजारों में प्रवेश करके स्थान प्राप्त करना चाहती हैं।

(3) **प्रतियोगी स्तर से अधिक मूल्य निर्धारण ढंग** (Pricing above Competition Level)—इस तरीके में विद्यमान प्रतियोगी मूल्य स्तर से अधिक मूल्य निर्धारित किये जाते हैं लेकिन यह नीति उस समय अपनायी जाती है जबकि वस्तु अपने में अनौखे प्रकार की है और निर्माता ने उस वस्तु के सम्बन्ध में अपनी ख्याति अर्जित कर ली है। भारत में हिन्दुस्तान लीवर कम्पनी के डालडा वेजीटेबिल घी का मूल्य अन्य वेजीटेबिल घी के निर्माताओं से अधिक रहते हैं।

प्रश्न

1. वे कौन-कौन से घटक हैं जो मूल्य सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करते हैं?
   What are those factors which affect price-policy considerations?
2. मूल्य नीति से आप क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार की होती है? समझाइए।
   What do you understand by price policy? What are its types? Explain.
3. मूल्य निर्धारण के ढंगों की व्याख्या कीजिए।
   Explain the methods of setting prices.

12

वितरण-माध्यम

[CHANNELS OF DISTRIBUTION]

जब कोई वस्तु बनकर तैयार हो जाती है तो यह समस्या सामने आती है कि उसको अन्तिम उपभोक्ता या औद्योगिक क्रेता तक किस प्रकार पहुँचाया जाय। इस अध्याय में इसी बात को बताया गया है।

वितरण-माध्यम का अर्थ एवं परिभाषा

(MEANING AND DEFINITION OF CHANNELS OF DISTRIBUTION)

प्रत्येक वस्तु का उत्पादन उसको अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए किया जाता है लेकिन उनको अन्तिम उपभोक्ता तक कई माध्यमों से पहुँचाया जा सकता है जैसे, निर्माता फुटकर विक्रेताओं की सेवाओं का उपयोग कर उपभोक्ताओं को बेच सकता है। प्रतिनिधि नियुक्त करके भी वस्तुओं को बेचा जा सकता है। एक से अधिक मध्यस्थों की सेवाओं का लाभ भी उठाया जा सकता है। यह सभी वितरण माध्यम की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। **वितरण माध्यम को व्यापारिक-माध्यम** (trade channel) **भी कहते हैं।** विभिन्न विद्वानों के अनुसार वितरण-माध्यम का अर्थ निम्न प्रकार है:

(1) **विलियम जे. स्टाण्टन** (William J. Stanton) के अनुसार, "वस्तुओं के अधिकार-स्वामित्व को अन्तिम उपभोक्ता या औद्योगिक विक्रेता तक पहुँचाने में जो माध्यम अपनाया जाता है, वह वितरण-माध्यम कहलाता है।"[1]

(2) **रिचार्ड बसक्रिक** (Richard Buskrik) की राय में, "वितरण का आशय उन आर्थिक संस्थाओं की रीतियों से है जिनके माध्यम से एक उत्पादक अपना माल प्रयोगकर्ताओं के हाथ में सौंपता है।"[2]

---

1 "A channel of distribution for a product is the route taken by the title to the goods as they move from the producer to the ultimate consumer or industrial user."
—Stanton : *Fundamentals of Marketing*, p. 254.

2 "Distribution channels are systems of economic institutions through which a producer of goods delivers them into the hands of their users."
—Richard Buskrik : *Principles of Marke ing*, p. 295,

(3) **मैकार्थी** (McCarthy) के मत में, "उत्पादक से उपभोक्ता तक का संस्थाओं का कोई भी क्रम जिसमें या तो एक मध्यस्थ है या उनकी कोई भी संख्या हो सकती है, वितरण-माध्यम कहलाता है।"[1]

(4) **फिलिप कोटलर** (Philip Kotler) की राय में, "प्रत्येक उत्पादक विभिन्न विपणन मध्यस्थों को, जो फर्म के लक्ष्यों को सर्वोत्तम ढंग से पूरा करते हैं, परस्पर जोड़ने की कोशिश करता है। विपणन मध्यस्थों का यह सेट ही विपणन मार्ग कहलाता है। इसको व्यापारिक मार्ग तथा वितरण मार्ग भी कहते हैं।"[2]

वितरण-माध्यम में निर्माता व अन्तिम उपभोक्ता दोनों को सम्मिलित किया जाता है। अतः इन दोनों को मिलाने में जो भी मध्यस्थ अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं वे इसके अन्तर्गत आते हैं। लेकिन वे संस्थाएँ वितरण-माध्यम की परिभाषा में सम्मिलित नहीं की जाती हैं, जो सिर्फ सेवाओं को ही प्रदान करती हैं और वस्तुओं का स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार नहीं बदलतीं; जैसे बैंकें, परिवहन संस्थाएँ, भण्डार, आदि। इसका अर्थ यह है कि वितरण-माध्यम में वस्तु का स्वामित्व बदलना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि मध्यस्थ के द्वारा वस्तु में कोई खास परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए। यदि वस्तु की प्रकृति, डिजाइन, गुण, आदि में परिवर्तन कर दिया जाता है तो जिस मध्यस्थ ने परिवर्तन किया है वहाँ से नया वितरण माध्यम प्रारम्भ हो जाता है।

उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण-माध्यम
(CHANNELS OF DISTRIBUTION OF CONSUMER GOODS)

विपणन के दृष्टिकोण से वस्तुएँ साधारणतया दो भागों में बाँटी जाती हैं जिनमें एक को उपभोक्ता वस्तुएँ व दूसरे को निर्मित वस्तुएँ कहते हैं। दोनों प्रकार की वस्तुओं को उपभोक्ता तक पहुँचाने के साधनों में अन्तर है। जहाँ तक **उपभोक्ता वस्तुओं का सम्बन्ध है उनका वितरण-माध्यम साधारणतया अगले पृष्ठ पर दिये गये चार्ट जैसा होता है :**

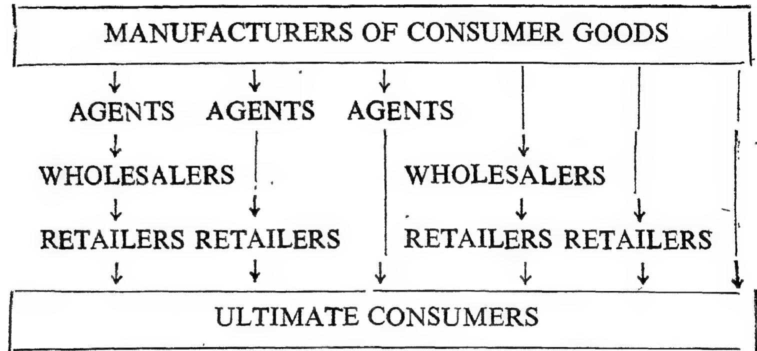
अगले पृष्ठ पर दिये चार्ट से यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिए कि वितरण माध्यम के 6 ही तरीके हैं बल्कि इन तरीकों की संख्या बढ़ सकती है जैसे, प्रतिनिधि दो हो सकते हैं—एकमात्र विक्रय प्रतिनिधि (Sole Selling Agent) व दूसरा उप-एकमात्र विक्रय प्रतिनिधि (Sub-Sole Selling Agent)। इसी प्रकार थोक विक्रेता

---

1 "Any sequence of institutions from the producer to the consumer, including one or any number of middlemen, is called a channel of distribution."
—McCarthy : *Basic Marketing*, p. 324.

2 "Every producer seeks to link together the set of marketing intermediaries that best fulfil the firm's objectives. This set of marketing intermediaries is called the marketing channel (also trade channel and channel of distribution)."
—Philip Kotler : *Marketing Management*, p. 552.

भी बीच में कई हो सकते हैं जैसे, बड़े थोक विक्रेता व छोटे थोक विक्रेता। इस प्रकार निम्न चार्ट को हमने अपनी सुविधा के लिए अपनाया है।



(1) **निर्माता → प्रतिनिधि → थोक विक्रेता → फुटकर विक्रेता → उपभोक्ता**—इसी तरीके को अपनाने में वस्तु निर्माता से प्रतिनिधि और प्रतिनिधि से थोक विक्रेता तक पहुँचती है जहाँ से फुटकर विक्रेता खरीदकर उपभोक्ता को बेचते हैं। भारत में अधिकांश कपड़े की बिक्री इसी प्रकार से होती है।

(2) **निर्माता → प्रतिनिधि → फुटकर विक्रेता → उपभोक्ता**—इस तरीके व ऊपर लिखे तरीके में सिर्फ इतना ही अन्तर है कि इसमें मध्यस्थों की कड़ी में एक कमी हो जाती है। इसमें थोक विक्रेता बीच में नहीं आते हैं। माल प्रतिनिधि से सीधा फुटकर विक्रेता द्वारा क्रय किया जाता है जो उपभोक्ता को बेचते हैं। वे निर्माता जो अपनी वितरण लागत कम करना चाहते हैं इस तरीके को अपनाते हैं।

(3) **निर्माता → प्रतिनिधि → उपभोक्ता**—इस प्रणाली में उपभोक्ता व निर्माता के बीच सिर्फ एक ही कड़ी रहती है और वह है प्रतिनिधि। भारत में अधिकांश दवाई निर्माता व सौन्दर्य प्रसाधन (Cosmetic) वस्तुओं के निर्माता इसी प्रणाली को अपना रहे हैं और वे इसके लिए अपनी ऐजेन्सियाँ विभिन्न स्थानों पर रखते हैं। यह ऐजेन्सियाँ ही फुटकर विक्रेता का काम करती हैं।

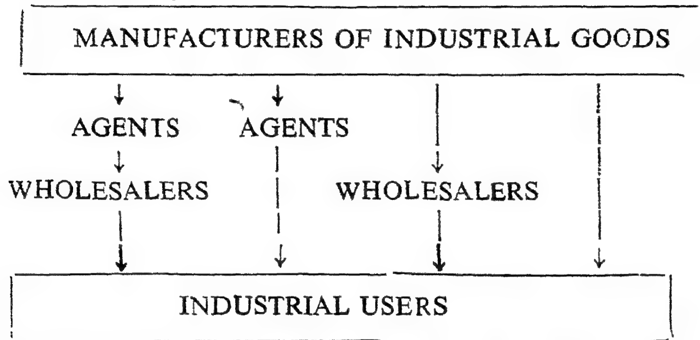
(4) **निर्माता → थोक विक्रेता → फुटकर विक्रेता → उपभोक्ता**—इस विधि में वस्तु थोक विक्रेता व फुटकर विक्रेता के माध्यम से उपभोक्ता तक पहुँचती है। वास्तव में यह उपभोक्ता वस्तुओं को बेचने का बहुत ही पुराना ढंग है और छोटे निर्माताओं के लिए बहुत ही अच्छा है। भारत में कृषि पदार्थों के सम्बन्ध में यही तरीका पाया जाता है।

(5) **निर्माता → फुटकर विक्रेता → उपभोक्ता**—इस विधि में निर्माता अपनी बिक्री फुटकर विक्रेताओं को करता है और फिर फुटकर विक्रेता द्वारा उपभोक्ता की सेवा की जाती है। भारत में D.C.M. व Binny के द्वारा यह तरीका अपनाया जाता है।

(6) **निर्माता → उपभोक्ता**—इस पद्धति में निर्माता द्वारा सीधी बिक्री उपभोक्ताओं को की जाती है और यह बिक्री (i) अपनी दुकानों से (Own Sales Depots); (ii) स्वयं के विक्रयकर्ताओं से (By Own Salesmen); (iii) डाक के माध्यम से (By Mail Order); (iv) विक्रय मशीनों से; व (v) टेलीफोन से की जाती है। इसी प्रकार की पद्धति को प्रत्यक्ष बिक्री (Direct Sale) का तरीका भी कहते हैं।

औद्योगिक वस्तुओं का वितरण-माध्यम
(CHANNELS OF DISTRIBUTION OF INDUSTRIAL PRODUCTS)

औद्योगिक वस्तुओं का वितरण माध्यम निम्न चार्ट जैसा होता है :



उपरोक्त चार्ट का यह अर्थ कदापि नहीं है कि निर्मित औद्योगिक माल का वितरण-माध्यम उपरोक्त 4 तरीके का ही होता है बल्कि इसमें और भी वृद्धि हो सकती है। निर्माता द्वारा अपने बाजार के नियन्त्रण के दृष्टिकोण से क्षेत्रीय कार्यालय भी खोले जा सकते हैं जो इस कड़ी को और लम्बा कर देते हैं।

(1) **निर्माता → प्रतिनिधि → थोक विक्रेता → औद्योगिक क्रेता**—इस विधि में वस्तु निर्माता से प्रतिनिधि व प्रतिनिधि से थोक विक्रेता और फिर उसके औद्योगिक क्रेता के पास पहुँचती है।

(2) **निर्माता → प्रतिनिधि → औद्योगिक क्रेता**—यह प्रणाली पहली प्रणाली से छोटी है और इसमें वस्तु प्रतिनिधि के माध्यम से औद्योगिक क्रेता के पास पहुँचती है। वे संस्थाएँ जो कम से कम मध्यस्थों को चाहती हैं इस पद्धति को अपनाती हैं।

(3) **निर्माता → थोक विक्रेता → औद्योगिक क्रेता**—यह पद्धति ऊपर जैसी ही है अन्तर केवल इतना है कि निर्माता व औद्योगिक क्रेता के बीच प्रतिनिधि है जबकि यहाँ थोक विक्रेता है।

(4) **निर्माता → औद्योगिक क्रेता**—इसको सीधी पद्धति या सीधा मार्ग कहते हैं। इसमें निर्माता व औद्योगिक क्रेता के बीच कोई मध्यस्थ नहीं होता। रेलवे इंजन व बिजली बनाने वाली मशीनें इसी माध्यम से बेची जाती हैं।

वितरण मार्ग की व्याख्या करते समय हमने कुछ शब्दों का प्रयोग किया है जैसे, निर्माता, प्रतिनिधि, थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता आदि। अब हम इन शब्दों की व्याख्या करेंगे।

(i) **निर्माता** (Manufacturer)—निर्माता का अर्थ वस्तुओं का निर्माण करने वाले से है। यह निर्माण संस्थाएँ व्यक्तिगत, कम्पनी, सहकारी व साझेदारी के रूप में हो सकती हैं। निर्माता की परिभाषा में वे किसान भी शामिल हैं जो वस्तुओं को खेतीबारी करके उत्पादित करते हैं।

(ii) **प्रतिनिधि** (Agent)—मध्यस्थों की शृंखला में प्रतिनिधि सबसे पहले आता है। यह प्रतिनिधि भी कई प्रकार के होते हैं। लेकिन साधारणतया यह दो प्रकार के होते हैं : (क) एक तो वे जो आढ़त या दलाली (Commission) पर कार्य करते हैं और वस्तुओं के हस्तान्तरण में वास्तविक रूप से स्वामित्व को अपने ऊपर नहीं लेते। ये निर्माता और क्रेता को मिलाकर सौदों को पूरा करा देते हैं। (ख) दूसरे वे जो निर्माता के माल को स्वयं क्रय करते हैं और फिर बाद में अन्य मध्यस्थों या क्रेताओं को बेच देते हैं।

(iii) **थोक विक्रेता** (Wholesalers)—वे विक्रेता जो निर्माता से वस्तुओं को बड़ी मात्रा में खरीदते हैं और उनका विक्रय छोटी-छोटी मात्रा में फुटकर व्यापारियों को करते हैं थोक विक्रेता कहलाते हैं। यह थोक विक्रेता कई प्रकार के होते हैं। निर्मित माल के आधार पर इनको दो भागों में बाँट सकते हैं : (क) निर्मित-उपभोक्ता माल के थोक विक्रेता (Wholesalers of Manufactured Consumer Goods) व (ख) निर्मित औद्योगिक माल के थोक विक्रेता (Wholesalers of Industrial Goods)। इसका विस्तृत विवरण अगले अध्याय में दिया गया है।

(iv) **फुटकर व्यापारी** (Retailer)—वे विक्रेता जो वस्तुओं को फुटकर मात्रा में उपभोक्ताओं को बेचते हैं फुटकर विक्रेता कहलाते हैं। यह फुटकर विक्रेता कई प्रकार के होते हैं जिनका विस्तृत विवरण फुटकर-वितरण वाले अध्याय में दिया गया है।

बहु-वितरण-माध्यम
(MULTIPLE-CHANNELS DISTRIBUTION)

जब एक निर्माता अपनी वस्तुओं को बेचने के लिए कई वितरण-माध्यमों की नीति (Channels of Distribution Policy) को अपनाता है तो इसको बहु-वितरण माध्यम नीति (Multiple Channels of Distribution Policy) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, यह वह नीति है जिसमें एक निर्माता अपनी वस्तु के विक्रय के लिए कई तरीके अपनाता है। उदाहरण के लिए, हम जय इन्जीनियरिंग वर्क्स को लेते हैं। इसके द्वारा अपनी ऊषा सिलाई मशीनों की बिक्री या तो अपनी दुकानों के माध्यम से या एकमात्र वितरक (exclusive dealers) के माध्यम से की जाती है लेकिन ऊषा पंखों की बिक्री के लिए इसके अपने 'Showroom' हैं, एकमात्र वितरक हैं तथा स्टाकिस्ट हैं। इसी प्रकार बड़े बड़े शहरों में बिन्नी कपड़े की बिक्री के लिए कम्पनी की स्वयं की दुकानें हैं लेकिन उसी शहर के अन्य भागों में तथा अन्य शहरों में फुटकर विक्रेता भी हैं। जूते, चप्पलों में प्रख्यात बाटा इण्डिया

लिमिटेड की बड़े-बड़े नगरों व शहरों में अपनी स्वयं की दुकानें हैं लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में प्रनिनिधि हैं।

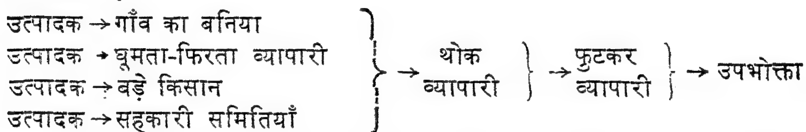
भारत में वितरण-माध्यम

(CHANNELS OF DISTRIBUTION IN INDIA)

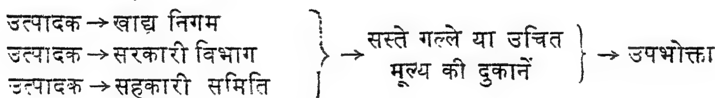
भारत में वितरण-माध्यम किस प्रकार का है इसका अध्ययन करने के लिए वस्तुओं को दो भागों में बाँट सकते हैं : (I) कृषि पदार्थ (Agricultural Commodities), (II) निर्मित वस्तुएँ (Manufactured Products)।

(I) **कृषि पदार्थ** (Agricultural Commodities)

कृषि पदार्थों का वितरण माध्यम (i) घूमता-फिरता व्यापारी, (ii) थोक व्यापारी या आढ़तिया, (iii) सहकारी समिति, (iv) फुटकर व्यापारी, आदि के माध्यम से होता है। इस प्रकार कृषि पदार्थों का वितरण-माध्यम निम्न प्रकार जैसा पाया जाता है :



पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार ने खाद्यान्नों के सम्बन्ध में सरकारी खरीद योजना आरम्भ कर दी है जिसके अनुसार कृषकों से केन्द्रीय व राज्य सरकारें तथा भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) खाद्यान्नों की सीधी खरीद करते हैं और उसका विपणन सस्ते गल्ले की दुकानों (Fair Price Shops) के माध्यम से करते हैं। इस समय 2·5 लाख के लगभग सस्ते गल्ले की दुकानें या उचित मूल्य की दुकानें हैं। इस प्रकार इस समय कुछ खाद्यान्नों के सम्बन्ध में वितरण माध्यम निम्न प्रकार का है :



(II) **निर्मित वस्तुएँ** (Manufactured Products)

निर्मित वस्तुओं के सम्बन्ध में वितरण-माध्यम विभिन्न प्रकार का अपनाया जाता है। कभी-कभी एक ही संस्था कई वितरण-माध्यम अपनाती है जैसे, जय इन्जीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, कलकत्ता द्वारा अपने पंखों की बिक्री के लिए निम्न तीन प्रकार का वितरण-माध्यम अपनाया जाता है :

(i) अपनी दुकानें → उपभोक्ता,
(ii) निर्माता → एकमात्र वितरक → उपभोक्ता,
(iii) निर्माता → अधिकृत विक्रेता → उपभोक्ता।

(i) **पहले वितरण-माध्यम में** निर्माता अपनी दुकानों के माध्यम से सीधा उपभोक्ता तक पहुँचता है। यह दुकानें निर्माता की होती हैं और विक्रयकर्ता, आदि सभी कर्मचारी जय इंजीनियरिंग कम्पनी के वेतनभोगी कर्मचारी होते हैं।

(ii) **दूसरे वितरण-माध्यम में** कम्पनी एक विक्रेता को अपना एकमात्र वितरक नियुक्त कर देती है और यह वितरक कम्पनी की ही वस्तुओं को कम्पनी द्वारा निर्धारित मूल्यों पर बेचते हैं। अन्य कम्पनियों के माल को बेचने की अनुमति इन एकमात्र वितरकों को नहीं होती है। इन्हें इसके लिए विक्रय मूल्य पर कमीशन मिलता है। यह वे सभी सुविधाएँ एक क्रेता या उपभोक्ता को देते हैं जो कम्पनी की स्वयं की दुकानें देती हैं।

(iii) **तीसरे प्रकार के वितरण-माध्यम में** कम्पनी अधिकृत विक्रेता नियुक्त करती है जो कम्पनी के उत्पादकों को निर्धारित मूल्य पर बेचते हैं और इसके लिए उन्हें एक निश्चित प्रतिशत कमीशन के रूप में मिलता है। इस प्रकार के विक्रेताओं को अन्य प्रतियोगी उत्पादनों को बेचने की छूट होती है।

वस्त्रों (Textiles) **के सम्बन्ध में भारत में निम्न वितरण-माध्यम अपनाये जाते हैं :**

(1) निर्माता → एजेण्ट → थोक व्यापारी → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता

(2) निर्माता → थोक व्यापारी → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता

(3) निर्माता → उपभोक्ता

आजकल तीसरा मार्ग अपनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है जिसके अन्तर्गत मिल की दुकानें जगह-जगह पर खुलती जा रही हैं। कुछ मामलों में फुटकर एजेन्सियाँ (Retail Agencies) भी नियुक्त हो रही हैं। D.C.M. की अपनी स्वयं की दुकानें हैं या उनकी एजेन्सियाँ हैं। बिन्नी मिल्स ने अपने कुछ शो रूम स्थापित किये हैं जो मिल की स्वयं की दुकानों की तरह कार्य करते हैं जबकि फुटकर विक्रय के लिए इसके अधिकृत विक्रेता (Authorised Dealers) पाये जाते हैं।

मोटर गाड़ी व स्कूटर के सम्बन्ध में एजेन्सी या डीलर या वितरक (Agency) or Dealer or Distributor) **के रूप में वितरण माध्यम अपनाया जाता है जो निम्न प्रकार है :**

निर्माता → एजेण्ट
निर्माता → डीलर } → उपभोक्ता या क्रेता
निर्माता → वितरक

प्रीमियर ओटोमोबाइल्स लिमिटेड, कुरला, बम्बई, नामक कम्पनी जो Premier President FIAT मोटरगाड़ी व DODGE ट्रक बनाती है उपरोक्त माध्यम को अपनाती है और इसके विक्रेता डीलर कहलाते हैं।

प्रश्न

1. 'वितरण माध्यम' से आप क्या समझते हैं ?
   What do you understand by channel of distribution ?
2. भारत में उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण-माध्यम के तरीकों को बताइए।
   Explain the distribution channel of consumer products in India.

13

थोक वितरण

[WHOLESALE DISTRIBUTION]

वस्तुओं को निर्माता से उपभोक्ता तक पहुँचाने की विपणन प्रक्रिया में थोक वितरण का महत्वपूर्ण योगदान है। अतः विपणन प्रबन्धक के लिए इस बात की आवश्यकता है कि उसको इस सम्बन्ध में भी जानकारी होनी चाहिए।

इस अध्याय में विभिन्न प्रकार के थोक विक्रेताओं का वर्णन किया गया है। कुछ थोक विक्रेता ऐसे होते हैं जो प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं जिन्हें प्रतिनिधि-मध्यस्थ (Agent-Middlemen) कहते हैं, उनका विवरण भी इसी अध्याय में दिया गया है। इन थोक विक्रेताओं की सेवा व उनके हटाये जाने के सम्बन्ध में दिये जाने वाले तर्कों का भी विवरण यहाँ पर दिया गया है।

थोक विक्रेता का अर्थ
(MEANING OF WHOLESALER)

साधारणतया थोक विक्रेता उस विक्रेता को कहते हैं जो वस्तुओं को इस आशय से खरीदता है कि वह उनकी बिक्री फुटकर विक्रेताओं को थोक मात्रा में करेगा। इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार कहा है :

(1) **मैसन एवं रथ** (Mason & Rath) की राय में, "वह व्यक्ति या फर्म जो वस्तुएँ खरीदती है और फिर उनको या तो फुटकर विक्रेताओं को उपभोक्ता को बेचने के लिए या व्यापारिक फर्मों को औद्योगिक तथा व्यापारिक उपयोग के लिए पुनः बेचती हैं, थोक विक्रेता कहलाता है।"[1]

(2) **कैण्डिफ व स्टिल** (Cundiff & Still) के मत में "थोक विक्रेता वस्तुएँ खरीदते हैं और फिर उनकी पुनः बिक्री फुटकर विक्रेताओं एवं अन्य व्यापारियों को

1 "A person or firm that buys merchandise and resells it either to retailers for subsequent resale to the consumer or to business firms for industrial and business use is called a wholesaler."
—Mason & Rath : *Marketing and Distribution*, p. 200.

तथा औद्योगिक, संस्थागत व वाणिज्य सम्बन्धी उपभोक्ताओं को करते है, लेकिन अन्तिम उपभोक्ताओं को सार्थक मात्रा में नही बेचते है।"[1]

उपरोक्त वर्णित विद्वानों की परिभाषाओं के अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि थोक विक्रेता (i) वस्तुओं को पुन: बिक्री के लिए खरीदता है, (ii) यह बिक्री साधारणतया फुटकर विक्रेताओं को की जाती है, (iii) लेकिन यह व्यापारियों एवं औद्योगिक तथा वाणिज्य सम्बन्धी संस्थाओं को भी विक्रय करते हैं जोकि या तो वस्तु को पुन: बेचने के लिए या औद्योगिक उपभोक्ताओं के उपयोग के लिए बेचते हैं, (iv) उपभोक्ता को वस्तुएँ नही बेची जाती हैं और यदि किसी कारण बेची भी जाती है तो इस प्रकार के उपभोक्ता को उनकी बिक्री बहुत ही मात्रा में होती है, (v) यह बिक्री थोक मात्रा में करता है।

इस प्रकार **थोक विक्रेता वह विक्रेता है जो वस्तुओं की खरीद इस उद्देश्य से करता है कि वह उनको फिर फुटकर विक्रेताओं को या औद्योगिक व वाणिज्य सम्बन्धी उपभोक्ताओं को या मध्यस्थों को बेचेगा, लेकिन अन्तिम उपभोक्ता को सार्थक मात्रा में नहीं बेचेगा। यह विक्रेता, एकलस्वामित्व, साझेदारी व कम्पनी किसी भी रूप में हो सकते हैं।**



थोक विक्रेता के कार्य
(FUNCTIONS OF WHOLESALER)

व्यावसायिक क्षेत्र में एक थोक विक्रेता के निम्नलिखित कार्य होते हैं :

(1) **वस्तुओं को एकत्रित करना** (Assembling of Goods)—एक थोक विक्रेता का सबसे पहला कार्य विभिन्न निर्माताओं एवं उत्पादकों की वस्तुओं को एकत्रित करना है जिससे कि फुटकर विक्रेताओं को वस्तुओं का चुनाव करने में सुविधा रहे।

(2) **वस्तुओं का वितरण** (Distribution of Goods)— थोक विक्रेता का दूसरा कार्य फुटकर व्यापारियों के आदेश के अनुसार वस्तुओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बेचना है। इस प्रकार यह विक्रेता वस्तुओं का वितरण करते हैं।

(3) **वित्त प्रबन्ध** (Financing)—थोक विक्रेता का तीसरा कार्य निर्माताओं एवं उत्पादकों को अग्रिम राशि भेजकर उनकी सहायता करना है। इसी प्रकार यह फुटकर विक्रेताओं को उधार विक्रय कर उनकी भी आर्थिक सहायता करते हैं।

(4) **श्रेणीयन** (Grading)—भिन्न-भिन्न उत्पादकों की वस्तुओं को एकत्रित कर उनको श्रेणी के अनुसार बाँटना भी थोक विक्रेता के कार्यों के अन्तर्गत आता है।

---

1 "Wholesalers buy and resell merchandise to retailers and other merchants and to industrial, institutional, and commercial users, but do not sell in significant amount to ultimate consumers."

—Cundiff & Still : *Basic Marketing*, p. 273.

(5) **संग्रहण** (Storing)—थोक विक्रेताओं के द्वारा वस्तुओं को माँग से पहले ही एकत्रित कर उस समय तक सुरक्षित रखने का कार्य करना पड़ता है जब तक फुटकर विक्रेताओं द्वारा उनको क्रय नहीं कर लिया जाता है।

(6) **जोखिम उठाना** (Risk-Taking)—थोक विक्रेता उत्पादक या निर्माता से बड़ी मात्रा में सीधा माल खरीदकर विभिन्न अनिश्चितताओं से पैदा होने वाली जोखिमों को उठाने का कार्य भी करते हैं।

(7) **सूचनाएँ देना** (Providing Informations)— उपभोक्ता एवं वस्तुओं के बारे में विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित कर उनको निर्माताओं एवं फुटकर विक्रेताओं तक पहुँचाने का कार्य भी इन्हीं थोक विक्रेताओं द्वारा किया जाता है।

(8) **परिवहन** (Transport)—थोक विक्रेता फुटकर विक्रेताओं को माल ले जाने के लिए परिवहन सुविधाओं को उपलब्ध करने का कार्य भी करता है।

(9) **मूल्य स्थायित्व** (Price Stability)—थोक विक्रेता माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन बनाकर मूल्य स्थायित्व का कार्य भी करते हैं।

(10) **अन्य कार्य** (Other Functions)—थोक विक्रेता उपरोक्त वर्णित कार्यों के अतिरिक्त पैकेजिग, प्रमापीकरण, बाजार अनुसन्धान आदि का कार्य भी करते हैं।

थोक विक्रेता एवं थोक व्यवसाय
(WHOLESALER AND WHOLESALING)

थोक विक्रेता का अर्थ वही है जो ऊपर बताया गया है। यह वस्तुओं का थोक विक्रय अन्तिम उपभोक्ताओं को न करके मध्यस्थों को या औद्योगिक प्रयोक्ताओं को करता है।

कैण्डिफ एवं स्टिल के अनुसार, "थोक व्यवसाय में वे क्रियाएँ जो क्रेताओं को बेचने के लिए की जाती हैं सम्मिलित होती हैं लेकिन अन्तिम उपभोक्ता को बेचने वाली क्रियाएँ इसमें शामिल नहीं होती हैं।"[1] इसका अर्थ यह है कि थोक व्यवसाय में वस्तुओं का थोक विक्रय आता है जोकि थोक विक्रेता द्वारा किया जाता है। लेकिन थोक विक्रय, थोक विक्रेता के अतिरिक्त अन्य निर्माताओं व उत्पादकों के द्वारा भी किया जा सकता है। साधारणतया यह देखा जाता है कि निर्माता या उत्पादक द्वारा भी थोक मात्रा में ही माल बेचा जाता है। इस प्रकार वह भी थोक व्यवसाय सम्बन्धी क्रियाएँ करता है। अतः उसको भी थोक व्यवसायी कहते हैं और उसका यह कार्य थोक व्यवसाय कहा जाता है।

---

1 "Wholesaling consists of the activities involved in selling to buyers other than ultimate consumers." —Cundiff & Still : *Basic Marketing*, p. 274.

थोक व्यवसायी-मध्यस्थ
(WHOLESALING-MIDDLEMEN)

वे थोक व्यवसायी जो वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय में अपना सहयोग प्रदान करते हैं थोक-व्यवसायी-मध्यस्थ (Wholesaling Middlemen) कहलाते हैं। यह थोक व्यावसायी-मध्यस्थ निम्न दो प्रकार के होते हैं :

(1) **व्यापारी-मध्यस्थ** (Merchant-Middlemen)—"एक व्यापारी मध्यस्थ माल का स्वामित्व (Title to goods) ग्रहण करता है और फिर उस माल को बेच देता है।"[1] इसको अपना माल बेचने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। साधारणतया ऐसे मध्यस्थ सौदागरी, कपड़े, हौजरी आदि में पाये जाते हैं। ऐसे मध्यस्थों का लाभ-मार्जिन कम ही होता है। यह सौदागर मध्यस्थ थोक व्यवसायी के कुछ या सब कार्यों को पूरा करते हैं। अतः इनको साधारण भाषा में थोक विक्रेता कहा जाता है।

उपभोक्ता वस्तुओं के सम्बन्ध में ऐसे थोक विक्रेता कई प्रकार के होते हैं जिनका वर्गीकरण तीन आधारों पर किया जाता है : (i) वस्तु, (ii) सेवा, व (iii) भौगोलिक क्षेत्र। **वस्तु के आधार पर यह फिर तीन प्रकार के होते हैं :** (क) साधारण थोक विक्रेता, (ख) विशेष थोक विक्रेता, व (ग) सौदागरी के सामान के थोक विक्रेता। **सेवा के आधार पर यह दो प्रकार के होते हैं :** (क) पूर्ण-सेवा प्रदान करने वाले थोक विक्रेता, व (ख) सीमित सेवा प्रदान करने वाले थोक विक्रेता। **भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर यह तीन प्रकार के होते हैं :** (क) राष्ट्रीय थोक विक्रेता (ख) क्षेत्रीय थोक विक्रेता, व (ग) स्थानीय थोक विक्रेता।

औद्योगिक वस्तुओं में भी यह थोक व्यापारी मध्यस्थ पाये जाते हैं। लेकिन यहाँ इनकी संख्या बहुत कम है। **साधारणतया औद्योगिक माल के विक्रेता तीन प्रकार के होते हैं :** (i) डीलर या साधारण थोक विक्रेता, (ii) इकहरा थोक विक्रेता, व (iii) विशिष्ट प्रकार के क्रेताओं के थोक विक्रेता। इन सभी सौदागर-मध्यस्थों (Merchant-Middlemen) का विवरण इसी अध्याय में आगे दिया गया है।

(2) **प्रतिनिधि-मध्यस्थ** (Agent-Middlemen)—"एक प्रतिनिधि-मध्यस्थ क्रय अथवा विक्रय अथवा दोनों कार्य करता है लेकिन उस माल का स्वामित्व ग्रहण नहीं करता है जिसमें कि वह व्यवहार कर रहा है।"[2] यह प्रतिनिधि कुछ कमीशन या दलाली के लिए क्रेता व विक्रेता को माल देता है लेकिन अपने लिए वस्तुओं को नहीं खरीदता और न उन वस्तुओं को स्वयं खरीद कर अपने पास रखता है। ऐसे **प्रतिनिधि-मध्यस्थ** सात प्रकार के होते हैं :

---

1 "A marchant-middleman takes title to and resells merchandise."
—Cundiff & Still : *Basic Marketing*, p. 273.

2 "An agent-middleman negotiate purchases or sales or both, but does not take title to the goods in which he deals."
—Cundiff & still : *Basic Marketing*, p. 273.

(i) निर्माताओं के प्रतिनिधि (Manufacturers' Agents), (ii) विक्रय प्रतिनिधि (Selling Agents), (iii) दलाल (Brokers), (iv) नीलमकर्ता (Auctioneers), (v) कमीशन गृह (Commission Houses), (vi) निवासी क्रेता (Resident Buyers), (vii) निर्यात एवं आयात प्रतिनिधि (Export and Import Agents) । इन सभी का विस्तृत विवरण इसी अध्याय में अगले पृष्ठों में दिया गया है ।

थोक विक्रेता
(WHOLESALERS)

थोक विक्रेताओं का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है : (I) उपभोक्ता वस्तुओं के थोक विक्रेता (Wholesalers of Consumer Products) व (II) औद्योगिक वस्तुओं के थोक विक्रेता (Wholesalers of Industrial Products) ।

उपभोक्ता-वस्तुओं के थोक विक्रेता निम्न प्रकार पाये जाते हैं :

(1) **सामान्य थोक विक्रेता** (General-line Wholesaler)—यह विक्रेता अपनी शाखा में आने वाली सभी प्रकार की वस्तुओं का भण्डार रखता है जिससे लाभ यह होता है कि फुटकर व्यापारियों को उनकी आवश्यकताओं की सभी वस्तुएँ एक ही विक्रेता के यहाँ मिल जाती हैं जैसे, कपड़े के थोक व्यापारी कमीज, बुशशर्ट, आदि के कपड़े, मर्दानी व जनानी धोतियाँ, मलमल, जीन, वाइल, चादरें, आदि भिन्न प्रकार के कपड़ों का अच्छा स्टॉक रखते हैं । इस प्रकार के थोक व्यापारी साधारण व्यापार थोक विक्रेता कहलाते हैं ।

(2) **विशेष थोक विक्रेता** (Speciality Wholesaler)—केन्द्रीय थोक बाजारों में कुछ ऐसे थोक व्यापारी होते हैं जो अपनी शाखा की कोई एक वस्तु ही बिक्री के लिए रखते हैं जैसे, कपड़े के व्यवसाय में ही ऐसे थोक विक्रेता हैं जो केवल कटपीस (cut piece) का ही काम करते हैं । ऐसे थोक व्यवसायी विशेष थोक विक्रेता कहलाते हैं ।

(3) **सौदागरी के सामान के थोक विक्रेता** (General Merchandise Wholesaler)—यह वे थोक विक्रेता हैं जो विभिन्न प्रकार की वस्तु-पंक्तियों (wide variety of line) में व्यवहार करते हैं । यह विक्रेता साधारणतया सौदागरी के सामान में पाये जाते हैं । सौदागरी के थोक विक्रेता के यहाँ विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ जैसे कंघा, शीशा, तेल, साबुन, स्टेशनरी, रोज काम आने वाली दवाइयाँ, हौजरी की वस्तुएँ, पैन, पेन्सिल, आदि मिल जाती हैं । आज के इस विशिष्टीकरण युग में यह अभी भी पाये जाते हैं और इनकी उपयोगिता होने के कारण इनके बने रहने की सम्भावनाएँ अधिक हैं ।

(4) **पूर्ण सेवा प्रदान करने वाले थोक विक्रेता** (Full Function Wholesaler)—यह वे थोक विक्रेता हैं जो निर्माता व फुटकर विक्रेताओं को विपणन

सम्बन्धी सम्पूर्ण वस्तुएँ प्रदान करते हैं। यह विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को एकत्रित करते हैं तथा उनके परिवहन तथा विक्रय का भी प्रबन्ध करते हैं।

(5) **सीमित सेवा प्रदान करने वाले थोक विक्रेता** (Limited Functional Wholesaler)— वे मध्यस्थ थोक विक्रेता जो थोक व्यवसाय सम्बन्धी सभी कार्य न करके कुछ ही कार्य करते हैं अर्थात् जो थोक व्यवसाय सम्बन्धी सेवाएँ प्रदान न करके कुछ सेवाएँ ही प्रदान करते हैं उन्हें सीमित सेवा प्रदान करने वाले थोक विक्रेता कहते हैं। इस प्रकार के थोक विक्रेताओं का कार्य कुछ ही वस्तुओं या कुछ वस्तु पंक्तियों तक सीमित रहता है। यह थोक विक्रेता निम्न प्रकार के होते हैं :

(i) **नकद दो और ले जाओ थोक विक्रेता** (Cash and Carry Wholesaler)— यह विक्रेता सीमित सेवा प्रदान करने वाले थोक विक्रेता की श्रेणी में आते हैं। इनके द्वारा वस्तुएँ उधार नहीं बेची जाती हैं और न ये वस्तुओं को भेजने का प्रबन्ध करते हैं। यह तो वस्तुएँ उन्हीं को बेचते हैं जो भुगतान नकद करते हैं और वस्तुओं को खरीदकर स्वयं ले जाने का उत्तरदायित्व लेते हैं। भारत में इस प्रकार के थोक विक्रेता कपड़े, किराना, दवाइयाँ, आदि में पाये जाते हैं। (ii) **गाड़ी व ट्रक थोक विक्रेता** (Carriage or Truck Wholesaler)—यह थोक विक्रेता अपनी वस्तुओं को एक गाड़ी, ताँगा, साइकिल, रिक्शा, ट्रक आदि में रखकर क्रेताओं की दुकान तक ले जाता है और उनसे क्रय करने का आग्रह करता है। यदि उनको उस वस्तु की आवश्यकता होती है तो तत्काल खरीदकर भुगतान कर देते हैं। ऐसे विक्रेता प्रतिदिन या सप्ताह में तीन या चार बार फुटकर विक्रेताओं की ओर चक्कर लगा लेते हैं। भारत में ऐसे विक्रेता नाशवान वस्तुएँ जैसे, डबलरोटी, मक्खन व अन्य उपभोग वस्तुएँ जैसे, चाय, साबुन, बीड़ी-सिगरेट, आदि में पाये जाते हैं। iii) **ड्राप शिपमेण्ट विक्रेता** (Drop Shipment Wholesaler)—ये वे थोक विक्रेता हैं जो फुटकर विक्रेता से आदेश प्राप्त हो जाने पर उसकी पूर्ति के लिए निर्माता को आदेश दे देते हैं जो उस माल को फुटकर विक्रेता के पास पहुँचाने का प्रबन्ध करता है। इस प्रकार यह थोक विक्रेता बिना वस्तु के ही कार्य करते हैं और इनकी दुकानें दफ्तर जैसी होती हैं जहाँ पर बैठने की सुविधा होती है। वस्तु के सम्बन्ध में भुगतान फुटकर विक्रेता अपने थोक विक्रेता को करता है और थोक विक्रेता निर्माता या उत्पादक को करता है। ऐसे थोक विक्रेता उन वस्तुओं के सम्बन्ध में पाये जाते हैं जिनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में व्यय अधिक होता है जैसे, कोयला, लकड़ी, मकान बनाने का सामान, लोहा आदि।

(6) **राष्ट्रीय थोक विक्रेता** (National Wholesaler)—यह वे विक्रेता हैं जो एक बड़े स्तर पर पूरे राष्ट्र में उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण का कार्य करते हैं। साधारणतया यह विक्रेता केन्द्रीय थोक बाजारों में कार्य करते हैं। इनके यहाँ अन्य बाजारों के थोक व फुटकर विक्रेता माल क्रय करने के लिए आते हैं। भारत में कपड़े के व्यवसाय में राष्ट्रीय विक्रेता बम्बई, अहमदाबाद, आदि नगरों में पाये जाते

। यह राष्ट्रीय विक्रेता अपने ग्राहक को वे सब सुविधाएँ देते हैं जो एक पूर्ण सेवा प्रदान करने वाले थोक विक्रेता द्वारा प्रदान की जाती हैं।

(7) **क्षेत्रीय थोक विक्रेता** (Regional Wholesaler)—यह थोक विक्रेता केवल एक निश्चित क्षेत्र में ही कार्य करता है। यह क्षेत्र एक राज्य या कुछ जिले हो सकते हैं। यह थोक विक्रेता उन्हीं वस्तुओं में व्यवहार करते हैं जिनकी माँग उस क्षेत्र में अधिक होती है। इस प्रकार के व्यापार में अधिक चलन वाली साधारण मूल्य की वस्तुएँ होती हैं। इन थोक विक्रेताओं का आकार राष्ट्रीय थोक विक्रेताओं से छोटा होता है लेकिन यह वे सभी सेवाएँ प्रदान करते हैं जो राष्ट्रीय थोक विक्रेताओं द्वारा प्रदान की जाती हैं।

(8) **स्थानीय थोक विक्रेता** (Local Wholesaler)—वास्तव में क्षेत्रीय थोक विक्रेता व स्थानीय थोक विक्रेता में कोई अन्तर नहीं है। जो विक्रेता अपने शहर और आस-पास के क्षेत्र में बिक्री करते हैं उन्हें हम क्षेत्रीय विक्रेता कहते हैं लेकिन जो विक्रेता अपने नगर के किसी भाग या किसी छोटे कस्बे और उसके आस-पास के क्षेत्र में कार्य करते हैं उन्हें स्थानीय विक्रेता कहते हैं। इस प्रकार स्थानीय थोक विक्रेता का कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होता है लेकिन ऐसे थोक विक्रेता सभी नगरों, शहरों व कस्बों में पाये जाते हैं और भारत जैसे देश में इनका बहुत महत्व है। यह विक्रेता फुटकर विक्रेता के बहुत ही पास में होते हैं। अतः फुटकर विक्रेता को इनसे माल मँगाने व देखने में सुविधा रहती है। इस प्रकार के विक्रेता फुटकर विक्रेताओं को उधार माल देने की सुविधा भी प्रदान करते हैं।

भारत में कुछ वस्तुओं के सम्बन्ध में अधिकृत थोक विक्रेता (Authorised Wholesaler) भी पाये जाते हैं जिनकी नियुक्ति उन निर्माताओं के द्वारा की जाती है जिनका कि माल वे बेच रहे हैं। यह अधिकृत थोक विक्रेता राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व स्थानीय तीनों ही स्तरों पर पाये जाते हैं। ऐसे थोक विक्रेता साधारणतया उसी निर्माता के माल को बेचते हैं जिनके साथ उन्होंने माल बेचने का समझौता किया है और जिसने उनको नियुक्त किया है लेकिन कुछ दशाओं में यह अन्य प्रकार का माल भी बेचने के लिए अपनी दुकान पर रख लेते हैं।

औद्योगिक वस्तुओं के थोक विक्रेता निम्न प्रकार के पाये जाते हैं :

(1) **डीलर** (Dealer)—भारत में इस प्रकार के डीलर या थोक विक्रेता दो प्रकार के होते हैं। एक तो स्वतन्त्र डीलर (Free Dealer) तथा दूसरे को अधिकृत डीलर (Authorised Dealer) कहते हैं। **स्वतन्त्र डीलर** वह थोक विक्रेता है जो कई निर्मानाओं के माल को बेचता है। लेकिन **अधिकृत डीलर** वह है जो केवल किसी विशेष निर्माता का ही माल बेचता है और जिसने उस निर्माता से माल बेचने का समझौता कर लिया है।

(2) **इकहरा थोक विक्रेता** (Single-line Wholesalers)—यह थोक विक्रेता केवल एक विशेष शाखा के माल का ही विक्रय करता है। लेकिन ऐसे माल का विक्रय उन सभी प्रकार के क्रेताओं को किया जाता है जो उस वस्तु को माँगते हैं। उदाहरण के लिए, बिजली के सामान के थोक विक्रेता। यह विक्रेता बिजली के बल्ब, ट्यूब, तार, होल्डर, लकड़ी के ब्लॉक, बटन, प्लग आदि, बिजली से सम्बन्धित सभी प्रकार की वस्तुएँ बेचते हैं।

(3) **विशिष्ट प्रकार के क्रेताओं के थोक विक्रेता** (Wholesalers of Specialized Buyers)—यह थोक विक्रेता केवल एक क्षेत्र के क्रेताओं को चुन लेते हैं और उनकी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने पास माल रखते हैं। उदाहरण के लिए, छपाई उपकरण का थोक विक्रेता (Wholesalers of Printing Equipment)। यह थोक विक्रेता छपाई उपकरण की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के अनेक प्रकार के माल की बिक्री का प्रबन्ध करता है। यह दूसरे प्रकार की आवश्यकताओं की वस्तुएँ नहीं रखता है।

अमरीका में औद्योगिक माल के थोक विक्रेताओं को **औद्योगिक वितरणकर्ता** (Industrial Distributors) कहते हैं। भारत में इस प्रकार के थोक विक्रेता को डीलर (Dealer) कहते हैं। इनके द्वारा माल सीधा निर्माताओं से खरीदा जाता है। इनका कार्यक्षेत्र उपभोक्ता क्षेत्र के पूर्ण-सेवा-थोक-विक्रेताओं के समान ही होता है। अन्तर केवल इतना है कि पूर्ण-सेवा-थोक-विक्रेता फुटकर विक्रेताओं को बेचते हैं लेकिन औद्योगिक वितरणकर्ता प्रयोग करने वाले कारखानों को बेचते हैं। इस देश में इन थोक विक्रेताओं को मिल, स्टोर्स, मशीनरी डीलर्स (Machinery Dealers), तथा इन्जीनियरिंग कम्पनी, आदि के नामों से भी जाना जाता है।

प्रतिनिधि-मध्यस्थ
(AGENT-MIDDLEMEN)

वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय में थोक व फुटकर विक्रेता के अतिरिक्त कुछ मध्यस्थ प्रतिनिधि भी अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं। यह वे प्रतिनिधि हैं, जो स्वयं किसी भी माल का स्वामित्व ग्रहण नहीं करते बल्कि कुछ कमीशन या दलाली लेकर क्रेता व विक्रेता को मिला देते हैं। यह प्रतिनिधि-मध्यस्थ फुटकर व थोक दोनों ही प्रकार के व्यवसायों में पाये जाते हैं। यह निम्न प्रकार के होते हैं :

(1) **निर्माताओं के प्रतिनिधि** (Manufacturer's Agents)—निर्माता प्रतिनिधि वे प्रतिनिधि हैं जिनकी नियुक्ति निर्माता द्वारा अपने माल की बिक्री के लिए की जाती है। ऐसे प्रतिनिधियों को वस्तुओं के मूल्य व विक्रय शर्तों के सम्बन्ध में कुछ सीमित अधिकार दे दिये जाते हैं। यह प्रतिनिधि किसी खास क्षेत्र में एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। ये प्रतिनिधि अपने व्यापार से सम्बन्धित वस्तु पंक्ति में कार्य करते हैं और साधारणतया प्रतियोगी वस्तु-पंक्ति में कार्य नहीं करते

हैं। इनके द्वारा अपने प्रधान का माल उसके द्वारा निश्चित मूल्य पर या उसके द्वारा निर्धारित मूल्य-सीमा (Price-range) में बेचा जाता है। साथ ही यह निर्माता के गोदाम से क्रेता के स्थान तक माल को भेजने का भी प्रबन्ध करते हैं। माल की बिक्री पर इनको कमीशन मिलता है जो कि बिक्री का एक निश्चित प्रतिशत होता है। माल के विक्रय के लिए प्रतिनिधि अपने यहाँ विक्रय स्टाक भी रखते हैं जिसका सारा व्यय यह प्रतिनिधि ही सहन करते हैं।

निर्माता प्रतिनिधि नियुक्त करने की प्रथा औद्योगिक वस्तुओं व उपभोक्ता-टिकाऊ वस्तुओं (consumer durable products) में बहुत अधिक पाई जाती है। औद्योगिक वस्तुओं के लिए प्रतिनिधि औद्योगिक उपभोक्ताओं (users) से सम्पर्क स्थापित कर माल बेचते हैं लेकिन उपभोक्ता वस्तुओं के लिए ये फुटकर विक्रेताओं से सम्पर्क स्थापित कर बिक्री करते हैं। बहुत-से निर्माता प्रतिनिधि अपने यहाँ माल रखते हैं और इस प्रकार भण्डार सुविधाएँ निर्माता को प्रदान करते हैं।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग में इन प्रतिनिधियों को क्षेत्रीय प्रतिनिधि (Territorial Agent) तथा औद्योगिक माल के क्षेत्र में एकमात्र वितरक (Sole Distributor) के नाम से भी जाना जाता है।

(2) **विक्रय प्रतिनिधि** (Selling Agent)—वे प्रतिनिधि जो एक निर्माता के सम्पूर्ण उत्पादन को एक निश्चित समय तक बेचने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं उन्हें विक्रय प्रतिनिधि कहते हैं। निर्माता व विक्रय प्रतिनिधि के बीच एक प्रसंविदा (contract) होता है जिसके अनुसार प्रतिनिधि एक निश्चित समय तक उसका प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रसंविदे के अनुसार प्रतिनिधि को काफी विस्तृत अधिकार प्राप्त होते हैं। वह निर्माता की ओर से मूल्य व बिक्री की शर्तें तय करने का अधिकार रखता है। ये प्रतिनिधि निर्माता की आर्थिक सहायता भी करते हैं।

भारत में **इनको एक मात्र विक्रय प्रतिनिधि** (Sole Selling Agent) कहते हैं। सूती वस्त्र उद्योग में ये बहुत बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। सूती वस्त्र समिति (Cotton Textile Committee, 1961) के एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में सूती वस्त्र मिलों द्वारा जो बिक्री की जाती है उसकी 51 प्रतिशत बिक्री इन्हीं प्रतिनिधियों के द्वारा की जाती है।

(3) **दलाल** (Brokers)—"दलाल एक प्रतिनिधि है जिसके पास उस माल का भौतिक नियन्त्रण नहीं होता है जिसमें वह व्यवहार करता है, लेकिन वह क्रेता या विक्रेता का प्रतिनिधित्व करता है और अपने प्रधान के लिए व्यवसाय करता है।"[1] यह वस्तुओं को बिना भौतिक रूप से लिए या दिये, क्रय करने या बेचने में सहायता

1 "Broker is an agent who does not have direct physical control of the goods in which he deals but represents either buyer or seller and does business for his principal."—Report of the Definitions Committee : *The Journal of Marketing*, October, 1948.

करता है। साधारणतया इसका कार्य क्रेता व विक्रेता में विक्रय-वार्ता प्रारम्भ कराना है। इसको मूल्यों को निर्धारित करने का अधिकार नहीं होता है।

भारत में कपड़े के व्यापार में दलाल पाये जाते हैं। इनका काम थोक व फुटकर विक्रेताओं के बीच सौदा कराना है। यह दलाल अपनी गद्दी (दफ्तर) रखते हैं। वहीं पर फुटकर विक्रेता आ जाते हैं जिनको वह थोक विक्रेता के पास ले जाता है और माल का मूल्य ठीक प्रकार से तय कराकर विक्रय करा देता है।

इसी प्रकार भारत में औद्योगिक माल की बिक्री के क्षेत्र में भी दलाल पाये जाते हैं जैसे, सूती वस्त्र व चीनी मिलों की मशीनों की बिक्री में। अनाज के व्यापार में भी दलाल पाये जाते हैं जो मण्डी में आढ़तिया व फुटकर विक्रेता या उपभोक्ता को मिलाने का कार्य करते हैं। नियमित मण्डियों (regulated markets) में भी दलाल पाये जाते हैं।

(4) **नीलामकर्ता** (Auctioneers)— यह प्रतिनिधि अपने प्रधान के माल को बेचने के लिए नीलाम की पद्धति अपनाता है। जिस व्यक्ति द्वारा वस्तु का सबसे अधिक मूल्य बोला जाता है उसी के नाम की बोली समाप्त कर दी जाती है और इसी प्रकार उसको वह वस्तु बेच दी जाती है।

पुरानी वस्तुओं को बेचने के लिए यह पद्धति अपनायी जाती है। भारत में कृषि पदार्थों जैसे, चाय, तम्बाकू, फल, आदि में भी यह पद्धति अपनायी जाती है। इसमें नीलामकर्ता के नियन्त्रण में वस्तुएँ रहती हैं और उसके द्वारा सम्भावित क्रेताओं को वस्तुएँ दिखायी जाती हैं। उन वस्तुओं के विक्रय के बाद तुरन्त मूल्य ले लिया जाता है और नीलामकर्ता विक्रय-मूल्य में से अपना कमीशन काटकर बाकी रकम उस व्यक्ति को भेज देता है जिसकी वस्तु का विक्रय किया गया है।

(5) **कमीशन-गृह** (Commission Houses)—कमीशन-गृह भी एक प्रकार से प्रतिनिधि हैं लेकिन इनमें एक विशेषता यह है कि ये वस्तुओं पर अपना अधिकार रखते हैं (यद्यपि इनका स्वामित्व उन वस्तुओं पर नहीं होता है) और दलाल की तुलना में इनको मूल्य व विक्रय-शर्तों को तय करने में अधिक स्वतन्त्रता व अधिकार होता है हालांकि इनको अपने प्रधान के आदेशों का पालन करना पड़ता है। यह वस्तुओं को बेच सकते हैं, उनका विक्रय-मूल्य एकत्रित कर सकते हैं और उनकी सुपुर्दगी दे सकते हैं। यदि आवश्यक हो तो उधार भी बेच सकते हैं लेकिन उधार देने का उत्तरदायित्व प्रधान पर नहीं होता है। माल के विक्रय के बाद जो रकम आती है उसमें से अपना कमीशन व कुछ व्यय काटकर शेष प्रधान को दे देते हैं।

(6) **स्थानीय क्रेता** (Resident Buyers)—यह भी एक प्रकार का प्रतिनिधि है लेकिन इसकी विशेषता यह है कि यह क्रेताओं का प्रतिनिधि होता है और यह अपना पारिश्रमिक वस्तु के क्रय-मूल्य पर कमीशन के रूप में प्राप्त करता है। यह स्थानीय क्रेता अपने दफ्तर बड़े-बड़े शहरों में रखते हैं जहाँ पर क्रेता आते रहते हैं। जब कभी भी क्रेता को माल की आवश्यकता होती है तो वह अपने स्थानीय क्रेता-

प्रतिनिधि को लिख देते हैं। इन प्रतिनिधियों का काम बाजार से माल क्रय करके उसको भेज देना है।

(7) **निर्यात एवं आयात प्रतिनिधि** (Expcrt and Import Agent)—आयात एवं निर्यात में भी कुछ संस्थाएँ होती हैं जो प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती हैं। यह संस्थाएँ समुद्री बन्दरगाहों के पास वाले शहरों में होती हैं। इनका काम अपने प्रधान द्वारा जो माल मँगाया गया है उसके आयात या निर्यात का प्रबन्ध करना है। यह आयात व निर्यात दोनों में ही प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। जब माल देश में आयात होता है तो इनको आयात-प्रतिनिधि कहते हैं और जब निर्यात में प्रतिनिधित्व करते हैं तो इनको निर्यात प्रतिनिधि कहते हैं।

थोक विक्रेताओं द्वारा सेवाएँ
(SERVICES BY THE WHOLESALERS)

थोक विक्रेता निर्माता व फुटकर विक्रेता को मिलाने वाली एक कड़ी है। अत: इनकी व्यापारिक जगत में काफी उपयोगिता है। इस थोक विक्रेता द्वारा बहुत-सी सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए सेवाओं को निम्न तीन शीर्षकों में बाँटा जा सकता है :

(I) निर्माता के प्रति सेवाएँ (Ser.ices towards Manufacturers or Producers)।

(II) फुटकर विक्रेता के प्रति सेवाएँ (Services towards Retailers)।

(III) समाज के प्रति सेवाएँ (Services towards Society)।

(I) निर्माता के प्रति सेवाएँ (Services towards Manufacturers or Producers)

थोक विक्रेता द्वारा अपने निर्माता या उत्पादक के लिए निम्न सेवाएँ या कार्य सम्पन्न किये जाते हैं :

(1) **बिक्री का प्रबन्ध करना** (Management of Sales)—निर्माता के माल को बड़ी मात्रा में खरीदकर थोक विक्रेता बेचने का प्रबन्ध करता है जिसके लिए वह अपने विक्रयकर्ता व अपना स्वयं का विक्रय संगठन रखता है जिससे निर्माता को अपना विक्रय संगठन अधिक बड़ा रखने की आवश्यकता नहीं रहती है। साथ ही उत्पादक या निर्माता वितरण सम्बन्धी झंझटों से भी मुक्त हो जाता है।

(2) **उधार जोखिम में कमी** (Reduction in Credit Ri k)—थोक विक्रेता को अधिकतर माल नकद बेचा जाता है जिससे निर्माता की उधार सम्बन्धी जोखिम नहीं रहती है। यदि निर्माता फुटकर विक्रेताओं को उधार माल देता है तो उसकी जोखिम थोक विक्रेता की तुलना में अधिक रहती है क्योंकि भिन्न-भिन्न स्थानों पर बसे फुटकर विक्रेताओं की आर्थिक दशा का पता लगाना कठिन होता है।

(3) **स्टॉक** (Stock)—थोक विक्रेता बड़ी-बड़ी मात्रा में वस्तुओं को खरीदते हैं अतः निर्माता को अपने यहाँ पर अधिक स्टॉक रखने की आवश्यकता नही होती है। इस प्रकार एक निर्माता के गोदाम सम्बन्धी व्ययों में कमी हो जाती है। साथ ही स्टॉक कम रखने के कारण कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

(4) **विपणन व्ययों में कमी** (Reduction in Marketing Expenses)—निर्माता जब अपने माल को थोक विक्रेताओं के माध्यम से बेचता है तो उसका विपणन व्यय भी कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि उसको अपना विपणन संगठन छोटा ही रखना पड़ता है तथा थोक विक्रेताओं के द्वारा विज्ञापन कराने से उसको स्वयं विज्ञापन कराने की आवश्यकता भी नहीं रहती है और इस प्रकार उसको विज्ञापन पर कम ही व्यय करना पड़ता है।

(5) **बाजार सूचनाएँ प्रदान करना** (Provides Market Informations)—थोक-विक्रेताओं का सम्बन्ध फुटकर विक्रेताओं से रहता है जो कि अन्तिम उपभोक्ताओं को वस्तुएँ बेचते हैं। अतः उपभोक्ता सम्बन्धी बाजारू सूचनाएँ फुटकर विक्रेता थोक विक्रेता को बताता है जो उन सूचनाओं को निर्माताओं को भेज देता है जिससे कि वे अपने उत्पादन, मूल्य, विज्ञापन, आदि की नीतियों में उन सूचनाओं को ध्यान में रखकर परिवर्तन कर लेते है।

(6) **वृहत उत्पादन में सहयोग** (Cooperation in Large Scale Production)—थोक निर्माताओं को **वृहत उत्पादन करने में सहयोग** देता है क्योंकि उसके द्वारा बड़ी-बड़ी मात्रा के आदेश दिये जाते है। ऐसा होने से उत्पादन लागत मे भी कमी होती है।

(7) **विज्ञापन व्ययों में कमी** (Reduction in Advertising Expenses)—थोक विक्रेता द्वारा विज्ञापन करने से निर्माता को **अधिक विज्ञापन व्यय करने की आवश्यकता नहीं रहती है** और इस प्रकार निर्माता के विज्ञापन व्ययों में कमी करके उसकी सेवाएँ करते है।

(8) **प्रमापीकरण एवं श्रेणीकरण** (Standardisation & Grading)—थोक विक्रेता द्वारा माल के **प्रमापीकरण एवं श्रेणीकरण** का भी कार्य किया जाता है जिससे उत्पादक या निर्माता को यह कार्य नही करना पड़ता है और इस प्रकार उसकी सेवा हो जाती है।

(II) **फुटकर विक्रेता के प्रति सेवाएँ** (Services towards Retailers)

थोक विक्रेता फुटकर विक्रेताओं के प्रति भी अपनी सेवाएँ अर्पित करता है जो निम्न प्रकार हैं :

(1) **आवश्यकतानुसार माल की पूर्ति** (Supply of Goods according to the Requirements)—थोक विक्रेता फुटकर विक्रेता को उसकी आवश्यकता के अनुसार माल उपलब्ध कर देता है और इस प्रकार फुटकर विक्रेता को अधिक स्टॉक रखने की आवश्यकता नही होती है।

(2) **माल को यथाक्रम रखना** (Assortment of Goods)—फुटकर विक्रेताओं की आवश्यकतानुसार माल को छोटे-छोटे पैकिटों व पार्सलों में थोक विक्रेता द्वारा पैक कर दिया जाता है जिससे फुटकर विक्रेताओं को छोटी-छोटी मात्रा में वस्तुओं को बेचने में आसानी रहती है। इस प्रकार एक थोक विक्रेता अपने फुटकर विक्रेताओं की सेवा करता है। यदि यह कार्य थोक विक्रेता द्वारा न किया जाय तो विक्रेता को करना होगा।

(3) **साख सुविधाएँ** (Credit Facilities)—थोक विक्रेता द्वारा फुटकर विक्रेता को उधार माल देने की सुविधा दी जाती है। जब फुटकर विक्रेता उस माल को बेच लेता है तब उसका मूल्य थोक विक्रेता को चुका देता है। साधारणतया फुटकर विक्रेताओं की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण वे निर्माता से सीधा माल नहीं मँगा सकते हैं और इस प्रकार थोक विक्रेता की सेवाओं का लाभ उठाते हैं।

(4) **सूचना एवं सलाह देना** (Provides Information and Advice)—थोक विक्रेता एवं उसके विक्रयकर्ता उन वस्तुओं के सम्बन्ध में विशेषज्ञ समझे जाते हैं जिनमें वे क्रय-विक्रय कर रहे हैं। एक फुटकर विक्रेता को उन वस्तुओं के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ एवं उनके विक्रयकर्ता की सलाह भी मुफ्त में ही मिल जाती है।

(5) **क्रय सुविधा देना** (Provides Buying Function)—थोक विक्रेता द्वारा अपने ही विक्रयकर्ताओं के द्वारा यह सुविधा प्रदान की जाती है कि उसके विक्रयकर्ता फुटकर विक्रेता की दुकान तक पहुँचते हैं व माल का आदेश प्राप्त कर माल को भेजने का प्रबन्ध करते हैं। इस प्रकार एक फुटकर विक्रेता को अपनी ही दुकान पर माल मिल जाता है और उसको थोक विक्रेता तक जाना भी नहीं पड़ता है। इस प्रकार क्रय सुविधा का कार्य थोक विक्रेता द्वारा ही किया जाता है।

(6) **जोखिम उठाना** (Sustain Risk)—निर्माता से थोक विक्रेता द्वारा माल बिक्री के समय या ऋतु से काफी पहले तात्कालिक मूल्यों पर खरीदा जाता है और इस बात की काफी सम्भावना रहती है कि फैशन या अन्य कारणों से बिक्री के समय मूल्य परिवर्तित हो जायें। इस प्रकार थोक विक्रेता स्टाक रखने के कारण इस जोखिम को भी स्वयं उठाता है क्योंकि फुटकर विक्रेता तो आवश्यकतानुसार समय पर ही माल क्रय करता है।

(7) **विभिन्न निर्माताओं से सम्पर्क की मुक्ति** (Free from Contacting Various Manufacturers)—फुटकर विक्रेता को एक ही थोक विक्रेता के यहाँ भिन्न-भिन्न निर्माताओं की वस्तुएँ मिल जाती हैं इसलिए उसको भिन्न-भिन्न निर्माता या थोक विक्रेताओं से सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता नहीं रहती है। इस प्रकार थोक विक्रेता फुटकर विक्रेता की सेवा करता है।

(III) **समाज के प्रति सेवाएँ** (Services towards Society)

एक थोक विक्रेता द्वारा समाज के प्रति अग्र सेवाएँ प्रदान की जाती हैं :

(1) **उपभोक्ता की रुचि के अनुसार वस्तुएँ उपलब्ध करना** (Availability of Products According to the Consumers' Aptitude)—थोक विक्रेताओं के कारण उपभोक्ताओं को अपनी रुचि के अनुसार वस्तु मिल जाती है। साधारणतया थोक विक्रेता केवल उन्हीं वस्तुओं को अपने पास रखते हैं जिनकी माँग फुटकर विक्रेता करता है और फुटकर विक्रेता उन्हीं वस्तुओं की माँग करता है जिनको उपभोक्ता चाहता है। इस प्रकार उपभोक्ता को अपनी रुचि के अनुसार वस्तु मिल जाती है।

(2) **विज्ञापन द्वारा जानकारी** (Knowledge through Advertising)—थोक विक्रेता का विज्ञापन समाज को वस्तु की जानकारी देता है जिससे उसके ज्ञान में वृद्धि होती है।

(3) **मूल्यों में स्थायित्व** (Stability in Prices)—थोक विक्रेता माँग व पूर्ति में समयोजन बिठालने का प्रयत्न करता है जिससे औद्योगीकरण एक निश्चित गति से होता है और मूल्यों में स्थायित्व बना रहता है जिसका लाभ समाज को भी मिलता है।

(4) **चुनाव की सुविधा** (Selection Facility)—थोक विक्रेता द्वारा विभिन्न निर्माताओं की वस्तुओं को संग्रहित किया जाता है जिससे फुटकर विक्रेताओं तथा उपभोक्ताओं को वस्तुओं के चुनाव करने में सुविधा रहती है।

(5) **वृहत उत्पादन को बढ़ावा** (Incentive to Large-scale Production)—थोक विक्रेता द्वारा बड़ी-बड़ी मात्रा में क्रय करने के कारण निर्माता वृहत उत्पादन करने के लिए बाध्य हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अन्त में वस्तु की प्रति इकाई लागत घट जाती है जिससे उसके विक्रय मूल्य में कमी कर दी जाती है जिसका लाभ सम्पूर्ण समाज को मिलता है।

(6) **विपणन अनुसन्धान के लाभ** (Advantages of Marketing Research)—थोक विक्रेता द्वारा विपणन अनुसन्धान कराया जाता है जिसके परिणामस्वरूप समाज को वस्तु यथास्थान एवं कम मूल्य पर मिल जाती है।

थोक विक्रेताओं द्वारा जो सेवाएँ निर्माता व फुटकर विक्रेताओं को प्रदान की जाती हैं उनके अध्ययन से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि थोक विक्रेता एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

थोक विक्रेताओं को हटाने के कारण
(REASONS FOR ELIMINATING WHOLESALERS)

आजकल सभी उन्नतिशील देशों में मध्यस्थ थोक विक्रेता को वितरण-माध्यम की कड़ी से निकालने की प्रवृति पाई जाती है। इसके लिए थोक विक्रेता के सम्बन्ध में बहुत से आरोप लगाये जाते हैं जिनमें प्रमुख निम्न हैं :

(1) **भण्डार कार्य के निष्पादन में विफलता** (Failure to Perform Storage Function) आधुनिक परिवहन साधनों ने थोक विक्रेता के लिए यह सुलभ

कर दिया है कि वे वस्तुओं को अपनी आवश्यकतानुसार (hand to month) मात्रा में क्रय करें। इससे निर्माता पर इस बात का दबाव बढ़ गया है कि वे सभी आदेशों की पूर्ति हेतु पर्याप्त मात्रा में स्टॉक (Inventory) रखें और मूल्यों में घटा-बढ़ी की जोखिम को भी सहन करें। स्टॉक रखने का यह कार्य पहले थोक विक्रेता ही करता था और मूल्यों की घटा-बढ़ी की जोखिम भी वही सहन करता था। इस प्रकार थोक विक्रेता को हटाने में पहला कारण थोक विक्रेता की भण्डार कार्य के निष्पादन में विफलता है।

(2) **निजी ब्राण्डों का विकास** (Development of Own Brands)—थोक विक्रेताओं को हटाने का दूसरा कारण थोक विक्रेताओं द्वारा अपनी निजी ब्राण्डों का विकास करना है। थोक विक्रेताओं ने अपने लाभों को बढ़ाने व फुटकर विक्रेताओं से अच्छा सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से निर्माता के माल को अपनी ब्राण्डों के नाम से बेचना आरम्भ कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप निर्माता को लाभ कम होता है तथा निर्माता द्वारा विक्रय मूल्यों के सम्बन्ध में कोई दृढ़ नीति नहीं अपनायी जा सकती है।

(3) **वस्तुओं के प्रवर्तन में विफलता** (Failure to Promote Products)—निर्माता की वस्तुओं को अधिक मात्रा में बेचने के लिए थोक विक्रेता के द्वारा प्रवर्तन सम्बन्धी क्रियाओं का सहारा नहीं लिया जाता है। वे न तो विज्ञापन ही करते हैं और न विशेष छूट या उधार योजना ही चलाते हैं और न फुटकर विक्रेताओं के सहयोग से विज्ञापन व अन्य प्रवर्तन प्रोग्रामों में ही सहायता करते हैं।

(4) **बाजार के साथ निकट सम्पर्क** (Closer Market Contact)—वे वस्तुएँ व सेवाएँ जिनमें ग्राहक व विक्रेता का सीधा व समीपता का सम्बन्ध आवश्यक होता है उनमें भी मध्यस्थों को हटा दिया जाता है, जैसे मरम्मत करने वाली संस्थाएँ, सेवा देने वाली संस्थाएँ व मशीनें व अन्य प्रकार की वस्तुओं को लगाने वाली संस्थाएँ। यह सभी सेवाएँ फुटकर विक्रेता द्वारा अच्छी प्रकार से दी जा सकती हैं।

(5) **थोक विक्रेताओं की सेवाओं की लागत** (Cost of Wholesalers' Services) – थोक विक्रेताओं को हटाने में एक कारण उनके द्वारा वस्तु का मूल्य बढ़ाना है। थोक विक्रेता वस्तु के मूल्यों में वस्तु सम्बन्धी व्यय व कुछ लाभ जोड़ देते हैं जबकि यही सेवाएँ निर्माता द्वारा कम व्यय में दी जा सकती हैं।

(6) **फुटकर विक्रेताओं द्वारा सीधी खरीद को प्राथमिकता** (Preference of Retailers for Direct Purchases)—बहुत-से फुटकर विक्रेता इस विश्वास के साथ निर्माता से सीधी खरीद करते हैं कि उन्हें कम मूल्य, बेहतर सेवा, माल के चुनाव में सुविधा, विज्ञापन भत्ता, आदि बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त होंगी जोकि थोक विक्रेता देने में असमर्थ है। ऐसे विक्रेता बड़े पैमाने पर बिक्री करने वाले फुटकर विक्रेता हैं जैसे, विभागीय भण्डार। निर्माता को ऐसे बड़े फुटकर विक्रेताओं के

साथ क्रय-विक्रय करने में विपणन लागत कम पड़ती है । अतः वे थोक विक्रेताओं की उपेक्षा कर सकते हैं ।

(7) **अन्य कारण** (Other Reasons)—थोक विक्रेताओं को हटाने में उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं । इन कारणों में (i) थोक विक्रेताओं द्वारा चोरबाजारी को बढ़ावा देना, (ii) नयी वस्तुओं में रुचि न लेना, (iii) फुटकर विक्रेताओं द्वारा उनको पसन्द न करना, (iv) परिवहन साधनों में वृद्धि होना आदि हैं ।

थोक विक्रेताओं के हटाने पर निर्माताओं को उपलब्ध विकल्प
(ALTERNATIVES TO MANUFACTURERS IN ELIMINATING WHOLESALERS)

यदि कोई निर्माता यह निर्णय लेता है कि थोक विक्रेताओं की सेवाओं का उपयोग नहीं करना है तो उसको निम्नलिखित विकल्प उपलब्ध हैं :

(1) **उपभोक्ताओं को सीधी बिक्री** (Direct Sale to Consumers)—यदि कोई निर्माता अपनी वस्तु के वितरण के लिए थोक विक्रेताओं को मध्यस्थ नहीं रखना चाहता है तो वह उपभोक्ताओं को सीधी बिक्री (i) श्रृंखलाबद्ध दूकानें खोलकर (Chain Stores), (ii) डाक द्वारा व्यापार कर (Mail Order Business), (iii) अपने फुटकर विक्रय केन्द्र (Mill Reta l Depot.) खोलकर, (iv) घर-घर बिक्री (House-to-house Selling) करके, व (v) स्वचालित मशीनें (Automatic Vending Machines) स्थापित कर बिक्री कर सकता है । इन सभी का विवरण फुटकर वितरण (Retail Distributing) वाले अध्याय में दिया गया है ।

(2) **फुटकर विक्रेताओं को सीधी बिक्री** (Direct Sale to Retailers)—यदि कोई निर्माता फुटकर विक्रेताओं को सीधी बिक्री करना चाहता है तो वह फैक्टरी से उनको बिक्री कर सकता है या यात्री विक्रयकर्ता को नियुक्त कर सीधी बिक्री कर सकता है । डाक द्वारा भी फुटकर विक्रेताओं को बिक्री की जा सकती है । टेलीफोन की सहायता से भी फुटकर विक्रेताओं की आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है ।

"भारत में यह प्रणाली चाय के क्षेत्र में प्रख्यात ब्रुक बॉण्ड इण्डिया, द्वारा अपनायी जा रही है । इस कम्पनी के लगभग 3,000 विक्रयकर्ता अपनी 32 शाखाओं और 2,000 डिपो के माध्यम से 6 लाख फुटकर विक्रेताओं को सीधी बिक्री करते हैं ।"

(3) **विक्रय कार्यालयों के माध्यम से बिक्री करना** (Sale through Sale Offices)—फुटकर विक्रेताओं को बिक्री विक्रय कार्यालयों के माध्यम से भी की जा सकती है । इन विक्रय कार्यालयों में कुछ ही कर्मचारी रहते हैं जिनका कार्य फुटकर विक्रेताओं से आदेश लेकर अपने मुख्य कार्यालयों को भेजना है ।

कभी-कभी विक्रय कार्यालयों का कार्यक्षेत्र बढ़ाकर शाखा (Branch) का रूप दे दिया जाता है। शाखा वे सब कार्य करती है जो विक्रय कार्यालय करते हैं लेकिन इनके पास विक्रय कार्यालय से अधिक अधिकार रहते हैं तथा माल भी स्थानीय गोदामों में रहता है जिससे यह तुरन्त सुपुर्दगी देने में समर्थ रहते हैं। मरम्मत सेवा भी इन शाखाओं पर उपलब्ध रहती है।

थोक विक्रेताओं का भविष्य

(FUTURE OF THE WHOLESALERS)

थोक विक्रेताओं के उन्मूलन की क्रिया सभी देशों में चल पड़ी है और निर्माता वस्तुओं को सीधे ही उपभोक्ताओं तक पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। राजकीय व्यापार की सम्भावनाएँ भी बढ़ती जा रही हैं, विशेषरूप से समाजवादी समाज में। भारत में गेहूँ का थोक व्यापार भी एक दृष्टि से आंशिक रूप में सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है व अन्य खाद्य पदार्थों को भी लेने की तैयारी में है। जनसाधारण भी इनको हटाने में सचेष्ट है। इन सब के होते हुए भी आज भी थोक विक्रेता जीवित हैं और विशाल व्यापारिक क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाये हुए हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि थोक विक्रेताओं को जड़ से हटा देना सम्भव नहीं होगा। छोटे-छोटे फुटकर विक्रेता व फेरी वाले विक्रेता जो थोक विक्रेता के बल पर ही जीवित हैं और जो उपभोक्ता को गली-गली व घर-घर माल बेचते हैं उनको बड़ी कठिनाई होगी और निर्माता उनको वे सुविधाएँ देने में समर्थ नहीं होंगे जो थोक विक्रेता देते हैं। ऐसी स्थिति में थोक विक्रेताओं को हटाया नहीं जा सकेगा।

जहाँ तक थोक विक्रेताओं के भविष्य का प्रश्न है वह उज्जवल नहीं है। नये व्यवसायों में इनका महत्व घट रहा है और पुरानों में इनकी उपयोगिता घट रही है लेकिन अनिश्चित काल तक इनका किसी न किसी रूप में बना रहना ही दृष्टिगोचर होता है।

प्रश्न

1. थोक व्यापारियों का वर्गीकरण आप किस प्रकार करेंगे ? वे निर्माता तथा फुटकर व्यापारियों को क्या सेवाएँ प्रदान करते हैं ?
   How would you classify whole-sale dealers ? What services are rendered by wholesalers to the manufacturers and the retailers ?
2. "यह कहा जाता है कि थोक विक्रेता एक पराश्रयी है, इसलिए वह उत्पादक-उपभोक्ता मध्यस्थ श्रृंखला में बेकार कड़ी है।" समझाइए।
   "It is said that the wholesaler is a parasite and, therefore, a useless link in the chain of middlemen from producer to the consumer." Explain.
3. थोक व्यापारी की परिभाषा दीजिए एवं इसमें तथा फुटकर व्यापार में अन्तर कीजिए। फुटकर व्यापारियों के जोखिम को थोक व्यापारी किन विधियों से हटा सकता है ?
   Define wholesaling and distinguish it with retailing. In what ways can the wholesaler reduce the risks faced by the retailers ?

14

फुटकर वितरण

[RETAIL DISTRIBUTION]

फुटकर विपणन का अर्थ
(MEANING OF RETAILING)

फुटकर विपणन का अर्थ वस्तुओं व सेवाओं को उनके अन्तिम उपभोक्ताओं तक पहुँचाना है। यह अन्तिम उपभोक्ता उन वस्तुओं या सेवाओं को पुनः किसी रूप में बेचने के लिए क्रय नहीं करते हैं बल्कि उनको उपभोग के लिए क्रय करते हैं। अतः यह कहा जाता है कि अन्तिम उपभोक्ता से अर्थ ग्रहणी को वस्तु या सेवा बेचने से लगाया जाता है। फुटकर विपणन की परिभाषा विद्वानों ने निम्न प्रकार दी है :

(1) **अमरीकन परिभाषा समिति** (Definition Committee, America) के अनुसार, "फुटकर विपणन में वे सब क्रियाएँ जो अन्तिम उपभोक्ता को बेचने में घटित होती हैं आती हैं।"[1]

(2) **कंण्डिफ एवं स्टिल** (Cundiff & Still) के मत में, "फुटकर विपणन में वे क्रियाएँ शामिल की जाती हैं जो अन्तिम उपभोक्ता को सीधे बेचने में सम्बद्ध होती हैं।"[2]

(3) **प्रो. स्टाण्टन** (Stanton) की राय में, "फुटकर विपणन उन सभी क्रियाओं को सम्मिलित करता है जो कि वैयक्तिक व गैर-व्यावसायिक प्रयोग के लिए वस्तुएँ व सेवाएँ अन्तिम उपभोक्ता को बेचने से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हैं।"[3]

(4) **प्रो. मैकार्थी** (McCarthy) के मत में, "उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री गृहस्थी को अन्तिम रूप से करना ही फुटकर विपणन कहलाता है।"[4]

---

1 Retailing includes "all activities incident to selling to the ultimate consumer."
—Report of the definitions Committee, American : *The Journal of Marketing*, Oct., 1948.

2 "Retailing consists of those activities involved in selling directly to ultimate consumers." —Cundiff & Still : *Basic Marketing*, p. 291.

3 "Retailing includes all activities directly related to sale of goods or services to the ultimate consumer for personal, non-business use."
—Stanton : *Fundamentals of Marketing*, p. 257.

4 "Retailing is selling final consumer products to householders."
—McCarthy : *Basic Marketing*, p. 354.

फुटकर विपणन में वस्तुएँ व सेवाएँ अन्तिम उपभोक्ता को बेची जाती हैं। जो विक्रेता अन्तिम उपभोक्ता को वस्तुएँ या सेवाएँ प्रदान करता है वह फुटकर विक्रेता (Retailer) **या फुटकर भण्डार** (Retail Store) **कहलाता है।** यह फुटकर विक्रेता या भण्डार स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं जो अपने स्थानीय उपभोक्ताओं की आवश्यकता की वस्तुएँ व सेवाएँ प्रदान करते हैं। भारत में इस प्रकार के फुटकर विक्रेता, विभिन्न रूपों व नामों से पुकारे जाते हैं जैसे, सौदागर, परचूनी की दुकान का विक्रेता, पान विक्रेता, कपड़ा विक्रेता, ठेलों व साइकिलों पर वस्तुयें बेचने वाले, सुपर बाजार, उपभोक्ता भण्डार, आदि। यह सभी विक्रेता बहुत-सी वस्तुओं का विक्रय करते हैं जो उनकी नहीं होती हैं। वे तो एक प्रकार से निर्माता (या उत्पादक) व उपभोक्ता के बीच मध्यस्थ का कार्य कर रहे हैं। इसीलिए इनको फुटकर मध्यस्थ (Retailing Middlemen) कहते हैं। कभी-कभी निर्माता भी फुटकर विक्रेता का कार्य करने लगता है और इसके लिए वह अपनी स्वयं की दुकानें खोल देता है, जैसे बाटा कम्पनी की दुकानें, जय इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड की ऊषा पंखा व सिलाई मशीन को बेचने वाली उसकी स्वयं की दुकानें, कपड़े के मिलों की दुकानें (Mill Depots), आदि।

फुटकर विपणन का महत्व
(IMPORTANCE OF RETAILING)

फुटकर विक्रय का विपणन में काफी महत्व है। यही वह कड़ी है जो निर्माता एवं उपभोक्ता को मिलाती है। फुटकर विपणन के महत्व का अध्ययन निम्न तीन आधारों पर किया जा सकता है :

(1) **निर्माता के लिए फुटकर विपणन का महत्व** (Importance of Retailing to the Manufacturer)—मध्यस्थों की श्रृंखला में वस्तुओं के वितरण में यह अन्तिम **मध्यस्थ** है जो कि अन्तिम उपभोक्ता को वस्तुएँ व सेवाएँ उपलब्ध करता है। यदि किसी वस्तु का फुटकर विपणन प्रभावकारी नहीं है तो उस वस्तु का उचित मात्रा में विक्रय नहीं किया जा सकता है, जिसका प्रभाव यह होगा कि उस उद्योग का विकास उचित रूप में नहीं होगा व वस्तु की उत्पादन लागत ऊँची ही बनी रहेगी। यह भी सम्भव है कि उद्योग को ही कुछ समय के बाद बन्द करना पड़े और इस प्रकार राष्ट्रीय साधनों का सदुपयोग होने से बचाया जा सके।

(2) **विपणन प्रबन्धक के लिए फुटकर विपणन का महत्व** (Importance of Retailing to the Marketing Manager)—एक विपणन प्रबन्धक के लिए तो फुटकर विपणन के ज्ञान की बहुत ही अधिक आवश्यकता है जिससे कि वह अपनी वस्तु या सेवा की बिक्री की उचित व्यवस्था कर सके। फुटकर विक्रेता भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। प्रत्येक प्रकार का फुटकर विक्रेता विशेष प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अतः विपणन प्रबन्धक को अपना वितरण-मिश्रण (Distribution-mix) निश्चित करने के लिए इन फुटकर विक्रेताओं का ज्ञान होना चाहिए।

(3) **उपभोक्ता के लिए फुटकर विपणन का महत्व** (Importance of Rtailing to the Consumers)—फुटकर विपणन में विक्रेता के द्वारा विभिन्न व्यवसायों की विभिन्न वस्तुओं को एकत्रित कर उपभोक्ता को उनमें से चुनने का अवसर प्रदान किया जाता है। साथ ही फुटकर विक्रेता उपभोक्ता के पास के ही किसी स्थान पर वस्तुओं का विक्रय करते हैं जिससे उपभोक्ता को अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं होती है। वे वस्तुएँ जो फुटकर विपणन के माध्यम से बिकती हैं उनके मूल्य भी प्रतियोगी होते हैं। जिससे उपभोक्ता को उचित मूल्य ही देने पड़ते हैं। इस प्रकार फुटकर विपणन उपभोक्ताओं की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

फुटकर विपणन का कार्य
(FUNCTION OF RETAILING)

फुटकर विपणन का कार्य फुटकर विक्रेता द्वारा किया जाता है। इस फुटकर विक्रेता के वे सभी कार्य जो वस्तुओं के विपणन के लिए किये जाते हैं फुटकर विपणन के कार्यों के अन्तर्गत आते हैं। इन कार्यों में इसका मुख्य कार्य वस्तुओं को एकत्रित कर उपभोक्ताओं को उनकी सुविधानुसार बेचना है। अत: फुटकर विपणन के निम्न कार्य होते हैं :

(1) **फुटकर विपणन में पहले से ही यह अनुमान लगाना पड़ता है कि वस्तु की कितनी माँग होगी जिससे कि उसको पहले से ही क्रय करने का प्रबन्ध किया जा सके।** इस कार्य के लिए फुटकर विक्रेता को खूब सोच-विचार कर काम लेना पड़ता है। यदि उसको अपनी खरीद सफल बनानी है तो उसको विक्रय करने वालों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और इस बात का पूर्ण अनुभव हो कि वस्तु कब, किससे व किस मूल्य पर क्रय की जाय।

(2) **फुटकर विपणन का दूसरा कार्य वस्तु को सफलतापूर्वक अन्तिम उपभोक्ता को बेचना है।** वस्तु के बेचने में फुटकर विक्रेता द्वारा विज्ञापन, वस्तुओं का प्रदर्शन, प्रशिक्षित विक्रयकर्ता, आकर्षक मूल्य, आदि सभी का सहारा लिया है।

(3) **फुटकर विपणन का तीसरा कार्य ग्राहकों को उधार बिक्री करने की सुविधा प्रदान करना है** जिससे कि उपभोक्ता उस वस्तु का उपयोग कर सकें और उसके मूल्य का भुगतान भी अपनी सुविधा के अनुसार कर सकें। कभी-कभी फुटकर विपणन में वस्तुओं को उपभोक्ता के घर तक पहुँचाने की सुविधा भी दे दी जाती है।

(4) फुटकर विपणन में वस्तुओं को उस समय तक अपनी दुकान में रखना पड़ता है जब तक कि उनकी माँग न हो। इसके लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ एकत्रित कर स्टॉक में रखनी पड़ती हैं। **इस प्रकार उचित स्टॉक हर समय बनाये रखना फुटकर विपणन का चौथा कार्य है।**

(5) विक्रेता के लिए फुटकर विपणन यह आवश्यक कर देता है कि **वस्तुओं को छोटे-छोटे आकारों में पैक कर उपभोक्ता को उसकी आवश्यकतानुसार बेच दे। इस प्रकार यह कार्य भी फुटकर विपणन के द्वारा किया जाता है।**

(6) **जोखिम को सहन करना फुटकर विपणन का अन्तिम कार्य है।** प्रत्येक देश में फैशन व शैली समय-समय पर बदलते रहते हैं जिससे स्टॉक में रखी हुई वस्तुओं के मूल्य भी प्रभावित होते रहते हैं। इस प्रकार फुटकर विक्रेता जोखिम को भी सहन करता है।

फुटकर व्यवसाय करने वाले मध्यस्थों का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF RETAILING MIDDLEMEN)

फुटकर व्यवसाय करने वालों का वर्गीकरण बिक्री, वस्तु-पंक्ति, स्वामित्व, एवं कार्य-संचालन के आधार पर निम्न प्रकार किया जा सकता है :

I. बिक्री के आधार पर (On the basis of Sales)	1. बड़ा फुटकर विक्रेता (Large Retailer) 2. छोटा फुटकर विक्रेता (Small Retailer)
II. वस्तु पंक्ति के आधार पर (On the basis of Product Lines)	1. एक पंक्ति फुटकर विक्रेता (Single-Line Retailer) 2. विशेष फुटकर विक्रेता (Speciality Retailer) 3. सौदागरी के सामान के फुटकर विक्रेता (General Merchandise Retailer) (अ) सामान्य फुटकर विक्रेता (General Retailer) (ब) एक मूल्य फुटकर विक्रेता (One Price Retailer) (स) विभागीय भण्डार (Departmental Stores)
III. स्वामित्व के आधार पर (On the basis of Ownership)	1. स्वतन्त्र भण्डार (Independent Stores) 2. निगम श्रृंखला भण्डार (Corporate Chain Stores) 3. प्रसंविदा श्रृंखलाएँ (Contract Chains) 4. उपभोक्ता भण्डार (Consumer Stores)
IV. कार्य-संचालन के आधार पर (On the basis of Method of Operation)	1. पूर्ण-सेवा फुटकर विक्रेता (Full Service Retailer) 2. बट्टे पर बेचने वाला विक्रेता (Discount Retailer) 3. सुपर बाजार (Super Market) 4. विक्रय मशीन (Vending Machine) 5. डाक द्वारा व्यवसाय करने वाले विक्रेता (Mail Order Retailer)

(I) बिक्री के आधार पर फुटकर विक्रेता
(RETAILERS ON THE BASIS OF SALES)

बिक्री के आधार पर फुटकर विक्रेता दो प्रकार के होते हैं : (I) बड़ा फुटकर विक्रेता (Large Retailer), व (II) छोटा फुटकर विक्रेता (Small Retailer)।

(I) **बड़ा फुटकर विक्रेता** (Large Retailer)—यह वह फुटकर विक्रेता है जिसकी बिक्री बड़ी मात्रा में होती है। इसके लिए यह अपने यहाँ बड़ी मात्रा में वस्तुओं का स्टॉक रखता है और आवश्यकतानुसार प्रबन्धकीय विशेषज्ञ भी अपने यहाँ नौकरी पर रखता है। इसके द्वारा विज्ञापन भी समय-समय पर कराया जाता है। इन फुटकर विक्रेताओं के द्वारा वस्तुओं का विक्रय निजी ब्राण्ड के रूप में भी किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर यह विक्रेता बाजार अनुसन्धान (market research) कराने में भी समर्थ होते हैं। इन विक्रेताओं की जोखिम उठाने की क्षमता भी अधिक होती है। इनके वित्तीय साधन भी अधिक अच्छे होते हैं और इनको ऋण भी कम ब्याज पर अपनी सुविधानुसार मिल जाता है। यह फुटकर विक्रेता बड़ी मात्रा में वस्तुओं को क्रय करते हैं जिससे इनको व्यापारिक छूटें भी मिल जाती हैं। इनके कार्य संचालन में लोच रहती है। लेकिन इनके परिचालन व्यय (operation expenses) व उपरिव्यय (overhead expenses) छोटे विक्रेताओं की तुलना में काफी ऊँचे होते हैं।

बड़े फुटकर विक्रेताओं (Large-scale Retailers) में : (1) विभागीय भण्डार (Departmental Stores), (2) निगम श्रृंखला भण्डार (Corporate Chain Stores), (3) डाक आदेश गृह (Mail Order Houses), (4) सुपर बाजार (Super Markets), (5) उपभोक्ता भण्डार (Consumer Stores), आदि आते हैं जिनका विवरण इसी अध्याय में आगे दिया गया है।

(II) **छोटा फुटकर विक्रेता** (Small Retailer)—यह वह फुटकर विक्रेता है जिसकी बिक्री कम मात्रा से होती है। इसके पास वस्तुओं का स्टॉक भी कम ही मात्रा में होता है। यह अधिकतर स्वयं ही प्रबन्ध व विक्रय का कार्य भी करता है और आवश्यकता पड़ने पर कुछ सहायक अपने यहाँ नौकरी पर रख लेता है। यह उन्हीं ब्राण्डों को बेचता है जो बाजार में प्रचलित हैं और अपनी स्वयं की ब्राण्ड स्थापित नहीं करता है।

इस विक्रेता की जोखिम सहन करने की क्षमता सीमित होती है। इसके आर्थिक साधन भी सीमित मात्रा में ही होते हैं। यह थोड़ी मात्रा में ही वस्तुओं को आवश्यकतानुसार क्रय करता है अतः इसको बड़ी मात्रा के क्रय करने की छूटें भी नहीं मिल पाती हैं। लेकिन इसमें एक विशेषता है कि इसके परिचालन व्यय व उपरिव्यय सीमित मात्रा में ही रहते हैं।

इस प्रकार के छोटे फुटकर विक्रेताओं में (1) ठेलों पर घूमते-फिरते हुए विक्रेता, (2) ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के दुकानदार, (3) खोंमचे वाले, आदि आते हैं।

(II) वस्तु पंक्ति के आधार पर फुटकर विक्रेता
(RETAILERS ON THE BASIS OF PRODUCT LINES)

वस्तु पंक्ति के आधार पर फुटकर विक्रेता तीन प्रकार के होते हैं : (1) एक-पंक्ति फुटकर विक्रेता (Single-Line Retailer), (2) विशेष फुटकर विक्रेता

(Speciality Retailer), व (3) सादागरी के समान के फुटकर विक्रेता (General Merchandise Retailer)।

(1) **एक-पंक्ति फुटकर विक्रेता** (Single-Line Retailer)—आजकल वस्तुओं की विविधता (variety) दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और फुटकर विक्रेताओं के लिए सभी वस्तुओं को अपनी दुकान पर रखना कठिन होता जा रहा है। अतः वे अपनी दुकान पर वस्तु-पंक्ति की केवल एक ही प्रकार की वस्तुएँ रखते हैं जैसे, फर्नीचर, खेल का सामान, दवाइयाँ, स्टेशनरी का सामान, खेती के औजार, बिजली का सामान आदि। इस प्रकार के विक्रेता सुविधाजनक व सौदे का माल (convenience and shopping goods) बेचते हैं। इस प्रकार के विक्रेता होने से लाभ यह है कि उपभोक्ता को एक प्रकार की वस्तुएँ एक ही स्थान पर मिल जाती हैं और इनके द्वारा कुछ समय के लिए उपभोक्ता को साख भी दे दी जाती है अर्थात् उपभोक्ता को वस्तुएँ उधार भी दे दी जाती हैं। इन एक-पंक्ति फुटकर विक्रेताओं को एक-पंक्ति भण्डार (Single-Line Stores) भी कहते हैं।

(2) **विशेष फुटकर विक्रेता** (Speciality Retailer)—विशेष फुटकर विक्रेता वे हैं जो किसी वस्तु-पंक्ति के किसी एक भाग में ही विक्रय करते हैं। यह विक्रेता उस श्रेणी में आते हैं जो केवल सीमित विविध वस्तुएँ (limited variety of products) में ही व्यवहार करते हैं। इन विक्रेताओं का मुख्य ध्येय सेवा व वस्तु का गुण होता है लेकिन वे एकमात्र वस्तु (exclusive merchandise) के रूप में ही कार्य करते हैं। इस प्रकार के विक्रेताओं में पुरुषों के जूते, महिलाओं के वस्त्र, बेकरी का सामान, डेरी-वस्तुएँ आदि के विक्रेता आते हैं। यह विक्रेता शहर के मध्य में अपनी दुकानें खोलते हैं, जहाँ पर ग्राहकों की अधिक संख्या आने की सम्भावना रहती है। इनके द्वारा सदा ही फैशन की नयी से नयी वस्तुओं को एकत्र कर बेचने के लिए उपलब्ध किया जाता है। कभी-कभी यह प्रसिद्धि प्राप्त ब्राण्ड की एजेन्सी ले लेते हैं और फिर उसकी ही बिक्री करते है। यहाँ पर वे एकमात्र वितरक (exclusive dealer) के रूप में कार्य करते है।

एक या कुछ ही प्रकार की वस्तुओं में व्यवहार करने के कारण इनके द्वारा खरीद भी बड़ी मात्रा में की जाती है जिससे इनको कम मूल्य पर वस्तुएँ मिल जाती हैं। साथ ही एक प्रकार की वस्तु-पंक्ति में व्यवहार करने से इनका ज्ञान विशेष प्रकार का हो जाता है जो उन्हें वस्तु के क्रय करने में सहायता देता है। इस प्रकार के विक्रेता को प्रतियोगिता का अधिक डर नहीं होता है। इनकी बिक्री भी अच्छी मात्रा मे होती है।

लेकिन ऐसे विक्रेताओं को इस सम्भावना का सदा ही डर बना रहता है कि यदि फैशन या शैली (style) मे परिवर्तन आ गया तो इनको हानि होना अवश्यम्भावी हो जाता है।

भारत में इस प्रकार के विक्रेता सभी बड़े-बड़े नगरों के मुख्य बाजारों में पाये जाते हैं और इनकी संख्या में बराबर वृद्धि होती जा रही है। भविष्य में भी इनमें वृद्धि की सम्भावनाएँ अधिक हैं।

(3) **सौदागरी के सामान के फुटकर विक्रेता** (General Merchandise Retailer)—यह वे फुटकर विक्रेता हैं जो कई वस्तु पंक्तियों (Product Lines) और इन पंक्तियों की कई मदों (items) में व्यवहार करते हैं। यह विक्रेता निम्न प्रकार के होते हैं :

(क) **सामान्य फुटकर विक्रेता** (General Retailer)—सामान्य फुटकर विक्रेता शहरी व ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनकी दुकानें गलियों व मुख्य बाजारों में होती हैं। यह विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ अपने यहाँ बेचते हैं जिससे ग्राहक को कई प्रकार की वस्तुएँ एक ही स्थान पर मिल जाती हैं। यह दुकानें काफी सजी हुई होती है जो बाजार के सौन्दर्य में वृद्धि करती हैं। इस प्रकार के विक्रेता कम पूँजी में ही ऐसी दुकानों की स्थापना कर लेते हैं। भारत में ऐसे विक्रेता सौदागरी के सामान के विक्रेता कहलाते हैं। इनके यहाँ स्टेशनरी, हौजरी, सौन्दर्य, खाने-पीने, आदि का सामान विकता है।

(ख) **एक मूल्य फुटकर विक्रेता** (One-Price Retailer)—यह विक्रेता ऐसी वस्तुओं का विक्रय करते हैं जो रोजाना काम में आने वाली वस्तुएँ हैं। प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक-सा होता है और ग्राहक किसी भी वस्तु को उसी एक मूल्य पर क्रय कर सकता है। साधारणतया यह विक्रेता भुगतान करो और ले जाओ (Cash and Carry) नीति का अनुसरण करते हैं तथा स्वयं-सेवा (self-service) का अवसर देते हैं। भारत में इस प्रकार के फुटकर विक्रेता शहरी क्षेत्रों में सड़कों पर सामान को सजाये हुए या किसी ठेल में रखे हुए 'हर माल मिलेगा 50 पैसे' की आवाज लगाते हुए दिखायी देते हैं। इनके पास जितनी भी वस्तुएँ होती हैं उनमें से प्रत्येक का मूल्य 50 पैसे होता है। यह मूल्यों के लिए ग्राहक के साथ मोल-भाव (bargaining) नहीं करते हैं और अपने निर्धारित मूल्यों पर ही विक्रय करते हैं।

(ग) **विभागीय भण्डार** (Departmental Stores)—यह वे व्यापार-गृह हैं जहाँ उपभोक्ताओं की आवश्यकता की अनेक प्रकार की वस्तुएँ एक ही स्थान पर बेची जाती हैं। इनमें भिन्न-भिन्न वस्तुओं को बेचने के लिए अलग-अलग विभाग होते हैं। इन विभिन्न विभागों का नियन्त्रण तथा संचालन एक व्यक्ति या संस्था के हाथ में होता है। इन विभागों में जीवनोपयोगी प्रत्येक वस्तु को प्रदान करने की व्यवस्था होती है। इन भण्डारों में बिकने वाली वस्तुओं के अतिरिक्त आमोद-प्रमोद के साधन तथा कार्यालय भी होते हैं जैसे, जलपान-गृह, डाकघर, तारघर, टेलीफोन एक्सचेंज, आदि। इन भण्डारों की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार दी है :

(1) **जेम्स स्टीफेन्सन** (James Stephenson) के मत में, "विभागीय भण्डार एक ही छत के अन्तर्गत एक भण्डार है जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में फुटकर व्यापार करता है।"[1]

(2) **क्लार्क एवं क्लार्क** (Clark & Clark) **के** शब्दों में, "विभागीय भण्डार एक फुटकर संस्थान है जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में व्यापार करता है। यह वस्तुएँ प्रवर्तन, सेवा, लेखा व नियन्त्रण के उद्देश्य से सुनिश्चित विभागों में विभाजित होती हैं।"[2]

(3) **एस. ई. थोमस** (S. E. Thomas) की राय में, "विभागीय भण्डार एक विशाल फुटकर संस्थान है। इसमें एक ही भवन के अन्तर्गत बहुत से विभाग होते हैं और प्रत्येक विभाग एक विशेष प्रकार की वस्तु में व्यवहार करता है और स्वयं में एक पूर्ण इकाई होता है।"[3]

विभागीय भण्डार की विशेषताएँ (Characteristics of Departmental Stores)

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर आते हैं कि विभागीय भण्डारों में कुछ लक्षण पाये जाते हैं :

(i) **यह भण्डार ग्राहक की सभी प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न करते** हैं किन्तु सौदे की वस्तुओं (shopping products) पर अधिक ध्यान देते हैं। विशिष्ट माल भी इनके यहाँ मिलता है। लेकिन सुविधाजनक (convenience) वस्तुएँ बहुधा कम ही रखी जाती हैं। स्त्रियों के पहनने के सिले हुए वस्त्र तथा घरों को सजाने का सामान तो इनमें अवश्य ही रखा जाता है।

(ii) **प्रत्येक प्रकार के माल के लिए भण्डार के भवन में अलग स्थान होता है। इसी स्थान को विभाग कहते हैं।** प्रत्येक विभाग का एक अधिकारी होता है जो उस विभाग के लिए उत्तरदायी होता है। उसकी सुविधा के लिए विक्रयकर्ता व अन्य कर्मचारी भी होते हैं।

(iii) **भण्डार का आकार बड़ा होता है।** अमरीका में भण्डार कहलाने के लिए वार्षिक बिक्री और कर्मचारियों की संख्या एक नियत स्तर से ऊँची होनी चाहिए तभी उनको विभागीय भण्डार माना जायगा।

---

1 "A big store engaged in the retail trade of wide variety of articles under the same roof."
—James Stephenson : *Principles and Practice of Commerce*, p. 24.

2 "The departmental store is a retail institution that handles a wide variety of merchandise grouped into well-defined departments for purposes of promotion, service, accounting and control."
—Clark & Clark : *Principles of Marketing*, p. 205.

3 "A departmental is a large retail establishment having in the same building a number of departments each of which confines its activities to one particular branch of trade and forms a complete unit in itself."
—S. E. Thomas : *Commerce, Its Theory and Practice*, p. 482.

(iv) **विभागीय भण्डार अपने ग्राहकों को नाना प्रकार की अतिरिक्त सुविधाएँ प्रदान करते हैं** जैसे पत्र लिखने की सुविधा, जलपान-गृह का प्रबन्ध, खरीदे हुए माल को घर तक पहुँचाने की सुविधा, आदि।

विभागीय भण्डारों का प्रबन्ध (Management of Departmental Stores)

अमरीका में विभागीय भण्डारों का प्रबन्ध दो प्रकार का पाया जाता है—(i) कुछ भण्डार तो ऐसे हैं जो कर्मचारियों द्वारा चलाये जाते हैं अतः इनका प्रबन्ध एवं स्वामित्व कम्पनी के आधार पर होता है। (ii) दूसरे वे भण्डार जो पहले स्वतन्त्र संगठनों द्वारा चलाये जाते थे लेकिन वे बाद में मिलकर एक हो गये हैं। ऐसे भण्डारों को 'स्वामित्व समूह' (group of ownership) का नाम दिया जाता है। इस प्रकार के भण्डारों की विशेषता यह है कि इन भण्डारों का पुराना नाम तो बना रहता है लेकिन उनका स्वामित्व सामूहिक है और आन्तरिक प्रबन्ध भी स्वतन्त्र बना रहता है। माल को खरीदने की व्यवस्था इस संगठन के केन्द्रीय संगठन द्वारा की जाती है।

विभागीय भण्डारों का आन्तरिक प्रबन्ध इस प्रकार होता है कि प्रत्येक विभाग का एक प्रबन्धक होता है जो अपने विभाग का प्रबन्ध करता है लेकिन कुछ कार्य एक केन्द्रीय विभाग द्वारा ही किये जाते हैं जैसे, विज्ञापन करना, लेखा करना, कर्मचारियों की भर्ती या छँटनी करना, आदि।

विभागीय भण्डारों के प्रकार (Types of Departmental Stores)

अमरीका में विभागीय भण्डारों का विकास काफी तीव्र गति से हुआ है और इसी कारण अब वहाँ निम्न तीन प्रकार के भण्डार पाये जाते हैं :

(i) **निचली मंजिल के भण्डार** (Basement Stores)—प्रारम्भ में यह वे भण्डार थे जो उस माल का विक्रय करते थे जो ग्राहक को बार-बार दिखाने से खराब हो जाता था या माल पसन्दगी पर गया था लेकिन पसन्द न आने के कारण लौट आया किन्तु इस प्रकार के आने-जाने में कुछ खराब हो गया या कुछ विशेष प्रकार का माल कुछ मात्रा में विशेष आकर्षक कम मूल्यों पर मिल गया। इस प्रकार के भण्डार निचली मंजिल में होते थे। अतः इनको निचली मंजिल के भण्डार कहते थे। आजकल इसमें कुछ परिवर्तन आ गया है। यह निचली मंजिल वाले भण्डार अब कम मूल्य व निम्न कोटि की वस्तुओं को बेचते हैं जिससे कम आय वाले व्यक्ति लाभ उठाते हैं।

(ii) **पट्टे पर दिये गये विभाग** (Leased Departments)—भण्डार का जब कोई विभाग सफलता से नहीं चलता है या प्रबन्ध को ऐसा विभाग चलाने का अनुभव एवं ज्ञान न होने के कारण कठिनाई है तो ऐसा विभाग अन्य किसी व्यवसायी को पट्टे पर चलाने के लिए दे दिया जाता है। ऐसे विभाग रेडियो, टेलीविजन, फोटो आदि से सम्बन्धित होते हैं। पट्टा लेने वाले के द्वारा भण्डार से एक समझौता किया जाता है जिसमें पट्टे देने की शर्तें होती हैं। साधारणतया पट्टा लेने वाले को भण्डार के मोटे

सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है। पट्टे वाले विभाग से सम्बन्धित सेवाओं, आदि का लेखा-जोखा केन्द्रीय संगठन द्वारा रखा जाता है।

(iii) **शाखा भण्डार** (Branch Stores)—जब भण्डार द्वारा अपनी शाखाएँ उप-नगरों में खोल दी जाती हैं तो ऐसी शाखाएँ शाखा भण्डार कहलाती हैं। यह शाखाएँ ग्राहकों को देखते हुए छोटी व बड़ी दोनों प्रकार की हो सकती हैं। छोटी शाखाओं में वस्तुओं की किस्में कम होती हैं लेकिन बड़ी शाखाओं में किस्में ज्यादा होती हैं। इन शाखाओं को बेचने के लिए माल उनकी आवश्यकतानुसार मुख्य भण्डार द्वारा दिया जाता है। माल को गोदामों में रखने का काम भी मुख्य भण्डार द्वारा किया जाता है।

भारत में विभागीय भण्डार (Departmental Stores in India)

भारत में विभागीय भण्डार का नाम अधिक नहीं है और जनता इनके नाम से परिचित नहीं है यद्यपि कुछ बड़े-बड़े नगरों में यह भण्डार अवश्य पाये जाते हैं जैसे, बम्बई में White-Way-Laidlaw, Evans Frans Fraser व Akbaralis नाम से, मद्रास में Military Departmental Stores तथा Spencers के नाम से, कलकत्ता में Kamalalaya Stores Ltd. के नाम से व कानपुर में K. G. Thakurdas के नाम से।

विभागीय भण्डार धनी ग्राहकों के लिए होते हैं। यही कारण है कि भारत जैसे देश में जहाँ पर साधारण जनता गरीब है इन भण्डारों के विकास की सम्भावना कम है।

विभागीय भण्डारों से लाभ (Advantages of Departmental Stores)

(1) **खरीद में मितव्ययिता** (Economy in Buying)—बड़े पैमाने की बिक्री के लिए खरीद भी बड़े पैमाने पर की जाती है। इस कारण खरीद करते समय दरें, छूट और भुगतान, आदि के सम्बन्ध में बहुत ही अनुकूल शर्तों पर माल मिल जाता है जिसमें काफी बचत होती है। यदि माल सीधा निर्माताओं से खरीद लिया जाता है तो थोक विक्रेताओं को मिलने वाला लाभ भी प्राप्त हो जाता है।

(2) **ऊपरी व्ययों में मितव्ययिता** (Economy in Overhead Expenses)—इसमें ऊपरी व्ययों में मितव्ययिता हो जाती है। विशेषज्ञ कार्यकर्ताओं का वेतन बड़ी मात्रा की बिक्री पर बँट जाता है और भिन्न-भिन्न वस्तुओं के मूल्यों पर उनका बोझा कम हो जाता है। इसी प्रकार बिजली, पानी, विज्ञापन, आदि के खर्चों का बोझा भी प्रति वस्तु कम हो जाता है।

(3) **विक्रय संवर्द्धन** (Sales Promotion)—व्यापारिक जगत में विक्रय संवर्द्धन विभिन्न साधनों से किया जा सकता है जैसे—समाचार-पत्र, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन (Television), आदि। बड़े भण्डार इनका अधिक लाभ उठा सकते हैं क्योंकि वे इन पर होने वाला व्यय सहन कर सकते हैं।

(4) **एकीकरण** (Integration)—एकीकरण से प्राप्त होने वाले लाभ भी महत्वपूर्ण होते हैं। थोक खरीद का कार्य तो यह भण्डार कर ही लेते हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त कई प्रकार का माल बनाने वाले कारखानों से या तो निकट सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं या उन पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार के संगठन का मुख्य लाभ यह भी है कि माँग बढ़ाने, उधार देने और वसूली के व्यय आदि कम हो जाते हैं और बिक्री के व्ययों में बचत हो जाती है।

(5) **खरीददारी में सुविधा** (Convenience in Shopping)—गृहस्थी में काम आने वाली बहुत-सी वस्तुओं के एक ही इमारत में प्राप्त होने के कारण जनता को खरीददारी करने में बहुत सुविधा होती है।

(6) **अतिरिक्त सेवाओं** (Services) **की प्राप्ति**—ग्राहकों की सेवा इन भण्डारों का आधारभूत सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के अनुसार यह भण्डार न केवल तरह-तरह का अच्छे से अच्छा माल ग्राहकों को सुलभ करने का प्रयत्न करते हैं बल्कि इसके अतिरिक्त अन्य सेवाएँ भी प्रदान करते हैं ताकि ग्राहक उनकी ओर आकर्षित हों और वहाँ आना उनके स्वभाव में शामिल हो जाय। इन अतिरिक्त सेवाओं में फिराऊ माल की बिक्री (sale on approval), असन्तोषजनक माल के लिए समायोजन (adjustment), उधार खाता और माल को घर पर पहुँचाने की सुविधा, आदि शामिल हैं। इन सेवाओं के लिए अलग से कोई मूल्य नहीं लगाया जाता है।

विभागीय भण्डारों की हानियाँ (Disadvantages of Departmental Stores)

(1) **विज्ञापन व बिक्री व्ययों में वृद्धि**—बड़े पैमाने के फुटकर व्यापार में अधिक बिक्री की आवश्यकता होती है जिसके लिए विज्ञापन तथा अन्य बिक्री बढ़ाने के उपायों के व्यय बढ़ जाते हैं।

(2) **ऊँचे किराये**—भण्डारों को नगरों के मुख्य बाजार केन्द्रों में, जहाँ बड़ी संख्या में लोग आते हैं, स्थापित करना पड़ता है। इन केन्द्रों में किराये ऊँचे होते हैं और इसलिए व्यय बढ़ता है।

(3) **व्यय पर नियन्त्रण करने में कठिनाई**—इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से बिक्री से सम्बन्धित व्यय एक बढ़ी हुई बिक्री की मात्रा पर बैठते हैं और इस प्रकार औसत व्यय कम भी होते हैं किन्तु कई प्रकार के नये व्यय, नयी सेवाएँ प्रदान करने के कारण उत्पन्न हो जाते हैं और व्ययों पर नियन्त्रण करने की तथा उन्हें घटाने की कठिन समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(4) **कार्यकर्ताओं में रुचि का अभाव**—बड़े भण्डारों में अधिकतर कार्यकर्ता वेतन के आधार पर काम करने वाले होते हैं। यह लोग, विशेषकर नीचे पदों पर काम करने वाले, अपने काम में उतनी दिलचस्पी नहीं लेते हैं जितनी छोटे भण्डारों में काम करने वाले मालिक और उनके परिवार के लोग लेते हैं।

(5) **मालिकों व कर्मचारियों में निकट सम्बन्ध का अभाव**—छोटे भण्डारों के मालिकों और ग्राहकों के बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध होते हैं लेकिन इस प्रकार के निकट सम्बन्ध बड़े भण्डारों के मालिकों और ग्राहकों के बीच सम्भव नहीं होते हैं।

(6) **मन्दी काल में कठिनाई**—मन्दी तथा अन्य व्यापारिक कठिनाइयों के काल में छोटे भण्डारों के मुकाबले में बड़े भण्डारों की समायोजन (adjustment) की शक्ति कम होती है।

(7) **अयोग्य अस्थाई कर्मचारी**—भिन्न-भिन्न विभागों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्मचारी रखने पड़ते हैं। कभी-कभी इन सब कर्मचारियों के लिए काफी काम होता है इस कारण अस्थायी कर्मचारी रखने पड़ते हैं जिनकी योग्यता कम होती है और उनमें काम के प्रति दिलचस्पी नहीं होती है।

(8) **अधिक व्यय**—इस प्रकार के व्यापार में साधारणतया व्यय अधिक होते हैं।

(III) स्वामित्व के आधार पर फुटकर विक्रेता

(RETAILERS ON THE BASIS OF OWNERSHIP)

स्वामित्व के आधार पर भी फुटकर विक्रेताओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है :

(1) **स्वतन्त्र भण्डार** (Independent Stores)—वे भण्डार जो फुटकर व्यवसाय करते हैं और जिनका स्वामित्व एकाकी (individual cwenership) होता है, स्वतन्त्र भण्डार कहलाते हैं। यह भण्डार छोटे व बड़े दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इन भण्डारों को उनकी बिक्री के आधार पर छोटे या बड़े की तरह परिभाषित किया जाता है। लेकिन इनको छोटे व बड़े में बाँटते समय एक कठिनाई आती है कि बड़े की परिभाषा क्या रखी जाय। साधारणतया बड़े की परिभाषा समयानुसार बदली रहती है। सन् 1950 में अमरीका में जिन स्वतन्त्र भण्डारों ने 5 लाख डालर से अधिक की बिक्री की थी वे बड़े भण्डार माने गये थे लेकिन सन् 1970 में अमरीका में स्थिति बदल गयी और वे छोटे भण्डारों में रखे गये।

(2) **निगम शृंखला भण्डार** (Corporate Chain Stores)—फुटकर बिक्री की यह वह प्रणाली है जिसका स्वामित्व साधारणतया एक कम्पनी के पास होता है तथा जिसके द्वारा स्थान-स्थान पर भण्डार, शाखाएँ या उपभण्डार खोल दिये जाते हैं। इन भण्डारों की खरीददारी, विज्ञापन, कार्यविधि, भण्डारों का डिजाय व कर्मचारियों से सम्बन्धित नीतियाँ केन्द्रीय संगठन के हाथों में होती हैं। बिक्री माल भी केन्द्रीय भण्डारों से ही उप-भण्डारों को पहुँचाया जाता है। भण्ड प्रबन्ध के लिए एक केन्द्रीय दफ्तर होता है। जो संगठन बहुत बड़े होते हैं वे व प्रादेशिक स्तरों पर अपने दफ्तर रखते हैं और एक प्रधान कार्यालय रा पर रखते हैं।

इन भण्डारों के काम करने के ढंग और तरीके प्रमापित होते हैं तथा इनके द्वारा विशेषज्ञों की सेवाएँ भी प्राप्त कर ली जाती हैं जो काम करने के श्रेष्ठ तरीके निश्चित करते हैं। प्रबन्ध सम्बन्धी बहुत-सी बातें केन्द्रीय होने के कारण भण्डारों के प्रबन्धकों को अपने-अपने भण्डारों के काम की देखभाल के लिए पूर्ण अवसर व समय मिल जाता है। यह भण्डार माल का चुनाव, दिखावट और सजावट के नवीनतम ढंगों का उपयोग करते है। यदि इन बातों पर कुछ अधिक खर्च हो भी जाता है तो वह अधिक बिक्री पर फैलाया जाने के कारण औसतन कम ही आता है। कार्यकुशलता अधिक व औसत व्यय कम होने के कारण इन भण्डारों को नीचे मूल्य का लाभ प्राप्त हो जाता है।

शृंखला-भण्डारों को काफी बड़ी मात्रा में माल की आवश्यकता होती है। इस कारण यह अपने माल की थोक खरीद निर्माताओ से सीधी कर लेते है। इसमें किफायत रहती है और थोक व्यापारी के लाभ की बचत इन्ही की हो जाती है। इन भण्डारों के कार्य-क्षेत्र मुख्यतया भोजन की वस्तुओ, परचूनी, जूते, तैयार कपड़े और अन्य प्रकार के वस्त्र तथा शराब, आदि की बिक्री है।

(3) **प्रसंविदा-शृंखलाएँ** (Contract Chains)—प्रसंविदा शृंखला ऐसे फुटकर विक्रेताओं का संगठन है जो अपने निजी भण्डारों का संचालन स्वयं करते है किन्तु अपने व्यापार से सम्बन्धित कुछ कार्य मिलकर करते है। जिन क्षेत्रो में मिलकर पारस्परिक सहयोग से कार्य किया जाता है उनमें माल की खरीद, विज्ञापन तथा सामूहिक ब्राण्ड या छाप वाले माल की बिक्री को बढ़ाने के प्रयत्न, आदि शामिल है। निगम शृंखलाओं की सफलता का मुख्य आधार था, बड़े पैमाने पर माल खरीदने की क्षमता और उससे प्राप्त होने वाली बचत और किफायत जिससे ग्राहकों को साधारण भण्डारों के मुकाबले में सस्ता बेचा जा सकता था। प्रसंविदा शृंखलाओं का मुख्य उद्देश्य भी इसी बडे पैमाने की खरीद के लाभों को प्राप्त करना था। इस प्रकार के संगठन का विकास प्रधानतया भोजन तथा औषधियों की बिक्री के क्षेत्र में हुआ है। प्रसंविदा-शृंखला दो प्रकार की होती है :

(i) **सहकारी शृंखला** (Co-operative Chains) की स्थापना सहकारिता के आधार पर किसी नगर अथवा क्षेत्र के स्थानीय फुटकर विक्रेताओं द्वारा की जाती है। यह शृंखला माल की केन्द्रीय खरीद और थोक-बिक्री गोदाम के संगठन पर विशेष बल देती है ताकि बड़े पैमाने की खरीद से जो सुविधाएँ मिलती हैं वे प्राप्त कर ली जायें और थोक विक्रेताओं को बीच से निकालकर उनके द्वारा प्राप्त होने वाला लाभ भी प्राप्त कर लिया जाये। इस शृंखला मे सदस्यों की कार्य-कुशलता बढाने के लिए कुछ सामूहिक सेवाएँ प्रदान करने के प्रयत्न किये जाते है।

(ii) **स्वेच्छा शृंखला** (Voluntary Chains)—इस शृंखला का संगठन सहकारी शृंखला से बिलकुल विपरीत है। इस शृंखला के संगठन का श्रीगणेश थोक

विक्रेता की ओर से होता है, जो फुटकर विक्रेता अपनी कार्यविधियों में सुधार लाना चाहते हैं वे इस संगठन मे सम्मिलित हो जाते है। यह अपने सदस्यों को बहुत-सी सेवाएं प्रदान करते हैं ताकि फुटकर विक्रेता कुशल व्यापारी बन सके।

भारत में श्रृंखला-भण्डार (Chain Stores in India)—भारत में श्रृंखला-भण्डारों के कुछ उदाहरण मिलते हैं जैसे, बाटा इण्डिया लिमिटेड, कलकत्ता की जूतों की दुकानें से सभी परिचित है। यह दुकानें सारे देश में फैली हुई हैं जिनकी संख्या लगभग '.000 हैं। इनके व्यापार करने व प्रबन्ध के तरीके प्रमापित हैं। यह श्रृंखला बाटा इण्डिया लिमिटेड द्वारा स्थापित की गयी है।

इस सम्बन्ध में एक और उदाहरण देहली क्लॉथ एण्ड जनरल मिल्स लिमिटेड, दिल्ली का मिलता है। इसके द्वारा अपनी दुकानें फुटकर बिक्री के लिए स्थापित की गयी है। इसकी दुकानें दो प्रकार की हैं। कुछ दुकानें तो मिल की अपनी दुकानें हैं और वे केन्द्रीय प्रबन्ध द्वारा संचालित होती हैं। कुछ दुकानें ऐसी भी हैं जो फुटकर विक्रेताओं की है और कुछ निश्चित शर्तों के अनुसार कार्य करती हैं। यह लोग अनुमोदित डीलर (Approved Dealer) कहलाते है। यह दूसरे प्रकार की दुकानें स्वेच्छा-श्रृंखला-भण्डारों के समान है। इस समय देहली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स लिमिटेड की कुल 600 से अधिक दुकानें हैं।

हमारे देश में श्रृंखलाओं के उदाहरण दिन-प्रतिदिन बढते जा रहे हैं। जय इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड. कलकत्ता नामक संस्था जो ऊषा पंखे, सिलाई मशीन, वाटर कूलर. आदि बना रही है उसने भी अपनी दुकानें खोल रखी है जो कि श्रृंखलाओं का ही एक उदाहरण है। बहुत-से कपड़ा मिल भी इस ओर बढ रहे है और अपनी दुकानें खोल रहे हैं जिसमें जियाजी मिल्स की दुकानें, कैलीको मिल्स की दुकानें प्रमुख हैं।

(4) **उपभोक्ता भण्डार** (Consumer Stores)—यह वे भण्डार हैं जो अन्तिम उपभोक्ता द्वारा बनाये जाते है और वही इनका मालिक होता है। यह भण्डार अपने सदस्यों के लिए वस्तुओ व सेवाओ को क्रय करते है व उनका वितरण करते है। इन भण्डारों की विशेषता यह है कि (i) इनकी सदस्यता सभी उपभोक्ताओं के लिए खुली रहती है, (ii) इन पर नियन्त्रण प्रजातान्त्रिक ढंग से होता है अर्थात् उपभोक्ताओं के प्रतिनिधियों के द्वारा इनका प्रबन्ध किया जाता है, (iii) इन भण्डारों की सभी बिक्री नकद होती है, (iv) इन भण्डारो के सदस्यों को इन भण्डारों मे क्रय करते समय कुछ सुविधाएँ दी जाती हैं।

भारत में उपभोक्ता-भण्डारो की स्थापना की शुरूआत प्रथम महायुद्ध के समय हुई थी लेकिन तब से अब तक उन्होंने काफी प्रगति की है। सन् 1914 मे इनकी संख्या कुल 11 थी लेकिन आज इनकी संख्या 23,000 से भी अधिक है। बढ़ते हुए मूल्य एव वस्तुओं के अभाव ने इनके विकास में काफी योगदान दिया है और इनकी

क्रियाएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। 1960-61 वर्ष में इनकी बिक्री 60 करोड़ रुपये की थी जो 1977-78 में बढ़ कर 650 करोड़ रुपये की हो गयी है।[1]

आशा है कि निकट भविष्य में इन भण्डारों की प्रगति और भी द्रुतगामी रफ्तार से होगी। इसके लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं को कार्यरूप में परिणत किया जा रहा है जिससे कि सार्वजनिक वितरण व्यवस्था मजबूत हो सके।

भारत की जनसंख्या व भू-भाग के देखते हुए इन भण्डारों की प्रगति सन्तोषजनक नहीं है। इसके कारण (i) पूँजी की कमी, (ii) कुशल प्रबन्ध का अभाव, (iii) सीमित व्यापार, (iv) सदस्यों की वफादारी में कमी, (v) निरीक्षण का अभाव, (vi) अधिक प्रबन्ध-व्यय, (vii) नेतृत्व का अभाव, (viii) अन्य संस्थाओं से सहयोग का अभाव, (ix) कर्मचारियों द्वारा बेईमानी, व (x) क्रय-विक्रय की त्रुटिपूर्ण नीतियाँ हैं। यदि इनमें सुधार कर दिया जाय तो यह भण्डार फुटकर बिक्री के क्षेत्र में अच्छा योगदान दे सकते हैं।

(IV) कार्य-संचालन के आधार पर फुटकर विक्रेता

(RETAILERS ON THE BASIS OF METHOD OF OPERATION)

कार्य-संचालन के आधार पर फुटकर विक्रेता दो प्रकार के होते हैं—(I) भण्डार के अन्दर बिक्री करने वाले (In-Store Retailers) व (II) भण्डार के बाहर विक्रय करने वाले (Non-Store Retailers)।

(I) भण्डार के अन्दर बिक्री करने वाले (In-Store Retailers)

भण्डार के अन्दर बिक्री करने वाले विक्रेता का अर्थ यह है कि विक्रेता की अपनी दुकान होती है जहाँ पर वह वस्तुओं को बेचने के लिए एकत्रित करता है और ग्राहक उन दुकानों पर पहुँचकर ही क्रय करते हैं। भण्डार के अन्दर बिक्री करने वाले विक्रेता (In-Stores Retailers) निम्न तीन प्रकार के होते हैं :

(1) **पूर्ण सेवा फुटकर विक्रेता** (Full Service Retailer)—फुटकर रूप में वस्तुएँ बेचने का यह सबसे पुराना तरीका है। इसमें फुटकर विक्रेता अपनी एक दुकान रखता है जिसमें सभी बेचने योग्य वस्तुएँ रखी जाती हैं। जब ग्राहक आता है तो उसको दुकान के विक्रयकर्ता द्वारा वस्तुएँ दिखायी जाती हैं और पसन्द आने पर विक्रय कर दिया जाता है। यह तरीका आज भी पाया जाता है। भारत में अधिकांश फुटकर विक्रय इसी प्रकार के विक्रेताओं द्वारा किया जाता है। आधुनिक फैशन वाली वस्तुओं से ग्राहक को अवगत कराने का कार्य भी यही विक्रेता करता है।

(2) **बट्टे पर बेचने वाला विक्रेता** (Discount Retailer)—यह वे फुटकर विक्रेता हैं, जो प्रसिद्ध ब्राण्डों को बेचने के लिए अपने यहाँ रखते हैं लेकिन उन ब्राण्डों के मूल्य इन विक्रेताओं के यहाँ निरन्तर विज्ञापित मूल्यों से कम होते हैं।

---

1 Annual Report : *Ministry of Commerce, Civil Supplies & Co-operation, Govt. of India*. 1978-79, pp. 70-71,

इन विक्रेताओं के द्वारा ग्राहकों को बहुत ही कम सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। चूँकि इनके मूल्य अन्य विक्रेताओं से कम होते हैं अतः इनके यहाँ ग्राहक अधिक आकर्षित होते हैं। इस प्रकार के विक्रेता अमरीका में पाये जाते हैं। भारत में शायद ही इस नाम से विक्रेता पाये जाते हों लेकिन यह कार्य यहाँ साधारण फुटकर विक्रेता के द्वारा किया जाता है।

(3) **सुपर बाजार** (Super Market)—सुपर बाजार वास्तव में वृहत् भोजन भण्डार है जहाँ पर लगभग सभी प्रकार की भोजन सामग्री की वस्तुएँ बड़े पैमाने पर फुटकर बिक्री के लिए रखी जाती हैं। सुपर बाजार के कुछ आवश्यक लक्षण इस प्रकार हैं—(i) इसमें भोजन सम्बन्धी सभी पदार्थ जैसे, सूखी जिन्स (dry groceries), माँस, ताजे फल और तरकारियाँ, दूध से बने पदार्थ, आदि मिलते हैं। आजकल साधारण भोज्य पदार्थों के अतिरिक्त कुछ साधारण आवश्यकता की वस्तुएँ जैसे, दवाइयाँ, साबुन, मोजे, बनियान, नियन्त्रित कपड़ा, आदि भी इन भण्डारों में मिलने लगा है। (ii) सूखी जिन्स तथा कुछ अन्य वस्तुओं में स्वयं-सेवा का सिद्धान्त काम में लाया जाता है, जिसके अनुसार ग्राहक अपनी वस्तुएँ स्वयं चुन सकते हैं। यह सिद्धान्त धीरे-धीरे सभी विभागों में लागू हो जाता है। (iii) इन भण्डारों का संगठन विभागों के आधार पर होता है। (iv) अधिकतर वस्तुओं के विभाग अलग-अलग होते हैं। (v) इन भण्डारों का उद्देश्य भी मध्यस्थों को हटाकर ग्राहकों को सस्ते मूल्य पर भोजन सामग्री की वस्तुएँ बेचने का होता है। (vi) इन भण्डारों के मूल्य लगभग दूसरे प्रकार के सभी भण्डारों से कम होते हैं।

इन बाजारों की **उन्नति के मुख्य कारण** इस प्रकार हैं : (i) सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ एक ही स्थान पर मिल जाते हैं। उन्हें खरीदने के लिए अलग-अलग बाजारों और स्थानों में नहीं जाना पड़ता। (ii) स्वयं-सेवा के सिद्धान्त के अनुसरण से खर्च में भी कमी होती है और ग्राहक को भी स्वयं चुनने की सुविधा से प्रसन्नता होती है। (iii) हजारों प्रकार की वस्तुएँ इनके पास होती हैं। प्रति ग्राहक बिक्री व्यय भी कम आता है।

कठिनाइयाँ और बाधाएँ—प्रथम, इन बाजारों की स्थापना घनी आबादी वाले बड़े नगरों में ही सफलतापूर्वक हो सकती है। जिन नगरों की आबादी कम होती है या छितरी होती है वहाँ इनकी स्थापना होना कठिन है। **दूसरे**, बड़े नगरों में भी इनकी स्थापना के लिए उचित स्थान कठिनाई से मिलता है। **तीसरे**, इन बाजारों के व्यय भी बढ़ रहे हैं। अन्य प्रकार के भण्डारों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण इनको इमारतों, साज-सज्जा (equipment) तथा विज्ञापन, आदि पर अधिक व्यय करना पड़ता है जिससे खर्च बढ़ रहा है। योग्य व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त करने में भी इनको कुछ कठिनाई अनुभव हो रही है।

पिछले कुछ वर्षों से भारत के बड़े नगरों मे भी सुपर बाजारों की स्थापना का प्रयत्न किया जा रहा है। वास्तव में, पिछले चन्द वर्षों में बड़े नगरों में भोज्य पदार्थों के प्राप्त करने में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयी हैं तथा इन पदार्थों के मूल्यों मे जो बहुत ही अधिक वृद्धि हो गयी है वही इन भण्डारों की स्थापना के प्रयत्नों का मुख्य कारण है। इस देश में साधारणतया सहकारिता के आधार पर इन भण्डारों की स्थापना हो रही है ताकि साधारण नागरिकों को उचित मूल्यों पर भोज्य पदार्थ तथा अन्य साधारण आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त हो सकें।

भारत में सुपर बाजारों की स्थापना का कार्य केन्द्रीय सरकार की एक योजना के अन्तर्गत हुआ है। सन् 1966 में यहाँ 38 बाजार थे लेकिन इनकी संख्या अब 105 है। भारत मे अधिकांश बाजार घाटे पर चल रहे हैं। इसके कारण (i) निर्माता से सीधी खरीद न करके मध्यस्थों से खरीद करना; (ii) क्रय करने के अनुभव व चतुरता की कमी; (iii) विक्रयकर्ता व कर्मचारियों के वेतन अधिक होना; (iv) बाजारों की स्थापना में प्रारम्भिक व्यय अधिक होना; (v) प्रबन्धकीय योग्यता व कुशलता की कमी; (vi) स्वयं की इमारतों में बाजार स्थापित न करके किराये के स्थानों मे बाजार चलाना व उनका अधिक किराया देना, व (vii) कर्मचारियों में ईमानदारी व कर्तव्यनिष्ठा की कमी, आदि हैं।

(II) **भण्डार के बाहर विक्रय करने वाले** (Non-Store Retailers)

भण्डार के बाहर विक्रय का अर्थ यह है कि विक्रेता का कोई स्थान नही होता है। वह घर-घर वस्तुएं बेचता फिरता रहता है। यह तरीका सबसे पुराना है और उन्नतिशील देशों में भी पाया जाता है। भारत जैसे देश में जहाँ 80 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है इन विक्रेताओं का बड़ा महत्व है। भण्डार के बाहर विक्रय करने वाले फुटकर विक्रेता (Non-Store Retailer) निम्न दो प्रकार के पाये जाते है :

(1) **विक्रय मशीन** (Vending Machine)—पश्चिमी देशों में स्वचालित विक्रय मशीनें होती हैं जो बिना किसी विक्रेता के वस्तुओं का विक्रय करती है। यह मशीनें ऐसे स्थानों पर लगी रहती हैं जहाँ से अधिक व्यक्ति गुजरते हैं। इन मशीनों के अन्दर वस्तुओं के पैकिट भरे रहते है। प्रत्येक मशीन मे एक छेद होता है जिसमे निर्धारित सिक्के डालकर ग्राहक वस्तु प्राप्त कर सकता है। जैसे ही निर्धारित सिक्के मशीन में डाल दिये जाते हैं उस मशीन से उस वस्तु का एक पैकिट स्वत: ही बाहर आ जाता है। यह मशीनें उसी प्रकार की होती है जिस प्रकार कि वजन लेने वाली मशीनें (weighing machines) जो आजकल भारत में मुख्य-मुख्य रेलवे स्टेशनों पर पायी जाती हैं जिनमें 10 पैसे का सिक्का डालने पर उस मशीन पर खड़े हुए व्यक्ति का वजन एक टिकट पर लिखकर निकल आता है। सिगरेट, हल्के पेय, (Soft drink) व बच्चों की टॉफियों, आदि इन मशीनों से बेची जाती हैं। The National

Automatic Merchandising Association of America के अनुसार वहाँ पर 60 लाख मशीनें विक्रय का कार्य कर रही हैं। इन मशीनों का महत्व वहाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है और यह कहा जाता है कि 100 सिगरेट के डिब्बों में से 16 की विक्री मशीनों के माध्यम से होती है।

इन मशीनों के अन्दर वस्तुओं के पैकिट रखने का स्थान होता है। जिस कम्पनी के द्वारा यह मशीनें लगायी जाती हैं उस कम्पनी के कर्मचारी समय-समय पर उन मशीनों को देखते रहते है और यदि उनमें पैकिट समाप्त हो जाते है तो वे उनको खोलकर उसमे पैकिट भर देते है।

विक्रय मशीनों के माध्यम से एक संस्था अपना व्यापार बढ़ा सकती है और जिस स्थान पर ग्राहक रहते है उन्ही के पास मशीन लगाकर वस्तु के विक्रय की सुविधा दे सकती हैं। इन मशीनों मे कम मूल्य की वस्तुओं का विक्रय किया जाता है।

मशीनों के माध्यम से विक्रय करने मे कुछ समस्याएँ हैं जैसे (i) मशीनों की लगातार देखभाल व मरम्मत करते रहना आवश्यक है जिसमे काफी व्यय होता है; (ii) नयी उन्नत मशीनो के आ जाने मे पुरानी मशीनें अप्रचलित हो जाती हैं; (iii) मशीनों से केवल वे ही वस्तुएँ बेची जा सकती हैं जो प्रसिद्धि प्राप्त हैं; (iv) वस्तु छोटी व एक-से आकार की होनी चाहिए. (v) वस्तु का मूल्य भी कम होना चाहिए, (vi) मशीने क्रेता को वस्तु को लौटाने का अवसर प्रदान नही करती है. (vii) मशीनों की कीमत काफी होती है अत: इनके लगाने के लिए काफी धन की आवश्यकता होती है।

(2) **डाक द्वारा व्यवसाय करने वाले विक्रेता** (Mail Order Retailer)—वे विक्रेता जो डाक द्वारा विक्रय करते है डाक द्वारा व्यवसाय करने वाले विक्रेता कहलाते है। इनमें माल मँगाने का आदेश डाक द्वारा दिया जाता है तथा विक्रेता भी आदेश की पूर्ति डाक द्वारा करता है और भुगतान भी डाक द्वारा ही किया जाता है। इस पद्धति में विज्ञापन का विशेष महत्व है। प्रत्येक विक्रेता सूची-पत्रों, समाचार-पत्रों एव विज्ञापन, आदि से ग्राहक को अपने माल का परिचय कराता है। ग्राहक द्वारा उस माल के लिए डाक द्वारा आदेश दिया जाता है। विक्रेता के पास जब वह आदेश पहुँचता है तो वह माल को ठीक प्रकार से पैक करके डाकखाने के माध्यम से V. P. P. कर देता है। जब वह वस्तु उसके ग्राहक के पास पहुंचती है तो वह उसको ले लेता है और उस पर लिखे मूल्य का भुगतान डाकखाने को कर देता है जो उसको माल भेजने वाले को भेज देता है।

इन विक्रेताओं के काम करने के तरीके दूसरे बड़े पैमाने पर काम करने वाले फुटकर भण्डारों के समान ही है। इन भण्डारों मे ऊँचे दर्जे का विभागीयकरण होता है। आदेशो की पूर्ति के लिए कुशल आधुनिक विधियो का प्रयोग किया जाता है

जिससे माल को एकत्रित करने, बाँधने व भेजने में कम से कम व्यय हो और माल शीघ्रता से भेजा जा सके। यह विक्रेता अपनी शाखाएँ भी रखते हैं।

यह विक्रेता बड़े-बड़े सूची-पत्र छापते हैं जिनमें चित्र व वस्तुओं के पर्याप्त विवरण दिये जाते हैं जिससे ग्राहक को चुनाव करने में सुविधा हो। यह सूची-पत्र कई महीनों की मेहनत के बाद तैयार किये जाते हैं।

डाक द्वारा व्यापार में कठिनाइयाँ (Difficulties in Mail Order Business)—**डाक-आदेश भण्डारों के मार्ग में कुछ कठिनाइयाँ और असुविधाएँ भी हैं** जो मुख्यत: भण्डारों और ग्राहकों के बीच की दूरी के कारण उत्पन्न होती है। (i) सभी वस्तुओं की आवश्यकता पहले से अनुभव नहीं होती। कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं जिनकी आवश्यकता तत्काल अनुभव होती है। ऐसी वस्तुएँ डाक आदेश से नहीं खरीदी जा सकती हैं। (ii) दूरी के कारण मूल्य में भेजने का व्यय और जुड़ जाता है जिससे मूल्य कुछ बढ़ जाता है। (iii) व्यक्तिगत आधार पर ग्राहकों से सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकते हैं। सूची-पत्र में रंगीन चित्र और वर्णन आदि से वस्तु का पूरा विवरण देने का प्रयत्न किया जाता है फिर भी वस्त्र तथा फर्नीचर आदि में रंग और ढंग (Style) आदि का जो ज्ञान स्वयं देखने से होता है वह सूची-पत्र से नहीं हो सकता है। (iv) कितना ही अच्छा सूची-पत्र क्यों न हो वह एक अच्छा विक्रय-कर्ता (Salesman) का स्थान नहीं ले सकता है। व्यक्तिगत आधार पर ग्राहक को उसकी रुचि और आवश्यकता का माल चुनने में जो सहायता और सलाह एक अच्छे विक्रयकर्ता (Salesman) से प्राप्त हो सकती है उसका स्थान सूची-पत्र नहीं ले सकता है।

इस प्रकार के व्यापार के लिए भारत जैसे देश में परिस्थितियाँ बिल्कुल अनुकूल नहीं हैं। यहाँ की ग्रामीण जनता गरीब है। उसकी आवश्यकताएँ कम हैं और जो आवश्यकताएँ हैं उनकी पूर्ति निकटवर्ती कस्बों की हाटों और बाजारों से हो जाती है। देहातों में शिक्षा की कमी है और साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं की भी कमी है और जो हैं भी वे ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवेश नहीं कर पाती हैं। इस कारण इस प्रकार से डाक-आदेश द्वारा फुटकर बिक्री इस देश में बहुत ही सीमित मात्रा में होती है।

फुटकर विक्रेताओं की सेवाएँ
(SERVICES OF RETAILERS)

एक फुटकर विक्रेता द्वारा बहुत-सी महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। हम इन सेवाओं को दो भागों में बाँट सकते हैं : (I) थोक विक्रेता एवं निर्माताओं के प्रति सेवाएँ (Services to wholesalers and Manufacturers) व (II) समाज के प्रति सेवाएँ (Services to Society)।

(I) **थोक विक्रेता एवं निर्माता के प्रति सेवाएँ** (Services to Wholesalers and Manufacturers)

(1) **उपभोक्ताओं के बारे में जानकारी** (Information regarding Consumers)—फुटकर विक्रेता का सीधा सम्बन्ध उपभोक्ताओं से होता है। अतः वह उपभोक्ताओं की रुचि, फैशन, रीति-रिवाज एवं आवश्यकता, आदि से पूर्णरूप से परिचित हो जाता है और वह इस प्रकार की जानकारी थोक-विक्रेता एवं निर्माता को दे देता है जिससे कि वे उसी प्रकार की वस्तुओं का निर्माण एवं विक्रय कर लाभ उठाते हैं।

(2) **वितरण व्ययों में मितव्ययिता** (Economy in Distribution Expenses)—फुटकर विक्रेता होने के कारण निर्माता एवं थोक विक्रेताओं को वस्तुओं के लिए विज्ञापन करने की आवश्यकता नहीं रहती है क्योंकि यह कार्य फुटकर विक्रेता स्वयं ही करता रहता है। इस प्रकार उनके व्ययों की बचत हो जाती है।

(3) **उपभोक्ताओं से अप्रत्यक्ष सम्पर्क** (Indirect Contact with the Consumers)—फुटकर विक्रेता होने से थोक विक्रेता एवं निर्माता को उपभोक्ताओं से सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता नहीं रहती है और इनका उपभोक्ताओं से अप्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित हो जाता है।

(4) **नव-निर्मित वस्तुओं का प्रचार** (Publicity of New Products)—फुटकर विक्रेता नयी-नयी वस्तुओं का प्रचार करने में बड़ी सहायता करता है।

(5) **विक्रय** (Sales)—फुटकर विक्रेता वस्तुओं के बेचने में भारी योगदान देता है जिससे थोक विक्रेता एवं निर्माता को कम ही स्टॉक रखना पड़ता है।

(II) **समाज के प्रति सेवाएँ** (Services to Society)

(1) **समाज के निकट** (Near the Society)—फुटकर विक्रेता की समाज के प्रति पहली एवं महत्वपूर्ण सेवा यह है कि ये जिस स्थान पर जन-समुदाय रहता है उसी स्थान पर अपनी दुकानें खोल लेते हैं जिससे उनको अपनी वस्तु क्रय करने में सुविधा रहती है और वस्तुओं को भारी मात्रा में क्रय करने की आवश्यकता नहीं रहती है क्योंकि वे अपनी आवश्यकता की वस्तु किसी भी दिन व समय खरीद सकते हैं।

(2) **चुनाव की सुविधा** (Selection Facility)—फुटकर विक्रेता के पास विभिन्न निर्माताओं एवं विभिन्न क्वालिटी की वस्तुएँ रहती हैं जिससे समाज के सदस्यों को अपनी रुचि एवं देय क्षमता के अनुसार वस्तु चुनने की सुविधा मिल जाती है।

(3) **ताजी एवं फैशनानुकूल वस्तुएँ** (Fresh and Fashionable Products)— ताजी एवं फैशन के अनुकूल वस्तुएँ फुटकर विक्रेता उपलब्ध कर समाज की अच्छी सेवा करता है।

(4) **उधार सुविधा** (Credit Facility)—उपभोक्ता एवं फुटकर विक्रेता आस-पास के होते हैं जिससे उनमें जान-पहचान हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को वस्तुओं को उधार देने की सुविधा प्रदान कर समाज की सेवा करते हैं।

(5) **धोखे की सम्भावनाएँ कम होना** (Meagre Possibilities of Deceiving)—उपभोक्ता एवं फुटकर विक्रेता एक ही स्थान के होने के कारण फुटकर विक्रेता द्वारा धोखे वाली वस्तुएँ उन्हें नही बेची जाती है और इस प्रकार फुटकर विक्रेता समाज को धोखे से बचाता है।

(6) **घर की सुपुर्दगी** (Home Delivery)—फुटकर विक्रेता ग्राहकों द्वारा क्रय की हुई वस्तुओं को उनके घर पर पहुँचाने की सुविधा भी प्रदान करते हैं।

(7) **निःशुल्क परामर्श** (Free Advice)—समाज के सदस्यों को फुटकर विक्रेता विभिन्न वस्तुओं के बारे में निःशुल्क सलाह देता है कि किस वस्तु में क्या गुण हैं?

(8) **मौसम के अनुकूल वस्तुएँ** (Seasonal Products)—फुटकर विक्रेता अपने यहाँ मौसम के अनुकूल वस्तुओं को उपलब्ध कर समाज की बहुत बड़ी सेवा करता है। ऐसा होने से समाज को मौसमानुसार वस्तुएँ मिल जाती है।

निर्माताओं द्वारा फुटकर वितरण
(RETAILING BY MANUFACTURERS)

कभी-कभी निर्माताओं द्वारा अपनी वस्तुओं का विपणन मध्यस्थो के माध्यम से न करके सीधा ही किया जाता है और इस प्रकार निर्माता वस्तु के निर्माण के साथ-साथ वस्तुओं का फुटकर विपणन भी करता है। इस कार्य के लिए निर्माता द्वारा निम्न तरीकों से से कोई एक या कई तरीके अपनाये जा सकते है

(1) स्वयं के फुटकर भण्डार (Own Retail Stores)
(2) घर-घर विक्रय (House-to-House Selling)
(3) डाक द्वारा फुटकर विक्रय (Mail Order Retailing)
(4) कारखाने से प्रत्यक्ष विक्रय (Direct Sales from the Factory)
(5) विक्रय मशीन (Vending Machines)

(1) **स्वयं के फुटकर भण्डार** (Own Retail Stores)—इस पद्धति मे निर्माता अपनी स्वयं की फुटकर दुकानें भिन्न भिन्न स्थानो पर खोल देता है जिनमें उनके द्वारा उत्पादित या बनी हुई वस्तुओं का विक्रय किया जाता है। इन भण्डारों का स्वामित्व निर्माता का होता है तथा इनके कर्मचारी भी निर्माता द्वारा नियुक्त किये जाते हैं जो साधारणतया वेतनभोगी होते हैं। इन भण्डारों में बेचने वाली वस्तुओं के मूल्य निर्माता द्वारा ही निर्धारित किये जाते हैं। भारत में इस प्रकार की पद्धति के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं जैसे, जय इन्जीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड,

कलकत्ता द्वारा निर्मित ऊषा पंखे व ऊषा सिलाई मशीन उसी कम्पनी की अपनी स्वय की फुटकर दुकानों द्वारा बेचे जाते है। बाटा कम्पनी, कलकत्ता के निर्मित जूते एवं चप्पल उसी की फुटकर दुकानों से बेचे जाते हैं। अभी हाल ही में कुछ कपड़ा बनाने वाली मिलों के द्वारा भी इसी तरीके को अपनाया गया है और उन्होंने अपनी स्वयं को फुटकर दुकानें बड़े-बड़े शहरों व नगरों में खोल दी हैं जैसे, कैलिको मिल्स की फुटकर दुकानें, टाटा ग्रुप की फुटकर दुकाने, मफतलाल ग्रुप के मिलों की फुटकर दुकानें, आदि। यद्यपि देहली क्लॉथ मिल्स, देहली (D.C.M.) तो इस क्षेत्र में काफी पुराना है।

(2) **घर-घर विक्रय** (House-to House Selling)— यह विक्रय का सबसे पुराना ढंग है। इसमें उत्पादक या निर्माता उपभोक्ता के घर-घर विक्रय करता है। इसी कारण इनको घर-घर का विक्रय (House-to-House Selling or Door-to-Door Selling) कहते हैं। मुर्गी पालने वाले व बेकरी का सामान बनाने वाले इसी तरीके को अपनाते है और वे अपने अण्डे व बेकरी का सामान घर-घर जाकर बेचते हैं। बहुत-से दरी बनाने वाले जुलाहे भी इसी तरीके को अपनाते हैं। घर-घर विक्रय छोटी वस्तुओं व एक वस्तु-पंक्ति (single-line) में होता है।

यह तरीका खर्चीला है। इसमें विक्रयकर्ताओं को वेतन, व्यय एवं भत्ता देना पड़ता है। लेकिन यह तरीका उनके लिए बहुत अच्छा है जो नयी वस्तु को बना रहे हैं तथा जिनकी वस्तुओं को थोक एवं फुटकर विक्रेता बेचने को तैयार नहीं है।

(3) **डाक द्वारा फुटकर विक्रय** (Mail Order Retailing)—कभी-कभी निर्माता द्वारा ग्राहकों को माल डाक द्वारा बेचा जाता है। इसके लिए विस्तृत सूची-पत्र (catalogue) छपवाये जाते है और फिर निर्माता इन सूची-पत्रों को सम्भावित ग्राहकों को भेजता है। ग्राहक इन सूची-पत्रों के आधार पर डाक से अपना आदेश निर्माता के पास भेजते है। निर्माता द्वारा उस आदेश की पूर्ति भी डाक के माध्यम से की जाती है और क्रेता से भुगतान भी निर्माता को डाक के माध्यम से ही मिलता है। इस तरीके का विस्तृत विवरण इसी अध्याय मे पहले दिया जा चुका है।

(4) **कारखाने से प्रत्यक्ष विक्रय** (Direct Sales from the Factory)—कारखाने द्वारा भी प्रत्यक्ष फुटकर बिक्री की जाती है। इसके लिए कारखाने में या तो अलग से विक्रय विभाग खोल दिया जाता है जो फुटकर विक्रय करता है या कारखाने मे ही विक्रयकर्ता रहते है जो ग्राहक से सौदा तय करते हैं और फिर माल कारखाने के गोदाम से निकालकर ग्राहक के सुपुर्द कराकर उसके मूल्य का भुगतान कारखाने के रोकड़िये को करा देते है और इस प्रकार विक्रय पूर्ण हो जाता है। भारत मे गर्मियों में बरफखानों के द्वारा इस प्रकार फुटकर बर्फ की बिक्री की जाती है।

(5) **विक्रय मशीन** (Vending Machine)—यह मशीनें स्वचालित होती हैं और बिना किसी विक्रेता के वस्तुओं का विक्रय करती हैं। इन मशीनों में वस्तुएँ अन्दर भरी रहती हैं और यदि निर्धारित सिक्के इस मशीन में डाल दिये जाते हैं तो उन वस्तुओं का एक पैकिट बाहर निकल आता है। जब तक मशीनों में ये वस्तुएँ रहती हैं तब तक यह मशीनें कार्य करती रहती हैं। समय-समय पर निर्माता द्वारा इन मशीनों को खोलकर विक्रय धन निकाल लिया जाता है और नये पैकिट उसमें रख दिये जाते हैं। इस प्रकार यह मशीनें 24 घण्टे कार्य करती रहती हैं। इन मशीनों का विस्तृत विवरण इस अध्याय में पहले दिया जा चुका है।

वृहत फुटकर व्यापार के तरीके
(METHODS OF LARGE SCALE RELAILTING)

वृहत फुटकर व्यापार इन तरीकों से किया जा सकता है—(1) विभागीय भण्डार (Departmental Stores), (2) श्रृंखला भण्डार (Chain Stores), (3) डाक आदेश गृह (Mail Order Houses), (4) सुपर बाजार (Super Markets), (5) उपभोक्ता भण्डार (Consumer Stores), (6) स्वयं के फुटकर भण्डार (Own Retail Stores), (7) विक्रय मशीन (Vending Machine)। इन सभी का विस्तृत विवरण इसी अध्याय में स्थान-स्थान पर दे दिया गया है।

भारत में वृहत फुटकर व्यापार के यह तरीके अभी तक लोकप्रिय नहीं हो पाये हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(1) वृहत पूंजी का अभाव (Lack of Large Capital), (2) कुशल प्रबन्ध का अभाव (Lack of Efficient Management), (3) उपभोक्ता को उधार या साख का अभाव (Lack of Credit to Consumers), (4) उपभोक्ताओं से दूर स्थान पर होना (Existance at Distant Places), (5) उपभोक्ताओं को वस्तुओं के चुनाव में कठिनाई (Difficulty to Consumers in Selection of Products)।

लेकिन अभी पिछले कुछ वर्षों में इस दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है और वृहत आकार के फुटकर व्यापार का चलन बढ़ने लगा है।

प्रश्न

1. फुटकर विक्रय से आप क्या समझते हैं ? भारतीय अर्थ-व्यवस्था में इसका क्या महत्व है ?
   What do you understand by the term 'Retailing' ? What is its importance in Indian economy ?
2. फुटकर विक्रय संगठनों के विभिन्न प्रकार क्या हैं ? फुटकर विक्रेताओं द्वारा समाज को दी जाने वाली सेवाओं का वर्णन कीजिए।

What are the various forms of Retail Organization ? Describe the services performed by retailers to the society.

3. उपभोक्ता को सीधे माल बेचने की विभिन्न रीतियों का विवेचन कीजिए।
Discuss the methods that may be used in marketing directly to the ultimate consumer.

4. फुटकर विक्रय के विभिन्न तरीकों को बताइए।
Explain the various methods of retailsale.

5. वृहताकार फुटकर व्यापार के प्रमुख तरीके क्या-क्या हैं ? यह हमारे देश में लोकप्रिय क्यों नहीं हुए हैं ?
What are the methods of large scale retailing ? Why have they not been popular in India ?

15

कृषि विपणन

[AGRICULTURAL MARKETING]

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। राष्ट्रीय आय का 45% कृषि से उपार्जित होता है। निर्यात व्यापार में भी कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। "कृषि एक व्यवसाय ही नहीं बल्कि जीवन का एक ढंग है जिसने लाखों व्यक्तियों के विचारों और दृष्टिकोणों को सैकड़ों वर्षों में ढाला है।"[1] यह सब होते हुए भी अन्य देशों की तुलना में उत्पादन बहुत कम है। विपणन सुविधाएँ भी पर्याप्त नहीं हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् इस ओर कुछ प्रगति हुई है। कृषि पदार्थों के विपणन का अध्ययन करने से पहले भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

भारतीय कृषि की विशेषताएँ

(CHARACTERISTICS OF INDIAN AGRICULTURE)

भारतीय कृषि की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(1) **छोटे पैमाने पर उत्पत्ति** (Small Scale Production)—भारतीय कृषि की सबसे पहली व प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ उत्पत्ति छोटे पैमाने पर होती है क्योंकि खेतों का आकार बहुत छोटा है। यहाँ एक हैक्टेयर तक की जोतों की संख्या कुल कार्यशील जोतों की 51 प्रतिशत है। हिन्दू उत्तराधिकार कानून ने इन आकारों को छोटा करने में बहुत अधिक योगदान दिया है।

(2) **छितरी हुई और विशेष उत्पत्ति** (Scattered & Specialized Production)—दूसरी विशेषता यह है कि किसान सारे देश में फैले हुए हैं तथा इनकी भूमि विभिन्न प्रकार की है। कोई भूमि किसी उत्पत्ति के लिए अधिक उपयुक्त है तो कोई किसी अन्य उत्पत्ति के लिए। इसलिए यहाँ विशेष खेती-क्षेत्र हैं।

---

1 "Agriculture is not merely an accupation. It is a way of life, which for centuries has shaped the thoughts and outlooks of many millions of people."
—Indian Fiscal Commission

(3) **मौसमी उत्पादन** (Seasonal Production)—तीसरी विशेषता यह है कि उत्पादन मौसमी है अर्थात् उत्पादन हर समय नहीं होता है। यह तो मौसम पर ही होता है। इसके विपरीत उपभोग साल भर चलता रहता है। अतः वस्तुओं को भण्डारों में सुरक्षित रखना पड़ता है। अधिकांश किसानों के पास पर्याप्त भण्डार सुविधाओं की कमी है जिससे वे अपना उत्पादन शीघ्र ही बेच देते हैं।

(4) **गुण व मात्रा में अन्तर** (Variation in Quality & Quantity)—मौसम में परिवर्तन होने के कारण वस्तु के गुण (quality) एवं उत्पादन मात्रा (production quantity) में प्रतिवर्ष अन्तर आ जाता है जिससे कृषि पदार्थों के मूल्यों में भी परिवर्तन प्रतिवर्ष होते रहते हैं।

(5) **भारी व नाशवान पदार्थ** (Bulky & Perishable Products)—प्रत्येक वस्तु की भौतिक विशेषताएँ उस वस्तु के विपणन पर प्रभाव डालती हैं। अधिकांश कृषि वस्तुओं की उत्पत्ति मूल्य की तुलना में भारी होती है जिससे उनके भण्डार व परिवहन में अधिक व्यय करना पड़ता है। नाशवान वस्तुओं के लिए तो भण्डार सुविधाएँ भारत में बहुत ही कम हैं।

(6) **बेचने योग्य आधिक्य का कम होना** (Small Marketable Surplus)—भारतीय कृषि की एक विशेषता यह भी है कि किसान के पास बेचने योग्य आधिक्य कम होता है। पहले तो उत्पत्ति विभिन्न कारणों जैसे पुराने साधनों से खेती करना, वर्षा पर अधिक निर्भर रहना व प्राकृतिक प्रकोप आदि के कारण ही कम होती है उस पर भी किसान अपने वर्ष भर खाने के लिए उत्पत्ति को रोक लेता है और ऋणों आदि का भुगतान करने के बाद जो भी बचता है उसी को वह बेचता है। ऐसा होने से उसके पास बेचने योग्य आधिक्य कम ही होता है।

(7) **उत्पादन की परम्परागत तकनीक** (Traditional Technique of Production)—आधुनिक तकनीक के उपलब्ध होने के बावजूद भी भारत में अधिकांश उत्पादन पुरानी परम्परागत तकनीक से ही होता है जिसमें कृषक की खुरपी व लकड़ी के हल की प्रमुखता है।

(8) **मानसून पर निर्भरता** (Dependent on Mansoon)—भारत में कुल कृषि भूमि का 28 प्रतिशत ही सिंचित क्षेत्र है जबकि शेष 72 प्रतिशत मानसून पर निर्भर है तथा जिसका समय पर होना सन्देहपूर्ण ही रहता है।

(9) **अत्यधिक भीड** (Over Crowding)—भारत में खेतों के आकार छोटे होते हुए भी उन पर अधिक व्यक्ति जीवन निर्वाह के लिए लगे हुए हैं। डॉ. बलजीत सिंह के अनुसार करीब 80 व्यक्ति प्रति 100 एकड़ भूमि पर कार्य करते हैं जिन पर भी वर्ष में 4 से 6 माह तक या तो काम नहीं है या बहुत कम काम है।[1]

(10) **त्रुटिपूर्ण संगठन** (Defective Organisation)—भारतीय किसान अशिक्षित हैं, रूढ़िवादी हैं तथा नयी उत्पादन प्रणाली के प्रति उनका विश्वास नहीं

---

1 *Whither Agriculture in India,* p. 7.

है। इसके साथ ही साथ निर्धन भी हैं। उनके पास इतने साधन नहीं हैं कि उत्पादन को कुशलतापूर्वक-चला सकें।

(11) **हीनार्थ अर्थ-व्यवस्था** (Deficit Economy)—भारतीय कृषि की अन्तिम विशेषता यह है कि उपरोक्त कारणों से प्रति एकड़ उत्पादन बहुत कम है। यहाँ एक हैक्टेयर भूमि में 1,160 किलो गेहूँ पैदा होता है जबकि अमरीका में 1,770 किलो। इसका परिणाम यह होता है कि किसान को पूर्ण पारितोषण नहीं मिल पाता है और वह साधारणतया ऋणी ही बना रहता है।

कृषि विपणन का अर्थ
(MEANING OF AGRICULTURAL MARKETING)

कृषि विपणन से अर्थ उन सभी क्रियाओं से है जिनका सम्बन्ध कृषि उत्पादन को किसान के यहाँ से अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाना है।

कृषि विपणन में कृषि उपजों को एकत्रित करना, उनका प्रमापीकरण एवं श्रेणीकरण करना, भण्डारों में रखना, विभिन्न प्रकार के मध्यस्थों के माध्यम से मण्डी तक पहुँचाना, मण्डी में उनकी बिक्री करना तथा आवश्यकतानुसार वित्त प्रबन्ध करना भी इसके अन्तर्गत आता है।

भारत में कृषि उत्पत्ति की विपणन व्यवस्था
(MARKETING SYSTEM OF AGRICULTURAL PRODUCE IN INDIA)

भारत में कृषि पदार्थों की विपणन व्यवस्था का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है : (I) प्राथमिक मण्डी या गाँव का बाजार (Primary Market), (II) मेलों में बिक्री (Fair Markets), (III) थोक मण्डी (Wholesale Markets), (IV) फुटकर मण्डी (Retail Markets), (V) सीमान्त मण्डी (Terminal Markets)।

(I) प्राथमिक मण्डी या गाँव का बाजार (Primary Markets)

यह बाजार बड़े-बड़े गाँवों व कस्बों में सप्ताह में एक या दो बार लगते हैं। इन बाजारों की जगह छायी हुई या पटी हुई नहीं होती है। इन बाजारों को जोड़ने वाली सड़कें कच्ची होती हैं जो अधिकतर बैलगाड़ियों के चलने योग्य होती हैं। किसान अपनी उत्पत्ति का बहुत बड़ा भाग गाँवों में ही साहूकारों, बनियों, घूमते-फिरते व्यापारियों, पैंठों व हाटों में ही बेच लेते हैं। श्री हुसैन के अनुसार पंजाब में 60 प्रतिशत गेहूँ, 35 प्रतिशत कपास, 70 प्रतिशत तिलहन; उत्तर प्रदेश में 80 प्रतिशत गेहूँ, 40 प्रतिशत कपास व 75 प्रतिशत तिलहन गाँवों में ही बिक जाता है। भारत में करीब 25,000 हाट लगती हैं। जहाँ कृषि पदार्थ व जानवर बेचे जाते हैं। इन हाटों में 5 से 10 मील तक के खरीदने वाले आते हैं। इन हाटों में एक बार में 400 कुन्टल से लेकर कई हजार कुन्टल तक कृषि पदार्थों की बिक्री होती है। इन हाटों, पैंठों,

साहूकारों द्वारा खरीद, आदि को प्राथमिक मण्डी कहते हैं। **किसान के द्वारा गाँव में ही बिक्री करने के बहुत से कारण हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं :**

(1) **गाँव के साहूकार या बनिये का ऋणी होना** (Indebtedness to Baniyas)—साधारणतया किसान वर्ष भर अपनी आवश्यकताएँ ऋण लेकर पूरी करता रहता है तथा फसल के आने पर अपनी फसल साहूकार या महाजन को उसके ऋण के भुगतान में बेच देता है। कभी-कभी यह साहूकार, महाजन या बनिये ऋण देते समय किसान से यह वायदा करा लेते हैं कि भविष्य में फसल आने पर वह ऋणी किसान उन्हीं को अपनी फसल एक निश्चित मूल्य पर बेच देगा। इन दोनों ही कारणों से किसान के द्वारा अपनी फसल गाँव के साहूकार या बनिये को ही बेचनी पड़ती है।

(2) **धन की तुरन्त आवश्यकता** (Urgent Need of Money)—कभी-कभी किसान को अपनी तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी उपज को गाँव में ही बेचना पड़ता है। इन तत्कालीन आवश्यकताओं में मालगुजारी का भुगतान, ऋण का भुगतान, ब्याज का भुगतान आदि आते हैं।

(3) **बेचने योग्य आधिक्य कम** (Less Marketable Surplus)—भारत में कृषि व्यवसाय छोटे पैमाने पर होता है अतः उत्पत्ति भी कम होती है। किसान इस उत्पत्ति में से आगामी फसल तक खाने को रखकर जो बचता है उसको ही बेचता है। किसान के पास यह बचत बहुत कम मात्रा में होती है अतः वह उसको मण्डी में ले जाने के स्थान पर गाँव में ही बेच देता है।

(4) **अपर्याप्त परिवहन साधन** (Inadequate Transport Facilities)—गाँवों और मण्डियों के बीच परिवहन के साधन बहुत दोषपूर्ण हैं। पक्की सड़कें नहीं हैं साथ ही प्रत्येक किसान के पास साधन भी नहीं हैं कि वह उत्पत्ति को मण्डी तक ले जा सके।

(5) **मण्डियों के मूल्यों की जानकारी का अभाव** (Lack of Information regarding Mandi Price Level)—किसान को मण्डियों में जो मूल्य चल रहे होते हैं उसकी जानकारी उसे नहीं होती है जिससे कि वह अधिक मूल्य के प्रलोभन में अपनी उत्पत्ति मण्डी तक ले जाकर बेच सके। अतः वह अपनी उत्पत्ति को गाँव में ही बेच लेता है।

(6) **मण्डियों की कुरीतियाँ** (Malpractices of the Mandis)—मण्डियों में बहुत सी ऐसी रीतियाँ प्रचलित हैं जिनसे किसान को उत्पत्ति का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। अतः किसान उन कुरीतियों के डर से अपनी उत्पत्ति को गाँव में ही बेच लेता है।

(II) **मेलों में बिक्री** (Fair Markets)

भारत मेलों के लिए प्रसिद्ध है। कुछ मेले तो धार्मिक होते हैं तथा कुछ मेले कृषि पदार्थों व जानवरों की बिक्री के लिए लगाये जाते हैं। भारत में 1,700 से

अधिक मेले कृषि पदार्थों व जानवरों के लिए लगते हैं जिनमें 40 प्रतिशत मेले कृषि पदार्थों के लिए होते हैं। कृषि पदार्थों के मेले सिर्फ बिहार व उड़ीसा में ही पाये जाते हैं। कुल कृषि पदार्थों की बिक्री का बहुत थोड़ा भाग ही इन मेलों में बिकता है।

(III) **थोक मण्डी** (Wholesale Markets)

यह बाजार जिला या ताल्लुका स्तर के नगरों में पाये जाते हैं तथा प्रतिदिन कार्य करते हैं। यहाँ पर कृषि पदार्थ पास के ग्रामीण बाजारों से आते हैं। यह उपभोक्ता केन्द्र व सीमान्त बाजार दोनों से जुड़े होते हैं। डाक, तार, टेलीफून, सड़क, रेल आदि की सुविधा भी इन बाजारों को होती है। थोक मण्डियाँ दो प्रकार की पायी जाती हैं—(i) अनियमित (Unregulated), (ii) नियमित (Regulated)।

(i) **अनियमित मण्डियाँ** (Unregulated Markets)—इन अनियमित मण्डियों में बिक्री करने के कोई निश्चित नियम नहीं होते हैं। बिक्री दलाल के माध्यम से होती है। सर्वप्रथम किसान अपनी उत्पत्ति मण्डी में ले जाकर आढ़तिया के यहाँ उतार देता है। मण्डी के दलाल, आढ़तिया व खरीददार के बीच सौदा तय करते हैं और इसके पश्चात् किसान को भाव बता दिया जाता है। भाव तय होने पर उपज तौला द्वारा आढ़तिया की दुकान पर तोल दी जाती है। किसान से साधारणतया भाव की स्वीकृति भी नहीं ली जाती है, यही नहीं मण्डी में कई प्रकार की धोखेबाजी की कार्यवाही की जाती है और विभिन्न प्रकार के खर्चे उससे वसूल किये जाते हैं। यह मण्डियाँ या तो निजी व्यक्तियों की होती हैं या चुंगियों व जिला परिषदों की।

(ii) **नियमित मण्डियाँ** (Regulated Markets)—यह मण्डियाँ प्रान्तीय सरकारों के विशेष कानून से स्थापित होती हैं जिनका प्रबन्ध एक मण्डी समिति (Market Committee) के द्वारा होता है। यहाँ पर उपज खरीदने व बेचने के नियम निश्चित होते हैं तथा बिना लाइसेन्स वाला व्यक्ति इन मण्डियों में मध्यस्थ का कार्य नहीं कर सकता है। मध्यस्थों का पारिश्रमिक निश्चित होता है व कटौती, आदि के नियम भी निश्चित होते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् इस प्रकार की मण्डियों में काफी वृद्धि हुई है। भारत में 1950-51 में इस प्रकार की सिर्फ 265 मण्डियाँ कार्य कर रही थीं लेकिन आज इनकी संख्या 4,250 है। इन मण्डियों ने अनियमित मण्डियों के दोषों और बुराइयों को समाप्त कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र व आन्ध्र-प्रदेश की नियमित मण्डियों में आने वाली उपज की मात्रा काफी बढ़ गयी है।

(IV) **फुटकर मण्डी** (Retial Market)

फुटकर मण्डी वे मण्डियाँ हैं जो वास्तविक उपभोक्ता को उसकी आवश्यकता के अनुसार खरीदने का अवसर देती हैं। यह मण्डियाँ सारे देश में विभिन्न स्थानों पर फैली हुई हैं जैसे शहरों व कस्बों के बाजारों में स्थान-स्थान पर फुटकर दुकानदार पाये

जाते हैं, जो कृषि वस्तुओं का विक्रय करते है। यही दुकानदार फुटकर मण्डी के अन्तर्गत आते हैं।

(V) **सीमान्त मण्डी** (Terminal Markets)

उपज के विनिमय व व्यापारिक संघ जो निर्यात या आन्तरिक वितरण में सहायता करते हैं इसके अन्तर्गत आते हैं। इन मण्डियों के व्यापार के निश्चित नियम होते हैं तथा इनके पास गोदाम आदि की सुविधाएँ होती हैं। इस प्रकार के बाजार भारत में बहुत ही कम है।

भारत में कृषि विपणन के दोष

(DEFECTS OF AGRICULTURAL MARKETING IN INDIA)

भारत में कृषि पदार्थों के विपणन में बहुत सी कमियाँ या दोष पाये जाते हैं जिनका प्रभाव यह पड़ता है कि किसान को अपनी उत्पत्ति का उचित मूल्य नही मिल पाता है। उपभोक्ता के द्वारा जो मूल्य दिया जाता है उसमें उत्पादक का भाग मूँगफली में 75 प्रतिशत, गेहूँ मे 69 प्रतिशत, चावल में 67 प्रतिशत, चीनी में और दूध में 75 प्रतिशत, आलू मे 56 प्रतिशत व तम्बाकू मे 42 प्रतिशत है। इन दोषों को देखते हुये शाही कृषि कमीशन 1928 ने लिखा है "जब तक कि वह (किसान) बिक्री की कला का अध्ययन व्यक्तिगत रूप में अथवा दूसरे उत्पादकों के साथ मिल कर सामूहिक रूप मे न करेगा तब तक वह अपनी उपज को मोल लेने वालों के साथ हमेशा पीछे रहेगा क्योंकि उसके ग्राहकों को न केवल विशेषज्ञों के रूप में अधिक जानकारी होती है वरन् उनके साधन भी अत्यन्त उच्च कोटि के होते है।"[1] भारत मे कृषि विपणन के निम्न दोष बताये जाते हैं :

(1) **आवश्यकता से अधिक मध्यस्थ** (Superflucus Middlemen)—भारत में कृषि पदार्थों के उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच मध्यस्थों जैसे गाँव का साहूकार, घूमता फिरता व्यापारी, कच्चा आढ़तिया, पक्का आढतिया, थोक व्यापारी, मिल वाला निर्यातकर्ता, फुटकर व्यापारी आदि की एक लम्बी शृंखला है। प्रत्येक मध्यस्थ के द्वारा कुछ लाभ अवश्य लिया जाता है जिसका प्रभाव यह होता है कि उपभोक्ता द्वारा दिये जाने वाले मूल्य का एक बड़ा भाग यह मध्यस्थ ले लेते है। उदाहरण के लिए उपभोक्ता द्वारा जो मूल्य दिया जाता है उसमे कृषक का भाग मूँगफली मे 75 प्रतिशत, गेहूँ में 69 प्रतिशत, चावल में 67 प्रतिशत, दूध में 75 प्रतिशत, आलू में 56 प्रतिशत व तम्बाकू में 42 प्रतिशत है।

(2) **बाजार व्ययों का बाहुल्य** (Multiplicity of Market Charges)—मण्डियों मे किसान से विभिन्न प्रकार के खर्चे वसूल किये जाते है जैसे आढत, दलाली, पल्लेदारी व तुलाई, आदि। इन खर्चो के अलावा अन्य वसूलयाबी भी की जाती है,

1 Royal Commission on Agriculture, 1928, quoted from *Indian Economics*—Dewett & Seth, p 209.

जैसे करदा, धर्मादा, अनाथालय, गौशाला, रामलीला, धर्मशाला, चौकीदार, मेहतर, व मुनीम आदि का व्यय। कभी-कभी यह खर्चे किसान से दो बार भी वसूल किये जाते हैं।

(3) **बाजारों में कुरीतियाँ** (Malpractices of Markets)—कृषि पदार्थों के विपणन के दोष बाजार व्ययों की अधिकता तक ही सीमित नही हैं बल्कि किसान को ठगने के लिए विभिन्न प्रकार की रीतियाँ काम मे लायी जाती है। राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) के अनुसार, (i) तराजू व बाँट से किसान को ठगा जाता है, (ii) उसकी उपज का बहुत बड़ा अंश नमूने या बानगी के रूप मे निकाल लिया जाता है, (iii) कृषि पदार्थों के मूल्य दलाल द्वारा कपड़े के नीचे तय किये जाते है जिनसे किसान अनभिज्ञ रहता है और उसको आसानी से ऐसी स्थिति में धोखा दिया जा सकता है, (iv) दलाल प्रायः खरीददारो का पक्ष लेता है क्योंकि रोजाना वह उनसे मिलता रहता है, (v) अन्त में, यदि किसान व खरीददार में कोई विवाद तौल या मूल्य के सम्बन्ध में खड़ा हो जाता है तो किसान के हितों की रक्षा करने का वहाँ कोई साधन नही रहता और उसको खरीददारों की बात मानी पड़ती है।[1]

(4) **विपणन सूचनाओं का अभाव** (Lack of Marketing Information)—भारतीय कृषि पदार्थों के विपणन में चौथा दोष यह है कि किसान को विभिन्न बाजारों में प्रचलित कृषि पदार्थों के मूल्यों की जानकारी नही हो पाती है जिससे वह ऊँचे मूल्य बाजार का लाभ नहीं उठा पाता। उसको बाजार की सूचनाएँ गाँव के बनिये के माध्यम मे मिलती है जो निहित स्वार्थों के कारण सही सूचनाएँ नही देते हैं और मण्डियों में भाव कम होने का प्रचार करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि किसान उन सूचनाओं के आधार पर अपनी उपज गाँव मे ही बेच देता है।

(5) **प्रमापीकरण व वर्गीकरण का अभाव** (Absence of Grading & Standardisation)—भारत में कृषि पदार्थों के प्रमापीकरण व वर्गीकरण का अभाव है। साथ ही अखिल भारतीय स्तर पर यहाँ प्रमापों की कमी है।

किसान अपनी उत्पत्ति को मूल अवस्था में ही बाजार मे बेचने चला जाता है जिसमें मिट्टी व अन्य अनावश्यक पदार्थ भी मिले रहते हैं। प्रमापों के अभाव मे पदार्थों को "दड़े (mixed) के माल के रूप में" बेचा जाता है। दड़े से तात्पर्य बढ़िया व घटिया उपज को मिलाकर एक साथ बेचने से है।

(6) **भण्डार सुविधाओं का अभाव** (Lack of adequate Storage Facilities)—भारत में मण्डियों व गाँवों में उपज को सुरक्षित रखने के लिए उचित भण्डारों का अभाव है। गाँवों में उपज कच्ची खत्तियों, कोठों तथा मिट्टी व बाँस के

---

1 Report on Rural Marketing & Finance : *National Planning Committee Series*, pp. 44-45.

बने बर्तनों में रखी जाती है जिसमें चूहों, सीलन व अन्य प्रकार के कीटाणुओं से सुरक्षा नहीं हो पाती। डॉ. बलजीतसिंह के अनुसार, "प्रतिवर्ष लगभग 3 लाख टन अनाज त्रुटिपूर्ण भण्डार सुविधाओं के कारण नष्ट हो जाता है।"[1] श्री गोविल का अनुमान इससे कहीं अधिक है। उनके अनुसार, "प्रतिवर्ष लगभग 20 लाख टन खाद्य-पदार्थ की क्षति होती है।"[2]

(7) **परिवहन सुविधाओं की कमी** (Lack of Transport Facilities)—कृषि पदार्थों के विपणन का एक दोष यह भी है कि पर्याप्त व विकसित परिवहन सुविधाओं की कमी है। गाँव व शहरों को जोड़ने वाली सड़कें कच्ची हैं और दूसरी ओर परिवहन साधनों का अभाव है। यह सड़कें पूरे वर्ष में कुछ महीने ही कार्य करती हैं। वर्षा के मौसम में तो इन सड़कों से माल का लाना व ले जाना बिल्कुल असम्भव हो जाता है। गाँव को शहर से जोड़ने में बैलगाड़ियाँ, ऊँटगाड़ियाँ, गधे, खच्चर आदि का भी काफी योग रहता है। यह साधन भी काफी खर्चीले हैं और उनकी गति बहुत धीमी है। इन्हीं कारणों से किसान अपनी उत्पत्ति को गाँव में ही कुछ कम दामों पर बेच लेता है।

(8) **माल की घटिया किस्म** (Inferior Quality of the Produce)—भारत में खेतों के छोटे होने, उपज की परम्परागत पद्धति होने, अच्छे बीजों एवं खाद व सिंचाई का अभाव होने से उपज घटिया किस्म की होती है। साथ ही फसल को काटने में असावधानी करने से उपज में धूल व मिट्टी मिल जाती है। इन सबका सामूहिक परिणाम यह होता है कि उपज घटिया किस्म की हो जाती है जिससे कृषक को उसका मूल्य कम मिलता है।

(9) **मजबूरी बिक्री** (Forced Sale)—भारतीय किसानों को विभिन्न कारणों से अपनी इच्छा के विरुद्ध परिस्थितियों से बाध्य होकर अपनी उपज की बिक्री करनी पड़ती है। यह परिस्थितियाँ परिवहन सुविधाओं का अभाव, विपणन सूचनाओं का अभाव, ऋण की वसूलयाबी का दबाव, पहले से फसल को बेचने के सौदे की पूर्ति, मण्डियों में शोषण, भण्डार सुविधाओं की कमी, मालगुजारी व अन्य खर्चों की पूर्ति आदि हैं। श्री हुसैन के अनुसार पंजाब में 60 प्रतिशत गेहूँ, 35 प्रतिशत कपास व 70 प्रतिशत तिलहन; उत्तर प्रदेश में 80 प्रतिशत गेहूँ, 40 प्रतिशत कपास व 75 प्रतिशत तिलहन गाँव में या गाँव के बाजार में बेचा जाता है।[3]

(10) **संगठन का अभाव** (Lack of Organization)—कृषि पदार्थ के विपणन के दोषों में सबसे महत्वपूर्ण दोष यह है कि कृषक संगठित नहीं हैं जबकि इसके

---

1 "Sufficient losses are also incurred due to defective storage and on the most conservative estimate these amounted to about 3 lakh tons a year."
—*Whiter Agriculture in India*, p. 180.

2 It is estimated that in storage alone India loses about 20 million tons of food-grains every year." —K. L. Govil, *Agricultural Marketing in India*, p. 159.

3 *Marketing of Agricultural Produce in Nothern India*, p. 96.

विपरीत क्रेता संगठित हैं जैसे भारतीय जूट मिल एसोसियेशन, भारतीय चीनी मिल एसोसियेशन व भारतीय काटन मिल एसोसियेशन आदि। भारतीय किसान छोटे-छोटे उत्पादक हैं और वे भी विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए हैं। वे अशिक्षित हैं, विपणन ज्ञान से शून्य हैं, निर्धन हैं, भोले हैं। इसके विपरीत क्रेता शिक्षित, विपणन में कुशल, धनी, चतुर व चालाक हैं।

(11) **अन्य दोष** (Other Defects)—उपरोक्त वर्णित दोषों के अतिरिक्त अन्य दोष भी हैं जैसे आर्थिक सुविधाओं की कमी, उचित नाप-तोल के बाँटों की कमी व त्रुटिपूर्ण उपज व जानबूझ कर वजन बढ़ाने की दृष्टि से मिट्टी व अन्य हीन पदार्थ, आदि, मिला देना है।

कृषि विपणन प्रणाली के सुधार के उपाय एवं सरकार द्वारा उठाये गये प्रयत्न

(SUGGESTIONS FOR THE IMPROVEMENT OF AGRICULTURAL MARKETING SYSTEM AND STEPS TAKEN BY GOVERNMENT)

आज एक ओर तो बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्य सामग्री की उत्पत्ति में वृद्धि और दूसरी ओर किसान को उत्पत्ति का उचित मूल्य दिलाने की आवश्यकता है। कृषि विपणन के सुधार के लिए शाही कृषि आयोग 1928, केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति व राष्ट्रीय योजना समिति 1947, आदि ने काफी सुझाव दिये हैं लेकिन हम निम्नलिखित मुख्य सुझावों को ले रहे हैं :

(1) **सहकारी विपणन समितियों की स्थापना** (Establishment of Co-operative Marketing Societies)—सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को अपने आपको सहकारी विपणन समितियों में संगठित कर लेना चाहिए जिनसे कि उनमें सामूहिक मोल-भाव करने की क्षमता आ सके, विभिन्न प्रकार के मध्यस्थों का अन्त हो सके और संचय की सुविधा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति व परिवहन आदि की सुविधा मिल सके।

इस ओर कुछ प्रगति हुई है। आज देश में 3,373 कृषि विपणन समितियाँ कार्य कर रही हैं जिन्होंने 1977-78 में 1,420 करोड़ रुपये के कृषि पदार्थों का क्रय-विक्रय किया है। लेकिन इनके द्वारा देश में उत्पादित कुल पदार्थों की बिक्री का बहुत थोड़ा भाग ही बेचा जाता है।

(2) **नियमित बाजारों की स्थापना** (Establishment of Regulated Markets)—कृषकों को विपणन दोषों से बचाने का दूसरा उपाय नियमित मण्डियों की स्थापना है जिससे कि उनकी उत्पत्ति ईमानदारी से उचित मूल्य पर बेची जा सके। नियमित मण्डियों की स्थापना या तो प्रान्तीय कानून या स्वायत्व शासन के अन्तर्गत होती है जहाँ पर किसान अपनी उत्पत्ति को मण्डी के नियमों के अनुसार बेचता है। यहाँ पर कटौती की दर व बिचौलियों का कमीशन निश्चित होता है तथा माल तुलने पर भुगतान तुरन्त कर दिया जाता है। किसी विषय पर मतभेद

होने पर निबटारा भी तुरन्त कर दिया जाता है। इन मण्डियों के प्रबन्ध में कृषकों का बहुमत होता है।

भारत में इस प्रकार की मण्डियों की स्थापना की शुरूआत यद्यपि 1897 में हुई थी लेकिन उसमें विशेष प्रगति नहीं हुई। स्वतन्त्रता के पश्चात् 1950-51 में इनकी संख्या 265 थी लेकिन बाजारों के विकास को महत्व देने के फलस्वरूप आज देश के 17 राज्यों व 4 संघीय प्रदेशों में 4,250 नियमित मण्डियाँ कार्य कर रही हैं।

(3) **उचित प्रमापीकरण व वर्गीकरण की आवश्यकता** (Establishment of Standrads & Grades)—यदि प्रमापीकरण व वर्गीकरण की सुविधाओं में उन्नति हो जाती है। तो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में ख्याति बढ़ जाती है, किसान को अधिक मूल्य मिल जाता है, बाजार का विस्तार हो जाता है व उत्पत्ति की किस्म में भी उन्नति हो जाती है। अतः अखिल भारतीय स्तर पर उचित प्रमाप स्थापित करने तथा वर्गीकरण करने वाली संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में अखिल भारतीय स्तर पर सबसे पहला प्रयत्न 1937 में कृषि-उपज (वर्गीकरण एवं चिह्नन) अधिनियम [Agricultural Produce (Grading & Marketing) Act] पास करके किया गया है जिसके अन्तर्गत सरकार द्वारा प्रमाप स्थापित किये जाते हैं और सरकार द्वारा नियुक्त संस्थाओं के द्वारा वर्गीकरण किया जाता है। लेकिन उनके कार्यों का निरीक्षण समय-समय पर सरकारी कर्मचारी करते रहते हैं। इन वर्गीकृत वस्तुओं पर एगमार्क (AGMARK) की मुहर लगा दी जाती है। अभी तक 200 पदार्थों के प्रमाप व 300 वर्ग निश्चित किये गये हैं। इस समय देश में लगभग 4,000 संस्थाएँ हैं जो श्रेणीकरण का कार्य कर रही हैं।

(4) **भण्डारों की स्थापना** (Eastablishment of Warehouses)—ऐसे भण्डार स्थापित होने चाहिए जिनमें किसान अपनी उत्पत्ति को सुरक्षा की दृष्टि से रख सकें। शीघ्र नाशवान वस्तुओं के लिए भी शीत भण्डार (Cold Storage) स्थापित होने चाहिए। इन दोनों प्रकार के भण्डार स्थापित होने से एक ओर तो जो फसल कीड़ों आदि से नष्ट हो जाती है उसकी बचत हो जावेगी और दूसरी ओर किसान को उत्पत्ति उचित समय पर बेचने से लाभ होगा।

यद्यपि विभिन्न समितियों ने इस आवश्यकता पर बल दिया लेकिन 1956 तक इस ओर कोई प्रगति नहीं हुई है। ग्रामीण साख सर्वेक्षण रिपोर्ट (Rural Credit Survey Report) 1954 की सिफारिश पर कृषि उत्पत्ति विकास एवं संग्रहालय निगम अधिनियम (Agricultural Produce Development & Warehousing Corporations Act) 1956 पास किया गया जिसके अनुसार अब देश में केन्द्रीय भण्डार निगम (Central Warehousing Corporations) के 203 भण्डार व प्रान्तीय भण्डार निगमों (State Warehousing Corporations) के लगभग 1,000 भण्डार कार्य कर रहे हैं जिनकी संग्रह क्षमता क्रमशः 29 व 38 लाख मीटरी टन

है। देश की कुल उत्पत्ति को देखते हुए इन भण्डारों की संख्या व संग्रह क्षमता बहुत कम है अत: आवश्यकता इस बात की है कि इनकी संख्या व संग्रह क्षमता में वृद्धि की जाये। साथ ही अधिकांश भण्डार शहरी क्षेत्रों में हैं इसलिए इनकी स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में होना अधिक आवश्यक प्रतीत होता है।

(5) **अच्छी परिवहन सुविधाएँ** (Better Transport Facilities)—भारत में परिवहन सुविधाएँ अन्य विकसित देशों की तुलना में बहुत कम हैं। अत: इस बात की आवश्यकता है कि एक ओर तो सड़कों में सुधार हो और दूसरी ओर साधनों में प्रगति। सड़कों के सुधार के लिए नयी-नयी सड़कों को बनाया जाये जो हर मौसम में काम आ सकें। कृषि विपणन के लिए विशेष रूप से गाँव व शहर को जोड़ने वाली सड़कों में प्रगति होनी चाहिए। किसान के पास जो परिवहन साधन-बैलगाड़ी का है उसमें सुधार होना चाहिए। मोटर ट्रकों का प्रयोग भी कृषि विपणन में काफी लाभप्रद हो सकता है इसलिए सरकार को इस सम्बन्ध में लाइसेन्स देने की उदार नीति अपनानी चाहिए। बाजार के विस्तार में रेलों के द्वारा काफी योग दिया जा सकता है अत: रेलों को व्यापारिक केन्द्रों में अधिक सुविधाएँ देनी चाहिए व शीघ्र नाशवान पदार्थों के लाने-ले-जाने के लिए वातानुकूलित डिब्बों का प्रयोग करना चाहिए। सरकार को सहकारी विपणन संस्थाओं को ट्रक खरीदने के लिए ऋण की सुविधा देनी चाहिए।

सन् 1947 में 3·88 लाख किलोमीटर लम्बी सड़कें थीं लेकिन इस समय इनकी लम्बाई 12·02 लाख किलोमीटर हो गयी है। मोटर परिवहन की संख्या में भी इस काल में काफी वृद्धि हुई है। 1947-48 में 54,700 किलोमीटर लम्बी रेलवे लाइन थी लेकिन आज 61,000 किलोमीटर हो गयी है। जनसंख्या व कृषि उत्पत्ति के दृष्टिकोण से इसमें अभी उन्नति की आवश्यकता है।

(6) **विपणन सूचनाएँ** (Marketing News)—यह भी सुझाव दिया जाता है कि विपणन सूचनाएँ किसानों तक पहुँचाने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयत्न किये जायें। विभिन्न मण्डियों के भाव, सरकारी सर्वेक्षण के परिणाम और मण्डियों के धोखे से बचने के लिए सहकारी विपणन संस्थाओं व नियमित मण्डियों का प्रचार किया जाना चाहिए। यह सूचनाएँ रेडियो, रेलों, बसों व प्रदर्शनियों, आदि के जरिये पहुँचायी जा सकती हैं।

इस सम्बन्ध में आजकल प्रत्येक प्रदेश से शाम को देहाती कार्यक्रम के अन्तर्गत उस प्रदेश की मुख्य मण्डियों के भाव रेडियो से प्रसारित किये जाते हैं। सामुदायिक विकास विभाग ने ग्राम पंचायतों को मुफ्त रेडियो सेट दिये हैं। बहुत-से हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में अखबार भी भावों को प्रकाशित करते हैं। प्रदर्शनियां व मेलों में भी बड़े-बड़े चित्रों से बहुत-सी सूचनाएँ प्रदर्शित की जाती हैं। यह सब होते हुए भी यह सूचनाएँ उचित व्यक्तियों तक कम पहुँच पाती हैं। अत:

इस बात की आवश्यकता है कि यह सूचनाएँ और कारगर ढंग से पहुँचायी जायें जिससे किसान को उस सम्बन्ध में पूरा ज्ञान रहे और विभिन्न बाजारों में भाव समान रहें।

(7) **बाँटों का प्रमापीकरण** (Standardization of Weights)—इस बात की भी आवश्यकता है कि बाँटों का प्रमापीकरण कर दिया जाये। भारत में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के बाँट प्रचलित हैं जिससे भाव मालूम होते हुए भी उनमें तुलना करना सम्भव नहीं है। सबसे पहले 1939 में बाँटों के प्रमापीकरण के लिए एक अधिनियम बनाया गया है जिसमें 80 तोले का एक सेर ही वैधानिक बाँट माना गया। इसके बाद कई प्रान्तीय सरकारों ने भी इस सम्बन्ध में नियम बनाये लेकिन इसमें आमूल परिवर्तन अक्टूबर 1958 में किया गया जबकि मैट्रिक प्रणाली लागू की गयी। आज देश भर में यह प्रणाली लागू है और इसकी देखभाल के लिए निरीक्षक नियुक्त हैं लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी पुराने बाँट चालू हैं इसलिए सरकार को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए।

(8) **प्रशिक्षण सुविधाएँ** (Training Facilities)—कृषि विपणन के सुधार के लिए कृषकों एवं मण्डियों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण सुविधाएँ दी जानी चाहिए जिससे कि वे न्याय कर सकें।

इसके लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा नागपुर में एक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ राज्य सरकारें भी इस प्रकार की सुविधाएँ दे रही हैं।

(9) **मूल्य स्थिरीकरण** (Stabilisation of Prices) – किसानों को उचित मूल्य दिलाने तथा कृषि मूल्यों में स्थिरता लाने के लिए केन्द्रीय सरकार प्रतिवर्ष सम्बन्धित फसल के आने से पूर्व ही उसके खरीद मूल्य घोषित कर देती है। यदि बाजार में उसका मूल्य इन घोषित मूल्यों से कम हो जाता है तो सरकार उस मूल्य पर कृषि पदार्थों को क्रय करना प्रारम्भ कर देती है। इस समय सरकार की यह नीति गेहूँ, चावल, मक्का, ज्वार, बाजारा, कपास, जूट आदि के सम्बन्ध में पायी जाती है।

डा पंजाब राव देशमुख ने एक बार कहा था, "जब कभी भी मैं मण्डियों को देखता हूँ चाहे वे ग्रामीण क्षेत्र में हों या शहरी क्षेत्र में, मैं यह महसूस करता हूँ कि कृषि विपणन के सम्बन्ध में प्रगति रुक गयी है और वैसी ही स्थिति है जैसी मैं जब बच्चा था, तब थी।"[1]

डॉ देशमुख का यह कथन आज उचित नहीं दिखायी देता। कृषि विपणन में काफी प्रगति हुई है। नियमित मण्डियों की संख्या में आशातीत वृद्धि, सहकारी विपणन संस्थाओं में वृद्धि, प्रमापीकरण व वर्गीकरण सुविधाओं में उन्नति, भण्डार

---

1 "Whenever I visit the Mandis whether in rural or municipal areas, I feel as if time has come to a stop so far as agricultural marketing is concerned and conditions are as they were when I was a child." —*Dr. P. R. Deshmukh.*

सुविधाओं में वृद्धि, सड़कों व परिवहन साधनों में वृद्धि बाजार सूचनाओं में वृद्धि व बाँटों आदि का प्रमापीकरण, विशेष उल्लेखनीय हैं। आज किसान भी उतना अनभिज्ञ व सीधा नहीं है जितना 60 वर्ष पूर्व था। शिक्षा के विस्तार व पंचवर्षीय योजनाओं से इस ओर काफी प्रगति हुई है।

एक सुव्यवस्थित कृषि विपणन प्रणाली की विशेषताएँ

(ESSENTIALS OF AN ORDERLY AGRICULTURAL MARKETING)

एक सुव्यवस्थित कृषि विपणन प्रणाली में—(1) किसान एवं कृषि पदार्थों के क्रेता दोनों के हितों की रक्षा की जानी चाहिए; (2) परिवहन साधन शीघ्र एवं मितव्ययी होने चाहिए; (3) बाजार सम्बन्धी सूचनाएँ अधिक से अधिक किसानों के पास उचित समय में पहुँचनी चाहिए; (4) कृषि पदार्थों के उचित भण्डार के लिए आवश्यक भण्डार सुविधाएँ होनी चाहिए; (5) किसानों को उचित मूल्य मिलना चाहिए जिससे कि उनमें कार्य के प्रति उत्साह बना रहे; (6) बाजारों में मध्यस्थों की संख्या कम से कम होनी चाहिए तथा कार्य नियमानुसार होना चाहिए; (7) वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक संस्थाएँ होनी चाहिए जो कम से कम लिखा-पढ़ी कर ऋण प्रदान कर सकें; (8) कृषक के पास स्वयं के भण्डार होने चाहिए जिससे कि वह अपनी उपज को सुरक्षित रख सके।

प्रश्न

1. कृषि विपणन से आप क्या समझते हैं ? भारत में कृषि विपणन के प्रमुख दोष कौन-कौन से हैं ? सुधार के लिए उपाय बताइए।
   What do you understand by agricultural marketing ? What are the main defects of the Agricultural Marketing in India ? Suggest measures for improvement.

16

कृषि वस्तुओं का विपणन

[MARKETING OF AGRICULTURAL PRODUCTS]

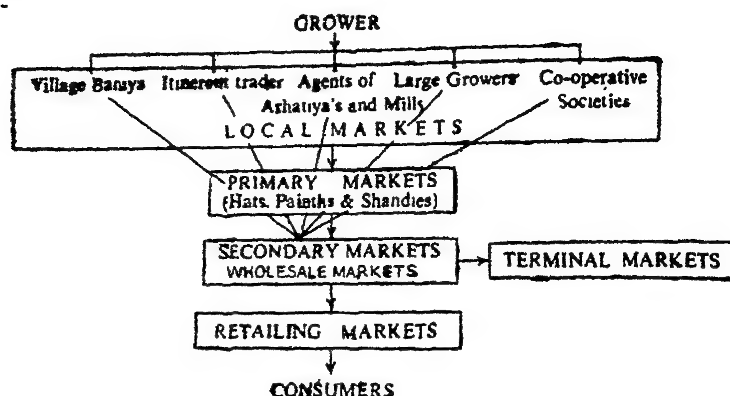
भारत में कृषि वस्तुओं का वितरण (Distribution of Agricultural Products) सामान्यतः (1) स्थानीय बाजारों (Local Markets), (2) प्राथमिक बाजारों (Primary Markets), (3) गौण बाजारों (Secondary Markets), व (4) फुटकर बाजारों (Retailing Markets) के माध्यम से होता है।

(1) **स्थानीय बाजार** (Local Markets)—स्थानीय बाजार एक प्रकार से स्थानीय एकत्रण केन्द्र (Assembling Centres) होते हैं जिनमें गाँव का बनिया, घूमता-फिरता व्यापारी, आढ़तिया व मिलों के प्रतिनिधि, बड़े किसान व सहकारी समितियों द्वारा किसानों से खरीद की जाती है। यह सभी किसान से उपज थोक मात्रा में उसके घर या खेत से खरीद लेते हैं।

(2) **प्राथमिक बाजार** (Primary Markets)—भारत में प्राथमिक बाजार हाट, पैंठ व शंडीज कहलाते हैं। यहाँ किसान अपनी उपज को ढेर लगाकर बेचता है जिसको बनिया, घूमता-फिरता व्यापारी, आढ़तिया तथा मिलों के प्रतिनिधियों द्वारा क्रय किया जाता है।

(3) **गौण बाजार** (Secondary Markets)—यह बाजार शहरों व कस्बों में पाये जाते हैं जहाँ गाँव का बनिया, घूमता-फिरता व्यापारी व बड़े किसान व सहकारी समितियाँ (किसानों से खरीदी गयी) उपज लाकर बेचते हैं। यहाँ पर खरीद मिलों, स्थानीय फुटकर व्यापारियों व सीमान्त बाजार के प्रतिनिधियों द्वारा की जाती है। मिल तो उपज को कच्चे माल के रूप में प्रयोग करते हैं जबकि स्थानीय थोक व्यापारी फुटकर व्यापारियों के माध्यम से उपभोक्ता तक पहुँचाते हैं।

(4) **फुटकर बाजार** (Retailing Markets)—यह बाजार शहरी क्षेत्रों व कस्बों में पाये जाते हैं जो स्थानीय जनसाधारण की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था को अग्रलिखित चार्ट से भी समझाया जा सकता है।



उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण-मार्ग (Channels of Distribution for Consumer Products) व कच्चे माल के वितरण मार्ग (Channels of Distribution for Materials) लगभग एक-से है। उपभोक्ता वस्तुएँ उत्पत्ति के स्थान (गाँव) पर ही सबसे पहले स्थानीय व्यक्तियों द्वारा एकत्रित की जाती है (जिनमें गाव का बनिया, घूमता-फिरता व्यापारी, आढतिया व मिलो के प्रतिनिधि, बड़े कृषक व सहकारी समितियाँ प्रमुख है) जो या तो हाटों, पैठों व शडीज मे बेच लेते है या सीधे थोक बाजार या गौण बाजार में ले जाते है जहाँ पर थोक-खरीद फुटकर व्यापारियों द्वारा की जाती है जो अन्त में उन वस्तुओं को उपभोक्ता तक पहुँचाते हैं। कभी-कभी किसान गाँव मे नहीं बेचता और सीधा गौण बाजार मे लाकर बेचता है। कुछ उत्पत्ति किसान द्वारा उपभोक्ताओं को हाट पैठो व शंडीज में सीधी बेच दी जाती है।

कच्चे माल का वितरण भी इसी प्रकार होता है लेकिन अन्तर केवल इतना है कि मिल एवं कारखाने वाले अपनी आवश्यकताओं के लिए कच्चा माल या तो अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से सीधा किसान से खरीदते हैं या गौण बाजार से खरीद करते हैं और कच्चे माल से पक्का माल बनाकर अन्तिम उपभोक्ता तक वस्तुएँ पहुँचाने का उत्तरदायित्व स्वयं अपने ऊपर लेते हैं। जिनके लिए निर्मित वस्तुओं (Manufactured Products) के वितरण में जो रास्ता अपनाया जाता है उसे वे अपना लेते हैं।

भारत मे कृषि वस्तुओ के विपणन के अध्ययन के लिए हमने (I) गेहूँ, (II) चावल, (III) जूट, (IV) रुई या कपास, (V) अलसी, (VI) अण्डी. (VII) सरसों या लाहा, (VIII) तिलहन, (IX) तम्बाकू, व (X) गन्ना को लिया है जिनका विवरण निम्न प्रकार है :

कृषि पदार्थों की विक्रय पद्धतियाँ

(SALE SYSTEMS OF AGRICULTURAL PRODUCTS)

कृषि पदार्थो की बिक्री मुख्यतया निम्न तीन प्रकार से होती है :

(1) गुप्त या छिपे तौर पद्धति (Under Cover System)

(2) नीलाम पद्धति (Auction System)

(3) मोल-भाव या समझौता पद्धति (Bargaining or Negotiation System)

(1) **गुप्त या छिपे तौर पद्धति** (Under Cover Sysisem)—इस पद्धति में विक्रेता का आढ़तिया व क्रेता या उसका दलाल एक कपड़े के नीचे एक-दूसरे की उँगलियाँ पकड़ता है। यह कपड़ा अँगोछा, तौलिया, धोती या कुरता का अगला भाग होता है। यह उँगलियाँ रुपये व पैसे को दर्शाती हैं। जैसे पाँचों उँगलियों को दबाकर जोर से कहता है रुपये इसका अर्थ है 5 रुपये और फिर वह दुबारा तीन उँगलियों को दबाकर कहता है आने इसका अर्थ है 3 आने इस प्रकार भाव हुआ 5 रुपये तीन आने या 5 रुपये 19 पैसे। यह प्रक्रिया एक दूसरे में उस समय तक चलती रहती है जब तक कि भाव तय नहीं हो जाता। लेकिन जब भाव तय नहीं हो पाता तो वे एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं।

(2) **नीलाम पद्धति** (Auction System)—इस पद्धति में माल को ढेरी बनाकर रखते है तथा क्रेता उस ढेरी के पास आकर भाव की बोली बोलते हैं। जिस क्रेता की बोली सबसे ऊँची होती है उसके नाम बोली समाप्त कर उसको माल की बिक्री कर दी जाती है। जैसे यदि कोई क्रेता 125 रुपये कुन्टल लगाता है तो कोई 127 रुपये तो कोई 130 रुपये। यदि कोई भी इस मूल्य से आगे नहीं बढ़ता है तो 130 रुपये बोलने वाले के नाम बोली समाप्त कर बिक्री कर दी जाती है।

(3) **मोलभाव या समझौता पद्धति** (Bargaining or Negotiation System)—आजकल अधिकाश मामलों मे यही पद्धति अपनाई जाती है। इसमें क्रेता या उसका दलाल तथा आढ़तिया या उसके नमूने माल को दिखाकर भाव तय करते हैं और फिर उसकी बिक्री कर दी जाती हैं।

(I) भारत में गेहूँ का विपणन
(MARKETING OF WHEAT IN INDIA)

गेहूँ भारत की प्रमुख फसलों मे से एक है। इसका उत्पादन मुख्यतया उत्तर प्रदेश, पंजाब व हरियाना तथा मध्य प्रदेश में होता है जो कुल उत्पादन के 7 % के लगभग बैठता है। इस समय लगभग 209 लाख हैक्टेयर भूमि में गेहूँ की खेती होती है और जिससे 313 लाख टन गेहूँ का उत्पादन होता है।[1]

"किसान के द्वारा औसतन 63% उत्पादन अपने प्रयोग के लिए रोक लिया जाता है। सिर्फ 37% ही उत्पादन उसके पास बेचने के लिए बचता है।"[2]

भारत में गेहूँ का विपणन निम्न प्रकार होता है :

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Market)—गेहूँ की फसल की कटाई साधारणतया हँसिये से होती है। इसके बाद पयाल से अलग करने की

1 Economic Survey, 1978-79.

2 Report on the Marketing of Wheat in India, Govt. of India, p. 203.

क्रिया बैलों की दाँय से की जाती है। बाद में हवा में बौछार कर गेहूँ के दाने अलग कर लिए जाते हैं। अब कुछ वर्षों से फसल काटने, दाँय चलाने व बौछार करने का कार्य टैक्टरों व थ्रैसर मशीनों से भी किया जाने लगा है।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—विपणन में एकत्रीकरण महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ पर ही किसान अपनी उत्पत्ति को रुपये में बदलता है। साधारणतया एकत्रीकरण करने वाली संस्थाओं में (i) किसान, (ii) गाँव का व्यापारी, (iii) घूमता-फिरता व्यापारी, (iv) थोक व्यापारी, (v) सहकारी समिति व (vi) मिलों के प्रतिनिधि आते हैं। ऐसा अनुमान है कि देश के कुल बेचने योग्य आधिक्य (Marketable Surplus) का 56% किसान ही एकत्रित करता है। गाँव के व्यापारी व घूमते-फिरते व्यापारी का भाग क्रमश: 21 व 18 प्रतिशत आता है। शेष 5% में अन्य बाकी सभी आते हैं।

गेहूँ उपभोक्ता तक तीन बाजारों में होकर पहुँचता है—(i) प्राथमिक बाजार, (ii) गौण बाजार, व (iii) फुटकर बाजार। प्राथमिक बाजार गाँवों में होते हैं। गौण बाजार गेहूँ में बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये ही अधिकांश आधिक्य की बिक्री करते हैं। इन बाजारों को हम **मण्डी या गंज** कहते हैं। यह मण्डी या गंज किन्हीं स्थानों पर व्यक्तिगत हैं जबकि किन्हीं स्थानों पर स्वायत्त शासन के अधीन हैं तो किन्हीं स्थानों पर नियमित (Regulated) हैं। जो मण्डियाँ या गंज व्यक्तिगत हैं वे किसान को अधिक सुविधा नहीं देते हैं तथा किसान से व्यय भी अधिक लेते हैं लेकिन जहाँ पर मण्डियाँ स्वायत्त शासन के अन्तर्गत हैं वहाँ पर यह उनकी आय की साधन बनी हुई हैं। मण्डियों में सुविधाओं की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। नियमित मण्डी निश्चित रूप से सुविधाओं का ध्यान रखती हैं तथा यहाँ किसान के वसूल होने वाले व्ययों की मात्रा भी निश्चित होती हैं।

इन मण्डियों के समय भिन्न-भिन्न होते हैं तथा बेचने के ढंग भी अलग-अलग होते हैं। कुछ स्थानों पर कच्चे आढ़तिया के यहाँ गेहूँ बिकता है वहीं उसकी तुलाई होती है लेकिन कुछ मण्डियों में सौदा तो कच्चे आढ़तिया के यहाँ होते हैं लेकिन माल की तुलाई क्रेता के यहाँ होती है। यह माल किसान ही अपनी गाड़ी से क्रेता के पास तक पहुँचाता है। साधारणतया गेहूँ का भाव (i) छिपे तौर (Under Cover) से या (ii) नीलाम से (By Auction) या (iii) समझौते द्वारा (By Negotiation) तय किया जाता है।

(i) **छिपे तौर से** (Under Cover)—छिपे तौर के ढंग में क्रेता या उसका दलाल तथा आढ़तिया कपड़े के नीचे एक-दूसरे की उँगली पकड़कर इशारे से भाव तय कर लेते हैं तथा बाद में इसकी सूचना गेहूँ के मालिक को दे दी जाती है। (ii) **नीलाम द्वारा** (By Auction)—नीलाम प्रणाली में गेहूँ का नीलाम किया जाता है। जो व्यक्ति अधिकतम मूल्य लगाता है उसके नाम बोली समाप्त कर गेहूँ की बिक्री कर

दी जाती है। (iii) **समझौते द्वारा** (By Negotiation)—समझौते के अन्तर्गत क्रेता एवं आढ़तिया द्वारा भाव तय किया जाता है तथा उसी मूल्य पर बिक्री कर दी जाती है।

गेहूँ की बिक्री उसकी किस्म के आधार पर की जा सकती है। अलग-अलग किस्म के गेहूँ का भाव अलग-अलग होता है। लेकिन यदि सभी किस्म के गेहूँ को मिलाकर भाव तय होता है तो इसको **दड़े की बिक्री** कहते हैं।

कुछ मण्डियों में **कर्दा** के नाम से कटौती काटी जाती है। यह कटौती निश्चित-सी होती है। कुछ मण्डियों में **धल्ता** भी काटा जाता है। मण्डियों के खर्चे जो किसान से वसूल किये जाते हैं वे भिन्न-भिन्न मण्डियों में भिन्न-भिन्न हैं।

उपरोक्त व्ययों के अतिरिक्त किसान को अन्य खर्चे भी देने पड़ते हैं या करने पड़ते हैं जैसे चुँगी। जिन मण्डियों का नियमन (Regulation) हो चुकता है वहाँ इन व्ययों में काफी कमी आ जाती है।

(3) **वित्त** (Finance)—किसान को आर्थिक सहायता गाँव के बनिये, महाजन व साहूकार के द्वारा दी जाती है। यह सहायता अल्पकालीन होती है जिसका भुगतान फसल के आने पर किया जाता है। इसमें ब्याज की दर काफी ऊँची होती है। कच्चे या पक्के आढ़तियों, मिल मालिक व सहकारी समितियों को बैंकें ऋण देती हैं लेकिन यह ऋण गिरवीं रखकर ही दिया जाता है।

(4) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading & Standardization)—सम्पूर्ण गेहूँ के उत्पादन का 86% की किस्म **वल्गर** (Vulgar) व 14% की **दुरुम** (Durum) होती है। वल्गर गेहूँ मुख्य रूप से उत्तर में होता है जबकि दुरुम दक्षिण की ओर। गेहूँ का वर्गीकरण पक्का (hard), साफ, सफेद, लाल आदि के आधार पर भी होता है।

(5) **सरकारी खरीद एवं वितरण** (Government Procurement & Distribution)—खाद्यान्न के उचित वितरण के उद्देश्य से सरकारी खरीद योजना देश में लागू है जिसके अन्तर्गत गेहूँ की सरकारी खरीद की जाती है जिसका खरीद मूल्य कृषि मूल्य आयोग की सलाह पर केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता है।

इस प्रकार की सरकारी खरीद (i) राज्य सरकारें, (ii) सहकारी संगठन, (iii) खाद्य निगम, व (iv) केन्द्रीय सरकार के माध्यम से होती हैं तथा इस प्रकार एकत्रित गेहूँ को 2,50,000 राशन या उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से जन-साधारण को एक निश्चित मूल्य पर बेचा जाता है जिससे कि खाद्यान्नों में मूल्य वृद्धि न हो तथा जनता को आवश्यक खाद्य पदार्थ उचित मूल्य पर मिलते रहें। सरकार को इस प्रकार गेहूँ की बिक्री उचित मूल्य पर करने पर हानि होती है जो अरबों रुपयों में बैठती है।

(II) भारत में चावल का विपणन
(MARKETING OF RICE IN INDIA)

भारत में चावल का फसली क्षेत्र एवं उत्पादन अन्य खाद्यान्नों की तुलना में सबसे अधिक है। वर्तमान में 387 लाख हैक्टेयर भूमि में चावल बोया जाता है जिसका उत्पादन 1977-78 में 527 लाख टन हुआ है। भारत में चावल की खपत उत्पादन से अधिक होने के कारण प्रतिवर्ष आयात करना पड़ता है। चावल भेजने वाले देशों में वर्मा, कम्बोडिया, थाइलैण्ड, संयुक्त अरब गणराज्य, व पाकिस्तान आदि प्रमुख हैं।

भारत में चावल की उत्पत्ति प्रायः सभी भागों में होती है लेकिन मुख्य उत्पादन केन्द्र तमिलनाडु (21·3); बंगाल (16·4); बिहार (12·3); उत्तर प्रदेश (9·6); व मध्य प्रदेश (9·1) राज्य हैं जिनका कुल उत्पादन 70 प्रतिशत के लगभग है।

"किसान के द्वारा कुल उत्पादन का 72·5 प्रतिशत (46 प्रतिशत उपभोग या अदल-बदल के सौदों के लिए, 20 प्रतिशत वस्तु में भुगतान के लिए व 6·5 प्रतिशत बीज के लिए) रोक लिया जाता है और केवल 27·5 प्रतिशत उत्पादन ही बिकने को आता है।"[1]

भारत में चावल की तीन प्रमुख फसलें (i) औस (Aus or Autumn), (ii) आमन (Aman or Winter), व (iii) बोरो (Boro or Summer) होती हैं, जो क्रमशः सितम्बर से अक्टूबर, दिसम्बर से जनवरी, व अप्रैल से मई महीनों में तैयार हो जाती हैं। अधिकांश उत्पत्ति पहली दो फसलों में होती है। तीसरी फसल में बहुत कम उत्पत्ति होती है। भारत में चावल का विपणन निम्न प्रकार से होता है :

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Market)—चावल की फसल की कटाई (Reaping) हँसिये से की जाती है। पौधों को ऊपर से काटा जाता है। निचला भाग जानवरों के चारे के लिए छोड़ दिया जाता है। कहीं-कहीं पर फसल के कटने पर ही पयाल से अलग करने की क्रिया (Threshing) शुरू हो जाती है और कहीं पर पौधों को काटने के बाद कुछ दिनों के लिए सूखने को छोड़ देते हैं जिससे धान के अन्दर चावल कुछ कड़ा हो जाये। इस क्रिया में लकड़ी के डण्डों से पीटकर या जानवरों के पैरों से दबाकर दाने व पयाल अलग किया जाता है और अन्त में हवा में ओछार करके चावल को अलग कर दिया जाता है। इस क्रिया को साफ करने की क्रिया (Winnowing) कहते हैं। देश में विभिन्न स्थानों पर धान से चावल निकालने की मिलें भी हैं जो चावल की किस्म (quality), रंग, चमक व खाने में स्वाद लाने के लिए कुछ क्रियाएँ भी करती हैं।

Report on the Marketing of Rice in nIdia, Government of India, pp. 6& 11..

(2) **एकीकरण** (Assembling)—बाजार में जो उत्पत्ति बिकने आती है उसमें 61 प्रतिशत धान के रूप में व 39 प्रतिशत चावल के रूप में होती है। धान व चावल के एकीकरण में निम्न संस्थाओं द्वारा योग दिया जाता है :[1]

संस्था	कुल का प्रतिशत
1. थोक व्यापारी	19·2
2. घूमता-फिरता व्यापारी (Itinerent trader)	15·4
3. गाँव का व्यापारी	15·2
4. उत्पादक	13·6
5. चावल मिल	13·1
6. गाँव में सीधा वितरण (Direct Distribution in Villages)	11·2
7. जमींदार	6·8
8. व्यावसायिक छिलका अलग करने वाली संस्थाएँ (Professional Dehuskers)	3·3
9. बड़े किसान	2·1
10. सहकारी संस्थाएँ	·1
	100·00

धान के रूप में बिक्री पंजाब, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक व केरल में होती है व चावल के रूप में बंगाल, बिहार, उड़ीसा व उत्तर प्रदेश में होती है। विभिन्न राज्यों में किसान द्वारा उत्पत्ति बाजार में लाने के प्रतिशत भिन्न-भिन्न हैं जैसे पंजाब में 35, केरल में 9।

चावल व धान तीन बाजारों में होकर उपभोक्ता तक पहुँचते हैं—प्राथमिक बाजार (Primary Markets), गौण बाजार (Secondary Markets), व सीमान्त बाजार (Terminal Markets)—लेकिन इन तीनों में भेद करना कठिन है। प्राथमिक बाजार चावल उत्पन्न होने वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनका नाम विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न है जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, आसाम व मध्य प्रदेश में 'हाट' तथा तमिलनाडु व दक्षिणी भारत में शंडीज (Shandies)। यह 'हाट' व 'शंडीज' हफ्ते में एक या दो बार लगते हैं। यहाँ बड़े किसान (जो दूसरे छोटे किसानों की उत्पत्ति खरीद लेते हैं), छोटे किसान व घूमता-फिरता व्यापारी आदि उपज को लाते हैं जो थोक व्यापारियों द्वारा खरीदी जाती है। थोक बाजार शहरों में या बड़े कस्बों में पाये जाते हैं जिन्हें गंज या मण्डी कहते हैं। यह शहर व कस्बे गाँवों से सम्बन्धित होते हैं। यहाँ खरीद या बिक्री के लिए निश्चित स्थान होता है। सीमान्त

1 *Report on the Marketing of Rice in India*, p. 180.

बाजार चावल को या तो निर्यात करते हैं या अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाते हैं। थोक बाजारों का संगठन अब नियमित बाजारों (Regulated Markets) के रूप में विभिन्न राज्यों में हो रहा है जो राज्य सरकारों के नियमों और आदेशों के अनुसार कार्य करते हैं।

थोक बाजारों में चार प्रकार के कार्य करने वाले पाये जाते हैं—(i) **आढ़तिया,** यह अपने ग्राहकों को निःशुल्क चावल व धान रखने की सुविधा देते हैं। इनके द्वारा माल की विक्री मूल्यों पर कुछ आढ़त वसूल की जाती है। (ii) **दलाल,** यह क्रेता व विक्रेता के बीच सौदा कराने का कार्य करते हैं जो इस कार्य के लिए बिक्री मूल्य पर दलाली लेते हैं। (iii) **तौला** (weightmen), इसको चावल व धान के तौलने के लिए ढुलाई विक्री मूल्य पर दी जाती है। (iv) **पल्लेदार या हमाल,** चावल या धान को गाड़ी से उतारने या चढ़ाने का कार्य इनके द्वारा किया जाता है तथा पारिश्रमिक पल्लेदारी के रूप में मिलता है जो वजन या नग पर आधारित होता है।

प्रातःकाल ही चावल व धान की भरी हुई गाड़ियाँ बेचने वाले लाकर आढ़-तिया की दुकान पर खड़ी कर देते हैं। चावल बोरों में भरा रहता है लेकिन धान खुला ही गाड़ी में भरा होता है। बेचने वाले की ओर से आढ़तिया प्रतिनिधि का कार्य करता है। चावल या धान तीन प्रकार से बेचा जाता है : (i) नीलाम द्वारा, (ii) समझौते द्वारा, (iii) छिपेतौर से (under cover)। **नीलाम में** अधिकतम बोली बोलने वाले को बिक्री कर दी जाती है। यह प्रणाली महाराष्ट्र व कर्नाटक में अधिक पायी जाती है। **समझौते में** क्रेता व आढ़तिया के बीच जो भाव तय हो जाय उस पर बिक्री कर दी जाती है। यह प्रणालो उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व आन्ध्र में पायी जाती है। **छिपेतौर में** क्रेता या उसका दलाल व आढ़तिया कपड़े के नीचे एक-दूसरे की उँगलियाँ दबाकर भाव तय करते हैं। भाव तय हो जाने पर चावल या धान के मालिक को भाव बता दिया जाता है तथा निश्चित किये भाव पर बिक्री कर दी जाती है। यह प्रणाली महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश व कर्नाटक में पायी जाती है।

अन्य वस्तुओं के बाजारों की भाँति चावल व धान के बाजारों में भी **विभिन्न प्रकार की कटौतियाँ** (Deductions), **अशुद्धि** (Impurity), **नमी**(Moisture)**या सेवा** (Service) **के कारण होती हैं।** यह कटौतियाँ किन्हीं बाजारों में निश्चित हैं तथा किन्हीं बाजारों में धान व चावल को देखकर निश्चित की जाती हैं। **कर्दा या ढल्ता** (Karda or Dhalta) चावल या धान के अशुद्ध होने के कारण विक्रेता से काटा जाता है जो औसतन 2·20 रुपये प्रति सैंकड़ा पड़ता है। इसके काटने की दर विभिन्न स्थानों पर विभिन्न है। आढ़त की दर पश्चिमी बंगाल में दशपारा नामक स्थान पर 2·20 रुपये प्रति सैंकड़ा है जो सबसे अधिक है। तमिलनाडु में आढ़त क्रेता से वसूल की जाती है जो 67 पैसे प्रति सैंकड़ा है। इसी प्रकार **पल्लेदारी व दलाली** भी विभिन्न स्थानों पर विभिन्न हैं। **धर्मादा** भी विक्रेता से काटा जाता है जो उत्तर प्रदेश में 8 पैसे प्रति

सैकड़ा है जबकि हैदराबाद में एक प्रतिशत है। इन खर्चों के अतिरिक्त महतर, पानी वाला व आढ़तिया के रसोइया आदि के खर्चे भी क्रेता से वसूल किये जाते हैं। विभिन्न स्थानीय निकायों व पंचायतों के द्वारा भी कर वसूल किये जाते हैं। 100 रुपये के मूल्य की उत्पत्ति पर वसूल किये जाने वाले कुल खर्चों का प्रतिशत उत्तर प्रदेश में 13·89 है जो सबसे अधिक है।[1] लेकिन नियमित मण्डियों की सहायता होने से इन व्ययों में काफी कमी आ गई है।

(3) **वित्त** (Finance)—किसान को आर्थिक सहायता गाँव के बनिये, साहूकार व महाजन के द्वारा दी जाती है। जमींदार भी इसमें कुछ सहायता करते हैं। ब्याज की दर सवाई से दूनी तक होती है। पश्चिमी बंगाल में यदि कृषक उत्पत्ति को निश्चित मूल्य पर बेचने का वचन ऋण लेते समय देता है तो ब्याज नहीं ली जाती। बिहार व उड़ीसा में बनिये 12 से 25 प्रतिशत तक ब्याज लेते हैं तथा पहले से निश्चित मूल्य पर चावल या धान खरीदने का सौदा कर लेते हैं। तमिलनाडु में ब्याज को दर 12 से 30 प्रतिशत तक होती है। उत्तर प्रदेश में ब्याज की दर 18·75 से 37·5 प्रतिशत तक है।

थोक व्यापारी, कमीशन एजेण्ट व चावल मिल गाँव के बनिये को उधार व्यक्तिगत जमानत पर देते हैं तथा ब्याज की दर 12 से 18 प्रतिशत तक होती है। यह बनिये उत्पत्ति को अपने ऋणी से वसूल कर लेनदार तक पहुँचाते हैं।

बैंकों के द्वारा व्यापारियों को ऋण धान या चावल को गिरवीं रखकर दिया जाता है जो उपज के मूल्य के तीन चौथाई तक हो सकता है। कुछ सहकारी संस्थाएँ भी इसी प्रकार ऋण देती हैं। ब्याज की दर इन संस्थाओं की 9 से 12 प्रतिशत तक होती है।

(4) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading and Standardization)—उत्तर प्रदेश में चावल का व्यापार व्यापारिक विवरणों व उत्पत्ति के स्थानों के नाम के आधार पर होता है। यह व्यापारियों व उपभोक्ता के लिए किस्म (quality) का कार्य करता है जैसे देहरादून का बासमती, पीलीभीत का हँसराज, फतेहपुर का अन्जी, गौरया या नौगड, सम्हालु और हल्द्वानी का अंजना। चावल को बढ़िया (Fine), मध्यम (Medium) व घटिया (Bold), हाथ से बना, व मिल का बना हुआ आदि श्रेणियों में बाँटा जाता है। चावल का कोई प्रमाप व वर्गीकरण नहीं है अतः खरीद व बिक्री नमूने (Sample) के आधार पर होती है।

(5) **सरकारी खरीद एवं वितरण** (Government Procurement and Distribution)—चावल की भी सरकारी खरीद की जाती है। इसके दो उद्देश्य हैं : एक तो किसान को उचित मूल्य दिलाना व दूसरा जनसाधारण के वितरण के

1 *Report on Marketing of Rice in India,* Government of India, p. 197.

लिए चावल उपलब्ध करना। यह सरकारी खरीद केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर होती है तथा इसको (i) केन्द्रीय सरकार, (ii) राज्य सरकारें, (iii) सहकारी संगठन, एवं (iv) खाद्य निगम के द्वारा खरीदा जाता है। इसका वितरण उचित मूल्य/राशन की दुकानों के माध्यम से होता है। केन्द्रीय सरकार को इस प्रकार के क्रय एवं विक्रय में अरबों रुपयों की हानि होती है।

गेहूँ एवं चावल की विपणन समस्याएँ

(MARKETING PROBLEMS OF WHEAT AND RICE)

गेहूँ एवं चावल दोनों के विपणन में कुछ समस्यायें आती हैं जिन्हें हम विपणन समस्याएं कहते हैं। यह समस्याएँ निम्नलिखित हैं :

(1) **उत्पादन की अनिश्चितता**—गेहूँ एवं चावल दोनों का उत्पादन घटता-बढ़ता रहता है। इसके कारण उत्पादन क्षेत्र का घटना व बढ़ना, प्राकृतिक प्रकोप जैसे अत्यधिक या अल्प वर्षा, सूखा, फसलों में कीड़े आदि हैं।

(2) **अपर्याप्त भण्डार**— इन दोनों का उत्पादन एक मौसम में होता है जबकि उपभोग वर्ष भर होता है। अतः इन फसलों को सुरक्षित रखने के लिए भण्डारों की आवश्यकता है। भारत में इस प्रकार के भण्डारों की भारी कमी है जिससे गेहूँ व चावल खराब हो जाते हैं तथा मूल्यों में परिवर्तन होते रहते हैं।

(3) **अपर्याप्त वित्त सुविधाएं**—चावल एवं गेहूँ के किसानों को वित्त सुविधाएँ उचित मात्रा में नहीं मिल पाती हैं जिससे उनको मध्यस्थों, महाजनों व आढ़तियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(4) **नियमित मण्डियों का अभाव**—भारत में मण्डियों में भारी धोखेबाजी होती है जिससे किसान को उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। अतः किसान को उचित मूल्य दिलाने के लिए नियमित मण्डियाँ होनी चाहिए जिसका कि भारी अभाव है।

(5) **अत्यधिक मध्यस्थ**—चावल व गेहूँ के विपणन में किसान व उपभोक्ता के बीच कई मध्यस्थ होते हैं जिससे उत्पत्ति का मूल्य तो बढ़ जाता है लेकिन उसका लाभ किसान को नहीं मिल पाता है।

(6) **परिवहन सुविधाओं का अभाव**—चावल व गेहूँ के विपणन में परिवहन सुविधाओं का अभाव भी एक समस्या है। सड़कों की कमी है। साधनों की कमी है। परिवहन साधन मँहगे हैं।

(7) **सरकारी नीति**—सरकार की नीति भी इन वस्तुओं के विपणन के सम्बन्ध में स्थिर नहीं है। कभी तो क्षेत्रीय प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं तो कभी उठा लिए जाते हैं। इससे विपणन में कठिनाई होती है।

औद्योगिक कच्चे माल का विपणन (Marketing of Industrial Raw Material)

भारत में औद्योगिक कच्चे माल के विपणन के अध्ययन के लिए जूट, रुई व तिलहन (अलसी, अण्डी, लाहा व सरसों) हैं, जिनका विवरण आगे दिया गया है :

(III) भारत में जूट का विपणन
(MARKETING OF JUTE IN INDIA)

जूट के उत्पादन में विभाजन से पूर्व भारत का एकाधिकार था लेकिन अब संसार के कुल उत्पादन में भारत का हिस्सा बराबर गिर रहा है, यही नहीं भारत के कुल निर्यात में भी जूट तथा जूट से बनी वस्तुओं के निर्यात में कमी होती जा रही है और इसका हिस्सा जो 1950-51 में 19·6% था अब घटकर 1977-78 में 4·1% रह गया है।

वर्ष 1946-47 में भारत (अविभाजित) में जूट का फसली क्षेत्र व उत्पादन क्रमशः 19 लाख एकड़ व 46 लाख 48 हजार गाँठें थीं लेकिन विभाजन के पश्चात् 1947-48 वर्ष में भारत का फसली क्षेत्र व उत्पादन क्रमशः 6 लाख 53 हजार एकड़ व 16 लाख 59 हजार गाँठें रह गया। इसके अतिरिक्त लगभग सभी मिल भारतीय क्षेत्र में ही रह गये। अतः उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता प्रतीत हुई जिससे मिलों को चालू रखा जा सके। तब से अब तक भूमि की मात्रा में व उत्पादन में बराबर वृद्धि हुई है। 1977-78 वर्ष में जूट का उत्पादन 71 लाख गाँठें हुआ है। भारत में जूट मिलों की क्षमता देखते हुए जूट का उत्पादन कम है इसलिए जूट को आयात करना पड़ता है।

भारत में जूट के कुल उत्पादन का लगभग आधा पश्चिमी बंगाल, चौथाई असम व पाँचवाँ भाग बिहार में पैदा होता है। उड़ीसा, उत्तर प्रदेश व त्रिपुरा में भी कुछ उत्पादन होता है।

साधारणतया जूट की खेती की बुआई मार्च से लेकर मई तक व कटाई जुलाई से सितम्बर तक होती है।

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Market)—जूट के पौधे (plants) हँसिये से काटे जाते हैं व छोटे-छोटे बण्डलों में बाँध दिये जाते हैं। इन छोटे-छोटे बण्डलों को जोड़कर बड़े बण्डल बना दिये जाते हैं जिन्हें 2 से 4 दिन तक खेत में छोड़ देते हैं जिससे कि पत्तियाँ सूख कर अलग हो सकें। इसके बाद उन्हें रुके हुए या चलते हुए पानी में डाल देते हैं जिससे रेशों के ऊपर चढ़ी हुई मिट्टी की परतों को अलग किया जा सके व रेशे मुलायम हो सकें। पानी यदि साफ होता है तो जूट का रंग भी सफेद रहता है और यदि पानी गन्दा होता है तो जूट का रंग भी काला हो जाता है। पानी में पौधों को साफ करने की क्रिया को गलाना (Retting) कहते हैं। इसके बाद बण्डलों को थोड़े पानी या जमीन पर रखते हैं व श्रमिक 2-3 फुट पानी में खड़ा होता है और एक-एक करके बण्डलों को बायें हाथ से उठाता है और दायें हाथ से लकड़ी की मोंगरी से बार-बार पौधों की जड़ों को कूटता है। जड़ के टूट जाने पर रेशे अलग-अलग हो जाते हैं और पानी में साफ करके बण्डल को सूखी

जमीन पर फेंक देते है जहाँ 2-3 दिन उनको सुखाया जाता है तथा 5-5 किलो के गट्ठे बनाये जाते हैं जिन्हें धरस (Dharas) कहते हैं। यह धरस पश्चिमी बंगाल में हाटों में बेचे जाते हैं। अन्य स्थानों पर धरस के बण्डल बनाये जाते हैं जिन्हें मुट्ठे (Muttas) कहते हैं।

विपणन सत्र (Marketing Season) के शुरू होने के 3-4 माह में ही अधिकांश किसान अपनी उत्पत्ति को बेच देते हैं जैसे पश्चिमी बंगाल में 64 प्रतिशत किसान, आसाम में 69 प्रतिशत किसान आदि।[1] इतनी शीघ्र बिक्री का कारण धन की आवश्यकता व परिवहन के उचित एवं पर्याप्त साधनों का अभाव है।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—किसान के द्वारा विक्रय योग्य आधिक्य (Marketable Surplus) का 61 प्रतिशत अपने दरवाजे पर, 31 प्रतिशत हाटों व प्राथमिक मण्डियों में व शेष 8 प्रतिशत थोक बाजार (Secondary Market) में बेचा जाता है। किसान के द्वारा गाँवों में बिक्री के कारण अपर्याप्त वित्त, बेचने योग्य आधिक्य की कमी, बाँटों में विभिन्नता (Diversity of Weights), असन्तोषजनक संचार (Unsatisfactory Communication), अत्यधिक मध्यस्थ व उनकी बुराइयाँ (Malpractices) व भण्डार सुविधाओं का अभाव है।[2] गाँव में खरीद करने वालों में व्यापारी व फारिया (Farias) प्रमुख हैं। कच्ची गाँठ बाँधने वाले (Kachcha Balers) भी अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से उत्पादकों से सीधी खरीद करते हैं।

थोक बाजारों में 8 प्रतिशत किसान द्वारा, 38 प्रतिशत फारिया व व्यापारियों द्वारा, 37 प्रतिशत गाँठ बाँधने वालों द्वारा व 13 प्रतिशत स्थानीय आढ़तियों द्वारा लाया जाता है। इस प्रकार विक्रय योग्य आधिक्य का 96 प्रतिशत जूट थोक बाजारों में ही बिकता है।

सीमान्त बाजारों (Terminal Markets) में 4 प्रतिशत हाट व प्राथमिक बाजारों से व 36 प्रतिशत थोक बाजार से आता है। इस प्रकार उत्पादक के बाजार योग्य आधिक्य का 40 प्रतिशत भाग सीमान्त बाजारों में आ जाता है। सीमान्त बाजारों में खरीद मिलों व पक्के आढ़तियों के द्वारा की जाती है। मिलों के द्वारा कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत खरीद लिया जाता है।

जूट के तत्कालीन बाजार (Spot Market) **कलकत्ते में तीन स्थानों पर हैं**—(i) काशीपुर (Cassipure), (ii) श्याम बाजार (Sham Bazar), (iii) हतखोला (Hat Khola)।

---

1 *Report on the Marketing & Transport of Jute in India*, Indian Central Jute Committee, Calcutta, p. 92.

2 *Ibid.*, p. 105.

(i) **काशीपुर** (Cassipure) पुराना बाजार है। इस बाजार में अधिकांश जूट पश्चिमी बंगाल के उत्तरी जिलों व बिहार से आता है। साधारण मौसम (Normal Season) में लगभग 24 लाख कुन्टल जूट की खरीद व बिक्री यहाँ होती है। रेलवे गोदाम (Railway Shed) खरीद व बिक्री का केन्द्र है। माल का मालिक बिल्टी (Railway Reciept) को दलालों को दे देते हैं। दलाल माल को देखते हैं व आवश्यकता पड़ने पर गाँठ को तोड़कर भी दिखा देते हैं। भाव तय हो जाने पर क्रेता दलाल के माध्यम से माल छुड़ा लेता है। माल इस स्टेशन पर आने के 24 घण्टे तक यदि मालिक या अन्य व्यक्ति के द्वारा न छुड़ाया जाय तो इस अवधि की समाप्ति पर विलम्ब कर (Demurrage) देना पड़ता है। अतः विक्रेता इस बात का प्रयत्न करता है कि उसका माल पहले 24 घण्टे की अवधि में ही बिक जाये जिसका परिणाम यह होता है कि काशीपुर बाजार हमेशा क्रेताओं की इच्छा पर चलता रहता है।

(ii) **श्याम बाजार** (Sham Bazar) में आढ़तिया होते हैं जिनके पास स्वयं के या किराये के गोदाम होते हैं। इन गोदामों में अपने ग्राहक का माल रखने पर कोई व्यय उससे नहीं लेते हैं। यहाँ माल गाड़ियों या ट्रकों में भर कर आता है। सौदा आढ़तियों के माध्यम से होता है। माल की सुपुर्दगी सौदा होने पर तुरन्त कर दी जाती है तथा भुगतान 4 दिन में आढ़तियों को मिलता है। आढ़तिया अपने व्यापारी को कुछ भुगतान माल आने पर तथा कुछ क्रेता से भुगतान मिलने पर करता है। इस बाजार में लगभग 3 लाख कुन्टल जूट प्रतिवर्ष आता है।

(iii) **हतखोला** (Hat Khola) इस बाजार में आढ़तिये व व्यापारी हैं। यहाँ माल कच्ची गाँठों के रूप में आता है तथा माल की खरीद व बिक्री श्याम बाजार की भाँति ही होती है। इस बाजार में प्रतिवर्ष 80 हजार कुन्टल जूट बिकने आता है।

कलकत्ता में जूट के बहुत से व्यापार संघ (Trade Associations) हैं जिनका सम्बन्ध विभिन्न चेम्बर ऑफ कामर्स से है। इन संगठनों का उद्देश्य जूट उत्पादकों, दलालों व अन्य हितों की रक्षा करना व अच्छी परिपाटी डालना है। जूट मिलों का प्रतिनिधित्व भारतीय जूट मिल्स संघ (Indian Jute Mills Association) के द्वारा किया जाता है जो जूट के व्यापार को काफी प्रभावित करता है।

जूट के बाजारों में विभिन्न प्रकार के खर्चे व कटौतियाँ नकद व वस्तु (Cash & Kind) में बेचने वाले से वसूल किये जाते हैं। गाँवों में ढल्ता (Dhalta) के अतिरिक्त अन्य कोई व्यय विक्रेता से नहीं लिया जाता। प्राथमिक बाजारों में खर्चे बहुत कम मात्रा में वसूल किये जाते हैं जबकि थोक बाजारों व सीमान्त बाजारों में अधिकतम मात्रा में वसूल किये जाते हैं।

साधारणतया निम्न खर्चे वस्तु (Kind) में विक्रेता से वसूल किये जाते हैं :

(i) **ढल्ता**—वस्तु नमूने के अनुसार न होने पर 40 किलो पर 100 ग्राम से 2 किलो तक ढल्ता विक्रेता से काटा जाता है। किन्हीं बाजारों में ढल्ता निश्चित

है चाहे जूट नमूने के अनुसार क्यों न हो। कुछ बाजारों में जूट को देखकर व अनुमान लगाकर ढल्ता काटा जाता है। (ii) **पल्लेदारी**—जूट को गाड़ी से उतारने व बिकते समय तौलने में सहायता करने वालों को जो मजदूरी दी जाती है उसे पल्लेदारी कहते हैं। यह पल्लेदारी 250 ग्राम प्रति 40 किलो की दर से काटी जाती है। (iii) **आढ़तदारी**—आढ़तिया माल के बेचने में सहायता करता है तथा अपने गोदाम में विक्रेता का माल रखवाता है। इस कार्य के लिए उसे जो पारिश्रमिक दिया जाता है उसे आढ़तदारी कहते हैं। इसको प्राप्त करने की दर 500 ग्राम प्रति 40 किलो पर है। (iv) **धर्मादा**—साधारणतया यह नकदी में वसूल किया जाता है लेकिन कुछ स्थानों पर 500 ग्राम प्रतिगाड़ी के हिसाब से वसूल किया जाता है।

निम्न खर्चे नकदी (Cash) **में विक्रेता से वसूल किये जाते हैं :**

(i) धर्मादा या ईश्वर वृत्ति, (ii) गोशाला, (iii) दुबारा गाँठ बाँधने का व्यय, (iv) पल्लेदारी, (v) दलाली, (vi) स्कूल कोष, (vii) पंचायत या चुँगीकर आदि। इन खर्चों की दर विभिन्न बाजारों में विभिन्न है। कलकत्ता के हतखोला, काशीपुर व श्याम बाजार से प्रति 100 रुपये के मूल्य के जूट पर विक्रेता से क्रमशः 1 रुपया 60 पैसे, 2 रुपया 22 पैसे, व 3 रुपये 17 पैसे वसूल किये जाते हैं।

(3) **वित्त** (Finance)—किसान की आर्थिक सहायता गाँव के व्यापारी, महाजन, आढ़तिया व कच्ची गाँठ बाँधने वाले के द्वारा की जाती है। गाँव के व्यापारियों को उधार आढ़तिया व कच्ची गाँठ बाँधने वालों से मिलता है। कच्ची गाँठ बाँधने वाले व आढ़तिया स्वयं अपनी पूँजी लगाते हैं या मिलों व थोक खरीददारों से उधार ले लेते हैं। मिलों व थोक व्यापारियों को बैंक द्वारा ऋण दिये जाते हैं।

(4) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading and Standardization)—जूट की किस्म (quality), रेशे की लम्बाई, ताकत व रंग पर निर्भर करती है लेकिन यह सभी बातें भूमि की प्रकृति, मौसम, पानी (जिसमें साफ किया जाता है) व अन्य क्रियाओं पर निर्भर है। जूट की किस्म एक-सी न होने के कारण, उत्पत्ति स्थान के आधार पर वर्गीकृत की जाती है। साधारणतया जूट दो प्रकार का होता है—(i) सफेद जूट (Corchorus Capsularis), व (ii) तोस्सा जूट (Corchorus Olitorius)। दोनों सफेद जूट व तोस्सा जूट स्थान के अनुसार 9 प्रकार के होते हैं जैसे—उत्तरी उड़ीसा, निम्न असम (Lower Assam), उच्च असम (Upper Assam), मुर्शिदाबाद, पश्चिमी बिहार, हुगली व स्थानीय आदि। यह वर्गीकरण मिलों द्वारा अपनी खरीद के लिए अपनाया जाता है।

वर्गीकरण का कार्य किसान व व्यापारियों के द्वारा बिल्कुल नहीं किया जाता है वल्कि आढ़तिया व कच्ची गाँठ बाँधने वाले यह कार्य करते हैं।

जूट की किस्में अधिक होने के कारण मूल्यों की तुलना करना कठिन होता है। जूट के मूल्य क्रेता के ऊपर अधिक निर्भर रहते हैं।

(5) **सरकारी खरीद** (Government Procurement)—जूट के मूल्य समय समय पर घटते व बढ़ते रहते हैं जिससे किसान व उद्योग दोनों को हानि होती है। अतः जूट के मूल्यों में स्थायित्व लाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने अभी कुछ वर्ष पूर्व एक निगम भारतीय जूट निगम (The Jute Corporation of India) के नाम से स्थापित किया है। इस निगम का कार्य सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर जूट को उस समय क्रय करना है जबकि मूल्य गिरने की स्थिति में होते हैं और उस समय विक्रय करना है जबकि मूल्य बढ़ने की स्थिति में हैं। भारतीय जूट निगम की इस प्रकार की क्रियाओं से जूट मूल्यों में स्थिरता लाने का प्रयास किया जा रहा है।

(IV) भारत में कपास या रुई का विपणन
(MARKETING OF COTTON IN INDIA)

व्यवसायिक फसलों में कपास सबसे महत्वपूर्ण है। 1977-78 वर्ष में कपास का उत्पादन 71 लाख गाठें हुआ है।

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भारत रुई का निर्यात करता था तथा जापान भारतीय रुई का सबसे प्रमुख क्रेता था। लेकिन जापान के युद्ध में सम्मिलित हो जाने से रुई का निर्यात उस देश को बन्द हो गया। देश में भी खाद्यान्नों की कमी हो गयी अतः कपास की भूमि खाद्यान्नों की उत्पत्ति के काम में आने लगी। देश का विभाजन होने से अच्छे किस्म की कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये हैं जिससे अच्छे किस्म की रुई का आयात करना पड़ता है। भारत में 25-30 प्रतिशत लम्बे रेशेवाली (Long Staple), 55 प्रतिशत मध्यम श्रेणी (Medium Staple) व बाकी निम्न श्रेणी (Short Staple) की कपास की उत्पत्ति होती है।

कपास का उत्पादन गुजरात (27·8%), महाराष्ट्र (24·8%), पंजाब (17·5%), कर्नाटक (8·4%), तमिलनाडु (7·6%), मध्य प्रदेश (6·7%), तथा अन्य राज्यों में (7·7%) होता है। गुजरात व महाराष्ट्र कुल उत्पादन का आधे से अधिक भाग उत्पादित करते हैं। भारत में कपास की दो फसलें होती हैं। इनके बोने का समय मार्च से अगस्त तक और कपास चुनने का समय सितम्बर से अप्रैल तक होता है।

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Ma k.t)—कपास उत्पत्ति की क्रियाएँ कई होती हैं जैसे भूमि तैयार करना, पौधा लगाना, पौधों को बीमारियों व कीटाणुओं से बचाना, नराई करना व फसल एकत्रित करना आदि। अन्तिम क्रिया से विपणन की तैयारी प्रारम्भ होती है। जिस समय कपास गूले से-निकलती है तो उसे किसान स्वयं या मजदूरों से एकत्रित कराते हैं। कपास को बीनते समय भारत में सावधानी नहीं बरती जाती है। सभी प्रकार के गूले एक ही जगह एकत्रित किये जाते हैं तथा बीनते समय उनसे पत्तियाँ अलग नहीं की जाती हैं।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—किसान के द्वारा अपनी उत्पत्ति कपास के रूप में ही बेची जाती है। किसान 67 प्रतिशत उत्पत्ति गाँव में ही (जैसे 9 प्रतिशत

लेनदारों को, 17 प्रतिशत गाँव के बनियों को, 40 प्रतिशत घूमते-फिरते व्यापारियों को व 21 प्रतिशत कपास ओटने वाले कारखानों (Ginneries) को बेच लेता है। गाँव में बेचने का प्रतिशत पंजाब के कुछ जिलों (जैसे अमृतसर, जलंधर व लुधियाना) में 85 है।[1] गाँव में बेचने का मुख्य कारण आधिक्य की कमी है। इसके अतिरिक्त परिवहन साधन का अभाव, विपणन ज्ञान की कमी, व बाजार की बुराइयाँ भी उसको गाँव में बेचने के लिए विवश करती हैं।

थोक बाजारों में कपास गाड़ी में भरकर कच्चे आढ़तिया की दुकान पर लाई जाती है जहाँ उसमें से नमूना लेकर ग्राहकों को दिखायी जाती है। भाव तय करने के तीन तरीके हैं। (i) **नीलाम**, (ii) **समझौता**, व (iii) **छिपेतौर से** (कपड़े के नीचे उंगलियों द्वारा)। इन तीन तरीकों में से कोई एक तरीका अपनाया जाता है। कपास के तुल जाने पर भुगतान कर दिया जाता है लेकिन भुगतान से पहले विभिन्न प्रकार की कटौतियाँ की जाती हैं। तौल उचित नहीं होती है क्योंकि अधिकांश दशाओं में फैक्ट्रियों के दरवाजे पर कपास को तौला जाता है जहाँ किसान को भाव तय हो जाने पर सुपुर्दगी (Delivery) के लिए ले जाना पड़ता है। कपास में मिलावट होने के कारण कर्दा काटा जाता है जो इन्दौर (मध्य प्रदेश) में 2 किलो प्रति 40 किलो है। टाट के वास्तविक वजन से अधिक काटा जाता है। किस्म में खराबी बताकर बट्टा काटा जाता है जो देश में $1\frac{1}{4}$ से 5 प्रतिशत तक है। मुद्दत के नाम से कटौती की जाती है। (क्रेता से आढ़तिया को भुगतान कुछ समय बाद मिलता है जबकि आढ़-तिया कपास के बिकने पर तुरन्त भुगतान करता है। अतः उस अवधि के लिए विक्रय मूल्य में से कुछ प्रतिशत कटौती कर दी जाती है जिसे मुद्दत कहते हैं) इनके अलावा स्थानीय निकायों के कर व विभिन्न व्यापारिक खर्चे वसूल किये जाते हैं। आजकल इन बाजारों के स्थान पर नियमित बाजार स्थापित किये जा रहे हैं, जिनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। अतः आशा है कि यह कटौतियाँ कम से कम हो जावेंगी।

स्थानीय बाजारों में जो उत्पत्ति बेची जाती है उसका 90 से 98 प्रतिशत तक कपास के रूप में होता है। कपास से बिनौले अलग करने का कार्य कारखानों (Factories) द्वारा किराये पर किया जाता है। कुछ दशाओं में कारखाने का मालिक अपना भी कार्य करता है, जिसके लिए उसे कपास खरीदनी पड़ती है। मिलों के पास स्वयं की साफ करने वाली मशीनें हैं। देश के विभिन्न कारखानों द्वारा इस कार्य के लिए 8 से 15 रुपये प्रति गाँठ वसूल किया जाता है। कपास से रुई निकालते समय कारखाने के मालिक निम्न श्रेणी की कपास मिला देते हैं या रुई को भिगो देते है जिससे आगे चलकर रुई की किस्म व रंग खराब हो जाता है।

---

1 *Report of the Cotton Marketing Committee*, Ministry of Food & Agriculture, Government of India, pp. 9 & 10.

(3) **वित्त** (Finance)—किसान को वित्तीय सहायता साहूकार, महाजन, गाँव के बनिये, घूमते-फिरते व्यापारी, कपास ओटने वाले कारखानों के मालिक आदि के द्वारा दी जाती है जो धन उधार देकर उत्पत्ति को पहले ही खरीदने का सौदा कर लेते हैं। घूमते-फिरते व्यापारी व गाँव के बनिये को आढ़तिया के द्वारा उधार दिया जाता है। आढ़तिया को उधार मिल के मालिकों, बैंकों व कपास ओटने वाले कारखानों के द्वारा दिया जाता है। मिलों को ऋण बैंकों के द्वारा गिरवीं रख कर दिया जाता है।

(4) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading & Standardization)—रुई के वर्गीकरण का आधार रेशे की लम्बाई, सफाई व चमक है। साधारणतया रुई को तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है—(i) लम्बे रेशेवाली (Long Staple), (ii) मध्यम रेशेवाली (Medium Staple), व (iii) छोटे रेशेवाली (Short Staple)।

व्यापारिक दृष्टिकोण से भारत में रुई 14 श्रेणियों में बाँटी जाती है जिसमें प्रमुख निम्न हैं :

श्रेणियाँ	उत्पादन के प्रमुख केन्द्र
उमरा (Oomars)	महाराष्ट्र में
बंगाल व अमरीकन (Bengal & American)	पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान में
दक्षिणी (Southern)	कर्नाटक व आन्ध्र में
मालवी (Malvi)	मध्य प्रदेश में
टिनैवेली (Tinnevellies)	तामिलनाडु व केरल में
भड़ौंच (Broach)	महाराष्ट्र के बड़ौदा, खेरा व पंचमहल जिलों में
कोमिला (Comilla)	त्रिपुरा व असम में
सूर्ती (Surti)	महाराष्ट्र के सूरत जिले में
मद्रास उगंडा (Madras Uganda)	मदुराई, सलेम, कोयम्बटूर, रामनाथपुरम व तामिलनाडु के कुछ जिलों में

(5) **सरकारी खरीद** (Procurement)—10 अगस्त, 1967 की भारत सरकार की रुई नीति (Cotton Policy) की घोषणा के अनुसार अब सरकार किसान को उसकी उपज का उचित पारिश्रमिक दिलाने के लिए विभिन्न श्रेणी की उत्पत्ति के लिए न्यूनतम समर्थित मूल्य (Minimum Support Price) निर्धारित करती है। यदि बाजारू मूल्य इस निर्धारित समर्थित मूल्य के नीचे जाते हैं तो सरकार निर्धारित मूल्य पर रुई का खरीदना प्रारम्भ कर देती है। इसके लिए सरकार ने भारतीय कपास निगम (Cotton Corporation of India) के नाम से एक निगम बना रखा है।

(V) भारत में अलसी का विपणन
(MARKETING OF LINSEED IN INDIA)

अलसी तेल के बीजों में से एक है। यह प्रतिवर्ष लगभग 16·5 लाख हैक्टेयर भूमि में बोयी जाती है, जिसका उत्पादन लगभग 4 लाख मैट्रिक टन होता है। कुल उत्पादन का 3/4 से भी अधिक उत्पादन मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश में होता है। उत्पादन करने वाले अन्य राज्य महाराष्ट्र, बिहार, राजस्थान, कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल व आन्ध्र हैं। अलसी की कुल उत्पत्ति का 83 प्रतिशत उत्पादन तेल निकालने के लिए काम में आता है। जिसमें 73 प्रतिशत अलसी शक्ति से चलने वाले मिलों के द्वारा पेरी जाती है।

किसान कुल उत्पत्ति का 79 प्रतिशत ही बाजार में बेचने के लिए लाता है। शेष 7 प्रतिशत बीज के लिए, 4 प्रतिशत घर के उपभोग के लिए व 10 प्रतिशत गाँव की धानियों के लिए रख लेता है।

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Market)—अलसी की उत्पत्ति की क्रियाएँ अन्य खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति की क्रियाओं के समान हैं। अलसी को बाजार में लाने से पहले फसल काटने, बीज या दाने अलग करने व साफ करने की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। अन्तिम क्रिया के पूर्ण हो जाने पर बाजार में बेचने की क्रिया शुरू होती है।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—किसान अपने बीज व उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद बाकी उत्पत्ति गाँव में या पास के बाजारों में बेचता है। अलसी के एकत्रीकरण में जिन संस्थाओं के द्वारा योग दिया जाता है उनका नाम व प्रतिशत इस प्रकार है - उत्पादक 47 प्रतिशत, गाँव का बनियाँ 18 प्रतिशत, घूमता-फिरता व्यापारी 27 प्रतिशत, थोक व्यापारी 5 प्रतिशत व मिलों के प्रतिनिधि 3 प्रतिशत।

अलसी के बाजार भी अन्य खाद्य पदार्थों की भाँति तीन प्रकार के होते हैं: (i) प्राथमिक बाजार, (ii) थोक बाजार, व (iii) सीमान्त बाजार। केन्द्रीय व उत्तरी भारत के गाँवों में हाट व पेंठ लगती हैं। दक्षिणी भारत में इन्हें शण्डीज कहते हैं। यह बाजार हफ्ते में एक से तीन बार तक लगते हैं तथा इन्हें प्राथमिक बाजार कहते हैं। अलसी की बिक्री इन हाटों, पैठों व शंडियों में बहुत कम मात्रा में होती है। इन बाजारों में खरीद गाँवों के घानी वालों द्वारा की जाती है।

थोक बाजार मण्डी या गंज कहलाते हैं और शहर व कस्बों में होते हैं। यहाँ प्रतिदिन थोक में अलसी की खरीद व बिक्री की जाती है। इन्हीं बाजारों से मिलों द्वारा खरीद की जाती है। यहाँ खरीद व बिक्री की सहायता के लिए आढ़तिया पाये जाते हैं जिनके पास माल को कुछ समय तक रखने के लिए गोदाम होते हैं। अलसी के सीमान्त बाजार बम्बई व कलकत्ता बन्दरगाह पर पाये जाते हैं, जहाँ से निर्यात

किया जाता है। इन बाजारों में भविष्य के सौदे (Future Transactions) भी किये जाते हैं।

बाजारों में अलसी की बिक्री में सहायता के लिए विभिन्न प्रकार के मध्यस्थ पाये जाते हैं जिनमें आढ़तिया, दलाल, तौला व पल्लेदार प्रमुख हैं। किसान अपनी उत्पत्ति गाड़ी में भरकर आढ़तिया की दुकान पर लाता है जहाँ पर सबसे पहले उसके बोरों को खोलकर नमूना लिया जाता है। अलसी की बिक्री तीन प्रकार से होती है : (i) **नीलाम द्वारा**, (ii) **समझौते द्वारा**, व (iii) **छिपेतौर पर** (कपड़े के नीचे उँगलियों से)। बिक्री या तो उसी दिन कर दी जाती है या भविष्य में करने के लिए आढ़तियों के पास छोड़ दी जाती है। यदि किसान को धन की आवश्यकता होती है तो आढ़तिया के द्वारा उपज के मूल्य के 75 प्रतिशत तक ऋण दे दिया जाता है जिस पर 8 से 12 प्रतिशत तक ब्याज ली जाती है। भविष्य में बिक्री आढ़तिया द्वारा की जाती है।

बाजारों में विभिन्न प्रकार की कटौतियाँ नकदी व वस्तु (Cash and Kind) से की जाती है जैसे चुंगी का कर, दलाल व आढ़तिया का कमीशन, पल्लेदार की पल्लेदारी, तौला की तुलाई, धर्मादा, कर्दा, नमी आदि। प्रति 100 रुपये पर औसतन मध्य प्रदेश में 3 रुपये 29 पैसे, उत्तर प्रदेश में 3 रुपये 8 पैसे, आन्ध्र व राजस्थान में 2 रुपये 62 पैसे व बिहार में 2 रुपये 27 पैसे विक्रेता को देने पड़ते हैं। जिन राज्यों में नियमित बाजार स्थापित हो गये हैं वहाँ इन खर्चों में कुछ कमी हो गयी है।

(3) **वित्त** (Finance)—साधारणतया किसान वित्त के लिए गाँव के बनिये पर निर्भर रहता है। यह ऋण व्यक्तिगत जमानत पर दिये जाते हैं तथा इनकी ब्याज दर 12 से 30 प्रतिशत तक होती है जो कृषक की प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है। थोक बाजारों में ऋण आढ़तिया देता है। गाँव का बनिया व घूमता-फिरता व्यापारी व्यक्तिगत जमानत पर लेता है जबकि कृषक को उसकी उत्पत्ति पर मिलता है। आढ़तियों व थोक व्यापारियों व मिल मालिकों को बैंक व सर्राफों द्वारा ऋण दिये जाते हैं।

(4) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading & Standardization)—अलसी का वर्गीकरण आकार (size) पर आधारित है—बड़ा (Bold) व छोटा (Small)। इसमें रंग का इतना महत्व नहीं है। भारत में अधिकतर अलसी भूरे रंग की होती है लेकिन कुछ सफेद व पीले रंग की भी होती है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल व पंजाब में भूरे रंग की उपज होती है, जबकि राजस्थान व मध्य प्रदेश में सफेद व पीले रंग की। व्यापारिक दृष्टिकोण से किस्म तीन प्रकार की होती है—बम्बई बड़ा (Bombay Bold), कलकत्ता बड़ा व छोटा (Calcutta Bold & Small)। यह वर्गीकरण निर्यात के लिए काम में आता है। देश में तो बड़े व छोटे का ही वर्गीकरण माना जाता है।

(VI) भारत में अण्डी का विपणन
(MARKETING OF CASTORSEED IN INDIA)

भारत में तेल निकालने वाले बीजों में अण्डी का उत्पादन सबसे कम है और यह अपेक्षाकृत कम भूमि में बोयी जाती है। धीरे-धीरे अण्डी के क्षेत्र व उत्पादन में बराबर कमी होती जा रही है। इसके क्षेत्र में कमी होने का कारण अण्डी के तेल की माँग कम होना है। अण्डी के तेल की तुलना में अन्य खनिज चिकनाई देने वाले तेल (Mineral Lubricating Oils) सस्ते पड़ते हैं और भारत में इनका उत्पादन अब काफी बढ़ गया है।

अण्डी के मुख्य उत्पादन प्रदेश आन्ध्र, बिहार उत्तर प्रदेश, तामिलनाडु, बंगाल व महाराष्ट्र हैं और रबी व खरीफ दोनों फसलों में उत्पादन होता है। खरीफ व रबी क्रमशः जून-जुलाई व सितम्बर-अक्टूबर के महीने में बोयी जाती हैं और दिसम्बर-फरवरी व मार्च-मई में काटी जाती हैं।

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Market)—अण्डी की फसल काटने में 5 से 10 हफ्ते तक लग जाते हैं क्योंकि सभी गुच्छे व दाने एक साथ तैयार नहीं होते हैं। फसल को काटने के बाद कुछ समय तक सूखने को छोड़ देते हैं जिसके उपरान्त गुच्छे से अण्डी के बीज अलग करने व साफ करने की क्रिया (Threshing & Winnowing) की जाती है।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—कुल उपज का 6 प्रतिशत उत्पादन किसान के द्वारा अपनी घरेलू व बीज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए रोक लिया जाता है, बाकी उपज या तो स्वयं या गाँव के बनिया व व्यापारी आदि के माध्यम से बेच दी जाती है। ऐसा अनुमान है कि किसान आधी उपज स्वयं ही बाजारों में लाकर बेचता है।[1] लेकिन विभिन्न बाजारों के लिए भिन्न-भिन्न हैं जैसे बिहार में किसान केवल 10 प्रतिशत ही उत्पत्ति बाजार में बेचता है जबकि उत्तर प्रदेश में 50 प्रतिशत। तामिलनाडु में किसान आधी उपज शंडियों (Primary Market) में ही बेच लेता है जबकि थोक बाजार में सिर्फ 15 प्रतिशत ही बेचता है।

हाटों व बाजारों में अण्डी की बिक्री देखकर की जाती है। सम्भावित ग्राहक अण्डी को तोड़कर उसकी किस्म के बारे में जाँच करते हैं तद्उपरान्त उसके खरीदने के मूल्य का प्रस्ताव करते हैं। क्रेता व विक्रेता में मोल-भाव करने पर भाव तय हो जाता है। गंडियों में तुलाई विक्रेता अपनी तराजू व बाँट से ही करते हैं। थोक बाजारों में तुलाई तौला या दलाल के द्वारा की जाती है तथा भुगतान तुलाई के तुरन्त बाद कर दिया जाता है।

थोक बाजारों में साधारणतया बिकी आढ़तिया के माध्यम से होती हैं। भाव इन तीन तरीकों में से किसी एक के द्वारा तय होता है—**समझौते द्वारा, नीलाम द्वारा,**

1 *Report on the Marketing of Castorseed in India*, Government of India, p. 54.

व छिपे तौर पर—विक्रेताओं को इन बाजारों में विभिन्न प्रकार के खर्चे देने पड़ते हैं जैसे चुँगी का कर, आढ़तियों की आढ़त, तौला की तुलाई, पल्लेदार की पल्लेदारी, धर्मादा, किस्म में कमी के कारण विक्रय मूल्य में कटौती इत्यादि। यह खर्चे नकद व वस्तु (Cash & Kind) दोनों में देने पड़ते हैं। सम्पूर्ण भारत में यह खर्चे 100 रुपये पर 2 रुपये से लेकर 8 रुपये 12 पैसे तक वसूल किये जाते हैं। उत्तर प्रदेश के लखीमपुर बाजार में प्रति 40 किलो अण्डी पर 1 किलो ढल्ता काटा जाता है या प्रति-गाड़ी पर 5 किलो दाने। इसके अतिरिक्त आधा किलो दाने आढ़तिया के लिए व 250 ग्राम नमूने के लिए प्रति 40 किलो पर काटे जाते हैं।

(3) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading & Standardisation)—अधिकांश उत्पत्ति बिना वर्गीकृत किये ही बाजारों में बिक जाती है। कहीं-कहीं पर आकार व विभिन्नता के कारण बीजों को छाँट कर बेचा जाता है। व्यापारिक जगत में बिक्री व्यापारिक नामों से होती है जो 9 प्रकार के हैं—(1) चिट्टा (Chitta), (2) काठियावाड़, (3) मद्रास, (4) हैदराबाद, (5) गुजरात, (6) कलकत्ता, (7) सलेम, (8) कानपुर, व (9) पारेस (Pares)। हैदराबाद, कलकत्ता व पारेस में तेल की मात्रा (Oil Content) अधिक होती है अतः कुछ अधिक मूल्य पर बेचे जाते हैं।

(VII) भारत में लोहा व सरसों का विपणन
(MARKETING OF RAPESEED & MUSTARDSEED IN INDIA)

भारत में तेल निकालने वाले बीजों में उत्पादन की दृष्टि से लाहा व सरसों का स्थान मूँगफली के बाद दूसरा है। यह प्रतिवर्ष लगभग 30 लाख हैक्टेयर भूमि में बोया जाता है जिसका उत्पादन लगभग 13 लाख टन होता है।

लाहा व सरसों का उत्पादन उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, पंजाब व असम में अधिक होता है। इन राज्यों का प्रतिशत क्रमशः 44, 16, 12, 12, व 6 है। किसान अपनी उत्पत्ति का 14 प्रतिशत उत्पादन नहीं बेचता; 2 प्रतिशत बीज के लिए, 2 प्रतिशत मसाले (Condiment) के लिए व 10 प्रतिशत तेल की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रख लेता है।[1]

लाहा व सरसों की उत्पत्ति अन्य फसलों के साथ (Mixed Crop) व अलग फसल (Pure Crop) के रूप में दोनों प्रकार से होती है। उत्तर प्रदेश में गेहूँ व जौ के साथ संयुक्त फसल अधिक होती है। पंजाब में तोरिया की संयुक्त फसल गेहूँ, चना व जौ के साथ होती है जबकि सरसों व राई की फसल अलग होती है।

लाहा व सरसों की बिक्री विभिन्न स्थानों पर स्थानीय नामों के आधार पर होती है जिसमें सरसों, राई व तोरिया प्रमुख हैं।

लाहा व सरसों की विभिन्न किस्मों के बोने व काटने के समयों में कुछ अन्तर होता है। तोरिया (Toria) की फसल जल्दी पक जाती है इसलिए इसके बोने व

1 *Report on the Marketing of Rapeseed & Mustardseed in India,* Government of India.

काटने का समय अगस्त-सितम्बर व दिसम्बर-जनवरी होता है। सरसों व राई की फ़सल अक्टूबर-नवम्बर में बोयी जाती है और फरवरी-अप्रैल में काटी जाती है।

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Market)—फसल आम तौर पर दोपहर से पहले काटी जाती है जिससे गर्मी पाकर (पौधों में से) बीज बिखर न जायें। पौधों को काटने के बाद बाँध कर सुखाने के लिए 4 से 10 दिन तक रखा जाता है। सूखने के बाद बैलों के पैरों से दबाकर बीज, पत्ते इत्यादि अलग-अलग कर दिये जाते हैं व बौछार करके बीजों को एकत्रित कर लिया जाता है।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—कुल उपज का 14 प्रतिशत उत्पादन किसान के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रोक लिया जाता है, बाकी आधिक्य को वह या तो स्वयं हाट, मण्डियों व थोक बाजारों में ले जाकर बेच देता है या गाँव में ही व्यापारियों, तेलियों, गाँव के बनियों, थोक व्यापारियों व तेल बेचने वालों के प्रतिनिधियों के हाथ बेच देता है। कुछ उपज उधार लिए बीज के भुगतान करने के लिए बेची जाती है। किसान हाटों में छोटी-छोटी मात्राओं में लाकर बेचते हैं जहाँ व्यापारियों व तेलियों के द्वारा यह उपज खरीदी जाती है। किसान के द्वारा गाँव में ही बिक्री करने के निश्चय के विभिन्न कारण हैं। जैसे ऋणग्रस्तता, नकदी की शीघ्र आवश्यकता, गाँव से बाजार की दूरी, परिवहन साधनों का अभाव, बेचने की मात्रा कम होना आदि। कभी-कभी छोटे किसानों की उपज बड़े किसान भी खरीद लेते हैं। विभिन्न बाजारों में किसानों द्वारा बेची जाने वाली उपज का प्रतिशत भिन्न-भिन्न है। जैसे उत्तर प्रदेश में 30 प्रतिशत, पंजाब में 50 प्रतिशत। बाजारों में लगभग एक-तिहाई उत्पत्ति किसान स्वयं लाता है जबकि बाकी व्यापारियों व अन्य मध्यस्थों के माध्यम से लायी जाती है।

लाहा व सरसों के बाजार अन्य खाद्य पदार्थों की तरह तीन प्रकार के होते हैं: (1) प्राथमिक, (2) थोक, (3) सीमान्त। प्राथमिक में हाट व पेंठ आती है जो समय-समय पर गाँवों में लगती है। थोक बाजार या मण्डी या गंज कहलाते हैं जो शहरों में या कस्बों में होते हैं। सीमान्त बाजार निर्यात में सहयोग देते हैं जो समुद्री किनारों पर बसे शहरों में होते हैं। मण्डी या गंज ही एकत्रीकरण के मुख्य केन्द्र होते हैं। किसान या व्यापारी उपज को आढ़तिया के पास लाकर रखता है जहाँ सम्भावित ग्राहकों से मूल्य—**समझौते से, नीलाम से या छिपेतौर से** दलाल के माध्यम से तय होते हैं। मूल्य तय होने पर उपज को तौला व पल्लेदार की सहायता से तौला जाता है। इन सभी मध्यस्थों को बिक्री मूल्य में से पारिश्रमिक दिया जाता है। इनके अलावा विभिन्न प्रकार की कटौतियाँ विभिन्न नामों से—धर्मादा, गौशाला, मन्दिर, कर्दा आदि की जाती हैं। प्रति 100 रुपये के मूल्य की उत्पत्ति पर 1·7 प्रतिशत से लेकर 5·8 प्रतिशत तक खर्च वसूल किये जाते हैं। जैसे, कानपुर में $4\frac{1}{2}$ प्रतिशत, खुरजा में $1\frac{2}{3}$ प्रतिशत, पटना में $2\frac{1}{3}$ प्रतिशत, जबलपुर में $5\frac{3}{4}$ प्रतिशत इत्यादि।

(3) **वित्त** (Finance)—कृषक को वित्तीय सहायता महाजन, साहूकार व आढ़तिया के द्वारा दी जाती है जिन्हें वह अपनी उपज बाद में बेच देता है। आढ़तिया इन साहूकारों व महाजनों को ऋण देते हैं जिससे गाँव में से खरीदकर इन आढ़तियों के माध्यम से बेचें। आढ़तियों को ऋण तेल निकालने वाले मिलों के द्वारा दिये जाते हैं जिससे उन्हें वर्ष भर लाहा व सरसों मिल चलाने के लिए प्राप्त हो सकें।

(4) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading & Standardization)—किसान के द्वारा उपज को बेचते समय कोई वर्गीकरण नहीं किया जाता है। सिर्फ लाहा (Pure Rapseed) व सिर्फ सरसों (Pure Yellow Sarson) अधिक मूल्य पर बेचे जाते हैं। लाहा व सरसों का वर्गीकरण उपज के स्थान, आकार, रंग व नमी के अनुसार भी किया जाता है जैसे, पीली गुजरात, पीली कानपुर, बड़ी फीरोजपुर, बड़ी भूरी कानपुर (Bold Brown Kanpur) इत्यादि। सरसों में तेल की मात्रा अधिक होती है अतः लाहा के मुकाबले में अधिक मूल्य पर बेची जाती है।

(VIII) भारत में तिलहनों का विपणन

(MARKETING OF OIL-SEEDS IN INDIA)

तिलहनों से तात्पर्य उन बीजों से है जिनसे तेल निकाला जाता है। इन बीजों में मूँगफली, सरसों, लाहा, तिल व अलसी प्रमुख हैं। समस्त विश्व के तिलहन के उत्पादन का 1/10 भाग भारत में ही पैदा होता है। भारत में तिलहनों से जितना उत्पादन होता है उसमें 70% भाग मूँगफली का है तथा शेष 30% में सरसों, लाहा, तिल व अलसी आते हैं। मूँगफली के प्रमुख उत्पादक राज्य गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक व तामिलनाडु हैं जबकि सरसों-लाहा के प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश, राज्यस्थान व मध्य प्रदेश हैं। तिल व अलसी के उत्पादन में भी उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश प्रमुख हैं। इस समय में देश में तिलहनों का कुल उत्पादन क्षेत्र 216 लाख हैक्टेयर के लगभग है जिससे 89 लाख टन तिलहनों का उत्पादन होता है, जो कि भारत की आवश्यकता से कम है। अतः तेल का आयात किया जाता है।

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Market)—अलसी, सरसों व लाहा, मूँगफली तथा तिल की उत्पत्ति की क्रियाएँ अन्य खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति की क्रियाओं के समान हैं। इन सभी में फसल काटने, बीज या दाने निकालने व साफ करने की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—किसान अपनी उत्पत्ति को बीज व उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही बेचता है जैसे, सरसों-लाहा के कुल उत्पादन का 14% उत्पादन वह अपनी आवश्यकताओं के लिए रोक लेता है तथा शेष को वह या तो स्वयं हाट, मण्डियों व थोक बाजारों में ले जाकर बेच देता है या गाँव में ही व्यापारियों, बनियों, तेलियों व तेल बेचने वालों के प्रतिनिधियों को बेच लेता है। मण्डियों में लगभग एक-तिहाई उत्पत्ति किसान स्वयं लाता है जबकि शेष व्यापारियों व मध्यस्थों के माध्यम से लायी जाती है।

तिलहनों के बाजार भी अन्य खाद्य पदार्थों की भाँति तीन प्रकार के होते हैं : (i) प्राथमिक बाजार, (ii) थोक बाजार, व (iii) सीमान्त बाजार। उत्तरी भारत के गाँवों में हाट व पैंठ लगती हैं। दक्षिणी भारत में इनको शण्डीज कहते हैं। यह सभी प्राथमिक बाजार कहलाते हैं जो हफ्ते में एक से तीन बार तक लगते हैं। इन बाजारों में खरीद गाँव के तेल निकालने वाले तेलियों के द्वारा, बड़े किसानों के द्वारा, साहूकार व महाजनों के द्वारा तथा बड़े-बड़े तेल मिलों के प्रतिनिधियों आदि के द्वारा की जाती है। थोक बाजार मण्डी या गंज कहलाते हैं जो शहरों व कस्बों में होते हैं। यहाँ प्रतिदिन थोक मात्रा में खरीद व बिक्री होती है। यहाँ से ही बड़े-बड़े मिलों द्वारा तिलहनों की खरीद की जाती है। इन बाजारों में गोदाम भी होते हैं जहाँ कुछ समय के लिए उत्पत्ति को रखा जा सकता है। तिलहनों के लिए सीमान्त बाजार बम्बई व कलकत्ता के बन्दरगाह पर पाये जाते हैं।

इन थोक व सीमान्त बाजारों में तिलहनों की बिक्री में सहायता देने के लिए विभिन्न मध्यस्थ पाये जाते हैं जिनमें आढ़तिया, दलाल, तौला व पल्लेदार प्रमुख हैं। किसान व अन्य मध्यस्थ अपने तिलहनों को गाड़ी में भरकर आढ़तिया की दुकान पर लाते हैं जहाँ पर बोरों को खोलकर नमूना लिया जाता है। तिलहनों की बिक्री तीन प्रकार से होती है : (i) **नीलाम द्वारा** :(इसमें सभी उत्पत्ति एक स्थान पर रखकर बोली बोली जाती है। जिसके द्वारा सबसे अधिक मूल्य की बोली बोली जाती है उसी के नाम बोली समाप्त कर दी जाती है। उत्पत्ति की सुपुर्दगी दे दी जाती है तथा भुगतान प्राप्त कर लिया जाता है); (ii) **समझौते द्वारा** (इसमें क्रेता व आढ़तिया या उनके प्रतिनिधि मिलकर भाव तय करते हैं); (iii) **छिपेतौर पर** (इसमें कपड़े के नीचे आढ़तिया एवं क्रेता अथवा उसका दलाल एक दूसरे की उँगलियाँ पकड़ कर छिपेतौर से भाव तय कर लेते हैं और उसकी जानकारी किसान को दे दी जाती है, उस पर विक्रय कर दिया जाता है)। इन बाजारों में बिक्री या तो इसी दिन कर दी जाती है या उत्पत्ति को आढ़तिया के पास रख दिया जाता है जो बाद में उसको बेच देता है। यदि किसान को रुपयों की आवश्यकता होती है तो उसको उत्पत्ति के मूल्य के 75 प्रतिशत तक ऋण दे दिये जाते हैं जिस पर 12 प्रतिशत तक ब्याज ली जाती है।

इन बाजारों में विभिन्न प्रकार की कटौतियाँ, चुंगी कर, दलाली, आढ़तिया कमीशन, पल्लेदारी, तुलाई, धर्मादा, कर्दा, नमी, आदि के कारण होती हैं जो भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिए भिन्न-भिन्न हैं।

(3) **वित्त** (Finance)—तिलहनों के किसानों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति उनके गाँव के महाजनों के द्वारा ही मुख्य रूप से की जाती है जो 12% से 30% तक की ब्याज लेते हैं या फसल आने पर उसको एक निश्चित मूल्य पर खरीदने का

सौदा कर लेते हैं। थोक व सीमान्त बाजारों में वित्तीय सुविधा आढ़तिया, बैंकें, मिल मालिक आदि के द्वारा दी जाती है।

(4) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading & Standardization)— तिलहनों का वर्गीकरण उनके रंग-रूप या आकार के आधार पर किया जाता है जैसे, अलसी का वर्गीकरण बड़ा (Blod) व छोटा (Small) के आधार पर किया जाता है। सरसों व लाहा का पीली, भूरी के आधार पर किया जाता है।

(IX) भारत में तम्बाकू का विपणन
(MARKETING OF TOBACCO IN INDIA)

तम्बाकू के उत्पादन में अमेरिका व चीन के बाद भारत का तीसरा स्थान है। अच्छे किस्म की तम्बाकू जिसको बरजीनिया कहते हैं उसका उत्पादन आन्ध्र व बिहार राज्य के कुछ भागों तक ही सीमित है यद्यपि मद्रास व कर्नाटक के कुछ जिलों में भी उसका उत्पादन होता है। घटिया किस्म की तम्बाकू मध्य प्रदेश, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब व गुजरात में होती है। आन्ध्र व गुजरात हमारे देश में 73% तम्बाकू का उत्पादन करते हैं।

तम्बाकू खाने, सूँघने व भरने के काम आती है। खाने व हुक्के में भरने वाली तम्बाकू उत्तर प्रदेश, पंजाब व बंगाल राज्य में अधिक होती है। बीड़ी में भरने वाली तम्बाकू का उत्पादन सबसे अधिक गुजरात में होता है।

"भारत में 1949-50 में केवल 3·48 लाख हैक्टेयर भूमि में तम्बाकू की खेती होती थी जो अब बढ़कर 4·32 लाख हैक्टेयर में होने लगी है। तम्बाकू का उत्पादन जो 1949-50 में 2,680 लाख किलोग्राम था वह भी अब बढ़कर 4,100 लाख किलोग्राम हो गया है।

भारतीय तम्बाकू के कुल उत्पादन का 20% सिगरेट बनाने में, 25% निर्यात में व शेष बीड़ी बनाने व पीने के काम आता है।"

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for the Market)—तम्बाकू को बेचने योग्य बनाने के लिए कई तरीके अपनाये जाते हैं। बरजीनिया किस्म की तम्बाकू के पत्ते उचित समय पर एक-एक करके काटे जाते हैं। उनको धूप में न सुखा कर छाया में सूखाया जाता है। इसके सुखाने (curing) की चार विधियाँ हैं : (i) कारखानों में; (ii) भूमि पर धूप में; (iii) मचानों पर; व (iv) गड्ढों में। कारखानों वाली विधि बरजीनिया किस्म की तम्बाकू के लिए अपनाई जाती है। शेष विधियाँ खुली धूप में अपनाई जाती हैं। इनमें तम्बाकू के पत्ते पौधों से तोड़कर धूप में उपरोक्त तीन तरीकों में से किसी एक को भी अपनाकर सुखा लिया जाता है। सुखाने के बाद पत्तियों को अलग-अलग छाँटा जाता है और उनके ढेर अलग-अलग लगा दिये जाते हैं। बीड़ी व सिगरेट बनाने के काम आने वाली तम्बाकू की पत्तियों का चूरा करके बोरों या टीन के कनस्तरों में पैक करके रख दिया जाता है। जो तम्बाकू

खाने या हुक्के के बाद काम आता है उसको टाट में बाँधकर पत्तियों से कस दिया जाता है। इन सब कार्यों में लागत बहुत आती है। इस लागत का मूल्य विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न है।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—जिस प्रकार खाद्य पदार्थों के अधिकांश उत्पादन को किसान मण्डी तक नहीं ले जाता उसी प्रकार तम्बाकू का उत्पादन भी किसान के द्वारा मण्डियों तक नहीं ले जाया जाता, बल्कि गाँवों में ही बेच लिया जाता है। इसका प्रमुख कारण उत्पादन शुल्क (Exise Duty) है। मध्यस्थों के द्वारा गाँवों में ही Bonded Warehouses बना लिये जाते हैं। यह मध्यस्थ कमीशन एजेण्ट, दलाल या कच्चा आढ़तिया कहलाते हैं। इनके द्वारा किसान से तम्बाकू खरीदकर इन गोदामों में रख ली जाती है और यह उत्पादन शुल्क चुका देते हैं। कुछ बड़े-बड़े निर्माता या ख़रीददार गाँवों में अपने प्रतिनिधि भेजकर भी तम्बाकू का खरीद कार्य करते हैं। इन प्रतिनिधियों का कार्य किसान से सम्पर्क स्थापित कर तम्बाकू को क्रय करना है। कुल तम्बाकू के उत्पादन का लगभग 80 प्रतिशत उत्पादन किसान के द्वारा गाँवों में ही बेच लिया जाता है। कुछ विदेशी संस्थाएँ भी गाँव से क्रय करने का प्रबन्ध करती हैं।

यह मध्यस्थ बड़े-बड़े थोक व्यापारी, बीड़ी व सिगरेट निर्माताओं और निर्यात-कर्ताओं को बेचते हैं। इन स्थानों से माल के भेजने का प्रबन्ध स्वयं क्रेता के द्वारा किया जाता है।

(3) **प्रमापीकरण एवं वर्गीकरण** (Standardization and Grading)—तम्बाकू का प्रमापीकरण कृषि उपज (वर्गीकरण एवं चिह्नन) अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित किया गया है और जो तम्बाकू इसके अनुसार होती है उसका AGMARK योजना के अन्तर्गत वर्गीकरण कराया जा सकता है। इसके अनुसार केवल वर्जीनिया तम्बाकू का ही वर्गीकरण हो सकता है। जो तम्बाकू निर्यात की जाती है उस पर AGMARK की मुहर अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त स्थानीय भाषाओं में तम्बाकू की क्वालिटी के नाम इस प्रकार हैं जैसे, कलकत्ता में मोतीहार, गुन्टूर में सूखी पत्ती ग्रेड IV, सूखी पत्ती LBY, बिना सूखी पत्ती LBY 2 आदि।

(4) **वितरण** (Dispersion)—जो तम्बाकू अपने प्राकृतिक रूप में उपभोक्ता को मिलती है और जो सादा खाने व पीने के काम में आती है गाँवों से शहरी थोक विक्रेताओं के पास आ जाती है। वे इसको फुटकर विक्रेताओं को बेच देते हैं जहाँ से अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँच जाती है।

निर्मित तम्बाकू जिसमें बीड़ी, सिगरेट, सिगार व छोटे-छोटे पैकिट में पैक तम्बाकू आदि आती हैं उसके लिए बड़े-बड़े शहरों में इन निर्माताओं के विक्रय प्रतिनिधि (Selling Agent) रहते हैं जिनका एक निश्चित क्षेत्र होता है। निर्माता द्वारा माल इन स्थानीय विक्रय प्रतिनिधियों को बेचा जाता है जो अपने साधनों से छोटे-छोटे दुकानदारों को बेचते हैं। इन छोटे-छोटे दुकानदारों से यह उपभोक्ता तक पहुँच जाता

है। कभी-कभी यह निर्माता बड़े-बड़े नगरों में अपना गोदाम लेकर माल को रखते हैं जहाँ से इनके विक्रयकर्ता (Salesmen) प्रतिदिन माल को लेकर स्थानीय फुटकर दुकानदारों पर पहुँचते हैं और उनकी आवश्यकतानुसार माल को बेचते हैं। यह विक्रेता निर्माता के कर्मचारी होते हैं जिन्हें वेतन व बिक्री पर कमीशन मिलता है।

(8) **निर्यात** (Export)—तम्बाकू का देशी बाजार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। विदेशी बाजार में भी भारतीय तम्बाकू जाती है। हमारे द्वारा निर्यात योरोपीय देश, रूस तथा अन्य देश जैसे, अरब, अफ्रीका आदि को किया जाता है।

(X) भारत में गन्ने का विपणन

(MARKETING OF SUGARCANE IN INDIA)

गन्ना भारत की प्रमुख फसलों में से एक है। इसका उपयोग चीनी, गुड़, खाँड व बूरा आदि के बनाने में किया जाता है। गन्ने का सर्वाधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश में होता है, लेकिन इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र, आन्ध्र, तामिलनाडु व कर्नाटक तथा पंजाब में भी इसकी उत्पत्ति होती है। आजकल यह 30 लाख हैक्टेयर भूमि में बोया जाता है तथा इसका उत्पादन 188 लाख टन है। यह फरवरी-मार्च में बोया जाता है तथा अक्टूबर से लेकर अप्रैल-मई तक काटा जाता है।

(1) **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation for Market)—गन्ने को एक बार बोकर उससे कई फसलें ली जाती हैं। इसके लिए गन्ने को जड़ से न काट कर भूमि की सतह के कुछ ऊपर से काटते हैं जिससे कि जड़ें भूमि में ही बनी रहें, और अगले वर्ष फिर वह बढ़कर गन्ने की उत्पत्ति दे सकें। जिस समय गन्ने को काटते हैं तो यहीं से बाजार में बेचने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

(2) **एकत्रीकरण** (Assembling)—गन्ने की एकत्रीकरण की क्रिया बड़े किसानों, सहकारी समितियों, चीनी मिलों, गुड़ व खांडसारी बनाने वाली संस्थाओं द्वारा की जाती है। सामान्यतया छोटे किसानों का गन्ना बड़े किसान क्रय कर लेते हैं, जो उसकी सहकारी समितियों, चीनी मिलों व गुड़ तथा खाँडसारी संस्थाओं को बेच देते हैं। भारत में जितना गन्ना उत्पादित होता है उसका 35 प्रतिशत चीनी बनाने वाले कारखाने व 53 प्रतिशत गुड़ व खाँडसारी बनाने वाले कारखाने क्रय कर लेते हैं, तथा शेष 12 प्रतिशत बीज व गन्ने के रस के काम आता है।

चीनी मिलों के लिए गन्ने की पूर्ति गन्ना सहकारी समितियाँ करती हैं जो अपने सदस्यों को एक-एक पुर्जी (Slip) देती हैं जिस पर गन्ने की मात्रा व समय दिया रहता है। गन्ना उत्पादक उस पुर्जी में दिये हुए समय पर गन्ना अपनी गाड़ी में भर कर चीनी मिल के दरवाजे पर ले जाता है जहाँ पर तोलने वाली मशीन लगी रहती है तथा समिति का कार्यालय भी होता है। जब गन्ना समिति व मिल की देख-रेख में तुल जाता है तो गन्ना उत्पादक को एक आदेश दे दिया जाता है जिसको कारखाने के रोकड़िये को दिखाकर भुगतान लिया जा सकता है। कहीं-कहीं पर गन्ना उत्पादक को

भुगतान सहकारी समिति ही कर देती है, जो बाद में उस आदेश के आधार पर मिल से इकट्ठा भुगतान ले लेती है।

उत्तर प्रदेश में सहकारी समितियों व यूनियनों के कार्यों में तालमेल बनाये रखने के लिए उत्तर प्रदेश गन्ना यूनियन फैडरेशन भी है। यह फैडरेशन सदस्यों के लिए खाद, बीज, यन्त्र उपलब्ध करता है जिससे कि गन्ने की किस्म व गुण में सुधार किया जा सके।

(3) **वित्त** (Finance)—गन्ने के उत्पादकों को आर्थिक सहायता गाँव के महाजन व बड़े किसानों द्वारा दी जाती है जो 12 से 24 प्रतिशत की दर से ब्याज लेते हैं। लेकिन जिस स्थान पर गन्ना उत्पादक किसी गन्ना सहकारी समिति का सदस्य होता है तो उसको यह समिति आर्थिक सहायता प्रदान करती है। बीज, खाद, व यन्त्रों का प्रबन्ध करती है।

(4) **वर्गीकरण व प्रमापीकरण** (Grading & Standardization)—भारत में गन्ना तीन प्रकार का होता है : (1) **पतला अथवा देशी**—इसकी उपज कम होती है लेकिन मिठास की मात्रा अधिक। इसमें बीमारियाँ कम लगती हैं, यह अधिक मूल्य पर बिकता है। (2) **मोटा**—यह गन्ना शहरी क्षेत्रों के आस-पास होता है। इसको चूसने के काम में लिया जाता है। इसको गुड़, खाँडसारी व चीनी बनाने के काम में नहीं लिया जाता है। (3) **मध्यम**—भारत में अधिकांश गन्ना इसी प्रकार का उत्पादित होता है।

प्रश्न

1. भारत में कृषि विपणन के कौन-कौन से दोष हैं? इसके सुधार के लिए सुझाव दीजिए।
   What are the Defects of agricultural marketing in India ? Give suggestions for its improvement.
2. भारत में तम्बाकू या तिलहन का विपणन किस प्रकार होता है?
   How is Tobacco or Oilseeds marketed in India ?
3. भारत में गेहूँ या कपास के विपणन की विवेचना कीजिए।
   Discuss the marketing of wheat or cotton in India.
4. भारत में जूट की विपणन व्यवस्था का सविस्तार वर्णन कीजिए।
   Discribe in detail the marketing of Jute in India.

17

सहकारी विपणन

[CO-OPERATIVE MARKETING]

सहकारी विपणन का अर्थ एवं परिभाषा
(MEANING AND DEFINITION OF CO-OPERATIVE MARKETING)

सहकारी विपणन दो शब्दों से मिलकर बना है सहकारी + विपणन। सहकारी से अर्थ दूसरे के सहयोग या सहारा लेने से है जबकि विपणन का अर्थ वस्तु के क्रय एवं विक्रय से लगाया जाता है। इस प्रकार सहकारी विपणन से अर्थ दूसरों के सहयोग से क्रय एवं विक्रय करने से है। यहाँ दूसरों के सहयोग के अन्तर्गत केवल वे ही व्यक्ति आते हैं जो एक जैसा कार्य करते हैं जैसे एक गाँव के किसानों द्वारा मिलकर अपनी-अपनी उपज को सहकारिता के आधार पर बेचना।

सहकारी विपणन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ पर कुछ प्रमुख परिभाषाओं को ले रहे हैं—

(1) **ओ. बी. जैसनेस** (O. B. Jesness) के अनुसार, "सहकारी विपणन का अर्थ पारस्परिक लाभ प्राप्त करने व विपणन समस्याओं को हल करने के लिए मिलकर कार्य करना है....सहकारी विपणन संगठन व्यापारिक उद्यम हैं।"[1]

(2) **फिलिप्स एवं डन्कन** (Phillips & Duncan) की राय में, "वे संगठन जो सहकारिता के आधार पर किसानों के समूहों के द्वारा अपनी वस्तुओं को बेचने और सामान तथा अन्य वस्तुएँ खरीदने के लिए स्थापित हुए हैं सहकारी विपणन संघ कहलाते हैं।"[2]

---

1 "Co-operative marketing means working together for mutual benefit in solving marketing problems...Co-operative marketing organisations are business enterprises."

—O. B. Jesness, *Co-operative Marketing of Farm Products*, p. 4.

2 "The organizations which groups of farmers have established to market their products co-operatively and to purchase supplies and other goods are known as 'marketing co-operatives' or 'co-operative marketing associations."

—Phillips and Duncan, *Marketing Principles and Methods*, p. 487.

(3) **एम. पी. माथुर** (M. P. Mathur) के मत में, "एक सहकारी विपणन संस्था स्वेच्छा से सामूहिक खरीद व बिक्री के लिए बनाया गया व्यावसायिक संगठन है।"[1]

(4) **बेकन एवं सचार्स** (Bakken & Schars) के शब्दों में, "विपणन में सहकारिता एक व्यापारिक उपक्रम है जो आर्थिक शक्तियों से तो प्रभावित होता है, परन्तु उन सभी परम्पराओं, संहिताओं तथा व्यवहारों से प्रभावित नहीं होता जो निजी व्यापारिक उपक्रमों को प्रभावित करते हैं।"[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि (1) सहकारी विपणन संगठन स्वेच्छा से विपणन सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने के लिए बनाये जाते हैं। (2) यह एक प्रकार के व्यापारिक उपक्रम हैं। (3) इनको किसानों के द्वारा अपनी वस्तुओं को बेचने के लिए बनाया जाता है। (4) यह उन परम्पराओं और व्यवहारों से प्रभावित नहीं होते हैं जो निजी व्यापारिक संस्थाओं के द्वारा अपनाये जाते हैं।

एक सहकारी विपणन संगठन के कार्य वस्तु को एकत्रित करना, साफ करना, वर्गीकृत करना, पैक करना, बाजारों में भेजना व बेचना, आवश्यकता के समय गोदाम में संग्रह करना, और वस्तु के न बिकने तक वस्तु के मालिक की वित्तीय सहायता करना, आदि होते हैं।

सहकारी विपणन के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF CO-OPERATIVE MARKETING)

सहकारी विपणन के बहुत-से उद्देश्य होते हैं लेकिन हमने अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित सात उद्देश्यों को लिया है :

(1) **उचित प्रतिफल** (Just Return)—सहकारी विपणन का सबसे पहला एवं प्रमुख उद्देश्य अपने सदस्यों को उनकी उत्पत्ति का उचित प्रतिफल दिलाना है। यह उचित प्रतिफल संस्था की सामूहिक सौदा करने की क्षमता (collective bargaining), विभिन्न मध्यस्थों से बचत, बाजारों की बुराइयों में कमी, उपज व पदार्थों का वर्गीकरण, तथा उन्नत बिक्री साधन आदि होने से मिल जाता है।

(2) **संग्रह सुविधा** (Storage Facility)—सहकारी विपणन का दूसरा उद्देश्य अपने सदस्यों को उत्पत्ति के संग्रह की सुविधा प्रदान करना है जिससे कि बाजार को अपने हित में आने तक उत्पत्ति सुरक्षित रखी जा सके।

---

1 "A Marketing co-operative is a voluntary business organisation which is formed for collective purchase and sale."
—Dr. M. P. Mathur, *Co-operative Marketing in U. P.*, p. 29.

2 "Co-operative in marketing is a business undertaking amenable to the economic forces but not to all the traditions, codes and practices which affect private commercial enterprises." —*Bakken and Schars*

(3) **वित्तीय सहायता** (Financial Facility)—सहकारी विपणन का तीसरा उद्देश्य आवश्यकता के समय सदस्यों की आर्थिक सहायता करना है जिससे कि वे साहूकार व महाजन, आदि के चंगुल में न फँस जायें और अपनी उत्पत्ति को कम भाव पर पहले से न बेच दें।

(4) **विपणन सूचना** (Marketing Information)—सहकारी विपणन का चौथा उद्देश्य अपने सदस्यों को बाजार की सही सूचना देना है जिससे कि उत्पादन को माँग और पूर्ति के आधार पर समायोजित किया जा सके। इसके अतिरिक्त उत्पादन के नये साधन, प्रमापीकरण व वर्गीकरण के तरीके व लागत कम करने वाले तरीकों की भी जानकारी देने का इनका उद्देश्य होता है।

(5) **कच्चे माल की पूर्ति करना** (Supply of Raw Materials)—सहकारी विपणन का पाँचवाँ उद्देश्य अपने सदस्यों को आवश्यक कच्चा माल, तान्त्रिक योग्यता, उन्नत बीज आदि, उपलब्ध करना है जिससे कि भविष्य में उनका उत्पादन उच्च कोटि एवं प्रमापों के आधार पर हो सके और वे उत्पत्ति को उचित मूल्य पर बेच सकें।

(6) **मूल्यों में स्थायित्व लाना** (Stability in Prices)—सहकारी विपणन का छठवाँ उद्देश्य बाजारू मूल्यों में स्थायित्व लाना है। सहकारी समितियाँ फसल के समय अपने सदस्यों की उत्पत्ति रोककर रख लेती हैं और भविष्य में धीरे-धीरे बेचती रहती हैं जिससे बाजारू मूल्यों में स्थायित्व लाने में सहायता मिलती है।

(7) **उचित व्यापारिक रीतियों का विकास** (Development of Just Business Practices)—सहकारी विपणन का उद्देश्य व्यापारिक जगत में उचित व्यापारिक रीतियों का विकास करना भी है। इसके लिए यह संगठन उचित नीति को अपनाते हैं और सदस्यों को अपनाने के लिए बाध्य करते हैं।

सहकारिता के सिद्धान्त
(PRINCIPLES OF CO-OPERATION)

सहकारिता के सिद्धान्त विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न बताये हैं अत: हम अध्ययन की सुविधा के लिए इन सिद्धान्तों को तीन भागों में बाँट लेते हैं :

(I) आधारभूत सिद्धान्त (Basic Principles), (II) सामान्यत: स्वीकृत सिद्धान्त (Generally Accepted Principles), (III) गैर-आवश्यक सिद्धान्त (Non-essential Principles)।

(I) आधारभूत सिद्धान्त (Basic Principles)

यह सिद्धान्त निम्न हैं :

(1) **ऐच्छिक संगठन** (Voluntary Association)—यह सहकारी संगठन का बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रमुख सिद्धान्त है। इसके अनुसार इन संगठनों की सदस्यता ऐच्छिक होती है अर्थात् लोगों की इच्छा पर है कि वे इसके सदस्य बनें अथवा नहीं।

सदस्यता के लिए उन पर कोई दबाव नहीं डाला जाता है। इसी प्रकार स्वेच्छा से सदस्यता का परित्याग किया जा सकता है।

(2) **प्रजातन्त्रीय नियन्त्रण** (Democratic Control)—यह भी एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसके अनुसार प्रत्येक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होता है चाहे उसके पास एक से अधिक अंश ही क्यों न हों।

(3) **आधिक्य वितरण** (Surplus Distribution)—सहकारी संस्थाएँ सेवा के लिए बनायी जाती हैं लाभ कमाने के लिए नहीं। यदि लाभ होता है तो उसको सदस्यों में उनके व्यवहारों के अनुपात में बाँट दिया जाता है।

(4) **सहकारी शिक्षा** (Co-operative Education)—सहकारिता सदस्यों को मूल सिद्धान्तों से परिचित कराने का काम करती है जिससे वे अच्छे नागरिक बनते हैं।

(5) **सहकारी संस्थाओं में सहकारिता** (Co-operation among Co-operatives)—सहकारी संस्थाएँ नीचे से ऊपर तक विभिन्न सहकारी संस्थाओं से सम्बन्धित होती हैं जिससे संस्थाओं में आपसी सहकारिता का विकास होता है।

(6) **पूँजी पर सीमित ब्याज** (Limited Interest on Capital)—सहकारी संस्थाओं का सिद्धान्त पूँजी पर एक निश्चित और सीमित दर से ब्याज का भुगतान करना है जिससे कि पूँजी एकत्रित करने में कठिनाई न हो।

(II) **सामान्य स्वीकृत सिद्धान्त** (Generally Accepted Principles)

सामान्य स्वीकृत सिद्धान्त निम्न हैं :

(7) **पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म-सहायता** (Self-help through Mutual Help)—सहकारी संस्थाएँ प्रायः अपने साधनों पर ही निर्भर रहती हैं इसी को हम आत्म-सहायता कहते हैं। पारस्परिक सहायता का अर्थ है एक-दूसरे की सहायता करना। आत्म-सहायता तथा पारस्परिक सहायता सहकारिता के मूल तत्व हैं।

(8) **सेवा सिद्धान्त** (Principle of Service)—सहकारी संस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य सेवा करना है, लाभ कमाना नहीं। सहकारिता का यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है।

(9) **समानता का सिद्धान्त** (Principle of Equity)—सहकारिता में सभी सदस्यों के साथ समानता का व्यवहार किया जाता है। लाभ या आधिक्य उनके क्रय या विक्रय के अनुपात में बाँटा जाता है।

(10) **सामाजिक स्वामित्व सिद्धान्त** (Principle of Social Ownership)—सहकारी संस्थाएँ निजी संस्थाएँ मानी जाती हैं लेकिन इनका स्वामित्व सदस्यों पर आधारित है तथा सदस्यों का संस्था की सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार नहीं होता है। कोई भी व्यक्ति सदस्यता ग्रहण कर सकता है, सह-स्वामी बन सकता है और सहकारी संस्था की सेवाओं से लाभ उठा सकता है।

(11) **एकता एवं भाईचारे का सिद्धान्त** (Principle of Unity and Fraternity)—सहकारिता सदस्यों में एकता एवं भाईचारे की भावना पैदा करती है। इसी को एक विद्वान ने Brotherhood Economics कहा है।

(III) **गैर-आवश्यक सिद्धान्त** (Non-essential Principles)

इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक सिद्धान्त (Fringe Principles) भी कहते हैं। कुछ देशों ने इनको सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया है लेकिन सभी देश ऐसा नहीं मानते हैं। यह सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

(12) **अवैतनिक सेवा सिद्धान्त** (Principle of Honorary Service)—प्रारम्भ में इस सिद्धान्त को माना गया और प्रवर्तकों ने सहकारिता की सफलता के लिए अवैतनिक कार्य किया। छोटे आकार की सहकारिता में यह आज भी सम्भव है लेकिन बड़े आकार में यह सम्भव नहीं है। इसी कारण आजकल इनके संचालन हेतु वेतनभोगी कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता है।

(13) **उपभोक्ता का संरक्षण सिद्धान्त** (Principle of Consumer Protection)—सहकारिता का यह सिद्धान्त उपभोक्ता को व्यापारियों की बुराइयों से बचाता है। सहकारी संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि वे उपभोक्ताओं के साथ ईमानदारी का व्यवहार करेंगी।

(14) **नकद विक्रय का सिद्धान्त** (Principle of Cash Trading)—कुछ देश जैसे स्वीडन, फिनलैण्ड तथा स्विट्जरलैण्ड इसको एक सिद्धान्त मानते हैं और इन देशों में सहकारी व्यवहारों में नकद बिक्री पर विशेष जोर दिया जाता है।

सहकारी विपणन से लाभ
(ADVANTAGES OF CO-OPERATIVE MARKETING)

सहकारी विपणन से अनेक प्रकार के लाभ हैं लेकिन इन सभी लाभों को एक वाक्य से प्रदर्शित किया जा सकता है कि **"सहकारी विपणन कृषक की स्थिति को विक्रेता के रूप में सुदृढ़ बनाता है। उसकी उपज के नियमित रूप से बिकने का** विश्वास स्थापित करता है और **उनको अच्छे दाम पर बिकने के योग्य बनाता है।"** यही नहीं, यह व्यवस्था कृषकों को यह सिखाती है कि कृषि एक प्रकार का व्यवसाय है[1] जिसके लिए विभिन्न प्रकार की व्यवसाय नीति का पालन करना आवश्यक है। संक्षेप में सहकारी विपणन के निम्नलिखित लाभ हैं :

(1) **मध्यस्थों का अन्त** (Elimination of Middlemen)—सहकारी विपणन से सबसे पहला लाभ यह है कि उपभोक्ता व उत्पादक या निर्माता के बीच मध्यस्थों की जो शृंखला बनी होती है उसका अन्त हो जाता है जिससे उपभोक्ता व

---

1 "The operation of co-operative marketing teaches farmers that agriculture is primarily a form of business."
—*The Co-operative Planning Committee* (1945).

उत्पादक दोनों को लाभ होता है। मध्यस्थों का अन्त होने से उपभोक्ता को वस्तु सस्ती मिल जाती है व उत्पादक को अपनी वस्तु का उचित मूल्य मिल जाता है।

(2) **बाजार की बुराइयों से छुटकारा** (Relief from Bad Market Practices)—सहकारी विपणन हो जाने से किसान बाजार की विभिन्न प्रकार की बुराइयाँ जैसे कर्दा काटना, धर्मादा काटना, आढ़त, तुलाई, गोशाला, चौकीदारी आदि से बच जाता है। सहकारी विपणन समिति में कुछ निश्चित खर्चे ही निश्चित दर पर लिये जाते हैं।

(3) **सामूहिक मोल-भाव व अधिक मूल्य का लाभ** (Advantage of Collective Bargaining and Better Prices)—सहकारी विपणन का यह बहुत ही महत्वपूर्ण लाभ है। व्यक्तिगत रूप से उत्पादक में मोल-भाव करने की शक्ति नहीं होती है। लेकिन सहकारिता में संगठित होकर सामूहिक क्षमता आ जाती है जिसका प्रभाव यह पड़ता है कि उसको वस्तु का मूल्य कुछ अधिक मिल जाता है तथा वृहत खरीद व बिक्री के लाभ का भी भागी बन जाता है।

(4) **वर्गीकरण की सुविधा** (Facility for Grading)—कृषि पदार्थों को साफ करने और वर्गीकृत करने की सुविधा सहकारी समितियों के द्वारा अपने सदस्यों को प्रदान की जाती है जिससे उत्पादकों को अच्छा मूल्य मिल जाता है।

(5) **उचित तौल की सुविधा** (Facility for Porper Weighment)—सहकारी विपणन का पाँचवाँ लाभ यह है कि नाप-तौल इन समितियों के द्वारा ठीक तरह से की जाती है जबकि इसके अभाव में बाजार में तौल उचित नहीं होती है, यद्यपि सरकार ने इस सम्बन्ध में कानून बना रखे हैं लेकिन फिर भी विभिन्न प्रकार के तौल के बाँट बाजारों में पाये जाते हैं।

(6) **संग्रह की सुविधा** (Storage Facility)—उत्पादकों के पास पदार्थ एकत्रित करने के लिए उचित साधन नहीं होते हैं उनके पास तो वही पुराने रूढ़िवादी साधन होते हैं। सहकारी विपणन समितियाँ आधुनिक वैज्ञानिक साधन संग्रह की सुविधा अपने सदस्यों को उपलब्ध कराती हैं। इनके द्वारा माल को सुरक्षित रखने का भी व्यय बहुत कम लिया जाता है। संग्रह की सुविधा होने से माल खराब नहीं होता और बाजार की परिस्थितियाँ अपने पक्ष में आने तक माल को रोककर रखा जा सकता है।

(7) **वित्तीय सुविधा** (Financial Facility)—सहकारी विपणन का सातवाँ महत्वपूर्ण लाभ यह है कि वह समितियाँ अपने सदस्यों को आवश्यकता के समय आर्थिक सहायता करती हैं और साहूकारों के चँगुल में फँसने से बचाती हैं। इन समितियों की ब्याज की दर भी कम होती है।

(8) **एकत्रीकरण की सुविधा** (Facility in Collection)—सहकारी विपणन समितियाँ अपने सदस्यों की सुविधा के लिए गाँव में ही उपज को एकत्रित करने

के लिए केन्द्र खोल देती हैं जिससे कि वे अपनी उत्पत्ति को बाजर में ले जाने की परेशानी से बच जाते हैं। यह सुविधा उन उत्पादकों के लिए बहुत ही लाभप्रद है जिनके पास उत्पत्ति ले जाने के साधन नहीं हैं।

(9) **सरकार की सहायता** (Help to Government)—सहकारी संस्थाएँ सरकार को कृषि पदार्थ खरीदने में सहायता करती हैं जिससे कि सरकार इस प्रकार एकत्रित कृषि पदार्थों को उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से जनसाधारण को वितरित कर सकें।

(10) **अन्य लाभ** (Other Advantages)—सहकारी विपणन से अन्य लाभ भी हैं जैसे—(i) उचित मूल्य पर रासायनिक खाद, उत्तम बीज व औजार समितियों द्वारा सदस्यों को बेचना, (ii) आवश्यक और लाभप्रद सूचनाएँ सदस्यों को देना जिससे उत्पत्ति में परिवर्तन किया जा सके, (iii) गाँव में समितियों द्वारा अन्य सामाजिक उत्थान के कार्य करना जिससे जीवन-स्तर में उन्नति हो।

विदेशों में सहकारी विपणन की प्रगति
(PROGRESS OF CO-OPERATIVE MARKETING IN FOREIGN COUNTRIES)

विदेशों में सहकारी विपणन के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। हमने अध्ययन की सुविधा के लिए सिर्फ पाँच देशों को लिया है—डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, अमरीका व कनाडा।

(1) **डेनमार्क** ने सहकारिता के क्षेत्र में काफी प्रगति की है। यहाँ दुग्धशालाओं को दिये जाने वाले दूध का 91 प्रतिशत सहकारी दुग्धशालाओं द्वारा दिया जाता है तथा कुल निर्यात किये जाने वाले मक्खन का 65 प्रतिशत सहकारी समितियों के द्वारा निर्यात किया जाता है। सुअर के माँस की 90 प्रतिशत बिक्री सहकारिता के आधार पर होती है। अण्डों के निर्यात में सहकारिता का भाग 36 प्रतिशत है।

(2) **नार्वे** में मक्खन का शत-प्रतिशत व्यापार सहकारी समितियों के हाथ में है। दूध का व्यापार भी 80 से 90 प्रतिशत तक सहकारी समितियों द्वारा किया जाता है।

(3) **स्वीडन** में भी दूध की कुल बिक्री का 90 प्रतिशत व मक्खन का 93 प्रतिशत सहकारी समितियों द्वारा बेचा जाता है।

(4) **अमरीका** में सहकारी विपणन का भाग अनाज में 36 प्रतिशत, दूध में 28 प्रतिशत तथा फलों व सब्जियों में 12 प्रतिशत है।

(5) **कनाडा** में सहकारी विपणन का भाग अनाज में 55 प्रतिशत, तम्बाकू में 90 प्रतिशत तथा फल व सब्जियों में 28 प्रतिशत है।

भारत में सहकारी विपणन का संक्षिप्त इतिहास
(BRIEF HISTORY OF CO-OPERATIVE IN INDIA)

भारत में सहकारी विपणन का प्रारम्भ सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1912 (Co-operative Societies Act) के पास होने से हुआ है जिसमें गैर-साख समितियों के बनाने की सुविधा सर्वप्रथम दी गयी थी इससे पहले का अधिनियम—सहकारी साख समिति अधिनियम, (Co-operative Credit Societies Act, 1904)—सिर्फ साख समितियों के बनाने के लिए था। 1912 के अधिनियम ने विपणन समितियों की स्थापना की शुरूआत की जिसके अनुसार देश में कृषि पदार्थों की बिक्री, औजार व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समितियाँ स्थापित होने लगीं। अक्टूबर, 1914 में सरकार ने एडवर्ड मैकमिलन की अध्यक्षता में एक समिति बनायी जिसने अपनी रिपोर्ट 1915 में दी और गैर-साख समितियों को प्रोत्साहन देने की सिफारिश की।

भारत में पहली सहकारी विपणन समिति बम्बई राज्य में दुबली नामक स्थान पर 1915 में बनायी गयी थी। इसके बाद दूसरी समिति बम्बई राज्य में ही गडक (Gadak) नामक स्थान पर 1917 में बनी। धीरे-धीरे इन समितियों की संख्या में वृद्धि होती चली गयी और बम्बई राज्य में 1920-21 में इनकी संख्या 31 हो गयी। इसी प्रकार मद्रास में 1920-21 तक केवल 2 समितियाँ स्थापित हो गयी थीं।

सन् 1919 में सहकारिता प्रान्तीय विषय बना दिया गया। बम्बई राज्य सबसे पहला राज्य था जिसने सन् 1925 में अपना सहकारी समितियाँ अधिनियम बना लिया। इसके बाद विभिन्न राज्यों ने अपने-अपने अधिनियम बनाये। इसी बीच धीरे-धीरे गैर-साख समितियों की संख्या जिनमें विपणन समितियाँ भी शामिल थीं, बढ़ने लगीं लेकिन 1930 की विश्व मन्दी से इनकी संख्या में काफी कमी हो गयी। द्वितीय विश्वयुद्ध के शुरू होने से मूल्यों में वृद्धि व वस्तुओं की कमी होने लगी, जिससे सहकारी विपणन समितियों की संख्या में फिर वृद्धि होने लगी। इस समय उपभोक्ता समितियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई।

सन् 1945 में केन्द्रीय सरकार ने सहकारी नियोजन समिति (Co-operative Planning Committee) श्री आर. जी. सरैया की अध्यक्षता में नियुक्त की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट अगले 10 वर्षों में (1955 तक) वार्षिक कृषि उत्पादन का 25 प्रतिशत भाग सहकारिता के आधार पर बेचने का प्रबन्ध करने की सलाह सरकार को दी।

स्वतन्त्रता के पश्चात् सन् 1952 में रिजर्व बैंक ने ग्रामीण साख जाँच समिति (Rural Credit Survey Committee) श्री ए. डी. गोरवाला की अध्यक्षता में बनायी। इस समिति ने भी सहकारी विपणन पर काफी बल दिया। सन् 1955 में राज्य सहकारी मन्त्रियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें इस बात का लक्ष्य निर्धारित

किया कि मण्डियों में बेची जाने वाली कृषि उपज का 10 प्रतिशत अगले 5 वर्षों में सहकारी समितियों द्वारा बेचा जाये। प्रथम योजना में तो सहकारी विपणन पर कोई बल नहीं दिया गया लेकिन उसके पश्चात् द्वितीय, तृतीय, व चतुर्थ एवं पंचम योजनाओं में काफी बल दिया गया है जिसका प्रभाव यह हुआ है कि विपणन समितियों की संख्या, पूँजी व क्रय-विक्रय की मात्रा आदि में काफी वृद्धि हुई है। सहकारी विपणन समितियों की बिक्री जो 1960-61 में 175 करोड़ रुपये थी उसमें पिछले 17 वर्षों में काफी वृद्धि हुई है और यह 1977-78 में बढ़कर 1,420 करोड़ रुपये हो गयी है।

भारत में सहकारी विपणन का संगठन
(ORGANISATION OF CO-OPERATIVE MARKETING SOCIETIES IN INDIA)

भारत में सहकारी विपणन का संगठन निम्न प्रकार का पाया जाता है :

(1) प्राथमिक सहकारी विपणन समितियाँ (Primary Co-operative Marketing Societies)।

(2) केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियाँ (Central Co-operative Marketing Societies)।

(3) प्रान्तीय सहकारी विपणन समितियाँ (State Co-operative Marketing Secieties)।

(4) राष्ट्रीय सहकारी विपणन संघ (National Co-operative Marketing Federation)।

(1) **प्राथमिक सहकारी विपणन समितियाँ** (Primary Co-operative Marketing Societies)—ये समितियाँ गाँव के स्तर पर कार्य करती हैं तथा अपने सदस्यों के लाभ के लिए कृषि सम्बन्धी पदार्थों का क्रय-विक्रय करती हैं। एकत्रीकरण व श्रेणीकरण की सुविधाएँ देती हैं तथा आवश्यक खाद, बीज व मशीन की पूर्ति करती हैं तथा आवश्यकता के समय किसान को वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं। यह समितियाँ विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं जैसे, एक वस्तु समिति (Single Commodity Society) या अनेक पदार्थों में व्यवसाय करने वाली समिति (Multiple Commodity Society) या उत्पादन व बिक्री समिति (Production and Sale Society)। जो व्यक्ति इन समितियों के सदस्य होते हैं वे अपनी उत्पत्ति इन्हीं समितियों के माध्यम से बेचते हैं।

आजकल प्राथमिक सहकारी विपणन समितियाँ किसी विशेष विपणन कार्य को पूरा करने के लिए नहीं बनायी जाती हैं बल्कि बहुत-से उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बनायी जाती हैं। अतः बहुउद्देशीय सहकारी विपणन समितियों (Multipurpose Co-operative Marketing Societies) में बराबर वृद्धि हो रही है। ये समितियाँ कृषि व अन्य पदार्थों की भी खरीद व बिक्री करती हैं और सदस्यों की

अन्य प्रकार से सहायता करती हैं। इस समय 3,174 प्राथमिक समितियाँ कार्य कर रही हैं।

प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों के कार्य (Functions of Primary Marketing Societies)—प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों द्वारा निम्न कार्य सम्पादित किये जाते हैं :

(i) **वर्गीकरण एवं पैकिंग** (Grading and Packaging)—प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों का मुख्य कार्य सदस्यों की कृषि उपज को बेचना है। इस कार्य के लिए वे उपज का वर्गीकरण करती हैं तथा उनका पैकिंग करती हैं। (ii) **संग्रह व्यवस्था** (Storage Function)—यह समितियाँ अपने सदस्यों की उपज को खराब होने से बचाने के लिए उचित गोदामों व शीत संग्रहालयों की व्यवस्था करती हैं। (iii) **संसाधन व्यवस्था** (Processing Function)—यदि माल को बेचने योग्य बनाने के लिए संसाधन की आवश्यकता हो तो यह कार्य भी इन समितियों द्वारा किया जाता है। (iv) **उत्पादन में किसानों की सहायता** (Help to Cultivators in Production)—यह समितियाँ किसानों को उत्पत्ति के लिए खाद, बीज, कृषि यन्त्र एवं उपकरण तथा अन्य आवश्यक साज-सामान उपलब्ध करती हैं जिससे कि कृषि उपज उत्तम प्रकार की हो। (v) **वित्तीय कार्य** (Financial Function)—यह समितियाँ अपने सदस्यों की आवश्यकता के समय वित्तीय सहायता भी करती हैं जिससे कि वे महाजन, आदि के चंगुल में न फँस जायें। (vi) **सरकारी प्रतिनिधि** (Government Representation)—जब कभी भी सरकार नियन्त्रित वस्तुओं का वितरण या उगाई करती है तो यह समितियाँ सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती हैं। (vii) **अन्य कार्य** (Other Functions)—उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त यह समितियाँ सदस्यों की उपज को बाजारों तक पहुँचाने का कार्य भी करती हैं। इसके लिए परिवहन व्यवस्था की जाती है। सदस्यों में बचत, आत्म-सहायता एवं सहकारी भावनाओं का भी विकास किया जाता है।

(2) **केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियाँ** (Central Co-operative Marketing Societies)—प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों के ऊपर केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियाँ होती हैं। इन समितियों को केन्द्रीय संघ या परिषद (Central Union or Federation) भी कहते हैं। इन समितियों का कार्य प्रारम्भिक समितियों व अपने सदस्यों की सहायता करना, क्रय-विक्रय करना व अपना सम्बन्ध प्रान्तीय समिति से रखना है। यह समितियाँ वे सभी कार्य करती हैं जो प्राथमिक समितियों के द्वारा किये जाते हैं। यह समितियाँ शहरों या कस्बों में पायी जाती हैं। इस समय इस प्रकार की 372 समितियाँ कार्य कर रही हैं।

(3) **प्रान्तीय सहकारी विपणन समितियाँ** (State Co-operative Marketing Societies)—यह समितियाँ प्रान्त भर में चल रही समितियों के ऊपर सर्वोच्च

संस्था (Apex Institution) के रूप में कार्य करती हैं तथा केन्द्रीय समितियों के माध्यम से प्राथमिक समितियों की सहायता करती हैं। इन प्रान्तीय समितियों के द्वारा वे सभी कार्य किये जाते हैं जो केन्द्रीय व प्राथमिक समितियाँ करती हैं। यह समिति साधारणतया प्रदेश की राजधानी में पायी जाती हैं। इस समय 27 प्रान्तीय समितियाँ कार्य कर रही हैं। भारत में इन समितियों का विकास अभी बहुत कम हुआ है।

(4) **राष्ट्रीय सहकारी कृषि विपणन संघ** (National Agricultural Co-operative Marketing Federation)—राष्ट्रीय स्तर पर भारत में सिर्फ एक संस्था है जो कृषि कार्य के लिए है तथा जिसका नाम राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (National Agricultural Co- operative Marketing Federation) है। यह संस्था 1958 में स्थापित हुई है तथा इसका मुख्य कार्यालय नई दिल्ली में है। 1977-78 में इसने 47 करोड़ रुपये की बिक्री की है।

भारत में सहकारी विपणन की वर्तमान स्थिति

(PRESENT STATE OF AFFAIRS OF CO-OPERATIVE MARKETING IN INDIA)

भारत में सहकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में जो आँकड़े रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं उन्हें दो भागों में बाँट दिया गया है—(*i*) साख समितियाँ व (ii) गैर-साख समितियाँ। **गैर-साख समितियों** में विभिन्न प्रकार की समितियाँ हैं जो किसी न किसी रूप में विपणन कार्य करती हैं, जैसे, कृषि विपणन समितियाँ, गन्ना पूर्ति समितियाँ, मछली समितियाँ, सिंचाई समितियाँ, चीनी कारखाने समितियाँ, हाथ-करघा बुनकर समितियाँ, उपभोक्ता भण्डार समितियाँ आदि। 30 जून, 1977 को गैर-साख समितियों की कुल संख्या 1·53 लाख थी।

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया सहकारिता के सम्बन्ध में जो आँकड़े प्रकाशित करती है इनमें गैर-साख समितियों को आठ भागों में विभाजित किया गया है: (i) कृषि विपणन समितियाँ (Agricultural Marketing Societies), (ii) प्रक्रियन विपणन समितियाँ (Processing Marketing Societies), (iii) चीनी मिल (Sugar Mills), (iv) खेती समितियाँ (Farming Societies), (v) बुनकर समितियाँ (Weaver's Societies), (vi) औद्योगिक समितियाँ (Industrial Societies), (vii) उपभोक्ता भण्डार (Consumer Stores), व (viii) अन्य गैर-साख समितियाँ (Other Non-Credit Societies)।

उत्तर प्रदेश में सहकारी विपणन

(CO-OPERATIVE MARKETING IN U. P.)

उत्तर प्रदेश सहकारी विपणन के क्षेत्र में काफी आगे है और इस राज्य ने इस क्षेत्र में विशेष रूप से सफलता प्राप्त की है। **सम्पूर्ण भारत की सहकारी बिक्री**

के आधार पर उत्तर प्रदेश की कृषि विपणन समितियों, गन्नापूर्ति समितियों एवं घी पूर्ति यूनियन व समितियों का स्थान प्रथम है तथा दुग्धपूर्ति यूनियन व समितियों का पंचम। हम यहाँ इन समितियों के क्रियाकलापों एवं प्रगति का ब्यौरा दे रहे हैं :

(1) **कृषि विपणन समितियाँ** (Agricultural Marketing Societies)—आज सम्पूर्ण भारत की कृषि विपणन समितियों की कुल बिक्री में उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान है। यहाँ निम्न प्रकार की समितियाँ पाई जाती है : (i) प्रान्तीय (Provincial), (ii) केन्द्रीय (Central), (iii) प्राथमिक (Primary)। (i) **प्रान्तीय** (Provincial)—प्रान्तीय या राज्य स्तर पर प्रान्तीय सहकारी विपणन एवं विकास फेडरेशन (Provincial Co-operative Marketing and Development Federation) है जिसका कार्य केन्द्रीय व प्राथमिक समितियों के कार्यों को समन्वित करना व इनको सहायता पहुँचाना है। 30 जून, 1970 को इसकी कार्यशील पूँजी 26 करोड़ रुपये थी तथा इस फैडरेशन ने 8 करोड़ रुपये के मूल्य के कृषि पदार्थों का विक्रय किया। 30 जून, 1975 को इसकी कार्यशील पूँजी बढ़कर 90 करोड़ रुपये हो गई है तथा इसी वर्ष में इसने 41 करोड़ रुपये की कृषि उपज की बिक्री की है। (ii) **केन्द्रीय** (Central) — यह केन्द्रीय समितियाँ जिला स्तर पर कार्य करती हैं। इनका कार्य प्राथमिक समितियों के कार्यों में सहायता पहुँचाना है। इस समय 192 केन्द्रीय सहकारी समितियाँ उत्तर प्रदेश में कार्य कर रही हैं जबकि 30 जून, 1970 को केवल 51 समितियाँ कार्य कर रही थीं। 30 जून, 1975 को समाप्त होने वाले वर्ष में इन्होंने 79 करोड़ रुपये के कृषि पदार्थों का विपणन किया। (iii) **प्राथमिक** (Primary)—यह समितियाँ गाँव के स्तर पर पाई जाती हैं। 30 जून, 1975 को इनकी संख्या 244 थी। 1974-75 वर्ष में इन समितियों ने 15 करोड़ रुपये के मूल्य के कृषि पदार्थ बेचे।

उत्तर प्रदेश में कृषि पदार्थों की बिक्री का कार्य सर्वप्रथम मुरादाबाद जिला सहकारी बैंक ने किया था लेकिन बाद में हानि होने के कारण बैंक ने यह कार्य बन्द कर दिया। 1938-39 वर्ष में सहकारी विपणन के विकास के लिए उत्तर प्रदेश काँग्रेस सरकार ने एक पंचवर्षीय योजना बनायी जिससे 1939-40 में 75 सहकारी समितियाँ स्थापित हुईं। यह संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चली गयी व सन् 1943 में विभिन्न स्तरों पर कार्य करने वाली समितियों के कार्यों को समन्वित करने के लिए प्रान्तीय सहकारी विपणन एवं विकास फेडरेशन की स्थापना की गयी। 1944-45 वर्ष में इन समितियों की संख्या 153 हो गयी। सन् 1946 की एक योजना के अनुसार 5 सहकारी समितियाँ स्थापित की गयीं। स्वतन्त्रता के बाद से इनकी संख्या में बराबर वृद्धि हो रही है। इस समय 3 प्रान्तीय, 192 केन्द्रीय व 244 प्राथमिक समितियाँ कार्य कर रही हैं।

(2) **गन्ना पूर्ति समितियाँ** (Sugar-cane Supplies Societies)—गन्ना उत्तर प्रदेश की मुख्य कृषि उपजों में एक है। प्रारम्भ में गन्ने का प्रयोग गुड़ व खाँड़

आदि में किया जाता था। उस समय गन्ने की बिक्री की कोई समस्या नहीं थी क्योंकि गन्ने की खरीद छोटे स्तर पर होती थी। उत्तर प्रदेश व पास के प्रदेश बिहार में चीनी मिलों की स्थापना व उनके निरन्तर विकास से गन्ने के विपणन में बहुत-सी बुराइयाँ व कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं। चीनी मिलों के मालिक प्रायः यह प्रयत्न किया करते थे कि किसान को गन्ने का कम से कम मूल्य दिया जाये। इस उद्देश्य से (i) मिल के दरवाजे पर खड़ी गन्ने से भरी गाड़ियों को कई दिनों तक न तुलवाना, (ii) तौल में गड़बड़ी करना, (iii) तुरन्त भुगतान न करना, व (iv) विभिन्न प्रकार की कटौतियाँ, आदि कार्य किया करते थे।

अतः उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् 1935 में गन्ना विकास विभाग की स्थापना की तथा प्रत्येक चीनी मिल मालिक से कहा गया कि वे 3,000 रुपये प्रति वर्ष इस विभाग को गन्ना विकास के लिए दें। यह योजना अधिक लाभप्रद सिद्ध नहीं हुई। सन् 1938 में सरकार ने उत्तर प्रदेश चीनी मिल नियन्त्रण अधिनियम व नियम (U. P. Sugar Factories Control Act and Rules) लागू किये। इस अधिनियन का उद्देश्य चीनी मिलो को लाइसेंस देना, गन्ने की पूर्ति नियमित करना, व गन्ने के उचित मूल्य निर्धारित करना था। इस अधिनियम में 1939 व 1948 में संशोधन किये गये है।

यहाँ दो प्रकार की समितियाँ पाई जाती हैं: (i) केन्द्रीय समिति, यूनियन या संघ (Central Society or Union), (ii) प्राथमिक गन्ना पूर्ति समिति (Primary Sugarcane Supply Society)।

इन सबके कार्यों में समन्वय व सहयोग करने के लिए उत्तर प्रदेश सहकारी गन्ना यूनियन फेडरेशन है। इन सभी यूनियनों व समितियों के कार्यों की देखभाल के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने एक अधिकारी गन्ना आयुक्त (Cane Commissioner) के नाम से नियुक्त कर रखा है।

प्रत्येक वर्ष गन्ने की फसल आने से पहले केन्द्रीय समिति या यूनियन चीनी मिल के आस-पास के क्षेत्रों का सर्वेक्षण करती है और उस वर्ष होने वाले गन्ने के उत्पादन का अनुमान लगाती है जिसके आधार पर यूनियन या समिति मिल-मालिकों से अनुबन्ध करती है। माँग व पूर्ति को देखकर पूरे मौसम के लिए एक कार्यक्रम बना लिया जाता है जिसके आधार पर पुर्जी (slips) तैयार की जाती हैं जो प्राथमिक समितियों के माध्यम से गन्ना उत्पादकों तक पहुँचा दी जाती हैं। गन्ना उत्पादक उस पुर्जी में दिये समय पर अपना गन्ना मिल के दरवाजे पर पहुँचा देता है जहाँ दरवाजे पर लगी मशीन से तोला जाता है व मिल का कर्मचारी माल तुल जाने पर एक लिखित आदेश गन्ना उत्पादक को दे देता है जिसको दिखाने पर मिल का रोकड़िया भुगतान कर देता है। कहीं-कहीं भुगतान सहकारी यूनियन ही कर देती हैं जो बाद में मिल से इकट्ठा भुगतान ले लेती हैं। प्रत्येक मिल के दरवाजे पर गन्ना

यूनियन का दफ्तर होता है जिसका काम गन्ने की उचित तौल कराकर तुरन्त भुगतान दिलाना है। गन्ना समितियों व यूनियनों को इस बिक्री पर कुछ प्रतिशत कमीशन मिलता है जिसका $\frac{1}{3}$ उस क्षेत्र की विकास परिषद् को चला जाता है।

सन् 1938 में अधिनियम के लागू होने से उत्तर प्रदेश में गन्ना पूर्ति यूनियनों व समितियों की मात्रा व इनके कार्य-कलापों में काफी वृद्धि हुई है। वर्ष 1937-38 में 28 यूनियनें थीं जिनकी संख्या 1947-48 में बढ़कर 99 हो गयी। 1955-56 में यह संख्या 115 व 1974-75 में 134 हो गयी हैं।

इस समय उत्तर प्रदेश में 134 प्राथमिक यूनियन हैं। इनकी कार्यशील पूँजी 21·18 करोड़ रुपये है। 1969-70 में इन्होंने 120 करोड़ रुपये की कीमत का गन्ना बेचा था जबकि 1974-75 वर्ष में 178·53 करोड़ रुपये का गन्ना बेचा। इसके अतिरिक्त इन समितियों ने बीज, खादें, सीमेंट व यन्त्र आदि अपने सदस्यों को वितरित किये। यह यूनियनें गन्ने की बिक्री सदस्यों को ऋण व आवश्यक पदार्थों को उपलब्ध करने के अतिरिक्त अन्य कार्य भी करती हैं जैसे, नये कुएँ बनाना, पुरानों की मरम्मत कराना, सड़कें बनाना व उनकी मरम्मत कराना, सामाजिक उत्थान के कार्य जैसे, स्कूल, दवाखाने व अस्पताल स्थापित करना व उनको चलाना। 1937-38 में यह यूनियन मिलों की 16% माँग को पूरा करती थी लेकिन आज 95% माँग को पूरा करती है।

सहकारी यूनियनों व समितियों की सर्वोच्च संस्था उत्तर प्रदेश सहकारी गन्ना यूनियन फेडरेशन है जिसकी 134 यूनियन सदस्य हैं।

यह फेडरेशन खाद, बीज व यन्त्र, आदि उपलब्ध करता है जिससे कि गन्ने की किस्म व गुण में सुधार हो सके। यह यूनियनों व समितियों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देता है। गन्ना उत्पादकों, संघों व मिलों में तालमेल बनाये रखता है। सस्ते दामों पर यूनियनों व उत्पादकों के काम आने वाले रजिस्टर उपलब्ध करता है और यूनियनों व समितियों की योजनाओं का संचालन करता है।

(3) **घी यूनियन व समितियाँ** (Ghee Unions and Societies)—घी सहकारिता में उत्तर प्रदेश का प्रमुख स्थान है। भारत में इस समय जितनी भी सहकारी यूनियन व समितियाँ पायी जाती हैं उनकी 94% उत्तर प्रदेश में पायी जाती हैं। सम्पूर्ण सहकारी बिक्री के आधार पर उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान है।

यहाँ दो प्रकार की समितियाँ पायी जाती हैं: (i) सहकारी समिति, व (ii) सहकारी यूनियन। सहकारी समिति गाँव स्तर पर कार्य करती है। इसके सदस्य समिति को यह विश्वास दिलाते हैं कि वे हर 15 दिन के पश्चात् समिति को घी देते रहेंगे। इन समितियों के द्वारा सदस्यों को ऋण भी दिया जाता है। यदि सदस्य समिति को मिलावट करके घी देते हैं तो समिति उनको लौटा देती है व उन पर

आर्थिक दण्ड भी लगाती है। समितियों द्वारा इस प्रकार एकत्रित घी यूनियनों को बेच दिया जाता है जो अपने यहाँ प्रयोगशाला में घी की जाँच कर मुहरबन्द टीनों व डिब्बों में भरकर व्यापारियों व उपभोक्ताओं को बेच देती हैं। इन डिब्बों व टीनों पर 'एगमार्क' की मुहर भी यूनियन लगा देती है।

उत्तर प्रदेश में सर्वप्रथम सहकारी घी समिति आगरा जिले में चौबान का पुरा नामक स्थान पर गठित हुई थी जिसके पश्चात् मैनपुरी, इटावा, मेरठ व बुलन्दशहर जिलों में स्थापित हुई। अब अलीगढ़, खुर्जा, हाथरस, एटा, सहारनपुर, मुरादाबाद, झाँसी व उरई आदि स्थानों पर भी यह समितियाँ व यूनियनें गठित हो गयी हैं। इस समय 6 यूनियनें व 145 समितियाँ प्रदेश में कार्य कर रही हैं। इन समितियों व यूनियनों ने 1974-75 वर्ष में 61 हजार रुपये के मूल्य के घी की बिक्री की।

(4) **दुग्ध पूर्ति यूनियन व समितियाँ** (Milk Supply Unions & Societies)—उत्तर प्रदेश का इसमें पंचम स्थान है। पहला स्थान गुजरात व दूसरा स्थान महाराष्ट्र का है। तृतीय व चतुर्थ स्थान क्रमश: तामिलनाडु व केरल का है। शहरी क्षेत्रों में दूध देने वाले जानवरों को पालने में व्यय अधिक बैठता है। साथ ही शहरी व्यक्ति परिश्रम भी नहीं करना चाहता। शहरों में जनसंख्या बराबर बढ़ रही है। इन सभी कारणों से शहरी क्षेत्रों में दूध का अभाव रहता है। इस अभाव को दूर करने के लिए प्रदेश में सहकारी दुग्ध पूर्ति यूनियन व समितियाँ स्थापित हुई हैं। यह समितियाँ दो प्रकार की होती हैं: (i) सहकारी समिति, (ii) सहकारी यूनियन। सहकारी समिति गाँव स्तर पर कार्य करती है तथा इनके सदस्य उचित समय पर समिति को दूध दे देते हैं। इन समितियों का सम्पर्क यूनियनों से होता है जो अपने सदस्यों से दूध एकत्रित कर शहरी क्षेत्रों में वितरित करने का कार्य करती हैं। दूध जल्द खराब न हो इस उद्देश्य से यह यूनियन वातानुकूलित भण्डारों का भी प्रबन्ध करती हैं।

इस दिशा में पहला प्रयत्न 1911 में किया गया जबकि बनारस में सहकारी दुग्धशाला (Co-operative Dairy) स्थापित की गयी। इसके बाद इलाहाबाद व लखनऊ में भी दुग्धशालाएँ खोली गयीं लेकिन बनारस व लखनऊ की दुग्धशालाएँ क्रमश: 1927 व 1928 में असफल हो गयीं। इनके असफल होने का कारण यह था कि यह दुग्धशालाएँ मध्यस्थों द्वारा चलायी गयी थीं। 1937-38 से दुग्धशालाएँ ठोस आधार पर संगठित की गयी हैं। 1938-39 में कुल 9 समितियाँ कार्य कर रही थीं लेकिन इनकी संख्या 1947-48 में 109 हो गयी। इसी वर्ष 4 यूनियनें भी कार्य कर रही थीं। धीरे-धीरे इन यूनियनों व समितियों की संख्या में बराबर वृद्धि होती रही। इस समय 39 यूनियनें व 3,140 समितियाँ उत्तर प्रदेश में कार्य कर रही हैं। इन यूनियनों एवं समितियों की वर्ष 1974-75 में कुल बिक्री क्रमश: 3·86 एवं 14·6 करोड़ रुपये रही है।

इस समय आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, कानपुर, मेरठ, हल्द्वानी, अल्मोड़ा आदि स्थानों पर यूनियनें कार्य कर रही हैं।

उत्तर प्रदेश में सहकारी विपणन की उन्नति के कारण
(REASONS FOR THE PROGRESS OF THE CO-OPERATIVE MARKETING IN U. P.)

उत्तर प्रदेश में सहकारी विपणन के क्षेत्र में अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक उन्नति हुई है, इसके लिए निम्नलिखित कारण हैं :

(1) **ग्राम स्तर पर एकत्रीकरण की सुविधा** (Facility of Assembling at Village Level)—उत्तर प्रदेश में सहकारी विपणन समितियों के द्वारा अपने सदस्यों को गाँव के साहूकार व व्यापारियों के प्रतिनिधियों से बचाने और फसल को गाँव से ही एकत्रित करने के लिए एकत्रण केन्द्र (Collection Centres) खोल दिये गये हैं जहाँ से समिति के कर्मचारी पदार्थों को बड़ी मात्रा में एकत्रित करके समिति के कार्यालय तक पहुँचाते हैं। किसानों व अन्य उत्पादकों को यह लाभ है कि उनको पदार्थ बाजार तक नहीं ले जाने पड़ते हैं। इस प्रकार वे आने-जाने की परेशानी से बच जाते हैं।

(2) **उदार ऋण नीति** (Liberal Loan Policy)—इन विपणन समितियों की ऋण देने की नीति बहुत उदार है। पहले साख समितियों के द्वारा ऋण भूमि को गिरवीं रखकर दिया जाता था लेकिन अब यह विपणन समितियाँ सदस्य के इस आश्वासन पर कि वह अपने उत्पादित पदार्थों की बिक्री समिति के माध्यम से ही करेगा, ऋण प्रदान कर देती हैं। यह ऋण नकदी व पदार्थ दोनों में दिया जाता है।

(3) **आर्थिक लाभ** (Economic Advantage)—विपणन समितियों के माध्यम से पदार्थ बेचने में उत्पादकों को बहुत से लाभ होते हैं जैसे, सही तौल, उचित कटौती, प्रमापीकरण, वर्गीकरण व भण्डारों की सुविधा, बाजारों व महाजनों की बुराइयों से बचत और मोलभाव करने की क्षमता में वृद्धि, आदि इन सभी बातों से उत्पादकों को उचित मूल्य मिल जाता है।

(4) **सरकारी नीति** (Government Policy)—उत्तर प्रदेश में सरकार की यह नीति है कि आवश्यकताओं को अधिक से अधिक सहकारी समितियों के माध्यम से पूरा करे। साधारणतया प्रदेश का कृषि विभाग अपनी आवश्यकताओं के लिए विपणन समितियों की सहायता लेता है जिससे समितियों के व्यापार में वृद्धि होती है।

(5) **लाभ वितरण** (Profit Distribution)—राज्य में विपणन समितियों को अपना व्यापार करने में जो लाभ होता है उसका अधिकांश भाग सदस्यों को बोनस व इनाम के रूप में बाँट दिया जाता है जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव सदस्यों पर पड़ता

है। एक ओर तो उनको पदार्थों के बेचने से लाभ होता है, दूसरी ओर समिति के लाभों में भी भागी बन जाते हैं।

(6) **लिखित अनुबन्ध** (Written Contract)—ऋण देते समय यह समितियाँ सदस्यों से इस बात का लिखित अनुबन्ध कर लेती हैं कि उत्पत्ति आने पर वे समिति के माध्यम से ही बेचेंगे। यदि उत्पत्ति समिति के माध्यम से नहीं बेची गयी तो ऊँची ब्याज की दर ली जावेगी। इस प्रकार के लिखित, नैतिक व क़ानूनी बन्धन के कारण उत्पत्ति समितियों के द्वारा बेची जाती है जिससे समितियों के कार्यकलापों में वृद्धि होती है।

(7) **प्रादेशिक सहकारी विकास व विपणन फेडरेशन द्वारा सहायता** (Help by Provincial Co-operative Development & Marketing Fedration)—यह प्रदेश की सहकारी समितियों की सर्वोच्च संस्था है जो समय-समय पर समितियों की सहायता इस प्रकार करती है जैसे खरीद व बिक्री में सहायता करना, समितियों के लिए खाद, औजार व बीज आदि खरीदना, महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध करना, कुशल एवं अनुभवी कर्मचारियों की सेवाओं की आवश्यकताओं के समय समितियों को देना व अपनी बम्बई-कलकत्ता शाखाओं के माध्यम से समितियों के पदार्थों की बिक्री करना आदि। इन सभी कारणों से इस प्रदेश में अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक प्रगति हुई है।

उत्तर प्रदेश में किसान सेवा समितियों की योजना

(FARMERS SERVICE SOCIETIES PLAN OF U. P.)

उत्तर प्रदेश सरकार की एक योजनाबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत 1982-83 के अन्त तक 4,000 कृषक सहकारी समितियाँ स्थापित करने की योजना है। इन सहकारी समितियों के अन्तर्गत राज्य के लगभग 80 लाख किसान परिवारों और अन्य कमजोर वर्ग के लोगों को लाभ होगा।

आगामी जुलाई से शुरू हो रहे 1979-80 सहकारिता वर्ष के दौरान लगभग एक हजार कृषक सहकारी समितियाँ स्थापित करने का प्रस्ताव है।

कृषक सहकारी समितियों का उद्देश्य किसानों और अन्य ग्रामीण लोगों को उनके चहुँमुखी विकास के लिए बहुमुखी सहायता देना है। छोटे एवं सीमान्त किसानों, कृषि मजदूरों, ग्रामीण शिल्पकारों और अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशेष ध्यान दिया जायेगा।

कृषक सेवा समितियाँ कृषि विकास के लिए साख सुविधाएँ देंगी और उपभोक्ता वस्तुओं, कृषि सेवाओं और बाजार सुविधाओं की व्यवस्था करेंगी।

कृषि साख के अतिरिक्त इनके सदस्यों को कुटीर एवं लघु उद्योग स्थापित करने के लिए ऋण भी दिया जायेगा। इन्हें पशु पालन, मुर्गी पालन, सूअर, भेड़ और बकरी आदि के पालन-पोषण के लिए भी ऋण दिया जायेगा।

प्रारम्भिक तीन वर्षों में इन्हें 22 करोड़ रुपये की सहायता का प्रस्ताव है। सहायता राशि प्रथम वर्ष में 10,800 रुपये प्रति समिति होगी। दूसरे वर्ष इसका 90 प्रतिशत और तीसरे वर्ष 80 प्रतिशत होगी।

प्रत्येक कृषक सेवा समिति में विशेषज्ञों का एक दल होगा जिनमें एक प्रबन्ध निदेशक और दो तकनीकी अधिकारी भी शामिल होंगे। समितियों के अपने कार्यालय भवनों में होंगे और छोटे बैंक तथा भण्डार भी होंगे।

मध्य प्रदेश में सहकारी विपणन
(CO-OPERATIVE MARKETING IN MADHYA PRADESH)

भारत के अन्य प्रदेशों की तुलना में मध्य प्रदेश में सहकारी विपणन के क्षेत्र में अधिक प्रगति नहीं हुई है। सम्पूर्ण भारत में सहकारी बिक्री के आधार पर मध्य प्रदेश की कपास समितियों का द्वितीय एवं कृषि विपणन का सातवाँ स्थान है। 30 जून, 1966 को मध्य भारत और भोपाल क्षेत्र में 39 कृषि क्रय-विक्रय समितियाँ थीं जो वास्तव में विपणन समितियाँ नहीं थीं। यह तो व्यापारियों के संघ थे यद्यपि इनका पंजीकरण सहकारिता अधिनियम के अन्तर्गत हुआ था। इन समितियों के सदस्यों की संख्या बहुत ही कम थी तथा इनके कार्य भी सीमित थे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में मध्य भारत व भोपाल क्षेत्र में 13 समितियाँ और बनाई गयीं। इस समय मध्य प्रदेश में 257 प्राथमिक समितियाँ व एक प्रान्तीय समिति कार्य कर रही है।

(1) **कपास समितियाँ**—यहाँ इस समय 12 प्राथमिक समितियाँ हैं। यहाँ पर कोई भी केन्द्रीय समिति नहीं है। अतः इन समितियों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए केन्द्रीय समिति की स्थापना की जानी चाहिए। 1968-69 वर्ष में इन प्राथमिक समितियों की संख्या 11 थी तथा इन्होंने इसी वर्ष 111 लाख रुपये की कपास व 33 लाख रुपये की खाद, बीज, कृषि यन्त्र, सीमेण्ट, आदि की बिक्री की।

इसी प्रकार 1974-75 वर्ष में 12 प्राथमिक समितियों ने 2·08 करोड़ रुपये की कपास की बिक्री की व 90 लाख रुपये की खाद, बीज, कृषि-यन्त्र सीमेण्ट' आदि सदस्यों को बेचे।

(2) **कृषि विपणन समितियाँ**—यहाँ प्राथमिक समितियाँ व प्रान्तीय स्तर पर मध्य प्रदेश सहकारी विपणन समिति (M. P. Co-operative Marketing Society) पायी जाती है। मध्य प्रदेश सहकारी विपणन समिति ही सर्वोच्च संस्था (Apex Institution) है जिसका कार्य प्रदेश भर की सहकारी विपणन समितियों के कार्यों में समन्वय लाना व उनकी सहायता करना है। इसकी पूँजी 3·3 करोड़ रुपये हैं जिसमें मध्य प्रदेश सरकार का हिस्सा 3·1 करोड़ रुपये है बाकी धन समितियों के द्वारा दिया गया है। 1969-70 वर्ष में इस संस्था की कुल सम्पत्तियाँ 8 करोड़ रुपये की थीं जो 1973-74 वर्ष में बढ़कर 32 करोड़ रुपये हो गई हैं। इसी वर्ष में

इस संस्था ने 8 करोड़ रुपये के कृषि-पदार्थ बेचे व 24 करोड़ रुपये के मूल्य के कृषि उपकरण, खाद, बीज, आदि सदस्यों को वितरित किये। पिछले 20 वर्षों में कृषि विपणन समितियों के क्षेत्र में मध्य प्रदेश में निम्न प्रगति हुई है :[1]

(रुपये लाखों में)

विवरण	1953-54	1964-65	1969-70	1974-75
1. प्रान्तीय समितियों की संख्या	1	1	1	1
2. प्राथमिक समितियों की संख्या	82	235	236	261
3. प्राथमिक समितियों के सदस्यों की संख्या	40,000	54,600	69,200	96,500
4. प्राथमिक समितियों द्वारा बिक्री	86	709	1,224	1,485
5. प्राथमिक समितियों द्वारा सदस्यों को ऋण	42	92	80	145
6. कृषि उत्पत्ति सामग्री की बिक्री	—	—	294	839

उपर्युक्त तालिका को देखने से पता लगता है कि पिछले 20 वर्षों में प्राथमिक समितियों की संख्या में लगभग तीन गुनी, सदस्यों को ऋण की मात्रा में साढ़े तीन गुनी व बिक्री में पचास गुनी वृद्धि हुई है। यद्यपि सदस्यों की संख्या में वृद्धि थोड़ी ही हुई है। इस समय 261 प्राथमिक कृषि विपणन समितियाँ कार्य कर रही हैं जिनके सदस्यों की संख्या 96,500 है। 1974-75 वर्ष में इन समितियों ने 14·85 करोड़ रुपये के कृषि पदार्थों की बिक्री की है।

भारत में सहकारी विपणन की सफलताएँ
(ACHIEVEMENTS OF CO-OPERATIVE MARKETING IN INDIA)

भारत में सहकारी विपणन आन्दोलन अभी बचपन की अवस्था में है उसके विकास की काफी आवश्यकता है। भारत में सहकारी विपणन की निम्नलिखित सफलताएँ हैं :

(1) **उपभोक्ता को अच्छी किस्म की वस्तुओं की पूर्ति** (Supply of Good Quality Goods to Consumers)—विपणन समितियों के द्वारा जो वस्तुएँ बेची जाती हैं उनका प्रमाप के आधार पर वर्गीकरण एवं प्रयोगशालाओं में परीक्षा कर ली जाती है। ऐसा करने से उपभोक्ता को वस्तु अच्छी क्वालिटी की एवं शुद्ध अवस्था में मिलती है। उसमें किसी प्रकार की मिलावट नहीं होती है।

(2) **विपणन लागत में कमी** (Reduction in the Cost of Marketing)—सहकारी विपणन समितियाँ उत्पादकों से सीधा माल खरीदती हैं जिससे विभिन्न प्रकार के मध्यस्थों के खर्चों व लाभों की बचत हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि वस्तु के विपणन व्ययों में काफी कमी हो जाती है।

---

1 *Statistical Statements relating to the Co-operative Movement in India,* 1974-75, April 1, 1977, Reserve Bank of India.

(3) **साहूकारों व व्यापारियों के चंगुल से बचाव** (Saved the Producer from the Malpractices of Money-lenders and Businessmen)—सहकारी विपणन की तीसरी सफलता यह है कि इसने उत्पादकों को साहूकारों व व्यापारियों के चंगुल से बचाया है क्योंकि कृषक की धन की आवश्यकता यह समितियाँ कुछ हद तक पूरा कर देती हैं तथा उत्पत्ति को बेचने की परेशानी से भी उसे बचा देती हैं।

(4) **उत्पत्ति में वृद्धि** (Increase in Production)—सहकारी विपणन की चौथी सफलता यह है कि उन्नत बीज, रासायनिक खाद व यन्त्र समितियों द्वारा सदस्यों को उपलब्ध किये जाने के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई है तथा गुण में भी उन्नति हुई है।

(5) **उत्पादकों में सहकारी भावना को जन्म** (Birth of Co-operative Feeling among Producers)—सहकारी विपणन ने किसानों व अन्य प्रकार के उत्पादकों में सहकारी भावना को जन्म दिया है और अब वे अपनी उन्नति के लिए इसका अधिकाधिक प्रयोग करने की चेष्टा में हैं।

भारत में सहकारी विपणन के दोष

(DEFECTS OF CO-OPERATIVE MARKETING IN INDIA)

भारत में सहकारी विपणन की प्रगति अन्य देशों की तुलना में बहुत कम व बहुत धीमी गति से हुई है। इसके बहुत-से कारण हैं जिनमें निम्न कारण प्रमुख हैं :

(1) **सदस्यों में वफादारी का अभाव** (Lack of Faith among Members)—सदस्यों में सहकारी विपणन समितियों के प्रति वफादारी कम है। वे अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति सदैव इन समितियों के माध्यम से न खरीदते हैं और न बेचते हैं। जिस समय उनको समिति के माध्यम से लाभ होने की सम्भावना होती है उसी समय समिति की सहायता लेते हैं।

(2) **पदाधिकारियों द्वारा पद का दुरुपयोग** (Misuse of Office by Office Bearers) --सहकारी विपणन संस्थाओं के जो सदस्य अवैतनिक पदाधिकारी हो जाते हैं उनके द्वारा उचित नैतिक स्तर व ईमानदारी का परिचय नहीं दिया जाता है। वे सदैव इस बात की चेष्टा करते रहते हैं कि समिति से अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर लें और इस कार्य के लिए वे समिति के बहीखातों व अन्य कागजातों में जालसाजी करते हैं।

(3) **पदाधिकारियों में व्यापारिक योग्यता का अभाव** (Lack of Business Ability among Officers)—इन समितियों के पदाधिकारियों में व्यापारिक योग्यता की कमी होती है। उनको व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता है। जिसका परिणाम यह होता है कि समिति को लाभ के स्थान पर हानि या कम लाभ होता है।

(4) **धन का अभाव** (Lack of Funds)—इन समितियों को धन सदस्यों की सदस्यता फीस से व केन्द्रीय समिति से ऋण के रूप में मिलता है लेकिन इन दोनों

का कुल योग बहुत थोड़ा होता है जिसका परिणाम यह होता है कि समितियाँ धन के अभाव में प्रगति नहीं कर पाती हैं।

(5) **उचित गोदाम सुविधाओं का अभाव** (Lack of Proper Godown Facilities)—इन समितियों के पास इतना धन नहीं होता है कि वे अपने स्वयं के आधुनिक तरीके के गोदाम बनवा सकें। अतः यह किराये के मकानों को गोदाम के रूप में प्रयोग करती हैं। ऐसा करने से एक ओर तो लाभ कम होता है और दूसरी ओर गोदाम आधुनिक न होने से पदार्थों को चूहों, आदि से काफी नुकसान होता है। इसके साथ-साथ यह समितियाँ अपने सभी सदस्यों को गोदाम सुविधाएँ उपलब्ध नहीं कर पाती हैं।

(6) **परिवहन सुविधाओं का अभाव** (Lack of Transport Facilities)—इन विपणन समितियों के पास परिवहन सुविधाओं का अभाव होता है जिससे इनके व्यापार की क्रियाएँ एक सीमा में ही हो पाती हैं।

(7) **बाजार सूचनाओं का अभाव** (Lack of Market Informations)—बाजार की प्रतिदिन की सूचनाएँ इन समितियों तक नहीं पहुँच पाती हैं। इनको उस स्थान के व्यापारियों की गतिविधि के आधार पर ही अपना कार्य करना पड़ता है।

(8) **प्रमापीकरण एवं श्रेणीकरण का अभाव** (Lack of Standardization and Grading)—इन समितियों की आर्थिक स्थिति उचित न होने के कारण यह समितियाँ प्रमापीकरण एवं श्रेणीकरण करने वाले यन्त्रों को नहीं खरीद पाती हैं। फलतः बाजार में इनको अपनी वस्तु का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

(9) **राजकीय सहायता का अभाव** (Lack of Government Help)—इन समितियों को राजकीय सहायता पर्याप्त मात्रा में नहीं दी जाती है।

(10) **व्यापारियों द्वारा तीव्र प्रतिस्पर्द्धा** (Keen Competition by Businessmen)—जिस स्थान पर विपणन समिति खोली जाती है उस स्थान के व्यापारियों के द्वारा संगठित होकर विपणन समितियों से तीव्र प्रतिस्पर्द्धा की जाती है, जिसका परिणाम यह होता है कि समितियों को अपनी वस्तुएँ सस्ती दर पर बेचनी पड़ती हैं।

(11) अन्य दोष (Other Defects)—उपरोक्त वर्णित दोषों के अलावा अन्य दोष भी पाये जाते हैं जैसे, (i) नियन्त्रित बाजारों का अभाव, (ii) पर्याप्त तान्त्रिक सलाह का अभाव, (iii) विभिन्न स्तरों पर सहयोग का अभाव, आदि।

सहकारी विपणन की उन्नति के लिए सुझाव
(SUGGESTIONS FOR IMPROVEMENT OF CO-OPERATIVE MARKETING)

भारत में अन्य देशों की तुलना में सहकारी विपणन का विकास बहुत कम हुआ है। साथ ही भारतीय सहकारी विपणन में कुछ कमियाँ भी पायी जाती हैं अतः उनकी उन्नति के लिए अग्रलिखित सुझाव दिये जाते हैं :

(1) **अनिवार्य सहकारी विपणन की आवश्यकता** (Need for Compulsory Co-operative Marketing)—भारत में इस समय सहकारी विपणन स्वेच्छा पर निर्भर है। कुछ प्रगतिशील देशों ने कुछ क्षेत्रों में सहकारी विपणन कानूनन आवश्यक कर दिया है जिससे वहाँ काफी प्रगति हुई है। अतः भारत में भी इसी बात की आवश्यकता है कि सहकारी विपणन परीक्षण के आधार पर किसी एक क्षेत्र में आवश्यक कर दिया जाय और जब उस क्षेत्र में सफलता मिल जाये तब अन्य क्षेत्रों में भी लागू कर दिया जाये।

(2) **गोदाम बनाने की आवश्यकता** (Need for Construction of Godowns)—अधिकांश सहकारी विपणन समितियों के पास पदार्थों को एकत्रित करके रखने के लिए गोदाम नहीं हैं अतः इस बात की आवश्यकता है कि गोदाम बनाये जायें। सहकारी समितियाँ स्वयं गोदाम नहीं बनवा सकतीं क्योंकि इनके पास पूँजी बहुत कम होती है इसलिए सरकार को इस सम्बन्ध में आर्थिक सहायता करनी चाहिए तथा विभिन्न पदार्थों के लिए आधुनिक गोदाम के नक्शे बनवाकर देने चाहिए जिससे कि वे अपने गोदाम उसी अनुरूप बना सकें।

(3) **सहकारी विपणन ढाँचे में परिवर्तन की आवश्यकता** (Need for a Change in the Co-operative Marketing Structure)—भारत में सहकारी विपणन के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के संगठन पाये जाते हैं। कहीं तो सिर्फ प्राथमिक समितियाँ व संघ हैं, कहीं प्राथमिक, केन्द्रीय व प्रान्तीय समितियाँ हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि पहले इनके ढाँचे में परिवर्तन किया जाये जिससे कि अखिल भारतीय स्तर पर एक-सा संगठन स्थापित किया जा सके।

(4) **विभिन्न स्तरों पर उचित सहयोग की आवश्यकता** (Need for Proper Co-ordination at Various Levels)—सहकारी विपणन के विभिन्न स्तरों—प्राथमिक, केन्द्रीय, प्रान्तीय व अखिल भारतीय—में उचित सहयोग की आवश्यकता है। इनके लिए विभिन्न प्रकार के नक्शे (forms), प्राथमिक समितियों व अन्य संगठनों द्वारा प्रयोग में लाये जाने चाहिए जिससे उनकी खरीद, बिक्री, स्टॉक व ऋण, आदि का अनुमान लगाया जा सके और उनकी बिक्री, आदि का उचित प्रबन्ध किया जा सके।

(5) **सस्ते दर पर विपणन वित्त की आवश्यकता** (Need for Providing Marketing Finance at Cheap Rates)—विपणन समितियों के पास पूँजी बहुत ही कम होती है जिससे कि वे अपने सदस्यों की उचित आर्थिक सहायता नहीं कर पाती हैं। इसके लिए रिजर्व बैंक व स्टेट बैंक के द्वारा कम दर पर प्राथमिक समितियों को सीधी आर्थिक सहायता देनी चाहिए। इस समय रिजर्व बैंक इन समितियों व संघों से वही ब्याज की दर वसूल करता है जो अन्य साधारण प्रकार के ग्राहकों से ली जाती है।

(6) **सीधी खरीद की आवश्यकता** (Need for Outright Purchases)—आजकल भारत में अधिकतर सहकारी विपणन संगठन कमीशन पर वस्तु को बेचने का कार्य करते हैं जिससे उत्पादक को ज्यादा लाभ नहीं होता। इसलिए संगठनों को चाहिए कि उत्पत्ति की खरीद उत्पादक से स्वयं करें। इसके लिए तीन तरीके हैं: (i) प्राथमिक समितियों द्वारा खरीद, (ii) केन्द्रीय समितियों या प्रान्तीय समितियों के द्वारा प्राथमिक समितियों के माध्यम से खरीद, तथा (iii) प्राथमिक व केन्द्रीय या प्रान्तीय समितियों द्वारा संयुक्त रूप से खरीद। इस प्रकार की खरीद में बिक्री के समय हानि हो सकती है जिसके लिए प्रत्येक प्रान्तीय स्तर पर एक मूल्य **उच्चावचन फण्ड** (Price Fluctuation Fund) बनाया जाना चाहिए जिसमें सरकार आर्थिक सहायता दे।

(7) **साख और विपणन को मिलाने की आवश्यकता** (Need for Linking of Credit and Marketing)—सहकारी विपणन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि साख को विपणन के साथ मिलाया जाये। यदि साख व विपणन का मिलान नहीं हो सकता तो विपणन अधूरा ही रहेगा। अतः विपणन समितियों व साख समितियों के कार्यों में समन्वय होना चाहिए।[1]

(8) **प्रचार की आवश्यकता** (Need for Propaganda)—सहकारी विपणन के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार से प्रचार किया जाये जिससे जनसाधारण उनकी कार्यविधि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सके व लाभ उठा सके।

(9) **कुशल एवं अनुभवी कर्मचारियों की आवश्यकता** (Need for Efficient and Trained Personnel)—सहकारी विपणन के लिए कुशल एवं अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता है। इसके लिए यद्यपि सरकार ने पूना में अखिल भारतीय सहकारी प्रशिक्षण कॉलेज (All India Co-operative Training College) की स्थापना कर दी है, लेकिन यहाँ पर सहकारी संगठनों के केवल उच्च अधिकारियों को ही प्रशिक्षण दिया जाता है। अतः इस बात की भी आवश्यकता है कि सहकारी संस्थाओं के कर्मचारियों को भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(10) **सरकारी सहायता** (Government Help)—सरकार को निम्न प्रकार से सहायता करनी चाहिए: (i) सरकार को विपणन समितियों की पूँजी में धन विनियोग करना चाहिए तथा वर्गीकरण व अन्य क्रियाओं के लिए योग्य व्यक्तियों की सेवाएँ उपलब्ध करनी चाहिए, (ii) विपणन समितियों को सरकारी पूर्ति (Government supply) के कार्यों में प्राथमिकता दी जानी चाहिए, एवं (iii) सरकारी खरीद इन्हीं समितियों के माध्यम से होनी चाहिए।

---

1 "For the proper development of agricultural economy credit should be linked with Marketing." —*Co-operative Planning Committee*, 1945.

(11) **अन्य सुझाव** (Other Suggestions)—अन्य सुझाव इस प्रकार हैं : (i) सदस्य केवल किसान एवं उपभोक्ता ही हों। व्यापारी इसके सदस्य न बनाये जायें, (ii) केन्द्रीय व प्रान्तीय समितियों की सदस्यता शुल्क कम रखी जाये जिससे छोटी से छोटी प्राथमिक समिति भी सदस्य बन सकें, (iii) प्राथमिक समितियाँ ऐसे स्थानों पर हों जहाँ उनके सदस्य आसानी से पहुँच सकें और समितियाँ अपना माल शहरी क्षेत्रों या मण्डियों में भी आसानी से भेज सकें, (iv) प्रत्येक समिति का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए जिससे बड़ी मात्रा में व्यापार किया जा सके, आदि।

सहकारिता के क्षेत्र में क्या भारत विदेशों के समान प्रगति कर सकता है ?

अन्य देशों के समान भारत सहकारी विपणन में प्रगति तभी कर सकता है जब निम्नांकित दोषों को दूर किया जाय : (i) अधिकांश जनसंख्या का निरक्षर होना, (ii) आपसी विश्वास की कमी, (iii) व्यापारियों द्वारा प्रतिस्पर्द्धा, (iv) सरकार द्वारा उपेक्षा, (v) विपणन संगठनों के पास धन की कमी, (vi) योग्य, अनुभवी तथा कुशल कर्मचारियों का अभाव आदि।

यदि इन दोषों को धीरे-धीरे दूर कर दिया गया तो निश्चय ही सहकारी विपणन में प्रगति हो सकती है और अन्य देशों के समान उन्नति की जा सकती है।

प्रश्न

1. "सहकारी बाजार व्यवस्था कृषक की स्थिति, विक्रेता के रूप में शक्तिशाली बना देती है और उसके लिए एक स्थायी बाजार की स्थापना करके उसे अधिक मूल्य प्राप्त करा देती है।" इस कथन को समझाइए और भारत में सहकारी बाजार व्यवस्था के विकास पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

   'Co-operative marketing strengthens the farmer's position as a seller, assures him of a regular trade outlet and enables him to obtain better prices.' Explain, and describe briefly the progress of co-operative marketing in India.

2. सहकारी विपणन से आप क्या समझते हैं ? इसके लाभों पर प्रकाश डालिए।
   What do you understand by co-operative marketing ? Explain its advantages.

3. सहकारी विपणन के क्या लाभ हैं ? अपने प्रसंग में किसी ऐसी वस्तु के विपणन का वर्णन कीजिए जिसमें यह प्रथा अत्यधिक सफल हुई हो।

   What are the advantages of co-operative marketing ? Describe the marketing of the commodity which has been most successful in our State through this method.

4. 'भारत में सहकारी विपणन अधिक प्रगति नहीं कर पाया है।' इसके कारण बताइए।

   'Co-operative marketing has not progressed well in India.' Give its reasons.

5. भारतीय सहकारी विपणन के दोषों को बताइए।
Explain the defects of Indian Co-operative Marketing.

6. सहकारी विपणन के लाभों की व्याख्या कीजिए। उत्तर प्रदेश में यह कहाँ तक सफल रहा है ?
Discuss the advantages of Co-operative Marketing. How far has it been successful in Uttar Pradesh ?

7. भारत में सहकारी बाजार व्यवस्था के विकास पर संक्षेप में लिखिए और इस सम्बन्ध में अपने सुझाव दीजिए।
Write in brief the progress of Co-operative Marketing in India and give your suggestions in this respect.

8. कृषि सहकारी विपणन समितियों का प्रमुख उद्देश्य कृषक को उसके उत्पादन पर अधिक शुद्ध आय देना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इन समितियों द्वारा जो विधियाँ अपनायी जाती हैं उनका सूक्ष्म में स्पष्टीकरण दीजिए।
The principal object of the agricultural co-operatives marketing societies is to give the farmer a higher net return on his product. Explain briefly the methods adopted by these societies to achieve this objective.

18

उपभोक्ता सहकारी विपणन

[CONSUMERS' CO-OPERATIVES MARKETING]

उपभोक्ता सहकारी भण्डार का अर्थ
(MEANING OF CONSUMERS' CO-OPERATIVE STORES)

उपभोक्ता सहकारी भण्डार उपभोक्ताओं द्वारा गठित एक ऐसा संगठन है जो उपभोग वस्तुओं तथा सेवाओं की आवश्यकता की पूर्ति करने के उद्देश्य से स्थापित किया जाता है। इस प्रकार के भण्डार फुटकर एवं थोक दोनों प्रकार का ही व्यापार करते हैं। कभी-कभी वस्तुओं का उत्पादन तथा विधिकरण (Processing) भी यह भण्डार करते हैं। इस प्रकार के भण्डार उपभोक्ता सहकारी समितियाँ, विभागीय भण्डार, उपभोक्ता भण्डार, सुपर बाजार या अपना बाजार कहलाते हैं।

उपभोक्ता सहकारी भण्डार के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF CONSUMERS' CO-OPERATIVE STORES)

उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करना है जिससे उनको उपभोक्ता वस्तुएँ उचित मूल्य एवं उचित समय पर एवं शुद्ध मिल सकें। संक्षेप में, इनके उद्देश्य इस प्रकार हैं : (1) उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुएँ उपलब्ध करना; (2) उपभोक्ताओं को शुद्ध वस्तुएँ उपलब्ध करना; (3) उपभोक्ताओं के लिए सुव्यवस्थित वितरण प्रणाली स्थापित करना; (4) उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के उद्देश्य से वस्तुओं के उत्पादन को सुरक्षित करना; (5) मध्यस्थों के लाभ को समाप्त करना; (6) उत्पादकों की एकाधिकारी प्रवृत्ति को समाप्त करना; (7) बढ़ती हुई मूल्य वृद्धि को रोकने में सहायता करना; (8) उपभोक्ता सदस्यों में सहयोग की भावना बढ़ाना।

उपभोक्ता सहकारिता का जन्म तथा विकास
(ORIGIN AND DEVELOPMENT OF CONSUMERS' CO-OPERATIVES)

उपभोक्ता सहकारी समितियों की शुरूआत इंगलैण्ड में स्थित रोकडेल (Rochdale) नामक नगर के कुछ उत्साही व्यक्तियों द्वारा की गयी थी। सन् 1844 में कुछ बुनकरों ने मिलकर एक सहकारी भण्डार स्थापित किया जो बाद में 'Rochdale Society of Equitable Pioneers' के नाम से विख्यात हुआ। इस भण्डार

की सफलता को देखकर यूरोप के अन्य देशों में भी उपभोक्ता सहकारी भण्डार स्थापित हुए।

आज संसार के सभी उन्नत देशों में उपभोक्ता सहकारी भण्डार पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैण्ड, ब्रिटेन तथा सोवियत रूस में काफी सफलता मिली है। स्वीडन के सम्पूर्ण फुटकर व्यापार का 14% तथा खाद्य पदार्थ सम्बन्धी वस्तुओं के व्यापार का लगभग 25% व्यापार उपभोक्ता सहकारी भण्डार के हाथ में है। रूस के सम्पूर्ण फुटकर व्यापार का 26% व्यापार यही भण्डार करते हैं। डेनमार्क में फुटकर व्यापार का 25% इन्हीं भण्डारों के द्वारा किया जाता है।

भारत में उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का विकास
(DEVELOPMENT OF CONSUMERS' CO-OPERATIVE STORES IN INDIA)

उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का विकास वास्तव में प्रथम विश्वयुद्ध के काल में हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि उपभोक्ता को आवश्यक वस्तुएँ मिलने में कठिनाई ही नहीं होने लगी वल्कि मूल्य भी अधिक देने पड़ने लगे। सन् 1914 में इन भण्डारों की संख्या 11 थी जो 1920-21 में बढ़कर 103 हो गयी। लेकिन यह प्रगति स्थायी नहीं रही। विश्वयुद्ध के पश्चात् वस्तुओं के प्राप्त करने में कठिनाई नहीं रही और इनकी संख्या में धीरे-धीरे कमी होती रही जो 1939 में घटकर 85 रह गयी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ हो जाने से एक वार फिर इन भण्डारों व समितियों को विकास का अवसर मिला। कुछ राज्यों में कन्ट्रोल तथा राशन वाली वस्तुओं के वितरण का एकाधिकार इन्हीं भण्डारों को सौंप दिया गया। उपभोक्ताओं ने भी इसमें अधिक दिलचस्पी दिखाई जिसके फलस्वरूप 1939-40 में उपभोक्ता सहकारी समितियों या भण्डारों की संख्या 408 हो गयी और उनकी सदस्यता 16 हजार हो गयी। इसी वर्ष में इनकी बिक्री 57 लाख रुपये थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1943-44 में इनकी संख्या 3,539 हो गयी। भारत में वस्तुओं की कमी बनी रही और 1947 में भारत का विभाजन हो गया और इस प्रकार 1951-52 में इनकी संख्या बढ़कर 9,757 हो गयी तथा सदस्यता भी 18 लाख हो गयी। इस वर्ष में इन भण्डारों व समितियों ने 82 करोड़ रुपये की कुल बिक्री की।

1951-52 के बाद अनेक वस्तुओं से कन्ट्रोल हटा लिया गया और वस्तुएँ खुले बाजार में बिकने लगीं। इस खुले बाजार की प्रतिस्पर्द्धा यह उपभोक्ता सहकारी भण्डार या समितियाँ सहन न कर सके और फिर धीरे-धीरे इनकी संख्या में कमी आने लगी और 1960-61 में इनकी संख्या घटकर 7,298 रह गयी। इस प्रकार की अवनति के कारण (i) अपर्याप्त पूँजी; (ii) कुशल एवं अनुभवी कर्मचारियों का अभाव; (iii) छोटी तथा अनार्थिक इकाइयाँ; (iv) निजी व्यापारियों की गलाकाट प्रतियोगिता; (v) सदस्यों द्वारा भण्डारों के प्रति ईमानदारी में कमी; (vi) नियन्त्रित

वस्तुओं का ही क्रय-विक्रय इनके द्वारा किया जाना; एवं (vii) प्रबन्ध समिति के सदस्यों के अनुभव एवं ज्ञान की कमी आदि थे।

प्रथम एवं द्वितीय योजनाओं में उपभोक्ता सहकारिता पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया लेकिन तीसरी योजना के अन्तर्गत 2,200 प्राथमिक भण्डारों को पुनर्गठित करने तथा प्रत्येक राज्य में एक शीर्ष थोक भण्डार स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया।

सन् 1962 में चीन के आक्रमण के कारण वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होने लगी अतः केन्द्रीय सरकार ने एक कार्यक्रम बनाया जिसके अनुसार इनकी संख्या एवं क्रिया-कलापों में वृद्धि हुई है।

भारत में उपभोक्ता भण्डारों का वर्तमान ढाँचा
(PRESENT STRUCTURE OF CONSUMERS' CO-OPERATIVES IN INDIA)

वर्तमान में उपभोक्ता सहकारी संगठन का ढाँचा निम्न प्रकार पाया जाता है :

(1) राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ (National Consumers' Co-operative Federation)
(2) राज्य स्तरीय संघ (State Federation)
(3) थोक भण्डार या समितियाँ (Wholesale Stores or Societies)
(4) प्राथमिक भण्डार या समितियाँ (Primary Stores or Societies)

(1) **राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ** (National Co-operative Consumers' Federation Limited)—यह संघ राष्ट्रीय स्तर पर 1965 में स्थापित किया गया है। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं : (i) उपभोक्ता वस्तुओं के आयात एवं निर्यात की व्यवस्था करना; (ii) उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण तथा विधिकरण के लिए सहकारी समिति स्थापित करना; (iii) उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन के विकास हेतु प्रचार एवं विज्ञापन करना; (iv) उपभोक्ता भण्डारों की वस्तुओं सम्बन्धी पूर्ति हेतु उत्पादकों एवं व्यापारियों से सम्बन्ध स्थापित करना; (v) उपभोक्ता सहकारी समितियों को सहायता प्रदान करना और उनकी कार्य-व्यवस्था को उचित रूप में चलाना; (vi) उपभोक्ता समितियों के विकास एवं समस्याओं पर विचार-विमर्श करने हेतु योजनाएँ बनाना, सभाएँ तथा विचार गोष्ठियाँ संगठित करना तथा उनके लिए उचित सलाह की व्यवस्था करना।

इस समय संघ ने चार शाखाएँ बम्बई, मद्रास, कलकत्ता व गौहाटी में व दो उप-कार्यालय पटना व अहमदाबाद में खोल रखे हैं। इसके दो दाल मिल नागपुर व हिसार में हैं। इसकी कुल प्रदत्त पूंजी 199·92 लाख रुपये है जिसमें 37·74 लाख केन्द्रीय सरकार का अंशदान है।

(2) **राज्य स्तरीय उपभोक्ता संघ** (State Consumers' Co-operative Federations)—इस समय 22 राज्यों में राज्य स्तरीय संघ कार्य कर रहे हैं

जिनकी कुल प्रदत्त पूंजी 383·54 करोड़ रुपये है। यह संघ राज्य स्तर पर उपभोक्ता सहकारी समितियों की सर्वोच्च संस्था है। इन संघों का कार्य उपभोक्ता भण्डारों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना, राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ तथा अन्य साधनों से उपभोक्ता वस्तुएँ प्राप्त करना तथा उन्हें उपभोक्ता भण्डारों तक पहुँचाना है। 30 जून, 1978 को समाप्त होने वाले वर्ष में इन संघों से 493 समितियाँ सम्बद्ध थीं।

(3) **थोक भण्डार या समितियाँ** (Wholesale Stores or Societies)—यह थोक भण्डार या समितियाँ लगभग सभी बड़े शहरों में खोले जा चुके हैं। इस समय 493 थोक भण्डार अपनी 3,480 शाखाओं के साथ कार्य कर रहे हैं। इस संख्या में 178 विभागीय भण्डारों की संख्या भी शामिल है। गत कुछ वर्षों में इनकी प्रगति निम्न प्रकार हुई है :[1]

(रुपये करोड़ों में)

विवरण	1963-64	1968-69	1977-78
1. कुल संख्या	196	387	493
2. शाखाओं की संख्या	832	2,647	3,480
3. सदस्य संख्या			
(i) व्यक्ति	2·23 लाख	8·31 लाख	अप्राप्त
(ii) समितियाँ	—	19,958	,,
4. कार्यशील पूँजी	6·19	36·92	,,
5. विक्रय	2,752	16,292	,,

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि इन भण्डारों के कार्यकलापों में बराबर वृद्धि हो रही है।

(4) **प्राथमिक भण्डार या समितियाँ** (Primary Stores or Societies)—यह उपभोक्ता सहकारी संगठन की अन्तिम इकाई है। यह समितियाँ व भण्डार अपने सदस्यों की पूर्ति के लिए थोक भण्डारों से व कभी-कभी सीधा उत्पादकों से माल खरीदती हैं। गत वर्षों में इन समितियों व भण्डारों ने प्रगति अग्र प्रकार की है :

1 Statistical Statements Relating to the Co-operation Movement in India, Reserve Bank of India.

(रुपये करोड़ों में)

विवरण	वर्ष		
	1963-64	1968-69	1975-76
1. कुल संख्या	9,900	13,913	15,165
2. सदस्य संख्या	19·33 लाख	35·27 लाख	40·67 लाख
3. कार्यशील पूंजी	12·61	21·44	65·76
4. विक्रय	60·05	17·04	304·76

इस समय देश में 16,152 सहकारी भण्डार व प्राथमिक समितियाँ कार्य कर रही हैं। गत वर्षों में इनकी सदस्य संख्या, कार्यशील पूंजी व बिक्री में आशातीत वृद्धि हुई है। इन भण्डारों व समितियों में लगभग आधे भण्डारों व समितियों को ही लाभ हुआ है बाकी हानि पर या बिना हानि-लाभ आधार पर चल रहे हैं। इनके कारण, प्रबन्धकों में व्यापार प्रशिक्षण का अभाव, योग्यता व अनुभव का अभाव, सदस्यों में कर्तव्य परायणता एवं रुचि का अभाव, भण्डारों में दोषपूर्ण खाता प्रणाली, सदस्यों की आवश्यकताओं पर पर्याप्त ध्यान न देना, व्यापार की मात्रा कम होना व अवैतनिक सेवाओं पर अधिक निर्भर रहना है।

मद्रास राज्य सहकारी उपभोक्ता आन्दोलन में सबसे आगे रहा है लेकिन बिक्री के आधार पर उसका स्थान महाराष्ट्र के बाद आता है। पहला स्थान महाराष्ट्र का है। इसके बाद अन्य राज्य आते हैं।

नागरिक पूर्ति एवं सहकारिता मन्त्रालय की 1978-79 वर्ष की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार उपभोक्ता सहकारी भण्डारों व संघों ने 1977-78 वर्ष में 650 करोड़ रुपये से अधिक के मूल्य की वस्तुओं की बिक्री की है। लेकिन अगले कुछ वर्षों में उपभोक्ता सहकारी भण्डारों के कार्यकलापों में भारी वृद्धि होने की सम्भावना है। इसका कारण यह है कि केन्द्रीय सरकार ने 1 जुलाई, 1979 से सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू कर दी है।

उपभोक्ता सहकारिता की धीमी गतिके कारण
(CAUSES OF SLOW PROGRESS OF CONSUMERS' CO-OPERATION)

भारत में उपभोक्ता सहकारिता को विभिन्न प्रकार से सहायता व प्रोत्साहन देने के बावजूद इनकी प्रगति सन्तोषजनक नहीं रही है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :

(1) **पूंजी की कमी** (Lack of Capital)—अधिकांश उपभोक्ता सहकारी भण्डारों के पास पूंजी की कमी है जिससे वे अपनी क्रियाओं का और अधिक विकास नहीं कर पाये हैं। बैंकों ने भी उन्हें पर्याप्त वित्तीय सहायता नहीं दी है।

(2) **कुशल प्रबन्ध का अभाव** (Lack of Efficient Management)—किसी भी व्यापारिक सफलता के लिए कुशल प्रबन्ध आवश्यक है। इन भण्डारों के

कर्मचारियों व प्रबन्धकों को व्यापारिक अनुभव न होने के कारण यह भण्डार निजी फुटकर व्यापारियों से व्यापारिक प्रतिस्पर्धा में असमर्थ रहे हैं।

(3) **सीमित व्यापार** (Limited Business)—यह भण्डार कुछ सीमित वस्तुओं में ही व्यापार करते हैं। सदस्यों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते हैं। इनका व्यवसाय सीमित एवं संकुचित होने के कारण इनका उचित विकास नहीं हो सका है।

(4) **सदस्यों की वफादारी में कमी** (Lack of Loyalty among the Members)—अधिकांश सदस्य इन भण्डारों से तभी तक वस्तुएँ क्रय करते हैं जब तक कि वे बाजार मूल्य से कम मूल्य पर मिलती हैं। यही नहीं, यदि दोनों मूल्यों में समता है तो भी सदस्य निजी व्यापारियों से क्रय कर लेते हैं और इस प्रकार इन भण्डारों की प्रगति रुक जाती है।

(5) **निरीक्षण का अभाव** (Lack of Inspection)—धीमी गति के कारणों में एक कारण निरीक्षण का अभाव है। इनके बहीखातों की जाँच व अंकेक्षण भी कई वर्षों तक नहीं किया जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि साधनों का दुरुपयोग किया जाता है जिससे भण्डार की स्थिति खराब हो जाती है।

(6) **प्रबन्ध व्यय अधिक होना** (High Management Expenses)—प्रबन्ध व्यय का अधिक होना भी उपभोक्ता सहकारिता की धीमी गति का एक कारण है। निजी व्यापारी की तुलना में इनका प्रबन्ध व्यय बहुत अधिक है जो अन्त में वस्तु के विक्रय मूल्य में वृद्धि करता है।

(7) **अन्य** (Others)—उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जिनमें नेतृत्व की कमी (Lack of Leadership), अन्य सहकारी समितियों के साथ सम्पर्क का अभाव (Lack of Co-ordination with other Co-operation Organisations), आर्थिक साधनों का अभाव (Lack of Financial Resources), कर्मचारियों में बेईमानी (Dishonesty among Employees), क्रय एवं विक्रय की त्रुटिपूर्ण नीति (Defective Sale and Purchase Policy) आदि प्रमुख हैं।

उपभोक्ता सहकारिता की उन्नति के लिए सुझाव
(SUGGESTIONS FOR IMPROVEMENT OF CONSUMERS' CO-OPERATION)

(1) **वित्तीय साधनों में वृद्धि** (Improvement in Financial Resources)—उपभोक्ता सहकारी भण्डारों व समितियों के आर्थिक साधनों में वृद्धि करनी चाहिए। इसके लिए सरकार द्वारा अंश पूँजी में और अधिक हिस्सा बँटाना चाहिए। वित्तीय संस्थाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे इनको ऋण तथा एडवांस दें। सदस्यों से जमा राशियाँ इन संस्थाओं द्वारा स्वीकृत करनी चाहिए।

(2) **व्यावसायिक पद्धतियों में सुधार** (Improvement in Business Techniques)—इसके लिए उपयुक्त क्रय एवं विक्रय नीति निर्धारित की जानी

चाहिए। अच्छी किस्म पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उत्पादकों से सीधे माल थोक में खरीदना चाहिए। सरकार द्वारा इनको आयात लायसेंस देने में प्राथमिकता देनी चाहिए। उपभोक्ता को सभी आवश्यक वस्तुएँ एक ही स्थान पर मिलने का प्रबन्ध करना चाहिए।

(3) **प्रबन्ध में सुधार** (Improvement in Management)—प्रबन्ध में सुधार हेतु कर्मचारियों व प्रबन्धकों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे उनको व्यावहारिक ज्ञान हो सके व भण्डार को मितव्ययिता से चला सकें।

(4) **मूल्य नीति सम्बन्धी सुझाव** (Suggestions regarding Prices)—वस्तुओं के मूल्य भाव से हमेशा कम ही होने चाहिए जिससे सदस्यों में प्रलोभन के कारण भण्डार से प्रेम बना रहे।

(5) **अन्य सुझाव** (Other Suggestions)—उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन की उन्नति हेतु अन्य सुझाव इस प्रकार हैं—(i) उपभोक्ता भण्डार आबादी के बीच होने चाहिए व उनकी तौल सही व किस्म अच्छी होनी चाहिए। (ii) वस्तुओं को उचित प्रकार से पैक करके ग्राहक को देना चाहिए। (iii) प्रचार साधनों का भी उचित प्रयोग किया जाना चाहिए। (iv) स्टॉक पर उचित नियन्त्रण होना चाहिए।

प्रश्न

1. भारतीय उपभोक्ता सहकारिता ने जो हाल ही के कुछ वर्षों में उन्नति की है उसको संक्षेप में समझाइए। उन्नति को अधिक तेज व हितकर बनाने के लिए कौन-कौन-से प्रयत्न किये जाने चाहिए ?
   Indicate briefly the progress of consumers' co-operation in India in recent years. What steps should be taken to make the progress more rapid and wholesome ?

19
नियमित बाजार
[REGULATED MARKETS]

नियमित बाजार का अर्थ एवं परिभाषा
(MEANING AND DEFINITION OF REGULATED MARKET)

(1) **श्री मामोरिया एवं जोशी** (Memoria & Joshi) के अनुसार, "जब राज्य या अन्य कोई स्वायत्त शासन किसी बाजार के संगठन के लिए नियमों को लागू करता है तो ऐसे बाजार को नियमित बाजार कहते हैं।"[1]

(2) **श्री के. एन. पाठक** (K. N. Pathak) के मत में, "एक नियमित बाजार वह है जिसकी कार्यवाही और व्यवहार रीति किसी उपयुक्त विधान से नियमित होती है।"[2]

इन परिभाषाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि "**वह बाजार जिस पर राज्य सरकार या स्वायत्त सरकार का नियन्त्रण रहता है तथा जिसकी कार्य-विधि किसी विशेष विधान से नियमित होती है, नियमित बाजार कहलाता है।**" भारत में इन बाजारों को नियमित मण्डी कहा जाता है। यह मण्डियाँ राज्य सरकारों के विशेष विधानों के अन्तर्गत स्थापित होती हैं तथा इन विधानों में वर्णित नियमों के अनुसार इन मण्डियों में कार्य किया जाता है। कभी-कभी मण्डियों की स्थापना स्वायत्त सरकार जैसे—चुँगी, नगरपालिका, जिला परिषद्, आदि के द्वारा भी की जाती है या उन्हीं के द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार उन मण्डियों में कार्य होता है।

---

1 "When the State or any public authority comes forward to enforce regulations for the organisation of a market, it is termed as regulated market."
—Memoria & Joshi, *Principles and Practice of Marketing in India*, p. 13.

2 "A regulated market is one proceedings and practices of which are formally regulated by some suitable legislation."
—K. N. Pathak, *Origin and Progress of Regulated Markets in India*, a Ph. D. Thesis.

संगठित बाजार का अर्थ एवं परिभाषा
(MEANING AND DEFINITION OF AN ORGANISED MARKET)

(1) **परिभाषा समिति** (Definitions Committee) के शब्दों में जिस स्थान पर "व्यापारियों का समुदाय एक पदार्थ या कुछ सम्बन्धित पदार्थों के क्रय एवं विक्रय कार्य स्वीकृत नियमों के अनुसार करता है वह संगठित बाजार कहलाता है।"[1]

(2) **श्री मामोरिया एवं जोशी** (Memoria & Joshi) के अनुसार, "संगठित बाजार वे स्थान हैं जहाँ व्यापार उस बाजार संगठन द्वारा बनाये गये निश्चित नियमों एवं व्यवस्थाओं के अनुसार होता है।"[2]

इन दोनों परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि संगठित बाजार भी बाजारों के प्रकारों में से एक है। **दूसरे**, इन बाजारों में व्यापार निश्चित नियमों के अन्तर्गत होते हैं। **तीसरे**, यह नियम स्वयं बाजार संगठन द्वारा बनाये व लागू किये जाते हैं।

भारत में इस प्रकार के संगठित बाजार व्यापार समितियों, व्यापार मण्डल, चैम्बर, बाजार कमेटी, आदि के द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं। कभी-कभी वस्तुओं के नाम से भी इनको पुकारते हैं जैसे, अनाज कमेटी, किराना कमेटी, सर्राफा कमेटी, कपड़ा कमेटी, गुड़ कमेटी, आदि। इस प्रकार की समितियों व कमेटियों द्वारा बाजार में कार्य करने का समय, बिक्री का ढंग, तुलाई का ढंग, बाजार में वसूल किये जाने वाले खर्चे, छूट की दर, मतभेदों को दूर करने की व्यवस्था, आदि के नियम होते हैं। यदि किसी भी सदस्य द्वारा नियम विरुद्ध कार्य किया जाता है तो उसको आर्थिक दण्ड या असहयोग की व्यवस्था होती है। नियम विरुद्ध कार्य करने वालों का पता लगाने के लिए स्वयं सदस्य निरीक्षण करते हैं। नियमों के विरुद्ध कार्य साधारणतया व्यापारी इस डर से नहीं करते कि अन्य व्यापारी उनसे असहयोग कर सकते हैं।

नियमित व संगठित बाजारों में अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN REGULATED MARKETS AND ORGANISED MARKETS)

बहुत से विद्वान नियमित या नियन्त्रित बाजार व संगठित बाजार में कोई भेद नहीं मानते हैं लेकिन कुछ इनमें भेद निम्न आधार पर करते हैं :

(1) **संगठन** (Organisation)—नियमित मण्डियों की स्थापना विशेष विधान के द्वारा होती है जो सम्पूर्ण राज्य में लागू होता है जिससे राज्य भर की

---

1 "A group of traders, operating under recognized rules for the purpose of buying and selling a single commodity or a small number of related commodties."
—*Report of the Definitions Committee*, published in the Journal of Marketing, October, 1948.

2 "Organised markets are the places where business is done under certain rules and regulations formed by such market organisation."
—Memoria and Joshi, *Principles and Practice of Marketing in India*, 1964. p.13.

नियमित मण्डियों के कार्यों, नियमों व संगठन, आदि में एकरूपता उत्पन्न होती है। संगठित मण्डियाँ व्यापारियों द्वारा सामूहिक सहयोग के आधार पर प्रतियोगिता कम करने के लिए स्थापित की जाती हैं। इनके कार्यों, नियमों व संगठनों में एकरूपता नहीं होती है।

(2) **दण्ड व्यवस्था** (Punishment)—नियमित मण्डियों में नियमों का उल्लंघन करने वालों को आर्थिक दण्ड व कारावास या दोनों दिये जा सकते हैं तथा कार्य करने से रोका जा सकता है लेकिन संगठित मण्डियों में साधारणतया आर्थिक दण्ड की ही व्यवस्था होती है।

(3) **कर्मचारी** (Personnel)—नियमित मण्डियों में सभी कर्मचारी वेतन-भोगी होते हैं जबकि संगठित मण्डियों के कर्मचारी साधारणतया अवैतनिक होते हैं।

(4) **नियमों में परिवर्तन** (Amendments in Rules)—नियमित मण्डियों में नियमों में परिवर्तन करने से पहले राज्य सरकार की अनुमति लेना आवश्यक है लेकिन संगठित मण्डियों के नियमों में परिवर्तन किसी भी समय बहुत से किये जा सकते हैं।

(5) **खर्चे** (Expenses)—साधारणतया नियमित मण्डियों में जो खर्चे व फीस ली जा सकती है उनकी अधिकतम सीमा राज्य सरकारों के द्वारा निश्चित कर दी जाती है जबकि संगठित मण्डियों में इस प्रकार की कोई सीमा नहीं होती है।

(6) **सरकारी नियन्त्रण** (Government Control)—नियमित मण्डियों पर सरकारी नियन्त्रण रहता है तथा मण्डी के कर्मचारी सरकारी कर्मचारी होते हैं तथा इन मण्डियों के बहीखातों का अंकेक्षण करना अनिवार्य होता है। अनियमितताओं के होने पर नियमित मण्डी का नियन्त्रण सरकार अपने हाथ में ले सकती है। इसके विपरीत संगठित मण्डियों पर कोई सरकारी नियन्त्रण नहीं होता, उनके खातों का अंकेक्षण अनिवार्य नहीं है तथा सरकार इस प्रकार की मण्डियों को अपने नियन्त्रण में नहीं लेती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि "सभी नियमित बाजार संगठित बाजार हैं लेकिन संगठित बाजार का नियमित बाजार होना आवश्यक नहीं है।"[1]

अनियमित बाजारों के दोष

(DEFECTS OF UNREGULATED MARKETS)

वे बाजार या मण्डियाँ जो नियमित नहीं हैं, अनियमित बाजार कहलाते हैं। इन बाजारों या मण्डियों में भारी दोष पाये जाते हैं : (1) **बाजार व्ययों का बाहुल्य** (Excess Market Expenses)—अनियमित बाजारों में विभिन्न प्रकार के व्यय

---

1 "All regulated markets are organised markets but all organised markets are not necessarily regulated markets." —K. L. Govil, *Marketing in India*, 1954, p. 6.

किसान से वसूल किये जाते हैं जैसे, आढ़त, दलाली, पल्लेदारी, तुलाई, धर्मादा, चौकीदारी, मेहतर, मुनीम आदि। (2) **उचित तौल का अभाव** (Lack of Proper Weighment)—इन बाजारों में विक्रेता को गलत तराजू एवं बाँटों से अधिक तौल लेकर ठगा जाता है। (3) **भारी मात्रा में नमूने** (Samples in Large Quantity) —यहाँ नमूने के नाम पर भारी मात्रा में उपज निकाल ली जाती है। (4) **बिना कृषक या विक्रेता की सहमति के मूल्य निर्धारण** (Price Fixation without the Seller's Concurrence)—इन बाजारों में मूल्य आढ़तिया व क्रेता का दलाल तय करता है और अधिकांश दशाओं में विक्रेता से सहमति नहीं ली जाती है। (5) **दलालों व आढ़तियों द्वारा क्रेता का पक्ष लेना** (Favour of Brokers & Arhatiyas to Purchaser)—यहाँ पर दलालों व आढ़तियों द्वारा क्रेता का पक्ष लिया जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि किसान को उचित मूल्य नहीं मिल पाता है और विवाद की स्थिति में भी वह हानि में ही रहता है। (6) **उचित सूचनाओं का अभाव** (Lack of Proper Informations)—अनियमित बाजारों में जो सूचनाएँ प्रसारित की जाती हैं वे सही नहीं होती हैं। सही मूल्य कम ही बताये जाते हैं। (7) **वर्गीकरण का अभाव** (Lack of Grading)—इन बाजारों में प्रमापीकरण व वर्गीकरण सुविधाओं का अभाव रहता है। (8) **भण्डार सुविधाओं का अभाव** (Lack of Warehousing Facilities)—इन मण्डियों में भण्डार सुविधाएँ नहीं होती हैं जहाँ किसान अपनी उत्पत्ति को कुछ समय के लिए रख सके।

नियमित बाजारों से लाभ
(ADVANTAGES OF REGULATED MARKETS)

नियमित मण्डियों के बहुत से लाभ हैं लेकिन इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं :

(1) **मण्डी व्यय** (Mandi Expenses)—मण्डी में वसूल किये जाने वाले खर्चे स्पष्ट व निश्चित होते हैं उनसे अधिक किसी भी मध्यस्थ के द्वारा वसूल नहीं किया जा सकता है। अनियमित मण्डियों की तुलना में इनमें कम खर्चे लिये जाते हैं।

(2) **तुलाई** (Weighment)—तौलने में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी तौला के द्वारा नहीं की जा सकती क्योंकि समय-समय पर नापने व तौलने के बाँटों की जाँच इन मण्डियों में होती रहती है तथा तौल मण्डियों के कर्मचारियों के समक्ष होती है।

(3) **तुरन्त भुगतान** (Immediate Payment)—उत्पत्ति बेचते समय किसान की रजामन्दी ली जाती है और किसान को भुगतान माल के तुलने पर तुरन्त कर दिया जाता है।

(4) **किसानों की सुविधा पर व्यय** (Expenditure on Farmer's Facilities)—मण्डियों की आमदनी का कुछ भाग किसानों की सुविधा व आराम के लिए खर्च किया जाता है जिससे जानवरों व माल की धूप व पानी आदि से सुरक्षा की

जा सके। सड़कों को पक्का कराया जाता है तथा पीने के पानी, आदि की व्यवस्था की जाती है।

(5) **विश्वसनीय सूचनाएं** (Reliable Informations)—इन मण्डियों में विश्वसनीय सूचनाएँ दी जाती हैं तथा मण्डियों में आमद, बिक्री व मूल्य आदि के बारे में शुद्ध आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं।

(6) **झगड़ा सुलझाने की व्यवस्था** (Settlement Machinery)—किसान व खरीददार में माल का गुण, वजन या कटौती आदि के मतभेद होने पर झगड़ा सुलझाने के लिए उचित व्यवस्था होती है जिसमें किसानों के भी प्रतिनिधि होते हैं।

(7) **लाइसेन्सधारी मध्यस्थ** (Licenced Personnel)—नियमित मण्डी में जितने भी मध्यस्थ कार्य करते हैं उनको मण्डी समिति में एक आज्ञापत्र (Licence) लेना पड़ता है। यदि यह मध्यस्थ किसी भी प्रकार की अनियमितता बरतते हैं तो इनका आज्ञापत्र रद्द कर दिया जाता है, अतः इस भय से वे नियमानुसार ही कार्य करते हैं।

(8) **प्रमापीकरण एवं वर्गीकरण की सुविधाएँ** (Standardization & Grading Facilities)—इन मण्डियों में प्रमापीकरण व वर्गीकरण की सुविधाएँ भी दी जाती हैं जिससे किसान को उत्पत्ति का उचित मूल्य मिल जाता है तथा भविष्य में प्रमापित व वर्गीकृत पदार्थ की उत्पत्ति करने का प्रयत्न उनके द्वारा किया जाता है।

(9) **उपभोक्ताओं को लाभ** (Advantages to Consumers) —साधारण जनता व उपभोक्ता को भी इस प्रकार की मण्डियों से लाभ होता है। उनको प्रमापित व वर्गीकृत वस्तुएँ मिलती हैं।

अन्त में हम कह सकते हैं कि "अच्छे नियमित बाजार से किसान के मस्तिष्क में विश्वास और उचित व्यवहार की धारणा बनती है और इस भाव में वह नये विचार मानने को सबसे अधिक तैयार रहता है तथा कृषि व्यवहार को उन्नत बनाने का प्रयत्न करता है।"[1]

भारत में नियमित बाजारों का इतिहास एवं वर्तमान स्थिति
(HISTORICAL DEVELOPMENT & PRESENT POSITION OF REGULATED MARKETS IN INDIA)

भारत में नियमित बाजारों की शुरूआत सबसे पहले निजाम सरकार ने 1886 में की जबकि 'हैदराबाद रेजीडेन्सी आदेश' के अनुसार करंजा कपास नियमित बाजार (Karanja Cotton Regulated Market) स्थापित किया गया। इस आदेश का

---

1 "Well regulated markets create in the mind of the cultivator a feeling of confidence and of receiving fair play; and this is mood in which he is most ready to accept new ideas and to strive to improve his agricultural practice." —Report of the Royal Commission on Agriculture in India, p. 388, quoted from the *Report of the National Planning Committee on Rural Marketing & Finance*, 1947, p. 79.

उद्देश्य कपास व अनाज दोनों की खरीद व बिक्री को नियमित करना था लेकिन इसको कपास पर ही लागू किया गया। इस आदेश में सबसे बड़ी कमी यह थी कि किसानों का इस प्रकार की मण्डी में कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। इसके बाद 1897 में "बरार कपास व अनाज बाजार कानून" (Berar Cotton & Grain Market Act) भारत सरकार द्वारा पास किया। 1903 में मध्य प्रदेश चुंगी कानून (Central Provinces Municipal Act) में परिवर्तन कर चुंगियों को अधिकार दिया गया कि वे बाजारों के निरीक्षण और नियन्त्रण के लिए उपनियम (Bye-Laws) बना सकती हैं। शाही कृषि आयोग ने इस विषय पर काफी खोज की और सुझाव दिया कि देश में नियमित मण्डियाँ स्थापित की जायें। इसी बीच 1927 में बम्बई सरकार ने 'बम्बई कपास बाजार अधिनियम' (Bombay Cotton Market Act) पास किया। बरार कानून में 1932 और 1935 में तथा बम्बई कानून में 1939, 1948, 1950, 1951, 1953 व 1954 में आवश्यक परिवर्तन किये गये। मद्रास राज्य ने ऐसा ही कानून 1933 में बनाया तथा पंजाब, हैदराबाद व मैसूर ने भी 1939 में ऐसे कानून बनाये। मैसूर राज्य का कानून नियमों (Rules) के अभाव में 1948 से पहले लागू न हो सका। इसी बीच द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया। भारत में सन् 1939 में 122 नियमित बाजार थे।

द्वितीय महायुद्ध से लेकर स्वतन्त्रता के समय तक किसी भी नये राज्य ने इस सम्बन्ध में विधान नहीं बनाये। सबसे पहले 1952 में मध्य भारत (अब मध्य प्रदेश) ने कानून पास किया तथा 1655 में सौराष्ट्र सरकार ने (अब बम्बई राज्य में)। इसी प्रकार के कानून बिहार व मध्य प्रदेश में 1960 में, आन्ध्र व पंजाब में 1961 में व उत्तर प्रदेश में 1963 में बनाये गये। इस समय तीन राज्यों, असम, पश्चिमी बंगाल व केरल (मालाबर जिले को छोड़कर) को छोड़कर सभी राज्यों में मण्डियों के नियन्त्रण के लिए कानून लागू हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् नियमित बाजारों की स्थापना निम्न प्रकार हुई है :[1]

वर्ष	नियमित बाजारों की संख्या
1946-47	328
1954-55	452
1964-65	1,488
1975-76	2,938
1977-78	4,250

1 Based on the *Annual Reports of the Directorate of Marketing & Inspection*, Government of India.

उत्तर प्रदेश में नियमित बाजार

(REGULATED MARKETS IN UTTAR PRADESH)

उत्तर प्रदेश में इस ओर सबसे पहला प्रयत्न सन् 1938 में किया गया था, जबकि चौधरी चरणसिंह, सदस्य विधान सभा ने एक गैर सरकारी मण्डी नियमन विधेयक प्रस्तुत किया। यह विधेयक सरकारी विधेयक के रूप में स्वीकार कर लिया गया और एक प्रवर समिति को सौंप दिया गया। किन्तु 1939 में काँग्रेस मन्त्रिमण्डल द्वारा त्यागपत्र दे देने के कारण इस विधेयक पर आगे विचार न हो सका। वर्ष 1946-47 में पुनः इस विधेयक को पारित करने का विचार किया गया लेकिन कोई प्रगति न हो सकी। इसी बीच योजना आयोग ने देश में मण्डी सुधारों पर बल देने के लिए मण्डी नियमन लागू करने पर जोर दिया। सन् 1953 में राज्यों के कृषि मन्त्रियों की बैठक में मण्डी नियमन की सिफारिश की गयी जिसके फलस्वरूप 1959-60 में मण्डी नियमन पर एक विधेयक राज्य में गम्भीरतापूर्वक विचारार्थ लिया गया जिस पर "उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी विधेयक" दिसम्बर 1963 में विधान सभा के सम्मुख कृषि मन्त्री महोदय ने प्रस्तुत किया जो बाद में प्रवर समिति को सुपुर्द कर दिया गया और अन्त में सितम्बर 1964 में विधान सभा व विधान परिषद द्वारा पारित कर दिया गया। 28 अक्टूबर, 1964 को राष्ट्रपति की स्वीकृत प्राप्त हो जाने पर "उत्तर प्रदेश कृषि मण्डी अधिनियम, 1964" 10 नवम्बर, 1964 से राज्य में लागू हो गया।

उत्तर प्रदेश कृषि मण्डी अधिनियम, 1964 की मुख्य बातें

(MAIN PROVISIONS OF THE U.P. KRISHI UTPADAN MANDI ACT)

(1) **मण्डी क्षेत्र तथा मण्डीस्थल** (Market Area & Market Yards)—यदि राज्य सरकार लोकहित में यह आवश्यक समझती है कि किसी स्थान पर जहाँ कृषि वस्तुओं का क्रय एवं विक्रय होता है, नियमित किया जाय तो वह गजट में विज्ञप्ति छापती है कि सरकार का इस या उस स्थान को नियमित बाजार में बदलने का है यदि किसी को आपत्ति हो तो वह निश्चित अवधि के भीतर अपनी आपत्तियाँ एवं सुझाव सरकार को भेज दे। आपत्तियों पर विचार करने के पश्चात् सरकार विज्ञप्ति जारी करके उल्लिखित क्षेत्र के ऐसे उत्पादन के सम्बन्ध में और ऐसे दिनांक से जो घोषणा में निर्दिष्ट किया जाय, मण्डी क्षेत्र घोषित कर देती है। (धारा 5 व 6)

किसी क्षेत्र के मण्डी क्षेत्र घोषित किये जाने के दिनांक से कोई स्थानीय निकाय या अन्य व्यक्ति सम्बद्ध समिति द्वारा दिये गये लाइसेंस के बिना मण्डी क्षेत्र के भीतर निर्दिष्ट कृषि उत्पादन के विक्रय, क्रय, संग्रह, तौलने के लिए किसी स्थान की स्थापना न करेगा और न उसे बनाये रखेगा और न कोई व्यक्ति बिना लायसेंस के किसी मण्डी स्थल या उपमण्डी स्थल में व्यापारी, दलाल: आढ़तिया, तौलक, पल्लेदार, कारोबार आदि के रूप में कार्य करेगा। (धारा 9)

कोई व्यक्ति, प्रधान मण्डी स्थल या उपमण्डी स्थल में निर्दिष्ट कृषि उत्पादन के विक्रय या क्रय के किसी सौदे के सम्बन्ध में, इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों या उपविधियों (Bye-Laws) द्वारा नियत व्यापारिक परिव्ययों से भिन्न कोई परिव्यय न तो आरोपित करेगा और न लेगा। (धारा 10)

निर्दिष्ट कृषि उत्पादन का विक्रय मण्डी समिति के कार्यकर्ता की देख-रेख में केवल खुली बोली से ही होगा व तुलाई भी मण्डी समिति के प्रबन्ध में केवल लाइसेंस प्राप्त तौलकों द्वारा प्रमाणित काँटों एवं बाँटों से होगी। विक्रेता से कोई व्यापारिक परिव्यय नहीं लिया जायेगा। निर्धारित परिव्यय क्रेता को देने होंगे। विक्रेता को केवल नाममात्र की फीस मण्डी समिति को देनी होगी।

(2) **मण्डी समिति** (Market Committee)—प्रत्येक मण्डी क्षेत्र के लिए समिति होगी जो उस मण्डी क्षेत्र की मण्डी समिति कहलायेगी। इस समिति का गठन निम्न प्रकार से होगा :

(i) प्रत्येक स्थानीय निकायों का एक-एक प्रतिनिधि। (ii) मण्डी क्षेत्र में कार्य करने के लिए लायसेंस प्राप्त सहकारी क्रय-विक्रय समितियों का एक प्रतिनिधि। (iii) केन्द्रीय गोदाम निगम व राज्य गोदाम निगम का एक-एक प्रतिनिधि यदि मण्डी क्षेत्र में उनका गोदाम हो तो। (iv) लायसेंस प्राप्त व्यापारियों, दलालों और आढ़तियों के तीन प्रतिनिधि। (v) मण्डी क्षेत्र को गाँव सभाओं के प्रधानों द्वारा निर्वाचित मण्डी क्षेत्र के दस उत्पादक। (vi) राज्य सरकार द्वारा नाम निर्दिष्ट एक सरकारी अधिकारी। (धारा 13)

प्रथम समिति राज्य सरकार द्वारा मनोनीत की जावेगी इसका कार्य-काल एक वर्ष का होगा किन्तु लोकहित में उसका कार्य-काल सरकार बढ़ा सकती है। (धारा 10)

समिति इस विधान के अधीन बनाये गये नियमों व उपनियमों को लागू करेगी, क्रय-विक्रय में लगे व्यक्तियों के बीच न्यायपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित करेगी, वर्गीकरण तथा मान स्थापन करेगी, सूचनाओं का संग्रह और प्रचार करेगी, व्यापारिक परिव्ययों तथा प्रथाओं को स्थिर और विनियमित करेगी, उत्पादकों और वहाँ क्रय-विक्रय में लगे व्यक्तियों के लिए उचित सुख-सुविधाओं की व्यवस्था करेगी विशेष रूप से सड़कों, दुकानों, संग्रह स्थानों का निर्माण आदि करेगी, मतभेदों व विवादों में मध्यस्थ का कार्य करेगी और वार्षिक बजट तैयार करेगी आदि। (धारा 16)

इस समिति को लायसेंस जारी करने, नवीकृत करने, रद्द करने, शुल्क लगाने व वसूल करने तथा उपसमितियाँ नियुक्त करने का अधिकार होगा। (धारा 17)

(3) **समिति के अधिकारी तथा सेवक** (Officers & Servants of the Committee)—समिति का एक सभापति व एक उप-सभापति होगा तथा दिन प्रति दिन के कार्य की देख-भाल के लिए प्रत्येक समिति का एक सचिव (Secretary)

होगा जो राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जावेगा। सचिव समिति का मुख्य कार्य-पालक अधिकारी होगा।

(4) **सरकारी नियन्त्रण** (Government Control)—सरकार ने मण्डी समितियों के सुचारु रूप से चलाने के लिए व्यापक अधिकार ले रखे हैं। सरकार समिति के अभिलेखों का निरीक्षण कर सकती है, शिकायत होने पर सभापति, उप-सभापति, सदस्य, सचिव या अधिकारी के विरुद्ध जाँच कर सकती है। जाँच करने वाले अधिकारी कृषि निदेशक (Director of Agriculture) होंगे। इनको वे सभी अधिकार होंगे जो कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर, 1908 के अधीन किसी न्यायालय को होते हैं। राज्य सरकार को अधिकार है कि किसी सदस्य, सभापति उपसभापति को हटा दे तथा समिति द्वारा कर्तव्यों का पालन उचित न होने पर समिति का अव-क्रमण (Supersession of Committee) कर दे। समिति द्वारा पारित प्रस्ताव या दी गयी आज्ञा को रद्द करने का अधिकार है। समिति की कार्यवाहियाँ (Proceed-ings of a Committee) मँगाने और उस पर आदेश देने का राज्य सरकार को अधिकार है। राज्य सरकार अपने अधिकारों को किसी अन्य अधिकारी को भी, गजट में विज्ञप्ति करके, दे सकती है।

(5) **विविध** (Miscellaneous)—मण्डी समिति का सचिव या समिति द्वारा अधिकृत अन्य अधिकारी कर्तव्यों के पालन में सभी उचित समय पर किसी भी स्थान, भू-गृहादि या वाहन (Vehicle) में प्रवेश कर सकता है और तलाशी ले सकता है। (धारा 30)

यदि कोई व्यक्ति धारा 9 व 10 की किन्हीं भी उपधाराओं या उनके अधीन बनाये गये नियमों या उपविधियों का उल्लंघन करता है तो उसे 90 दिन का साधा-रण कारावास या 500 रुपये तक का अर्थ दण्ड या दोनों दिये जा सकते हैं। (धारा 37)

मण्डी समिति अपनी उपविधियाँ (Bye-Laws) अपने कार्य का विनियमन करने, उपसमितियों की नियुक्ति, अधिकार, कर्तव्य और कार्यों को करने, व्यापारियों, आढ़तियों, दलालों, तौलकों (Weighmen) और पल्लेदारों के कर्तव्यों को निश्चित करने के लिए बना सकती है।

राज्य मुख्यालय पर कृषि मन्त्री के सभापतित्व में एक "केन्द्रीय मण्डी सलाह-कार समिति" होगी जो राज्य की विभिन्न मण्डी समितियों की उन्नति पर सलाह दिया करेगी।

वर्तमान स्थिति (Present Position)—इस समय राज्य में 250 मुख्य मण्डियाँ हैं और लगभग इतनी ही पूरक मण्डियाँ हैं। सबसे पहली नियमित मण्डी 2 अक्टूबर, 1965 को रुद्रपुर (नैनीताल) में स्थापित हुई है।

शामली (मुजफ्फरनगर) मण्डी का संगठन एवं कार्य-व्यवस्था
(ORGANIZATION AND WORKING OF THE SHAMLI REGULATED MARKET)

शामली (मुजफ्फरनगर) उत्तर प्रदेश की मण्डी का प्रबन्ध चार समितियों के माध्यम से होता है :

(1) मण्डी समिति (Mandi Committee), (2) विवाद उपसमिति (Disputes Sub-Committee), (3) वित्त उपसमिति (Finance Sub-Committee), (4) नियुक्ति उपसमिति (Appointments Sub-Committee)।

(1) **मण्डी समिति** (Mandi Committee)—इस समय मण्डी समिति के कुल सदस्यों की संख्या 17 है जिसमें स्थानीय निकाय, भण्डार निगम, व्यापारियों, दलालों, आढ़तियों व उत्पादकों के प्रतिनिधि हैं। इस समिति का कार्य मण्डी पर नियन्त्रण रखना है।

(2) **विवाद समिति** (Disputes Committee)—मण्डी के क्रेताओं और विक्रेताओं के बीज मतभेदों या विवादों को तय करती है। इसके तीन सदस्य हैं।

(3) **वित्त समिति** (Finance Committee)—यह मण्डी समिति के वित्त प्रबन्ध के लिए कार्य करती है। इसके भी तीन सदस्य हैं।

(4) **नियुक्ति समिति** (Appointments Committee)—इसका कार्य विभिन्न नियुक्तियाँ करना है। इसके भी तीन सदस्य हैं।

मण्डी समिति को छोड़कर बाकी तीनों समितियाँ उपसमितियाँ हैं और मण्डी समिति के नियन्त्रण में कार्य करती हैं। इन उपसमितियों के निर्णयों के विरुद्ध अपील मण्डी समिति को की जा सकती है।

मण्डी के खर्चे (Market Charges)—इस मण्डी में किसान जब उत्पत्ति बेचने के लिए लाता है तो उससे सिर्फ मण्डी समिति की फीस व माल उतराई (unloading charges) ही ली जाती हैं जो क्रमशः 30 पैसे व 10 पैसे (प्रति 100 रुपये मूल्य की उत्पत्ति पर) है। इस प्रकार किसान को 100 रुपये के मूल्य की उत्पत्ति पर (Per hunderd Rs. worth of produce) 40 पैसे ही खर्चे के रूप में देने पड़ते हैं।

क्रेता को प्रति 100 रुपये मूल्य की उत्पत्ति पर 1 रुपया 50 पैसे कमीशन व 6 पैसे दलाली देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त क्रेता को 10 पैसे प्रति कुन्टल तुलाई व 15 पैसे प्रति कुन्टल पल्लेदारी के और देने पड़ते हैं।

इस मण्डी को नियमित करने से पहले क्रेता व विक्रेता को निम्न खर्चे प्रति 100 रुपये मूल्य की उत्पत्ति पर गेहूँ के सम्बन्ध में देने पड़ते थे :

मद	क्रेता	विक्रेता
1. कमीशन	1·00	1·00
2. पल्लेदारी	·40	
3. धर्मादा	·06	·06
4. संघ (As o:iation)	·02	
5. मेहतर	·03	
6. दुकान के दाने	·22	
योग	1·73	1·06

इस प्रकार इस मण्डी के नियमित हो जाने से किसानों को लाभ हुआ है क्योंकि उनसे अवैध खर्चे वसूल नहीं किये जाते, तुलाई उचित होती है व बिक्री का धन तुरन्त मिल जाता है।

मध्य प्रदेश में नियमित बाजार
(REGULATED MARKETS IN MADHYA PRADESH)

मध्य प्रदेश में कृषि उपज मण्डी अधिनियम (M. P. Agricultural Produce Markets Act), 1960 में बनाया गया जिस पर राष्ट्रपति महोदय ने अपनी स्वीकृति 3 अगस्त, 1960 को दी तथा इस अधिनियम को मध्य प्रदेश गजट में 11 अगस्त, 1960 को प्रकाशित किया गया। इस विधान के नियम (M. P. Agricultural Produce Markets Rules, 1962) भी राज्य सरकार ने बनाये जिन्हें राज्य के गजट में 27 जून, 1962 को प्रकाशित किया गया। **मध्य प्रदेश कृषि उपज मण्डी अधिनियम में 43 धाराएँ हैं और इसकी मुख्य बातें निम्नलिखित हैं:**

(1) **मण्डी क्षेत्र** (Market Area)—किसी क्षेत्र के स्थानीय निकाय (Local Authority) या कृषि उत्पादकों से प्रार्थना-पत्र प्राप्त होने पर या अन्य प्रकार से राज्य सरकार आवश्यक समझती है तो राज्य के गजट में यह घोषणा प्रकाशित करती है कि उस क्षेत्र में कृषि उत्पादन के क्रय-विक्रय को विनियमित किया जावेगा तथा प्रस्तावित घोषणा के सम्बन्ध में आपत्तियाँ व सुझाव कम से कम 1 माह में आमन्त्रित करती है। सुझावों व आपत्तियों पर विचार करने के पश्चात् सरकार विज्ञप्ति जारी करके उल्लिखित क्षेत्र ऐसे उत्पादन के सम्बन्ध में और ऐसे दिनांक से जो घोषणा में निर्दिष्ट किया जाये मण्डी क्षेत्र घोषित कर देती है।

घोषणा किये जाने से कोई स्थानीय निकाय या अन्य व्यक्ति बिना लाइसेन्स के मण्डी क्षेत्र के भीतर या घोषित परिधि (Distance) के अन्दर निर्दिष्ट कृषि उपज के लिए स्थान की स्थापना न करेगा और न उसे बनाये रखेगा। (धारा 3)

(2) **मण्डी समिति** (Market Committee)—प्रत्येक मण्डी क्षेत्र के लिए एक समिति होगी जिसके 17 सदस्य होंगे। प्रथम मण्डी समिति राज्य सरकार

द्वारा मनोनीत की जावेगी जिनका कार्यकाल 2 वर्ष होगा और बाकी अन्य समितियों का 3 वर्ष का होगा। मण्डी समिति का गठन निम्न प्रकार से होगा :

(i) 10 प्रतिनिधि उत्पादकों के,
(ii) 1 प्रतिनिधि स्थानीय निकाय (Local Authority) का,
(iii) 1 प्रतिनिधि भण्डार निगम का,
(iv) 5 प्रतिनिधि लाइसेन्सदार व्यापारियों के। (धारा 8)

यदि कोई सहकारी समिति मण्डी का प्रबन्ध करना चाहती है तो राज्य सरकार को प्रार्थना-पत्र दे सकती है और राज्य सरकार यदि उस समिति में उत्पादकों का उचित प्रतिनिधित्व मानती है तो प्रबन्ध उस सहकारी समिति को सौंप सकती है। (धारा 10)

मण्डी समिति का कर्तव्य होगा कि इस विधान की धाराओं, नियमों व उप-विधियों (Bye-laws) को लागू करे, तथा सरकार द्वारा मण्डी को सुधारने के लिए दिये गये आदेशों का पालन करे। यदि आवश्यक हो तो उप-समितियों (Sub-Committees) का गठन करे व व्यापारियों, दलालों व तौलाओं आदि को लाइसेंस देने के लिए उपविधियों को बनाये। मण्डी समिति को अधिकार होगा कि मण्डी में बिकने वाली उपज पर फीस लगा दे। (धारा 15-20)

(3) **सरकारी नियन्त्रण** (Government Control)—सरकार ने मण्डी समितियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए व्यापक अधिकार ले रखे हैं। सरकार का कृषि निदेशक या अन्य अधिकारी समिति के अधिलेखों का निरीक्षण कर सकता है। सरकार समिति के किसी भी सदस्य को दुर्व्यवहार, उपेक्षा या अयोग्यता के कारण हटा सकती है। समिति द्वारा कर्तव्यों का पालन उचित न होने पर समिति का अव-क्रमण (Supersession of Committee) सरकार द्वारा किया जा सकता है। राज्य सरकार को अधिकार है कि विधान में लगी तालिकाओं में परिवर्तन कर दे व अपने अधिकार किसी भी अधिकारी को सौंप दे। समिति द्वारा बनायी गयी उपविधियाँ (Bye-Laws) तब तक लागू नहीं होंगी जब तक कि कृषि निदेशक उस पर अपनी स्वीकृति न दे दें। कृषि निदेशक चाहे तो उन उपविधियों में परिवर्तन कर सकता है। समिति की कार्यवाही (Proceeding of Committee) माँगने और उन पर आज्ञा देने के राज्य सरकार को अधिकार हैं।

(4) **विविध** (Miscellaneous)—यदि कोई व्यक्ति निश्चित खर्चों से अधिक खर्चे वसूल करेगा तो उसको 50 रुपये प्रति जुर्म तक दण्डित किया जा सकता है (धारा 30)। प्रत्येक मण्डी समिति स्थानीय निकाय (Local Authority) समझी जावेगी। यदि मण्डी समिति किसी स्थानीय निकाय से मकान या जगह चाहेगी तो उसे उस जिले के कलक्टर महोदय द्वारा निश्चित हर्जाना देने पर प्राप्त होगी। प्रत्येक मण्डी समिति एक 'मण्डी कोष' (Market Fund) रखेगी जिसमें सभी आमदनी

जमा होगी और जिसमें से सभी खर्चे होंगे। मण्डी समिति अपने कार्य को चलाने के लिए अधिकारी व कर्मचारियों आदि की नियुक्ति कर सकती है।

मध्य प्रदेश कृषि उपज मण्डी नियम, 1962 की मुख्य बातें

(MAIN PROVISIONS OF THE M. P. AGRICULTURAL PRODUCE MARKETS RULES, 1962)

(1) मण्डी समिति कमीशन प्रतिनिधियों से, व्यापारियों से, तौला से व अन्य मध्यस्थों से अपनी उपविधियों के अनुसार फीस वसूल कर सकती है लेकिन वह निम्न से अधिक नहीं होगी :

		अधिकतम दर (वार्षिक)
(i)	कमीशन एजेन्ट	50 रुपये
(ii)	थोक व्यापारी	50 रुपये
(iii)	खुदरा व्यापारी	12 रुपये
(iv)	क्रियाएँ करने वाले कारखाने (Processing Factory)	50 रुपये
(v)	दलाल	15 रुपये
(vi)	तौला	10 रुपये
(vii)	हमाल (Hamals)	6 रुपये
(viii)	सर्वेक्षक (Surveyors)	12 रुपये
(ix)	भण्डारक (Wharehouse Men)	12 रुपये

(2) मण्डी समिति मण्डी में आने वाली उपज पर फीस लगा सकती है लेकिन प्रति 100 रुपये पर उसकी अधिकतम राशि 25 पैसे न्यूनतम राशि 10 पैसे होगी। (3) मण्डी में आयी हुई उपज की बिक्री खुले नीलाम (Open Auction) या टेंडर से होगी। (4) खरीद व बिक्री का सौदा होने पर तीन प्रतियों में एक समझौता होगा जिसकी एक प्रति खरीदने वाला, दूसरी बेचने वाला व तीसरी मण्डी समिति रखेगी। (5) कीमत का भुगतान उसी दिन किया जावेगा जिस दिन उपज बिकी है।

धुलिया मण्डी (बम्बई) का संगठन एवं कार्य-व्यवस्था

(ORGANISATION AND WORKING OF THE DHULIA REGULATED MARKET)

बम्बई में सूती वस्त्र व्यवसाय की प्रमुखता के कारण बम्बई में ही धुलिया नामक स्थान पर कपास की अधिक बिक्री होती थी। इस बिक्री में किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता था। अतः बम्बई सरकार ने सन् 1930 में बम्बई कपास बाजार अधिनियम (Bombay Cotton Market Act) इस मण्डी पर लागू कर दिया। तब से यह मण्डी नियमित मण्डी की तरह कार्य कर रही है। इस समय इस मण्डी पर बम्बई कृषि विपणन विधान, 1963 (The Bombay Agricultural Produce Marketing Act) लागू होता है।

प्रबन्ध (Management)—इस मण्डी का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए निम्न चार समितियाँ हैं : (1) मण्डी समिति (Mandi Committee), (2) शासन उप-समिति (Administrative Sub-committee), (3) निरीक्षण उप-समिति (Inspection Sub-committee), (4) निर्णय उप-समिति (Judgement Sub-committee) ।

(1) **मण्डी समिति** (Mandi Committee)—इस मण्डी समिति के कुल सदस्यों की संख्या 14 है जिनमें 7 उत्पादक वर्ग से, 4 स्थानीय व्यापारी वर्ग से व एक-एक सदस्य नगरपालिका, महाराष्ट्र सरकार का कृषि विभाग व प्रान्तीय बोर्ड से है। यह समिति मण्डी के कार्यकलापों के लिए सर्वोच्च है। इस मण्डी समिति की सहायता के लिए निम्न तीन उप-समितियाँ हैं।

(2) **शासन उप-समिति** (Administrative Sub-committee)—मण्डी समिति के कुछ सदस्यों को लेकर यह समिति गठित की जाती है। इसका कार्य दिन-प्रतिदिन के कार्यों की देखभाल करना है।

(3) **निरीक्षण उप-समिति** (Inspection Sub-committee)—यह समिति भी मण्डी समिति के कुछ सदस्यों को लेकर गठित की जाती है। इसका कार्य मण्डी का निरीक्षण करना है व नियमों के विपरीत कार्य करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही करना है।

(4) **निर्णय उप-समिति** (Judgement Sub-committee)—क्रेता व विक्रेताओं में मतभेद हो जाने पर पहले तो क्रेता व विक्रेता को मतभेद सुलझाने का सीधा अवसर दिया जाता है। यदि वे आपस में न सुलझा सकें तो बाजार निरीक्षक (Market Inspector) सुलझाने का प्रयत्न करता है। यदि बाजार निरीक्षक भी सुलझाने में असमर्थ रहे तो ऐसा मामला इस समिति के सुपुर्द कर दिया जाता है। इस समिति द्वारा निर्णय अन्तिम होता है व सभी समुदायों पर लागू होता है।

बिक्री का तरीका (Method of Sale)—किसान अपनी कपास को गाड़ियों में लादकर मण्डी क्षेत्र में लाता है। साधारणतया दलाल क्रेता व विक्रेताओं के बीच सौदा तय कराते हैं। सौदा तय हो जाने पर दलाल ही गाड़ियों को तुलवाता व बिक्री का पर्चा बनवाता है। इसमें से निर्धारित खर्चे काट लिए जाते हैं व बाकी रकम का भुगतान विक्रेता को कर दिया जाता है।

अन्य विवरण (Miscellaneous)—मण्डी में कार्य करने वाले तौलक, दलाल, व व्यापारी आदि सभी को मण्डी समिति से आज्ञा-पत्र लेना पड़ता है जिसके लिए निर्धारित फीस उनके द्वारा दी जाती है। इस मण्डी में क्रेता व विक्रेता से वसूल किये जाने वाले खर्चे निर्धारित होते हैं। यहाँ माल को कुछ समय तक संग्रह करने के लिए गोदाम भी हैं जहाँ थोड़े से शुल्क पर यह सुविधा प्रदान की जाती है। साथ ही कपास के वर्गीकरण की सुविधा यहाँ पर दी जाती है।

मण्डियों के नियमन से सुधार या मण्डियों के नियमन में सफलता
(IMPROVEMENTS DUE TO REGULATION OF MARKETS OR SUCCESS OF REGULATED MARKETS)

मण्डियों के नियमन से निश्चित रूप से सुधार हुआ है। (1) मण्डियों में अनावश्यक व्यय न लेकर निर्धारित व्यय ही लिए जाते हैं। (2) माल की तुलाई सही काँटों व बाँटों से होती है। (3) माल की बानगी (sample) कम मात्रा में ली जाती है। (4) किसान या विक्रेता को विक्री होने पर तुरन्त भुगतान मिल जाता है और आढतिये की कृपा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। (5) मण्डियों द्वारा अपनी आय का कुछ भाग विक्रेताओं की सुविधाओं पर व्यय किया जाता है जैसे पानी की व्यवस्था, टिन शेड, आदि। इससे किसान व उसके जानवरों को सुविधा रहती है। (6) मण्डियों में विश्वसनीय सूचनाएँ ही प्रसारित की जाती हैं। उनमें धोखे की सम्भावनाएँ नहीं होती है। (7) प्रमापीकरण एवं वर्गीकरण की सुविधाएँ मण्डियो में उपलब्ध होने से किसान अपनी उपज का श्रेणीकरण कर सकता है और ऊँचे मूल्य पर बेच सकता है। (8) क्रेता एवं विक्रेता में, किसी प्रकार का मतभेद होने पर उसका निवटारा मण्डी समिति द्वारा नियुक्त समिति के द्वारा किया जा सकता है। इससे मतभेद नहीं बढते हैं। (9) मण्डियों मे होने वाली धोखे की क्रियाओं में भी कमी हुई है। (10) मण्डियों में किसान से लिए जाने वाले व्ययों में भी कमी हुई है। (11) अनुचित व्यक्तियों के मण्डी प्रवेश पर रोक लग जाती है।

प्रश्न

1. नियन्त्रित बाजारों से क्या अर्थ है ? क्या भारत मे इस प्रकार के बाजार हैं ? यदि हाँ, तो किसी एक बाजार के संगठन एवं कार्य-प्रणाली पर प्रकाश डालिए।

   What is meant by "Regulated Markets" ? Do you have such markets in India ? If so, explain the organisation and working of any such Market.

2. संगठित बाजार का क्या अर्थ है ? क्या यह नियमित बाजार से भिन्न है ? एक नियमित बाजार के लाभों को समझाइए।

   What is an organised market ? Does it differ from a Regulated market ? Explain the advantages of a regulated market.

3. एक संगठित बाजार व एक नियमित बाजार में अन्तर स्पष्ट कीजिए। कृषि विपणन के दोषों और कुरीतियों को दूर करने में विनिमय बाजार कहाँ तक सफल रहे हैं ?

   Distinguish between an organised market and a regulated market ? How far have regulated markets been successful in removing the defects and malpractices in agricultural marketing.

4. "सभी नियमित बाजार संगठित बाजार हैं लेकिन संगठित बाजार का नियमित बाजार होना आवश्यक नहीं है।" इस विवरण की व्याख्या कीजिए।
   "All regulated markets are organised markets but all organised markets are not necessarily regulated markets." Discuss the statement.

5. अनियमित मण्डियों के प्रमुख दोष कौन-से हैं ? आपकी राय में मण्डियों के नियमन से कहाँ तक स्थित में सुधार किया जा सका है ?
   What are the main defects of unregulated markets ? How far do you think regulation of markets has improved upon the situation ?

6. उत्तर प्रदेश के नियमित बाजारों (Regulated Markets) का वर्णन कीजिए।
   Give the description of regulated markets of Uttar Pradesh.

20

उपज विनिमय या उपज विपणि

[PRODUCE EXCHANGES]

उपज या पदार्थ विनिमय की परिभाषा

(MEANING AND DEFINITION OF A COMMODITY OR PRODUCE EXCHANGE)

उपज विनिमय से अर्थ उस बाजार से है जहाँ कृषि उपज, औद्योगिक माल एवं खनिज पदार्थों का क्रय एवं विक्रय होता है। लेकिन यह क्रय एवं विक्रय निश्चित नियमों तथा नियन्त्रणों के अधीन होता है। इन विनिमयों को व्यापार मण्डल, चैम्बर ऑफ कॉमर्स, मर्चेन्ट चैम्बर, आदि के नाम से भी पुकारते हैं। इन्हीं को उपज विनिमय विपणि भी कहते हैं। उपज विनिमय की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

(1) **हीडिंग्सफील्ड एवं ब्लैकेन्शिप** (Heidingsfield & Blankenship) **के शब्दों में** "एक पदार्थ विनिमय भौतिक व्यापारिक स्थान प्रदान करता है, और अपने भवन में व्यापारिक व्यवहार करने के नियम निर्धारित करता है तथा उनका प्रबन्ध करता है।"[1]

(2) **पाइल** (Pyle) **के मत में** "पदार्थ विनिमय विशेष संगठित बाजार हैं जो स्थान प्रदान करते हैं तथा जहाँ उनके सदस्य निर्धारित नियमों व कानूनों के अन्तर्गत पदार्थ खरीदते व बेचते हैं या भविष्य की सुपुर्दगी के सौदे करते हैं।"[2]

(3) **कन्वर्स, ह्यूजी एवं मिचल** (Converse, Huegy & Mitchell) **की राय में** "एक उपज या पदार्थ विनिमय निश्चित पदार्थों में व्यापार करने वाले व्यापारियों का संगठन है जो स्थान प्रदान करता है तथा जहाँ सदस्य निश्चित समयों में मिलते हैं और संगठन द्वारा निर्धारित नियमों के अन्तर्गत व्यापारिक सौदे करते हैं।"[3]

---

1 "A commodity exchange provides a physical trading place and sets up and administers certain rules governing trading on its premises."
—Heidingsfield and Blankenship : *Marketing*, p. 190.

2 "Commodity exchanges are specialized organised markets which provide a place where there members buy and sell commodities or contracts for future delivery under established rules and regulations."
—Pyle : *Marketing Principles*, p. 155.

3 "A Produce or commodity exchange is an organization of dealers in certain commodities which provides a market place where the members meet at definite times and transact business under the rules laid down by the organization."
—Converse, Huegy & Mitchell : *The Elements of Marketing*, p. 280.

इन परिभाषाओं के अध्ययन से हम इन निष्कर्षों पर आते हैं कि (1) पदार्थ विनिमय व उपज विनिमय में कोई अन्तर नहीं है। दोनों की कार्यविधि व उद्देश्य समान हैं। लेकिन कुछ विद्वानों का मत है कि पदार्थ विनिमय में सभी प्रकार के उत्पादन चाहे कृषि सम्बन्धित हों, चाहे निर्मित पदार्थ सम्बन्धित हों या खनिज पदार्थ सम्बन्धित, सभी का आदान-प्रदान होता है, लेकिन उपज विनिमय में केवल कच्चे माल का ही आदान-प्रदान होता है। (2) यह एक प्रकार के व्यापारियों का संगठन है। (3) इन व्यापारियों के सौदे करने के कुछ नियम होते हैं जिनको स्वयं व्यापारियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। (4) पदार्थ या उपज विनिमय स्थान उपलब्ध करता है जहाँ उनके सदस्य निश्चित समयों में व निर्धारित नियमों के अनुसार सौदे करते हैं। (5) यहाँ सौदे तैयार या नकद और भविष्य दोनों प्रकार के किये जा सकते हैं। (6) विनिमय पर सौदे विनिमय द्वारा स्वयं अपने लिए नहीं किये जाते हैं।

इस प्रकार उपज विनिमय एक विशिष्ट बाजार है जो अपने सदस्यों को एक स्थान प्रदान करता है जहाँ वे निर्धारित नियमों व कानूनों के अन्तर्गत वस्तुओं का क्रय एवं विक्रय कर सकें।

पदार्थ या उपज विनिमयों के उद्देश्य

(AIMS AND OBJECTS OF PRODUCE OR COMMODITY EXCHANGES)

साधारणतया एक पदार्थ या उपज विनियम के निम्न उद्देश्य होते हैं :

(1) सदस्यों को एक स्थान उपलब्ध करना जिससे कि वे सौदे कर सकें व अपने-अपने दृष्टिकोण रख सकें। (2) विपणन सूचनाएँ एकत्रित करना एवं उनका प्रसारण करना। (3) व्यापारिक सौदों को आसान बनाने के लिए नियम बनाना व उनको लागू करना। (4) व्यापारिक मतभेदों को दूर करने के लिए व्यवस्था करना। (5) प्रमाप व वर्ग निर्धारित करना व सौदों में लागू करना। (6) माँग व पूर्ति के नियम के अनुसार मूल्य निर्धारित करना, आदि।[1]

पदार्थ या उपज विनिमयों के कार्य

(FUNCTIONS OR SERVICES OF COMMODITY OR PRODUCE EXCHANGES)

किसी भी संस्था के उद्देश्य उसके कार्यों की सीमा को निर्धारित करते हैं अतः उद्देश्यों व कार्यों में समानता पायी जाती है। पदार्थ व उपज विनिमय के उद्देश्य

---

1 "To provide a convenient place for the members to meet for the purpose of trading or of exchanging views; to collect and disseminate market information; to establish and enforce rules and regulations designed to facilitate trade: to establish and maintain grades; to provide machinery for arbitration of trade disputes and to aid crystallizing market values."
—Erdman : *American Produce Markets*, p. 159, quoted from Commodity Exchanges, P. G. Salvi, p. 4.

ही उनके कार्य हैं । पदार्थ व उपज विनिमयों के बहुत से कार्य होते हैं लेकिन उनमें निम्न प्रमुख हैं :

1. **संगठन कार्य** (Organisational Function)—पदार्थ व उपज विनिमयों का सर्वप्रथम कार्य व्यापार के सौदे करने के लिए स्थान व सुविधाएँ प्रदान करना है।

2. **नियमन कार्य** (Regulatory Function)—स्थान व सुविधाओं के उपलब्ध करने के बाद एक उपज विनिमय का कार्य सौदों के लिए नियम बनाना व प्रमाप तथा वर्ग निर्धारित करना है। साथ ही क्रेता व विक्रेता में मतभेद हो जाने की दशा मे निवटारे के लिए उपयुक्त व्यवस्था करना भी एक उपज विनिमय का ही कार्य होता है।

3. **बीमा कार्य** (Insurance Function)—पदार्थ व उपज विनिमय विस्तृत व चालू (wide and continuous) बाजार उपलब्ध करते हैं जिससे उपभोक्ता को कच्चा माल एकत्र करने की आवश्यकता नहीं रहती है तथा उत्पादक भी अपने माल को किसी भी समय बेच सकता है। विनिमय होने से किसान या उत्पादक नियोजन कर सकते हैं। यह सभी घटक बीमे के रूप में कार्य करते हैं तथा आवश्यकता के समय हैं धरक्षण (Hedging) के सौदे किये जा सकते हैं।

4. **वित्त कार्य** (Financing Function)—उपज व पदार्थ विनियमों में माल की सुपुर्दगी भण्डार गृहों की रसीदों (warehouse receipts) के लेने व देने से हो जाती है जिससे रसीदों में तरलता आ जाती है। इस तरलता के आने से बैंकों व वित्तीय संस्थाओं के द्वारा इन रसीदों के आधार पर वित्तीय सुविधाएँ अधिकाधिक मात्रा में उपलब्ध की जाती हैं जिससे व्यापारी थोड़े-से भी लाभ पर खरीद व बिक्री के सौदे कर सकते हैं।

5. **मूल्य कार्य** (Pricing Function)—उपज व पदार्थ विनियमों में विस्तृत व चालू बाजार होने से माँग व पूर्ति प्रभावित करने वाली शक्तियाँ स्वतः ही चलती रहती हैं और उचित मूल्य निर्धारित हो जाते हैं। इसका कारण विनिमयों का विस्तृत सम्पर्क है। वास्तव में, इन विनिमयों का यही मुख्य कार्य है।

6. **सूचना कार्य** (Informative Function)—इन विनिमयों का कार्य यह भी है कि विनिमय में खरीद व बिक्री करने वाले सदस्यों के लिए उस पदार्थ या उपज के उत्पादन, यानायात, माँग, आदि के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्रित करें व उनका प्रभाव मूल्यों पर आँकें तथा उनको प्रकाशित करें।

उपज विनिमय व स्कन्ध विनिमय में अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN A PRODUCE EXCHANGE AND A STOCK EXCHANGE)

उपज विनिमय व स्कन्ध विनिमय में बहुत कुछ सीमा तक समानता पायी जाती है—दोनों के उद्देश्य, कार्य प्रणाली, संगठन व सौदे करने के ढंग लगभग समान हैं, लेकिन फिर भी उनमें अग्र अन्तर पाये जाते हैं :

अन्तर का आधार	उपज विनिमय	स्कन्ध विनिमय
(1) स्थापना	यह पहले स्थापित हुए हैं।	यह उपज विनिमयों के बाद ही स्थापित हुए हैं।
(2) वस्तु	यहाँ पर कृषि उपज या कच्चे माल का व्यवहार होता है।	यहाँ पर प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय होता है।
(3) उद्देश्य	इनका उद्देश्य क्रय एवं विक्रय करना होता है।	इनका उद्देश्य विनियोग करना होता है।
(4) व्यापारिक क्षेत्र	इनके व्यापार का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय होता है।	इनका क्षेत्र साधारणतया राष्ट्रीय होता है।
(5) सौदों की प्रकृति	यहाँ पर अधिकांश सौदे वास्तविक (genuine) होते हैं।	यहाँ पर अधिकांश सौदे परिकाल्पनिक होते हैं।
(6) स्थिति	यह विनिमय सम्बन्धित वस्तु के उत्पादन केन्द्रों के पास होते हैं।	इनमें इस प्रकार की बात नहीं है।
(7) संग्रह	इसमें उत्पादकों से प्राप्त कच्चे माल को संग्रह किया जाता है।	इसमें संग्रह की आवश्यकता नहीं है।
(8) सूचियन	इसमें सूचियन की आवश्यकता नहीं है।	इसमें सूचियन की आवश्यकता है।
(9) सदस्यता	इनमें कोई भी सदस्य हो सकता है।	इसमें केवल मान्यता प्राप्त व्यापारी ही सदस्य हो सकते हैं।
(10) विकास निर्भरता	इनका विकास व्यापारिक परिपक्वता पर निर्भर है।	इनका विकास कम्पनियों की वृद्धि पर निर्भर है।
(11) नियमों का पालन	नियमों का पालन करना अपेक्षाकृत शिथिल है।	इसमें नियमों का पालन कठोरता से किया जाता है।

उपज विनिमय पर व्यवहार की जाने वाली वस्तुओं की विशेषताएँ
(ESSENTIAL QUALITIES OF MARKETABLE COMMODITIES)

किसी वस्तु को पदार्थ विनिमय पर व्यापार करने के लिए निम्न गुणों का होना आवश्यक है :

(1) **एकरूपता** (Homogenity)—पदार्थ में एकरूपता होनी चाहिए अर्थात् सभी पदार्थ समान प्रकार के होने चाहिए।

(2) **वर्गीकरण योग्य** (Capable of Being Graded)—पदार्थ वर्गीकरण करने योग्य होने चाहिए जिससे उनको विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सके।

(3) **टिकाऊपन** (Durability)—पदार्थ में टिकाऊपन का भी होना आवश्यक है। टिकाऊपन से तात्पर्य यह है कि पदार्थ काफी समय तक रखने योग्य होना चाहिए।

(4) **मूल्यों में उच्चावचन** (Fluctuations)—पदार्थ ऐसा हो जिसके मूल्यों में परिवर्तन होता रहता हो। मूल्यों में परिवर्तन साधारणतया अन्य कारणों के अतिरिक्त माँग व पूर्ति के कारण ही होता है। अतः पदार्थ ऐसा होना चाहिए

कि उसकी माँग व पूर्ति घटती-बढ़ती रहती हो जिससे कि मूल्यों के अन्तर का लाभ प्राप्त करने के लिए सौदे किये जा सकें।

(5) **व्यापार वृहत् आकार में** (Trading in Large Volume)—वस्तु या पदार्थ ऐसा होना चाहिए कि उसमें व्यापार काफी मात्रा में होता हो। यदि क्रेता व विक्रेताओं की मात्रा कम होगी तो व्यापार कम होगा और इस प्रकार ऐसे पदार्थ के लिए उपज विनिमय स्थापित न हो सकेंगे।

(6) **स्थानान्तरण की सुविधा** (Protability)—पदार्थ या वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि न्यूनतम व्यय में एक बाजार से दूसरे बाजार में भेजी जा सके।

(7) **स्वतन्त्र पूर्ति** (Open Supply)—वस्तु या पदार्थ की पूर्ति स्वतन्त्र होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पूर्ति पर किसी एक व्यक्ति, समूह या सरकार का एकाधिकार या नियन्त्रण नहीं होना चाहिए।

(8) **नमूने द्वारा विक्रय की सुविधा** (Suitable for Sale by Sample)—व्यवहार की जाने वाली वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि उसका क्रय एवं विक्रय नमूने को देखकर ही किया जा सके।

(9) **व्यापक पूर्ति** (Extensive Supply)—वस्तु या पदार्थ की पूर्ति व्यापक होनी चाहिए जिससे कि विनिमय पर सौदे निरन्तर हो सकें। यदि पूर्ति व्यापक न होगी तो बाजार का क्षेत्र सीमित ही रह जावेगा।

उपज विनिमय व व्यापारिक संगठन में अन्तर

(DIFFERENCE BETWEEN A PRODUCE EXCHANGE AND AN ORGANISATION OF MERCHANTS)

उपज विनिमयों व व्यापारिक संगठन में काफी भिन्नता पायी जाती है।

(1) **उद्देश्य** (Objects)—उपज विनिमय का उद्देश्य व्यापार के लिए स्थान उपलब्ध करना है जबकि व्यापारिक संगठन का उद्देश्य व्यापार की सामान्य परिस्थिति की देख-रेख करना है व सभी सदस्यों के सामूहिक हितों का ध्यान रखना है।

(2) **कार्य** (Functions)—उपज विनिमय का कार्य मूल्यों में अत्यधिक गिरावट या वृद्धि होने पर हस्तक्षेप करना है लेकिन व्यापारिक संगठनों के द्वारा साधारणतया ऐसा कार्य नहीं किया जाता है।

(3) **वस्तुएँ** (Products)—उपज विनिमय उद्देश्य पत्र में लिखित वस्तुओं में व्यापार करते हैं जबकि व्यापारिक संगठन कोई व्यापार नहीं करते बल्कि केवल व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(4) **सौदों के नियम** (Rules for Transactions)—उपज विनिमय पर व्यापारिक सौदे करने के नियम व उपनियम होते हैं जिनके अनुसार व्यापारिक सौदे किये जाते हैं। व्यापारिक संगठन में साधारणतया व्यापारिक सौदे करने के नियम नहीं होते, वह तो व्यावसायिक हितों की सुरक्षा करता है।

(5) **शुल्क** (Fees)—उपज विनिमय प्रत्येक सौदे पर कुछ शुल्क लेते हैं जो सदस्यों की सुविधाओं पर व्यय किया जाता है। इसके विपरीत व्यापारिक संगठन अपना कार्य चलाने के लिए चन्दा एकत्रित करते हैं।

(6) **सदस्य** (Member)—उपज विनिमय के सदस्य उस वस्तु विशेष में व्यापार करते हैं जिसके लिए विनिमय स्थापित हुआ है लेकिन व्यापारिक संगठन में

सदस्य वे होते हैं जो व्यवसाय में दिलचस्पी रखते हैं या किसी क्षेत्र में व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भारत में व्यावसायिक संगठनों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जिनमें एक नाम चैम्बर ऑफ कामर्स है। कभी-कभी उपज विनिमय भी इसी नाम से अपने आपको पंजीकृत करा लेते हैं। ऐसी अवस्था में नाम से भेद करना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए, इण्डियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स व मारवाड़ी चैम्बर ऑफ कॉमर्स। दोनों ही चैम्बर ऑफ कॉमर्स हैं लेकिन प्रथम व्यापारिक संगठन है जबकि दूसरा एक उपज विनिमय।

उपज विनिमय व मण्डी में अन्तर
(DIFFERENCE BETWEEN A PRODUCE EXCHANGE AND A MANDI)

उपज विनिमय व मण्डी दोनों के कार्य समान हैं लेकिन फिर भी उनमें अन्तर हैं। इन अन्तरों को निम्न आधारों पर कर सकते हैं :

अन्तर का आधार	उपज विनिमय	मण्डी
1. स्वरूप	यहाँ पर तत्काल व भविष्य दोनों प्रकार के सौदे होते हैं लेकिन अधिकांश सौदे भविष्य के ही होते हैं।	यहाँ तत्काल व भविष्य दोनों के सौदे होते हैं लेकिन अधिकांश सौदे तत्काल के ही होते हैं।
2. मुख्य कार्य	इनका मुख्य कार्य मूल्य स्थिरता लाना है।	मण्डी का मुख्य कार्य खरीदने व बेचने की सुविधा प्रदान करना है।
3. नियन्त्रण	इनका नियन्त्रण सदस्यों द्वारा बनाये गये संगठन के द्वारा होता है।	इनका नियन्त्रण प्राय: स्थानीय सरकार, चुँगी, नगर पालिका, जिला परिषद या राज्य सरकार के द्वारा होता है।
4. व्यापारी	इनमें तेजी-मन्दी वाले व्यापारियों की प्रमुखता होती है।	इनमें कच्चे व पक्के आढ़तियों का स्थान प्रमुख होता है।
5. उद्देश्य	इनकी स्थापना का उद्देश्य लाभ अथवा गैर-लाभ कमाना हो सकता है।	इनकी स्थापना केवल व्यापारिक लाभों के उद्देश्य से ही की जाती है।
6. अन्तरराशि	सौदे करने के लिए यहाँ अन्तर राशि जमा कराना आवश्यक है।	यहाँ पर ऐसा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
7 समाशोधन गृह	यहाँ पर लेन-देन समाशोधन गृह के माध्यम से हो सकते हैं।	यहाँ पर लेन-देन आपस में ही हो जाता है।
8. सुविधाएँ	यह प्रमाप व वर्ग निर्धारित करते हैं, विभिन्न प्रकार के आँकड़े एकत्रित करते हैं तथा उन्हें सदस्यों को अवगत कराते हैं।	यहाँ ऐसी कोई सुविधा नहीं दी जाती है।
9. अनुमति	भविष्य के सौदों के लिए अग्रिम बाजार आयोग की अनुमति आवश्यक है।	यहाँ भविष्य के सौदे नहीं किये जाते हैं। अत: अग्रिम बाजार आयोग की अनुमति का प्रश्न

अमेरिका व इंगलैण्ड के पदार्थ या उपज विनिमयों का संक्षिप्त इतिहास
(BRIEF HISTORY OF COMMODITY OR PRODUCE EXCHANGES OF AMERICA AND ENGLAND)

पदार्थ विनिमयों का विकास व्यापार की प्रगति के अनुसार हुआ है। पहले वस्तुओं की खरीद व बिक्री प्रत्यक्ष रूप से मेलों व हाटों में वस्तु देखकर होती थी लेकिन बाद में नमूने के आधार पर बिक्री होने लगी। आजकल तो सिर्फ प्रमाप व वर्ग के आधार पर ही बिक्री हो जाती है। यह कहा जाता है कि आधुनिक विनिमयों की शुरूआत अमेरिका से हुई है।

अमेरिका में प्रथम विनिमय 17वीं शताब्दी में रायल एक्सचेंज (Royal Exchange) व मैटल एक्सचेंज (Metal Exchange) के नाम से न्यूयार्क में स्थापित हुये थे। अनाज के लिए पहला उपज विनिमय शिकागो बोर्ड ऑफ ट्रेड (Chicago Board of Trade) के नाम से 1848 में स्थापित हुआ था जो आज भी कार्य कर रहा है। इसके बाद न्यूयार्क उपज विनिमय (New York Produce Exchange) 1850 में, न्यूयार्क कोर्न विनिमय (New York Corn Exchange) 1952 में, किन्सन सिटी बोर्ड ऑफ ट्रेड (Kinsan City Board of Trade) 1869 में, न्यूयार्क काटन एक्सचेंज (New York Cotton Exchange) 1870 में, न्यू ओरलीन्स कोर्न एक्सचेंज (New Orleans Corn Exchange) 1871 में व न्यूयार्क कॉफी एक्सचेंज (New York Coffe e Exchange) 1885 में। इस समय लगभग 25 संगठित पदार्थ विनिमय संयुक्त राज्य अमेरिका में हैं जो भविष्य के सौदे लगभग 40 पदार्थों या वस्तुओं में करते हैं। अमेरिका का सबसे बड़ा विनिमय शिकागो बोर्ड ऑफ ट्रेड है जो सबसे अधिक पदार्थों या वस्तुओं में व्यवहार करता है। अमेरिका में गेहूँ व सोयाबीन्स (Soybeans) के सबसे अधिक भविष्य के सौदे होते हैं।

विनिमयों का विकास इंगलैण्ड में भी हुआ है। सबसे पुराना विनिमय लन्दन का रॉयल एक्सचेंज (Royal Exchange) है जो आज भी कार्य कर रहा है। इसका इतिहास 16वीं व 17वीं शताब्दी से शुरू होता है यद्यपि इसका आधुनिक स्वरूप 19वीं शताब्दी के अन्त में आया। आजकल वहाँ लीवर पूल कॉटन एक्सचेंज (Liverpool Cotton Exchange), मैन्चेस्टर कॉटन एक्सचेंज (Manchester Cotton Exchange), आदि कार्य कर रहे हैं।

विनिमयों के नाम विभिन्न देशों में विभिन्न हैं जैसे, फ्रांस में बोर्सेस (Bourses); इंगलैण्ड में एक्सचेंज (Exchange) व अन्य स्थानों पर पदार्थ विनिमय (Commobity Exchange) या बोर्ड ऑफ ट्रेड (Board of Trade) आदि।

भारत में पदार्थ या उपज विनिमयों का इतिहास एवं वर्तमान व्यवस्था
(BRIEF HISTORY AND PRESENT POSITION OF COMMODITY OR PRODUCE EXCHANGES IN INDIA)

भारत में पदार्थ या उपज विनिमयों जैसे कार्य महाजन करते थे। उनके

अलिखित नियम होते थे। यह संगठन 18वीं व 19वीं शताब्दी में पाये जाते थे। आधुनिक प्रकार का पहला संगठन बम्बई में 1875 में बोम्बे कॉटन ट्रेड एसोसियेशन लिमिटेड (Bombay Cotton Trade Association Ltd.) के नाम से विदेशियों द्वारा स्थापित किया गया था। इसको देखकर भारतीयों ने 1890 में बम्बई में बोम्बे कॉटन एक्सचेंज (Bombay Cotton Exchange) के नाम से एक विनिमय संघ बनाया। यह दोनों संघ रुई में व्यापार करते थे। 1900 में बम्बई में ही गुजरात व्यापार मण्डल (Gujarat Vyapar Mandal) के नाम से तेल के बीजों का व्यापार करने के लिए एक संघ बना जो आज भी बोम्बे आइलसीड्स एक्सचेंज (Bombay Oilseeds Exchange) के नाम से कार्य कर रहा है। इसका यह नाम 1950 में रखा गया है। गेहूँ में हापुड़ चेम्बर ऑफ कॉमर्स द्वारा उपज विनिमय का कार्य प्रारम्भ किया गया। जूट में भविष्य व्यापार करने के लिए कलकत्ते में एक संघ की स्थापना 1912 में की गयी लेकिन विरोध के कारण 1926 में इसे बन्द कर दिया गया।

इस प्रकार प्रथम युद्ध से पूर्व भारत में उपज विनिमय या संघ स्थापित हो चुके थे। "भारत में अग्रिम व्यापार रुई में 1875 में, तिलहन में 1900 में, जूट में 1912 में व गेहूँ में 1913 में आरम्भ हुआ।"[1] उपज विनियम की संख्या में वृद्धि सन् 1914 के बाद ही हुई है। इसके कारण पूर्ति में अनिश्चितता, परिवहन अनिश्चितता, व्यापारिक चेतना की कमी, आयात-निर्यात प्रतिबन्ध, आदि हैं। रुई के क्षेत्र में 1915 में बम्बई में बॉम्बे कॉटन ब्रोकर्स एसोसिएशन (Bombay Cotton Brokers Association) की स्थापना हुई। 1919 में कलकत्ता में हेसियन एक्सचेंज लिमिटेड (Hessian Exchange Ltd.) के नाम से जूट व्यापार करने के लिए एक विनिमय बनाया गया। सन् 1921 में बम्बई में कार्य कर रहे विभिन्न विनिमयों व संघों को मिलाकर एक संघ दी ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसियेशन लिमिटेड (The East India Cotton Association Ltd.) की स्थापना की गयी जो आज भी कार्य कर रहा है। सन् 1927 में दी ईस्ट इण्डिया जूट एण्ड हेसियन एक्सचेंज लिमिटेड (The East India Jute and Hessian Exchange Ltd.) के नाम से कार्य कर रहा है। धीरे-धीरे इन संघों में या विनिमयों में बराबर वृद्धि होती रही है और आज लगभग 200 विनिमय या संघ कार्य कर रहे हैं।

भारत में विनिमयों को व्यापार मण्डल, चैम्बर ऑफ कॉमर्स, एसोसिएशन व संघ आदि के नाम से पुकारते हैं। इस समय 37 पदार्थों में भविष्य व्यापार किया जाता है जिनमें मूँगफली, मूँगफली का तेल, अंडी, अलसी, बिनौला, नारियल का तेल कपास, कालीमिर्च, कच्चा जूट, जूट हेसियन व बोरे आदि प्रमुख हैं। सबसे अधिक मान्यता प्राप्त भविष्य बाजार तिलहन या उनसे बने पदार्थ के हैं। इसके बाद दूसरा

1 *Regulation of Forward Markets*, W. R. Natu, p. 19.

स्थान रुई, बिनौले (Cotton seed) व कपास है। इस समय कुल 144 भविष्य बाजार हैं जिनको अग्रिम बाजार आयोग ने मान्यता दे रखी है।

भारत में उपज या पदार्थ विनिमयों के विधान एव कार्य विधि
(CONSTITUTION, MANAGEMENT AND WORKING OF PRODUCE OR COMMODITY EXCHANGES IN INDIA)

उपज विनिमयों के विधान एवं कार्य विधि का अध्ययन तीन आधारों पर किया जा सकता है : (1) विधान (Constitution), (2) प्रवन्ध (Management), (3) कार्य पद्धति (Working Method)।

(1) **विधान** (Constitution)—भारत में पदार्थ या उपज विनियम दो प्रकार के पाये जाते हैं—(i) लाभ-भाजक (Profit Sharing), व (ii) अलाभ-भाजक (Non Profit Sharing)। (i **लाभ-भाजक विनियम** वे हैं जो अपने सदस्यों को लाभ लाभांश के रूप में वितरित करते हैं जैसे आगरा मर्चेण्ट्स चेम्बर लिमिटेड, आगरा; महावीर व्यापार मण्डल लिमिटेड, हापड़; पंजाब एक्सचेंज लिमिटेड, देहली; व इण्डियन एक्सचेंज लिमिटेड, अमृतसर; आदि। (ii) **अलाभ-भाजक विनिमय** अपने सदस्यों को कोई लाभांश नहीं बाँटते हैं जैसे दी ईस्ट इण्डिया जूट एण्ड हैसियन ऐक्सचेंज लिमिटेड, कलकत्ता; दी ईस्ट इण्डिया काटन ऐसोसिएशन लिमिटेड, बम्बई; चेम्बर ऑफ कामर्स हापुड़; आदि।

भारत में लाभ-भाजक विनिमयों की संख्या अलाभ-भाजक विनिमयों की तुलना में अधिक है। अधिकांश विनिमय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत बने हैं, (अ) सीमित अंश पूँजी के आधार पर सार्वजनिक या प्राइवेट कम्पनी के रूप में, (ब) गारण्टी के आधार पर बिना अंश पूँजी के आधार पर, (स) व्यापार संघ के रूप में।

(2) **प्रबन्ध** (Management)— इन विनिमयों का प्रबन्ध एक संचालक सभा या कार्यकारिणी के द्वारा होता है जिसका कार्य विनिमय के द्वारा बनाये गये नियमों व उपनियमों के अनुसार विनिमय पर हुए दैनिक व्यवहारों की देखभाल करना व विनिमय को सुचारु रूप से चलाना है। इस संचालक सभा या कार्यकारिणी को साधारण सभा चुनती है जिसमें विनिमय पर कार्य करने वाले सभी प्रकार के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व होता है जैसे दलाल, आढ़तिया, विक्रेता व क्रेता, आदि। विनिमय की संचालक सभा या कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न विनिमयों में भिन्न-भिन्न हैं लेकिन साधारणतया यह 5 से 11 सदस्यों तक पायी जाती है।

संचालक सभा या कार्यकारिणी की सुविधा के लिए कुछ समितियाँ व उपसमितियाँ भी बनायी जाती हैं जैसे वित्त समिति, इमारत समिति, निर्वाचन समिति, पंचायत समिति, भाव समिति, व्यवसाय समिति, समाशोधन समिति, नियम समिति, सूचना संकलन व प्रसारण समिति, आदि। यह समितियाँ चुनने या उनके गठन करने का अधिकार साधारणतया संचालक मण्डल या कार्यकारिणी को होता है लेकिन कहीं-

कहीं उनका गठन साधारण सभा द्वारा भी किया जाता है। इनका विवरण इस प्रकार है :

(i) **वित्त समिति** (Finance Committee)—इस समिति का कार्य विनिमय की वित्त व्यवस्था पर नियन्त्रण रखना है; (ii) **इमारत समिति** (Building Committee)—यह समिति विनिमय की इमारत को बनवाने एवं उसकी देखभाल करने का कार्य करती है; (iii) **निर्वाचन समिति** (Election Committee)—इस समिति का कार्य विनिमय के पदाधिकारियों के निर्वाचन की उचित व्यवस्था करना है; (iv) **पंचायत समिति** (Arbitration Committee)—यह समिति सदस्यों के मतभेदों को दूर करने का कार्य करती है। जब किसी सदस्य को किसी सदस्य से शिकायत है तो वह अपनी शिकायत इस समिति को भेज देता है। यह समिति शिकायत आने पर दूसरे पक्ष को सूचना देती है। तीनों पक्षों की बात गवाही, आदि सुनकर यह समिति अपना निर्णय दे देती है। इस निर्णय को मानना दोनों पक्षों के लिए अनिवार्य है। कुछ विनिमयों में इस समिति के निर्णय के विरुद्ध अपील प्रबन्ध मण्डल को करने का अधिकार होता है। जहाँ इस प्रकार का अधिकार होता है वहाँ प्रबन्ध मण्डल का निर्णय अन्तिम होता है; (v) **भाव समिति** (Quotation Committee)—इस समिति का कार्य सौदों के निबटारे हेतु भाव तय करना होता है। यह समिति विनिमय की एक महत्वपूर्ण समिति होती है; (vi) **समाशोधन समिति** (Clearing Committee)—विनिमय के समाशोधन गृह के कार्य का उत्तरदायित्व इस समिति पर होता है। यह विनिमय में निर्धारित तिथि को समाशोधन की व्यवस्था करती है; (vii) **नियम समिति** (Bye-Laws Committee)—यदि विनिमय के नियमों में परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होती है तो यह समिति बना दी जाती है। इसका कार्य नियमों में संशोधन कर अपना प्रतिवेदन प्रबन्ध मण्डल को प्रेषित कर देना है; (viii) **सूचना समिति** (Information Committee)—इस समिति का कार्य विनिमय के व्यवसाय से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित कर उनका प्रसारण करना है जिससे सदस्य उचित निर्णय ले सकें; (ix) **व्यवसाय समिति** (Business Committee)—इस समिति का कार्य सदस्यों द्वारा दुर्व्यवहार के आरोप की जाँच करना है और अपनी सिफारिश प्रबन्ध मण्डल को देना है जिससे कि वह इस सम्बन्ध में निर्णय ले सके।

(3) **कार्य पद्धति** (Working Method)—साधारणतया उपज-विनिमय या पदार्थ-विनिमय पर निम्नलिखित दो प्रकार के सौदे होते हैं :

(अ) तत्काल सौदे (Spot Transactions) तथा (ब) भविष्य सौदे (Future Transactions)।

(अ) **तत्काल सौदे** (Spot Transactions)—तत्काल सौदे उन सौदों को कहते हैं जिनमें वस्तु का आदान-प्रदान सौदा होने पर कर दिया जाता है व भुगतान

भी वस्तु के आदान-प्रदान के तुरन्त बाद हो जाता है। ऐसे सौदों को **वास्तविक वस्तु व्यापार** (Trading in Actual) भी कहते हैं।

(ब) **भविष्य सौदे** (Future Transactions)—भविष्य सौदे उन सौदों को कहते हैं जिनमें वस्तु का आदान-प्रदान भविष्य में किसी निश्चित तिथि को करने का अनुबन्ध होता है। यह तिथि ऐसे महीने की होती है जिसमें वस्तु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है जैसे फसल पर। इसमें भुगतान भी बाद में होता है। यह सौदे एक अनुबन्ध प्रपत्र (Form of Contract) के आधार पर होते हैं जिसमें वस्तु की किस्म व वर्ग (Quality & Grade) का उल्लेख होता है। भविष्य की तारीख पर उसी किस्म व वर्ग की वस्तु की सुपुर्दगी करनी पड़ती है।

पदार्थ या उपज विनिमय पर अधिकांश सौदे भविष्य के होते हैं। तत्काल सौदे तो भविष्य सौदों की तुलना में न के बराबर होते हैं। **भविष्य सौदों की व्यवहार पद्धति निम्न प्रकार है :**

(i) **दलाल** (Broker) - साधारणतया उपज-विनिमयों पर सौदे केवल उपज विनिमय के सदस्य ही दलालों के माध्यम से कर सकते हैं लेकिन वे व्यक्ति जो विनिमय के सदस्य नहीं हैं (non-members) उनको भी विनिमय पर सौदे करने की अनुमति, निर्धारित शुल्क जमा करने व निर्धारित शर्तों के मानने का आश्वासन देने पर, दे दी जाती है। दलालों को भी दलाली का कार्य करने के लिए विनिमय से अनुमति (Licence) लेनी पड़ती है जिसके लिए उनको निर्धारित शुल्क आवेदन पत्र के साथ देना पड़ता है। यह दलाल विनिमय पर अपनी दुकानें मय टेलीफोन सुविधा के रखते हैं और अपने ग्राहकों से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखते हैं। यह समय-समय पर उनको बाजार के भाव व बाजार की प्रवृत्ति से अवगत कराते रहते हैं।

दलालों द्वारा अपने ग्राहकों के लिए जो सौदे किये जाते हैं उनको पहले वे अपनी नोट बुक में लिख लेते हैं और फिर बाद में विनिमय द्वारा दत्त पुस्तकों में लिखते हैं। यह पुस्तकें विनिमय द्वारा मुफ्त दलालों को दी जाती हैं। प्रत्येक सौदे का ब्यौरा इन पुस्तकों में तीन प्रतियों में बनाया जाता है। विक्रेता का दलाल पहली प्रति क्रेता को, दूसरी विक्रेता को व तीसरी सन्दर्भ के लिए रख लेता है। इसी प्रकार क्रेता का दलाल पहली प्रति विक्रेता को, दूसरी क्रेता को व तीसरी सन्दर्भ के लिए रख लेता है। इन प्रतियों पर सम्बन्धित पक्षों के हस्ताक्षर होते हैं।

(ii) **अनुबन्धों का पंजीकरण एवं अन्तर-राशि की जमा** (Registration of Contracts and Deposit of Margin-money)—विनिमयों के नियमों के अनुसार प्रत्येक सौदा जो विनिमय पर हुआ है उसका पंजीकरण करना अनिवार्य है। प्रतिदिन शाम को या दूसरे दिन निश्चित समय तक दलाल उस दिन के सौदों का ब्यौरा निश्चित प्रपत्रों पर तैयार करता है व विनिमय में जमा कर देता है। इसी प्रकार का ब्यौरा विनिमय का सदस्य भी तैयार कर विनिमय को भेज देता है। इस

ब्यौरे को **स्थिति प्रपत्र** (Position Form) कहते हैं। विनिमय इस प्रकार के आये हुए ब्यौरों की जाँच के बाद उनका पंजीकरण कर लेता है।

प्रत्येक क्रेता व विक्रेता को प्रत्येक सौदे के लिए अन्तर-राशि (Margin-money) विनिमय के पास पंजीकरण के समय जमा कराना अनिवार्य है। दलाल यह राशि अपने-अपने ग्राहकों से लेकर ब्यौरा जमा कराते समय विनिमय में जमा करा देते हैं। यह अन्तर-राशि मूल्यों में घटत-बढ़त होने की क्षतिपूर्ति के लिए प्रत्याभूति (Security) के रूप में विनिमय के पास रहती है। इस राशि को **निक्षेप-मुद्रा** (Deposit-money) भी कहते हैं। इस अन्तर राशि पर विनिमय द्वारा जमा कराने वाले को कुछ ब्याज भी दी जाती है जो भिन्न-भिन्न विनिमयों में भिन्न-भिन्न है।

(iii) **माल की सुपुर्दगी** (Delivery)— प्रसंविदे में लिखित तारीख पर वस्तु की सुपुर्दगी विनिमय की देख-रेख में कर दी जाती है। यदि क्रेता व विक्रेता में वस्तु की किस्म या वर्ग पर मतभेद हो जाता है तो विनिमय बीच में पड़कर विक्रय मूल्य घटाकर या बढ़ाकर समझौता करा देता है। क्रेता वस्तु की सुपुर्दगी पर विक्रेता को भुगतान कर देता है। यदि विक्रेता के पास सुपुर्दगी की तारीख (Delivery date) से पहले वस्तु उपलब्ध है तो वह क्रेता से आग्रह कर सकता है तथा सुपुर्दगी आदेश (Delivery Order) प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार क्रेता भी विक्रेता से सुपुर्दगी तारीख से पहले सुपुर्दगी के लिए आग्रह कर सकता है व माँग-आदेश (Demand Order) प्राप्त कर सकता है।

दी ईस्ट इण्डिया जूट एण्ड हैसियन ऐक्सचेंज लिमिटेड, कलकत्ता

(THE EAST INDIA JUTE AND HESSIAN EXCHANGE LTD., CALCUTTA)

दी ईस्ट इण्डिया जूट एण्ड हैसियन एक्सचेंज लिमिटेड का अध्ययन चार मदों के अन्तर्गत किया जा सकता है: (1) स्थापना (Establishment), (2) उद्देश्य (Objects), (3) विधान (Constitution), (4) कार्यप्रणाली (Working)।

(1) **स्थापना** (Establishment)—दी ईस्ट इण्डिया जूट एण्ड हैसियन एक्सचेंज लिमिटेड का यह नाम तो 1945 में दिया गया है। सबसे पहले इसकी स्थापना ईस्ट इण्डिया जूट एसोसियेशन लिमिटेड के रूप में 2 जून, 1917 को एक गारण्टी से बनी कम्पनी के रूप में हुई थी। कलकत्ता हैसियन ऐक्सचेंज लिमिटेड (Calcutta Hessian Exchange Ltd.) जिसकी स्थापना 1919 में एक प्राईवेट कम्पनी के रूप में हुई थी बाद में एक एकीकरण योजना (amalgamation scheme) के अन्तर्गत समाप्त कर दिया गया व इसके सदस्य ईस्ट इण्डिया जूट ऐसोसियेशन लिमिटेड के सदस्य बना लिये गये। 8 मई, 1945 को इसका नाम बदलकर दी ईस्ट इण्डिया जूट एण्ड हैसियन ऐक्सचेंज लिमिटेड कर दिया गया। भारत सरकार ने मार्च, 1958 में इस विनिमय को अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम (Forward Contracts (Regulation) Act) के अन्तर्गत कच्चा जूट व जूट पदार्थों के भविष्य प्रसंविदे करने की अनुमति दे दी है।

(2) **उद्देश्य** (Objects)—इस विनिमय के उद्देश्य इस प्रकार हैं :[1]

(i) कलकत्ता व देश के अन्य स्थानों पर जूट विनिमय के लिए स्थान उपलब्ध करना. जूट व्यापार के प्रसंविदों की उन्नति, नियन्त्रण एवं नियमन करना, जूट व्यापार में लगे व्यक्तियों व समुदायों के मतभेदों को दूर करना, जूट के प्रमाप व वर्गीकरण निर्धारित करना व उनको अपनाना, जूट से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्रित करना व उनका प्रसारण करना। (ii) जूट सौदों के लिए समाशोधन गृह (clearing house) को स्थापित करना व उनको बनाये रखना (maintain), जूट के आयात व निर्यात का नियमन करना, शुल्क लगाना व वसूल करना, जूट को जहाज पर लादने एवं सुपुर्दगी में सहायता करना। (iii) नियमों के अनुसार सदस्य बनाना। (iv) जूट व्यवहार व सदस्यों की सहायता के लिए उपनियम (bye-laws) बनाना, बाजार भाव, भुगतान की तारीख तय करना, बाजार के खुलने व बन्द होने का समय निर्धारित करना, किसी सदस्य की मृत्यु होने पर या दिवालिया या अयोग्य होने पर प्रसंविदों को पूरा करने की विधि तय करना, दलाली की दर निर्धारित करना, अर्थ दण्ड, शुल्क व चन्दे वसूल करना, आदि। (v) कार्य करने के लिए इमारत खरीदना, आवश्यकतानुसार उसको बदलना, जूट भण्डार बनाना व उनका नियन्त्रण करना, आवश्यकतानुसार इमारत बेचना। (vi) बैंक स्थापित करना व उसको चलाना, बैंकिंग कारोबार करना. धन उधार देना, ब्याज पर धन जमा करना. साझेदारी का कार्य करना एवं अन्य व्यवसायों के अंश खरीदना आदि।

(3) **विधान** (Constitution)—यह विनिमय गारण्टी के आधार पर पंजीकृत है। यह अधिक से अधिक 1,000 सदस्य बना सकता है। इस समय इसके सदस्यों की संख्या 644 है। प्रत्येक नये सदस्य को 4,000 रुपये प्रवेश शुल्क के रूप में देने पड़ते हैं व वार्षिक चन्दा भी प्रति वर्ष देना पड़ता है जो चक्र (ring) के सदस्यों के लिए 300 रुपये वार्षिक व गैर सदस्यों के लिए 200 रुपये वार्षिक है। इस समय 194 चक्र के सदस्य हैं। इस विनिमय में निर्वाचन हेतु पाँच प्रकार के सदस्य होते हैं—(i) जूट निर्माता, (ii) जूट आयात-निर्यातकर्ता, (iii) जूट व्यापारी, (iv) कच्चा जूट व्यापारी, व (v) दलाल। इन सदस्यों के द्वारा 17 संचालक निर्वाचित किये जाते हैं। 4 संचालक भारत सरकार नियुक्त करती है। इस प्रकार 21 संचालकों का संचालक मण्डल (Board of Directors होता है। संचालक मण्डल की सहायता के लिए विभिन्न समितियाँ व उपसमितियाँ होती हैं। इस समय 2 समितियाँ व 5 उप-समितियाँ हैं।

(i) **समाशोधन समिति** (Clearing House Committee)—इस समिति का कार्य चक्र के सदस्य व दलाल आदि बनने के लिए प्राप्त हुए आवेदनों पर विचार

---

1 *Memorandum of Association of the East India Jute Hessian Exchange Ltd.,*

करना, अग्रिम सौदे उपनियमों (Hedge Contracts Bye-Laws) के अन्तर्गत स्टेशनों, चिह्नों व परिवहन कम्पनियों आदि को स्वीकृत सूचियों में नाम जोड़ने के लिए आये आवेदनों पर विचार करना, अधिकतम सीमा से अधिक व्यवहारों के मामलों पर विचार करना, अग्रिम सौदों के अन्तर्गत किये गये व्यवहारों पर निगरानी रखना व इन सब पर विचार कर अपनी सिफारिश व सुझाव संचालक मण्डल को देना है। इस समिति के सदस्यों की संख्या 8 है।

(ii) **हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे समिति** (Transferable Specific Delivery Contracts Committee)—इस समिति के सदस्यों की संख्या 8 है। इसका कार्य इस बात की निगरानी रखना है कि नियमों व उपनियमों का प्रसंविदों में पालन किया जा रहा है। सूची में नाम जोड़ने के लिए आवेदनों पर विचार करना, नियम विरुद्ध कार्य करने वालों के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही करना व दण्ड की व्यवस्था करना, आदि है।

(iii) **वित्त व इमारत समिति** (Finance and Building Committee)—समिति के सदस्यों की संख्या 8 है व इनका कार्य बही-खाते, बैंक जमा, बजट अनुमान, आय-व्यय खाते, समाशोधन गृह के खाते, आदि का निरीक्षण करना है।

(iv) **चौकसी समिति** (Vigilance Committee)—इस समिति का कार्य नियमों, उपनियमों व आदेशों के विरुद्ध हुए कार्यों की जाँच-पड़ताल करना व अपना प्रतिवेदन संचालक मण्डल को दे देना है। इसके सदस्यों की संख्या 3 है।

(v) **चुनाव समिति** (Election Committee)—इसका कार्य संचालकों के चुनाव के लिए सूचियों की तैयारी करना है।

(vi) **पक्का सुपुर्दगी आदेश उप-समिति** (Pucca Delivery Order Sub-Committee) - इस समिति का कार्य प्रसंविदे नं० 1, 2 व 3 के अन्तर्गत पक्का सुपुर्दगी आदेश जारी करना है। इसके 4 सदस्य हैं।

(vii) **हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे मार्जिन उप-समिति** (T.S.D.C. Margin Sub-Committee)—इसके 4 सदस्य होते हैं तथा इसका कार्य हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों (T. S. D. C.) के मार्जिन के जमा करने की छानबीन करना, दण्ड लगाना व विशेष परिस्थिति में दण्ड वापिस करना, आदि हैं।

(viii) **मिल मार्जिन उप-समिति** (Mill Margin Sub-Committee)—इस समिति का कार्य हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों (T.S D C.) के बारे में मिल वालों को छूट देना है। इसके 3 सदस्य हैं।

(ix) **तत्काल भाव उप-समिति** (Spot Rate Quotations Sub-Committee)—इस समिति के 5 सदस्य हैं व इसका कार्य T.S.D.C. व N.T.S. D.C. प्रसंविदों के प्रतिदिन बन्दी के भाव तय करना है।

(x) **मुकद्दमा उप-समिति** (Court Case Sub-Committee)—इसका कार्य विनिमय पर या विनिमय द्वारा चलाये गये कलकत्ता उच्च न्यायालय में चल रहे मुकद्दमों के बारे में संस्था के वकीलों को सलाह देना, मुकद्दमों की पैरवी करना व अपने कार्यों की प्रगति से संचालक मण्डल को अवगत कराते रहना है।

(4) **कार्य प्रणाली** (Working)—यह विनिमय जूट व जूट पदार्थों का भविष्य व्यापार करता है। यहाँ तीन प्रकार के प्रसंविदे नियमित किये जाते हैं—(i) भविष्य (अग्रिम) प्रसंविदे (Futures (Hedge) Contracts), (ii) हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे (T.S.D.C.), (iii) अहस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे (N.T S.D.C.)। प्रत्येक प्रकार के प्रसंविदे के नियमित करने के लिए अलग-अलग उपनियम हैं, जिनमें समय-समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन विनिमय द्वारा किये जाते हैं।

(i) **भविष्य (अग्रिम) प्रसंविदे** (Future (Hedge) Contracts)—यह प्रसंविदे तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम हैसियन कपड़े के सम्बन्ध में जिनको नम्बर एक (Futures (Hedge) Contracts No. I), द्वितीय जूट बोरों के सम्बन्ध में जिन्हें नम्बर दो (Futures (Hedge) Contracts No. II), तृतीय कच्चे जूट के सम्बन्ध में जिन्हें नम्बर तीन (Futures (Hedge) Contracts No. III) कहते हैं।

प्रसंविदे नम्बर एक का आधार हैसियन कपड़ा है जो 40"-10 औंस का हो, निर्धारित मिलों (अ व ब) द्वारा लोहे की पत्तियों की गाँठों में बँधा हो तथा प्रत्येक गाँठ में 2,000 गज कपड़ा हो। प्रसंविदे की इकाई 50,000 गज होती है। इसमें सुपुर्दगी के महीने अगस्त, नवम्बर, फरवरी व मई हैं।

प्रसंविदे नम्बर दो का आधार बोरा है जिसका आकार $44'' \times 26\frac{1}{2}''$, वजन $2\frac{1}{4}$ पौंड व जो लोहे की पत्ती वाली गाँठों में बँधा हो तथा प्रत्येक गाँठ में 300 बोरे हों। प्रसंविदे की इकाई 50 गाँठें है। इसमें सुपुर्दगी के महीने नम्बर एक के समान अगस्त, नवम्बर, फरवरी व मई हैं।

प्रसंविदे नम्बर तीन का आधार कच्चा जूट है जो आसाम के ऊपरी हिस्से का हो व सफेद हो (Upper Assam White Bottom)। यहाँ प्रसंविदे की इकाई 500 मन हो। इसके सुपुर्दगी के महीने सितम्बर, दिसम्बर, मार्च व जून हैं।

(ii) **हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे** (T.S.D.C.) – यह प्रसंविदे कच्चे जूट व जूट पदार्थों के सम्बन्ध में विनिमय के सदस्यों या एक सदस्य व गैर सदस्य के बीच निर्धारित फार्मों पर किये जाते हैं। यह फार्म विनिमय उपलब्ध करता है। इस प्रकार के प्रत्येक प्रसंविदे का पंजीकरण कराना अनिवार्य है। यह प्रसंविदे माल की सुपुर्दगी पर ही पूरे होते हैं। ऐसे प्रसंविदों का हस्तान्तरण हो सकता है।

(iii) **अहस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे** (N. T. S. D C)—यह ऊपर वर्णित हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों के समान हैं अन्तर केवल इतना है कि ऐसे प्रसंविदे हस्तान्तरित नहीं हो सकते हैं।

दी ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसियेशन लिमिटेड, बम्बई

(THE EAST INDIA COTTON ASSOCIATION LTD., BOMBAY)

सन् 1917 तक रुई का व्यापार 7 संस्थाओं के द्वारा किया जाता था—बम्बई कॉटन एक्सचेंज एसोसियेशसन, बम्बई मिल मालिक संघ, बम्बई कॉटन ट्रेड एसोसियेशन लिमिटेड, बम्बई कॉटन ब्रोकर एसोसियेशन लिमिटेड, मारवाड़ी चेम्बर ऑफ कामर्स, बम्बई कॉटन मर्चेन्ट्स एण्ड मुक्काडुम्स (Muccadums) एसोसियेशन लिमिटेड, व जापानी कॉटन शिपर्स एसोसियेशन – जिनमें आपस में अपने हितों के लिए खिंचाव रहता था। 27 सितम्बर, 1917 के एक प्रस्ताव के आधार पर गवर्नर जनरल ने एक समिति भारतीय रुई समिति (Indian Cotton Committee) के नाम से बनायी। जिसने यह सुझाव दिया कि रुई व्यापार के लिए एक संस्था होनी चाहिए। जून, 1918 में रुई प्रसंविदा समिति (Cotton Contracts Committee) के नाम से एक समिति बनायी जिसका भार 1919 में रुई प्रसंविदा बोर्ड (Cotton Contracts Board) ने ले लिया। यह बोर्ड मई, 1922 तक कार्य करता रहा और इसके बाद इसके कार्य ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसियेशन को दे दिये गये और 19 अक्टूबर, 1921 को गारण्टी के आधार पर भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत इसका रजिस्ट्रेशन हो गया और इसका नाम दी ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसियेशन लिमिटेड, बम्बई हो गया। इस संघ को रुई में सौदा करने के लिए अग्रिम बाजार आयोग के द्वारा 14 जून, 1955 को मान्यता दे दी गयी है। इस संघ का अध्ययन इन आधारों पर कर सकते हैं: (1) उद्देश्य (Objects), (2) विधान (Constitution), (3) कार्यप्रणाली (Working)।

(1) **उद्देश्य** (Objects)—इस संघ के उद्देश्य इस प्रकार हैं: (i) बम्बई व देश में अन्य स्थानों पर रुई विनिमय के लिए उचित इमारत या कमरे उपलब्ध करना व प्रवेश को नियमित करना। (ii) प्रसंविदे के कार्यों को उपलब्ध करना व प्रसंविदों के करने या रद्द करने को नियमित करना व रुई के व्यापार करने वालों के मतभेदों को पंच फैसले से दूर करना। (iii) रुई व्यापार के लिए उचित व समान सिद्धान्तों को स्थापित करना व एक-सा नियन्त्रण (Uniformity of Control) करना। (iv) रुई के प्रमाप व वर्ग निर्धारित करना व उनका ग्रहण करना। (v) रुई व्यापार से सम्बन्धित लाभदायक सूचनाओं को एकत्रित करना व उनका प्रसारण करना। (vi) महाराष्ट्र व भारत में रुई व्यापार को नियमित व उनमें स्थायित्व लाना। (vii) रुई व्यापार के लिए समाशोधन गृह स्थापित करना व उनको चलाना। (viii) रुई का आयात व

निर्यात नियमित करना। (ix) सदस्यों के विरुद्ध अभियोग लगाना या उनके विरुद्ध लगाये गये मुकद्दमों के लिए बचाव पक्ष की ओर से लड़ना।

(2) **विधान** (Constitution)—यह संघ गारण्टी के आधार पर पंजीकृत है। प्रत्येक सदस्य का उत्तरदायित्व समापन के समय 100 रुपये तक सीमित है। इस समय इस संघ के 457 सदस्य हैं।

इस संघ के 4 प्रकार के सदस्य होते हैं—(i) पूर्ण सदस्य (Full Memters), (ii) विशेष सह-सदस्य (Special Assc ciate Members), (i i) सह-सदस्य (Associate Members), व (iv) निःशुल्क सदस्य (Honorary Members)। प्रत्येक प्रकार के सदस्यों को (निःशुल्क को छोड़कर) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है जो 200 रुपये है। लेकिन सह-सदस्य के लिए 50 रुपये है। इस संघ का संचालन संचालक मण्डल के द्वारा होता है जिसके 35 सदस्य होते हैं जिनका चुनाव इस प्रकार होता है:

6 संचालक खरीदारों की सूची से (Buyers' Parel)

4 संचालक विक्रेताओं की सूची से (Sellers' Panel)

6 संचालक दलालों की सूची से (Brokers' Panel)

2 संचालक विशेष सह-सदस्यों के प्रतिनिधियों से

2 संचालक भारतीय रुई विकास द्वारा मनोनीत

4 संचालक केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत

2 संचालक (Co-operative Direc'ors)

7 सह-संचालन (Associate Directcrs) रुई उत्पादन क्षेत्रो से निर्वाचित

2 सह-संचालक (Asscciate Directors) सहकारी विपणन समितियों द्वारा निर्वाचित—

संचालक मण्डल अपने कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए पंचायत सम्मिति (Arbitiation Committee), दैनिक भाव समिति (Daily Quotation Committee), व्यापार देखभाल समाशोधन गृह समिति (Trade Supe.vision & Clearing House Committee), अपील समिति (Apreal Con mittee), नियम समिति (Rule Con mittee) या अन्य समितियाँ भी बना सकता है।

(3) **कार्य प्रणाली** (Wcrking)—यह संघ तत्काल व भविष्य दोनों प्रकार के रुई के सौदों को नियमित करता है। इसने इस सम्बन्ध में उप-नियम बना रखे हैं जिसमें C. I. F., C & F व F.O.B प्रसंविदों का भी समावेश है। प्रसंविदों के पूरा होने पर सुपुर्दगी निर्धारित प्रमापों व वर्गों के आधार पर की जाती है। यहाँ अग्रिम सौदे (Hedge) भी किये जाते हैं जिनको सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों के अन्दर ही किया जाता है। यह मूल्य हर मौसम में सरकार द्वारा निर्धारित किये जाते हैं।

प्रश्न

1. उपज विपणि का क्या आशय है ? इसके कार्यों का विवेचन करिये।
   What is the meaning of Produce Exchange ? Discuss its functions.
2. एक उपज विनिमय के कौन-कौन से कार्य हैं ? किसी एक भारतीय उपज विनिमय के संगठन एवं कार्य प्रणाली पर प्रकाश डालिए।
   What are the functions of a Produce Exchange ? Give the organisation and working of an Indian Produce Exchange.
3. उपज विनिमयों के कौन-कौन से उद्देश्य हैं ? एक उपज विनिमय पर व्यवहार करने के लिए वस्तु में कौन-कौन से गुण होने चाहिए ?
   What are the objects of Produce Exchanges ? What qualities should be possessed by a Commodity for dealing on a produce exchange ?
4. भारत में किसी उपज विपणि के संगठन और कार्य प्रणाली की विवेचना कीजिए।
   Discuss the organisation and working of a produce exchange in India.
5. उपज विनिमय के कार्यों पर प्रकाश डालिये और भारत के किसी उपज विनिमय के संगठन एवं उसकी कार्य-प्रणाली का वर्णन कीजिये।
   Enumerate the functions and working of any produce exchange in India.

21
भविष्य बाजारों का नियमन
[REGULATION OF FUTURE MARKETS]

I प्रारम्भिक

भारत में भविष्य व्यापार 19वीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ हो गया था लेकिन उसके नियमन का कार्य व्यापारिक संघों द्वारा स्वयं निर्धारित (Self imposed) नियमों के द्वारा किया जाता था। यह नियम भिन्न-भिन्न संघों में भिन्न-भिन्न होते थे।

भविष्य बाजारों के नियमन के इतिहास को अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—(1) स्वतन्त्रता से पूर्व नियमन, तथा (2) स्वतन्त्रता के पश्चात् नियमन।

(1) स्वतन्त्रता से पूर्व नियमन (Regulation before Independence)

सरकार ने भविष्य बाजारों को नियमितं करने की आवश्यकता प्रथम महायुद्ध से पहले कभी महसूस नहीं की। बम्बई इस सम्बन्ध में पहला राज्य था जिसने इसकी आवश्यकता को महसूस कर 1918 में रुई के व्यापार के नियमन हेतु सर गिलवर्ट वाइल्स (Sir Gilvert Wiles) की अध्यक्षता में एक समिति रुई प्रसंविदे समिति (Cotton Contracts Committee) के नाम से नियुक्त की। सन् 1919 में बौम्बे कॉटन कान्ट्रेक्टस कन्ट्रोल (वार प्रोवीजन्स) अधिनियम (Bombay Cotton Contracts War Provisions Act) बनाया व काटन प्रसंविदे बोर्ड (Cotton Contracts Board) को रुई प्रसंविदे समिति के स्थान पर बना दिया जिसने एक संघ के लिए सीमानियम व अन्तर्नियम (Memorandum & Articles) बनाये। यह संघ 19 अक्टूबर, 1921 को दी ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसिएशन के नाम से कम्पनी अधिनियम के अनुसार पंजीकृत हुआ। इस सघ को रुई के व्यापार के नियन्त्रण करने का सम्पूर्ण अधिकार सरकार ने दे दिया तथा 1922 में बोम्बे कॉटन कान्ट्रेक्टस अधिनियम (Bombay Cotton Contracts Act) बना दिया जिसको बाद में 1922 में परिवर्तित कर इसी नाम से नया अधिनियम बनाया गया।

इसी बीच अन्य राज्यों ने भी इस सम्बन्ध में पहल की। 1919 में भागलपुर राज्य ने दलालों को लाइसेन्स लेने व हिसाब-किताब की किताबें रखने के लिए बाध्य

कर दिया। रतलाम सरकार ने भी रतलाम चेम्बर ऑफ कॉमर्स के उपनियमों को लागू करने से पूर्व राज्य से स्वीकृति लेना आवश्यक कर दिया। 1936 में ग्वालियर राज्य ने कपास व बिनौले के अग्रिम व्यापार को नियन्त्रित करने के नियम बनाये। 1939 में बंगाल सरकार ने जूट की न्यूनतम कीमतें निर्धारित कर दीं।

द्वितीय महायुद्ध ने सरकार को और अधिक कारगर कार्यवाही करने के लिए बाध्य कर दिया। सितम्बर, 1939 में एक अध्यादेश (Ordinance) द्वारा बम्बई सरकार के विकल्प (option) को गैरकानूनी कर दिया। इसी समय बंगाल सरकार ने भी ईस्ट इण्डिया जूट एण्ड हैसियन एक्सचेंज, कलकत्ता पर अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये। सन् 1943 में भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rule) की धारा 81 के अन्तर्गत खाद्य पदार्थ, तिलहन, वनस्पति तेल, कच्ची रुई, मसाले, चीनी व सोना-चाँदी में भविष्य व्यवहारों पर रोक लगा दी गयी। जब भारत सुरक्षा नियम समाप्त हुआ तो कुछ पदार्थों पर आवश्यक पूर्ति (अस्थायी अधिकार) अधिनियम (Essentials Supplies (Temporary Powers) Act) 1946 के अन्तर्गत प्रतिबन्ध लागू रहा।

(2) **स्वतन्त्रता के पश्चात् नियमन** (Regulation after Independence)

राज्यों में बम्बई एक ऐसा राज्य था जिसने बम्बई अग्रिम प्रसंविदे नियन्त्रण अधिनियम (Bombay Forward Contracts Control Act) 1947 लागू किया व इस अधिनियम का प्रयोग रुई, सोना-चाँदी, तिलहन के अग्रिम व्यापार को नियमित करने के लिए किया गया। संविधान बन जाने पर स्कन्ध विनिमय व अग्रिम बाजार (Stock Exchanges and Future Markets) का विषय केन्द्र की सूची में शामिल कर लिया गया।

केन्द्रीय सरकार ने एक बिल फरवरी, 1950 में बनाकर राज्य सरकारों, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, चेम्बर ऑफ कॉमर्स व अन्य सम्बन्धित हितों को अपनी राय देने के लिए भेजा, जिसके आधार पर जुलाई, 1950 में यह बिल एक विशेषज्ञ समिति को सौंप दिया गया। इस समिति के अध्यक्ष श्री ए. डी. श्रोफ थे। इस समिति की सिफारिशों को शामिल करते हुए एक विधेयक 19 दिसम्बर, 1950 को अस्थायी संसद (Provisional Parliament) के सम्मुख प्रस्तुत किया गया जिसको बाद में एक प्रवर समिति (Select Committee) के सुपुर्द कर दिया गया जिसने अपना प्रतिवेदन 20 अगस्त, 1951 को प्रस्तुत कर दिया। यह विधेयक बाद में इस अस्थायी संसद के समक्ष विचारणार्थ न आ सका और संसद समाप्त हो गयी। अतः जुलाई, 1952 में एक नया विधेयक प्रथम संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया जो अन्त में दिसम्बर, 1952 में संसद द्वारा अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम के नाम से पारित कर दिया गया। इस विधान में यह व्यवस्था थी कि जिस समय किसी पदार्थ

या स्थान पर यह विधान लागू होगा तो राज्य विधान के अधिनियम स्वत: ही इस सम्बन्ध में खण्डित हो जावेंगे।

इस अधिनियम में 1953, 1957 व 1960 में संशोधन किये हैं। सन् 1960 के संशोधन का उद्देश्य "(1) अग्रिम बाजार में कड़े प्रतिबन्ध लगाना जिससे अत्यधिक सट्टा न हो सके, (2) अधिनियम की धाराओं के उल्लंघन पर भारी सजा देना, (3) व्यापार संघ के कार्य करने के समय के अतिरिक्त समयों में व्यवहारों को रोकना, व (4) गत वर्षों में अधिनियम के लागू होने के अनुभव में सामने आयी कठिनाइयों को दूर करना तथा केन्द्रीय सरकार व अग्रिम-बाजार आयोग को अग्रिम व्यवहारों के सम्बन्ध में नियन्त्रण के लिए अधिक अधिकार देना था।" इस संशोधित अधिनियम में कुल 29 धाराएँ है।

अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम, 1952 की मुख्य बातें
(MAIN PROVISIONS OF THE FORWARD CONTRACTS (REGULATION) ACT, 1952)

अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम की मुख्य बातें इस प्रकार हैं :

(1) **नियमन सत्ता** (Regulatory Authority)—सरकार को अधिकार है कि किसी भी पदार्थ या किसी स्थान पर सरकारी वजट में विज्ञप्ति देकर मान्यता प्राप्त संघों के सदस्यों के बीच हुए प्रसंविदों के अतिरिक्त अग्रिम प्रसंविदों पर रोक लगाये (धारा 15)। संघों को इस प्रकार के अग्रिम प्रसंविदे करने की आज्ञा निश्चित पदार्थों, निश्चित समयों व निश्चित क्षेत्र के लिए ही दी जावेगी।

संघों का कार्य प्रबन्ध मण्डलों द्वारा चलाया जाता है। सरकार अधिक से अधिक 4 सदस्य प्रबन्ध मण्डल में मनोनीत कर सकती है।

केन्द्रीय सरकार समय-समय पर विभिन्न सूचनाएँ व वार्षिक प्रतिवेदन माँग सकती है, तथा इस अधिनियम की धाराओं के उल्लंघन पर दण्ड दिला भी सकती है।

मान्यता प्राप्त संघों के नियम, उपनियम व विधान आदि में परिवर्तन बिना सरकार की अनुमति के नहीं हो सकता है। सरकार स्वयं ऐसे विधानों, नियमों व उपनियमों में परिवर्तन कर सकती है। प्रबन्ध मण्डल का अवक्रमण (Supersession) सरकार द्वारा किया जा सकता है व मान्यता प्राप्त संघो को या उनके सदस्यों को कार्य करने से रोका जा सकता है। हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे (Transferable Specific Delivery Contracts) को अधिनियम से छूट देना, अहस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे (Non-transferable Specific Delivery Contracts) को नियमन के अन्तर्गत लेना या ऐसे प्रसंविदों पर प्रतिबन्ध लगाना व किसी अग्रिम प्रसंविदे को नियमन से छूट देने, आदि का अधिकार सरकार को होगा। सरकार द्वारा अग्रिम प्रसंविदे किसी भी वस्तु में करने से रोके जा सकते है (धारा 17)।

(2) **वस्तु या उपज विनिमयों को मान्यता** (Recognition of Commodity or Produce Exchanges)—वस्तु या उपज विनिमयों को अग्रिम बाजार

आयोग की सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। केवल मान्यता प्राप्त विनिमयों पर ही अग्रिम अनुबन्ध के सौदे किये जा सकते हैं। केन्द्रीय सरकार मान्यता देने के लिए शर्तें लगा सकती है। एक बार मान्यता देने के बाद किसी भी विनिमय की मान्यता को केन्द्रीय सरकार वापिस ले सकती है।

(3) **अग्रिम बाजार आयोग की स्थापना** (Establishment of Forward Markets Commission)—जनसाधारण के हितों की रक्षा करने व अधिनियम के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त संघों की देखभाल करने के लिए अग्रिम-बाज़ार आयोग स्थापित किया जावेगा जिसके कम से कम 2 व अधिक से अधिक 4 सदस्य होंगे। इसका सभापति (Chairman) सरकार मनोनीत करेगी।

(4) **दण्ड व कार्यविधि** (Penalties and Procedure)—यदि कोई व्यक्ति गलत बयान या गलत सूचना देता है या मान्यता प्राप्त संघ के कार्य निलंबन (suspension) के दौरान अग्रिम प्रसंविदे करता है या अधिनियम के विरुद्ध कोई कार्य करता है तो उसे प्रथम अपराध के लिए दो हजार रुपये तक जुर्माना या एक वर्ष तक की सजा या दोनों दिये जा सकते हैं। द्वितीय अपराध पर सजा इससे अधिक होगी।

अग्रिम बाजार आयोग

(FORWARD MARKETS COMMISSION)

(1) **स्थापना** (Establishment)—अग्रिम बाजार आयोग 2 सितम्बर, 1953 को स्थापित किया गया है। इसका मुख्य कार्यालय बम्बई में है। इस समय इस आयोग का एक सभापति एवं एक पूर्णकालिक सदस्य है। आयोग की स्थापना से पूर्व आवश्यक पूर्ति (अस्थायी अधिकार) अधिनियम (Essential Supplies (Temporary Powers) Act) 1946 के अन्तर्गत 33 पदार्थों के अग्रिम व्यापार पर रोक थी। यह अधिनियम 26 जनवरी, 1955 को समाप्त होने को था अतः 25 जनवरी, 1955 को अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत विज्ञप्ति निकालकर उन पदार्थों के अग्रिम व्यापार पर रोक जारी रखी।

आयोग के कार्य सलाह देने व कार्यकारी (executive) दोनों ही हैं। यह केन्द्रीय सरकार को अधिनियम के लागू होने के बारे में सलाह देता है। इसको मान्यता प्राप्त संघों को आदेश देने का अधिकार है। अधिनियम के अन्तर्गत आयोग के निम्न कार्य हैं :

(2) **आयोग के कार्य** (Functions of the Commission)—(i) मान्यता प्राप्त संघों को मान्यता देने, वापिस लेने, या इस अधिनियम के प्रबन्ध के अन्तर्गत उठे किसी मामले के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना, (ii) अग्रिम बाजार का अवलोकन (observation) करते रहना व अधिनियम के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में उचित कार्यवाही करना, (iii) सूचनाओं को एकत्रित करना व उनका प्रकाशित करना, (iv) अग्रिम बाजारों के संगठन व कार्य प्रणाली की उन्नति के बारे में सरकार को

सिफारिश करना, (v) किसी मान्यता प्राप्त या पंजीकृत संस्था के बही-खातों व अन्य प्रपत्रों को देखना, व (vi) उन कर्तव्यों को पूरा करना जो इस अधिनियम में दिये हैं या दिये जायें। (धारा 4)

(3) **आयोग के अधिकार** (Powers of the Commission)—(i) आयोग को सिविल प्रोसीजर अधिनियम (Code of Civil Procedure Act) 1908 के अन्तर्गत सभी अधिकार हैं जो एक अदालत के होते हैं। (ii) भारतीय दण्ड विधान (Indian Panel Code) की धारा 176 के अनुसार आयोग को किसी भी व्यक्ति को सूचना देने के लिए बाध्य करने का अधिकार है। (iii) जब कोई अपराध भारतीय दण्ड विधान की धारा 175, 178, 179, 180 व 288 के अन्तर्गत आता है तो आयोग ऐसे अपराधों को किसी मजिस्ट्रेट को भेज सकता है। (iv) आयोग के समक्ष सभी कार्यवाही न्यायिक (Judicial Proceedings) होंगी। (धारा 4 A)

(4) **आयोग को केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपे गये अधिकार** (Powers deligated by the Central Government)—केन्द्रीय सरकार ने अपने यह अधिकार आयोग को सौंप दिये हैं : (i) मान्यता प्राप्त संघों के सदस्यों की संख्या को सीमित या असीमित करना; (ii) संघों के नियमों में परिवर्तन करना, (iii) प्रत्येक संघ व उसके सदस्यों के लिए नक्शों (Returns) की व्यवस्था (Prescribe) करना, (iv) किसी संघ से उसके क्रिया-कलापों के बारे में स्पष्टीकरण (explanation) माँगना, (v) किसी संघ या संघ के सदस्यों की जाँच करने के लिए व्यक्तियों को नियुक्त करना, (vi) अधिनियम के नियमों में परिवर्तन करना या नये नियम बनाना, (vii) संघों के उपनियमों की स्वीकृति देना, (viii) संघों के उपनियमों में परिवर्तन करना, (ix) किसी संघ से व्यापार को प्रलंबित (Suspend) करना, व (x) किसी पंजीकृत संघ व उसके सदस्यों के लिए नक्शों की व्यवस्था करना।

(5) **आयोग की क्रियाएं** (Activities of the Commission)—आयोग के प्रारम्भ के कुछ महीने स्थान, कर्मचारी व संगठन, आदि की समस्याओं में व्यतीत हुए। आयोग ने सर्वप्रथम अधिनियम के नियम (Rules) अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) नियम (Forward Contracts (Regulation) Rules) के नाम से बनाये जिनको केन्द्रीय सरकार ने जुलाई, 1954 में स्वीकृति दे दी। आयोग ने अपना कार्य विभिन्न पदार्थों के बारे में सरकार को प्रतिवेदन देने से प्रारम्भ किया। इसने पहला प्रतिवेदन रुई के बारे में सरकार को दिया जिसको सरकार ने मान लिया। अतः 30 अप्रैल, 1954 को धारा 15 के अन्तर्गत एक विज्ञप्ति जारी की गयी जिसके अनुसार दी ईस्ट इण्डिया कॉटन ऐसोसियेशन, बम्बई के नियमन का अधिकार बम्बई सरकार से हटकर आयोग के पास आ गया तब से आयोग बराबर अग्रिम प्रसंविदे को नियमित कर रहा है।

अब तक 21 पदार्थों पर धारा 15 को आयोग की सिफारिश पर लागू किया गया है जिनमें रुई, बिनौले (Cotton seed), अलसी, अण्डी, हल्दी, कच्चा जूट, जूट पदार्थ, काली मिर्च, कपास, मूँगफली का तेल, अण्डी का तेल, अलसी का तेल तथा तेलों, आदि प्रमुख हैं। 110 पदार्थों में अग्रिम प्रसंविदे धारा 17 के अन्तर्गत रोक दिये गये हैं जिनमें गेहूँ, चना, चीनी, सूती कपड़ा, सूत, ज्वार, बाजरा, मक्का, अरहर, जौ, चावल, अण्डी का तेल, वनस्पति घी, मिर्च, सोना, चाँदी, अरहर व मूँग की चुनी, आदि प्रमुख हैं। 87 पदार्थों में अहस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे (N. T. S. D. C.) पर भी रोक लगा दी गयी है।

आयोग समय-समय पर अधिनियम व मान्यता प्राप्त संघों के बारे में अपना प्रतिवेदन सरकार को देता है। इस समय देश में 111 पंजीकृत व 33 मान्यता प्राप्त संघ हैं। बहुत से संघ एक से अधिक पदार्थों के लिए मान्यता प्राप्त हैं।

आयोग चुने हुए केन्द्रों एवं मान्यता प्राप्त संघों के माध्यम से भविष्य बाजार का नियमन करता है तथा विनिमयों पर अत्यधिक मूल्य वृद्धि तथा अस्वास्थ्य-कर प्रवृत्ति होने पर आयोग इन्हें रोकने का प्रयत्न करता है।

अग्रिम बाजार आयोग के तीन कार्यकारी खण्ड हैं—(i) वस्तु खण्ड (Commodity Division); (ii) एन्फोर्समेण्ट खण्ड (Enforcement Division); (iii) प्रशासनिक खण्ड (Administrative Division)। एन्फोर्समेण्ट खण्ड स्थानीय पुलिस की सहायता से उन स्थानों पर छापे मारता है जहाँ अवैधानिक रूप से भविष्य व्यापार होता है।

केन्द्रीय सरकार के पास रह गये अधिकार

(POWERS LEFT WITH THE GOVERNMENT UNDER THE FORWARD CONTRACTS REGULATION ACT)

आयोग को विभिन्न अधिकार सौंपने के पश्चात् अब केन्द्रीय सरकार के पास निम्न अधिकार रह गये हैं :

(1) संघ को मान्यता देना, (2) मान्यता प्राप्त संघों के प्रबन्ध मण्डलों में संचालकों को नियुक्त करना, (3) संघ की मान्यता वापिस लेना, (4) संचालकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में मान्यता प्राप्त संघों के नियमों में परिवर्तन करना, (5) मान्यता प्राप्त संघों को अकारथ (Supersede) करना, (6) अग्रिम व्यवहार निश्चित पदार्थों व निश्चित स्थानों पर नियमित करना, (7) धारा 25 व 17 के लागू होने पर प्रसंविदों को पूरा करने के लिए मूल्य निश्चित करना, (8) निश्चित पदार्थों व निश्चित क्षेत्रों में अग्रिम व्यापार पर रोक लगाना, (9) अहस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों (N.T.S.D.C.) को नियमित करना या रोकना, (10) हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों (T.S.D.C.) को अधिनियम के अन्तर्गत छूट देना, (11) सलाहकार समिति नियुक्त करना, (12) किसी अधिकारी व सत्ता को अधिकार

सौंपना, (13) किसी प्रकार के अग्रिम प्रसंविदे को अधिनियम की धाराओं से छूट देना, एवं (14) अधिनियम में दिये हुए कार्यों के लिए नियम बनाना।

अग्रिम बाजार निरूपण समिति
(FORWARD MARKETS REVIEW COMMITTEE)

भारत सरकार ने 16 फरवरी, 1966 को श्री एम. एल. 'दन्तवाला की अध्यक्षता में 7 व्यक्तियों की एक समिति निम्न कार्यों की छानबीन कर प्रतिवेदन देने के लिए नियुक्त की :[1]

(i) अग्रिम-बाजार आयोग को पिछली 10 वर्षों में हुई कार्य प्रणाली का निरूपण करना और यह पता लगाना कि वह कहाँ तक अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक हुआ है; (ii) देश में परिवर्तित आर्थिक परिस्थितियों में अग्रिम बाजार भविष्य में क्या अभिनय (role) प्रस्तुत कर सकता है; (iii) वर्तमान विधान में उन्नति हेतु संशोधनों के सुझाव देना; व (iv) उन कार्यों के बारे में सुझाव देना जो अग्रिम-बाजार आयोग को दिये जा सकते हैं। इस समिति से 6 माह के अन्दर प्रतिवेदन देने को कहा गया था लेकिन समिति के आग्रह पर इसका कार्य-काल 15 नवम्बर, 1966 तक बढ़ा दिया गया। समिति ने अपना प्रतिवेदन '20 अक्टूबर, 1966 को प्रस्तुत कर दिया।

इस समिति ने कार्य करने के लिए दो प्रकार की प्रश्नावली बनायी थीं जिन्हें मान्यता प्राप्त संघों व पंजीकृत संघों को भेजा गया था। समिति ने विभिन्न प्रान्तीय सरकारों, सरकारी व अर्ध सरकारी व निजी व्यापारिक संगठनों आदि के विचार सुने तथा इस उद्देश्य से अहमदाबाद, राजकोट, सुरेन्द्र नगर, कलकत्ता, बम्बई व नयी दिल्ली में बैठकें कीं।

अग्रिम बाजार निरूपण समिति की सिफारिशें (Recommendations)

(1) **भविष्य बाजार आयोग की स्थापना** (Establishment of Future Markets Commission)—समिति ने सिफारिश की है कि अग्रिम बाजार (नियमन) अधिनियम, 1952 का नाम बदलकर भविष्य बाजार (नियन्त्रण) अधिनियम (Future Markets (Control) Act) कर दिया जाये व वर्तमान अग्रिम-बाजार आयोग का नाम भी परिवर्तित कर भविष्य बाजार आयोग कर दिया जाये और यह एक विशिष्ट, स्वतन्त्र संस्था हो जिसका कार्य भविष्य व्यापार का नियमन व

1 Other members—Shri A. S. Naik I. C. S. Chairman, Forward Markets Commission, Bombay; Shri R. T. Mirchandani, Agricultural Marketing Adviser. Government of India, Nagpur; Shri G. M. Land, Editor, Financial Express, Bombay; Shri C. L. Gheewala, Secretary, Indian Merchants Chamber, Bombay; Prof. S. V. Kogekar, Member, Forward Markets Commission, Bombay; and Shri R. Mahadevan, Dy. Financial Adviser Ministry of Finanee, New Delhi.

देख-भाल हो। इस संस्था के दिन प्रतिदिन के कार्य में सरकार का हस्तक्षेप न हो यद्यपि सरकार को नीति निर्धारित करने एवं निर्देश देने का अधिकार होना चाहिए। आयोग को बाजार ज्ञान (Market Intelligence) विभाग खोलना चाहिए। जिसका प्रमुख एक योग्य अर्थशास्त्री हो।

शोचनीय (Critical) अवस्था में आयोग को रोजाना नक्शा माँगने का अधिकार होना चाहिए तथा भविष्य व्यापार व तत्काल व्यापार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के बही-खाते, किताबें, पुस्तकें व अन्य रिकार्ड देखने का भी अधिकार होना चाहिए। आयोग को सभी अधिकार अधिनियम से सीधे मिलने चाहिए न कि मान्यता प्राप्त संघों के उपनियमों व संविधानों के माध्यम से।

(2) **अग्रिम बाजार नियमन** (Regulation of Forward Trading)—आयोग ने नियमन के सम्बन्ध में जो कार्य किया है उससे सीमित उद्देश्य की प्राप्ति हुई है। यह तत्काल कीमतों में वृद्धि को नहीं रोक पाया है। समिति ने सिफारिश की है कि नियमन सम्बन्धी तरीके भविष्य व्यापार की कीमतों के रोकने में काम में नहीं लाने चाहिए जब तक कि तत्काल कीमतों के रोकने का ऐसा प्रयत्न न किया जाये। यदि पदार्थ का भविष्य बाजार देश की अर्थ-व्यवस्था को हानि पहुँचा सकता है तो ऐसे पदार्थ पर सीधा प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। संघों को मान्यता देते समय ध्यान देना चाहिए। आयोग व मान्यता प्राप्त संघ के बीच नियमन सम्बन्धी अधिकारों का साफ-साफ उल्लेख होना चाहिए। पंजीकृत संघों के वर्ग को समाप्त कर देना चाहिए। जिन पदार्थों में भविष्य बाजार हो उनकी एक सूची अधिनियम के साथ लगी होनी चाहिए व सरकार को इस सूची में परिवर्तन करने का अधिकार होना चाहिए। जिन पदार्थों का नाम इस सूची में न हो उनमें व्यापार अवैध घोषित कर देना चाहिए। एक शहर या एक कस्बे में एक पदार्थ के लिए एक ही संघ या विनिमय होना चाहिए तथा एक पदार्थ के सभी भविष्य बाजारों में सुपुर्दगी के महीने (delivery months) एक होने चाहिए।

(3) **प्रसंविदों के प्रकार** (Types of Contracts)—अहस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों (N. T. S. D. C.) के स्थान पर हस्तान्तरणीय प्रसंविदे होने चाहिए और इनका नाम विशेष सुपुर्दगी (अग्रिम) प्रसंविदे (Specific Delivery (Forward) Contracts) हो। हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे (T. S. D. C.) को विशेष हस्तान्तरणीय प्रसंविदे (Specific Tranferable Contacts) कहना चाहिए और इनकी गिनती निवटाने वालों (settlement) के अन्तर्गत होनी चाहिए न कि सुपुर्दगी के सौदों के अन्तर्गत। साधारणतया आयोग की परिधि (perview) के अन्तर्गत भविष्य व्यापार व विशेष हस्तान्तरणीय प्रसंविदे ही होने चाहिए। भविष्य के प्रसंविदों में माल की सुपुर्दगी को हतोत्साहित करना चाहिए।

(4) **अन्य विवरण** (Miscellaneous)—मान्यता प्राप्त संघ के प्रत्येक सदस्य को गैर सदस्यों से व्यवहार संघ के चक्र (ring) में ही करने चाहिए। जो सौदे चक्र के बाहर किये जावेंगे वे गैर सदस्य के कहने पर व्यर्थ (void) होंगे। अधिनियम को यह अनिवार्य कर देना चाहिए कि गैर सदस्यों को मान्यता प्राप्त संघ के उपनियम मानने होंगे। प्रत्येक सदस्य को जो गैर सदस्य के साथ व्यवहार करेगा उन सभी व्यवहारों का पूरा ब्यौरा रखना चाहिए। मान्यता प्राप्त संघ के स्थानों के अतिरिक्त स्थानों पर यदि अवैधानिक व्यवहार होते हैं तो उन्हें पकड़ने का कार्य राज्य पुलिस या केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (C. B. I.) को दे देना चाहिए।

पदार्थ बाजारों में अनुसन्धान (Research in Commodity Markets) किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में बम्बई विश्वविद्यालय के अनुरूप अन्य विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान इकाइयाँ (research units) होनी चाहिए।

सिफारिशों पर अमल (Implementation of the Recommedations)

समिति का पूरा प्रतिवेदन 17 मई, 1967 को सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया व सम्बन्धित समुदायों, व्यक्तियों व संघों, आदि से इस प्रतिवेदन पर अपनी प्रतिक्रिया 12 जून, 1967 तक अग्रिम बाजार आयोग, बम्बई को व उसकी एक प्रति वाणिज्य मन्त्रालय, भारत सरकार को भेजने का आग्रह किया गया। इन सभी सुझावों व प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने अधिनियम में परिवर्तन करने का निश्चय किया है और इसका उल्लेख राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में 12 फरवरी, 1968 को संयुक्त अधिवेशन का उद्‌घाटन करते समय किया था लेकिन अभी तक इस सम्बन्ध में कोई आवश्यक कदम नहीं उठाये गये हैं।

यद्यपि 11 अक्टूबर, 1971 को राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश जारी कर भविष्य प्रसंविदे (Forward Contract) व तत्काल प्रसंविदे (Ready Delivery Contract) की परिभाषाओं में परिवर्तन कर दिया है। इसका उद्देश्य तत्काल प्रसंविदों का प्रयोग भविष्य प्रसंविदों की तरह न होने देना है।

प्रश्न

1. भविष्य बाजारों के विकास का एक संक्षिप्त विवरण दीजिए। भावी व्यापार के निगमन के लिए सरकार ने क्या कदम उठाये हैं? अग्रिम बाजार आयोग की क्रियाओं का संक्षेप में निरूपण कीजिए।
   Give a brief account of the development of the future markets in India. State the steps taken by the Government to regulate forward trading and review briefly the activities of the Forward Markets Commission.
2. अग्रिम बाजार आयोग पर एक सूक्ष्म विवरण दीजिए।
   Write a short note on the Forward Markets Commission.

22

निर्मित माल का विपणन

[MARKETING OF MANUFACTURED GOODS]

निर्मित माल के विपणन का विवेचन आरम्भ करने से पहले बिक्री में आने वाले भिन्न-भिन्न माल के वर्गों का संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है। अत: हम यहाँ पर पहले माल का वर्गीकरण ले रहे हैं तदुपरान्त उसके विपणन का अध्ययन करेंगे। साधारणतया यह **माल तीन प्रकार के होते हैं** : (1) प्रकृति से प्राप्त होने वाले कच्चे माल (Natural Raw Materials), (2) कृषि से प्राप्त होने वाले माल (Agricultural Goods), (3) कारखाने में निर्मित माल (Manufactured Goods)।

(1) **प्रकृति से प्राप्त होने वाले कच्चे माल** (Natural Raw Materials)— यह कई प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ तो वनों से प्राप्त होते हैं जैसे, इमारतों और कारखानों में काम आने वाली लकड़ी, चमड़ा पकाने में काम आने वाले पदार्थ तथा जंगली जानवरों के चमड़े वगैरह। कुछ माल खानों से प्राप्त होते हैं जैसे, नाना प्रकार की धातुएँ (लोहा, ताँबा, आदि), कोयला, मिट्टी का तेल, इत्यादि। कुछ माल समुद्र से भी प्राप्त होते हैं जैसे, समुद्री नमक, मछली का तेल, सीप और मोती, आदि। प्रकृति से प्राप्त होने वाले सभी कच्चे माल साधारणतया पहले कारखानों द्वारा खरीदे जाते हैं और फिर उनमें आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं जिससे कि वे मानव समाज के लिए उपयोगी बन सकें।

(2) **कृषि से प्राप्त होने वाले माल** (Agricultural Goods) को भी विपणन की दृष्टि से दो भागों में बाँट सकते हैं। एक भाग में तो वह माल आते हैं जिन्हें उपयोग के लिए लोग सीधा खरीद लेते हैं जैसे, सब्जी, तरकारी, फल, अन्न, दूध, आदि। आजकल उन्नतशील देशों में इन मालों को भी थोड़ा या अधिक, कारखानों में होकर उपभोक्ताओं के पास पहुँचाया जाता है जैसे, फल डिब्बों में बन्द किये जाते हैं। दूध पास्चराइज किया जाता है और गेहूँ पिसकर रोटी के रूप में ही उपभोक्ताओं के पास पहुँचता है।

कृषि से प्राप्त होने वाले दूसरे प्रकार के माल वे हैं जो कारखानों में कच्चे माल के रूप में काम आते हैं जैसे, कपास, पटसन, तिलहन, गन्ना, आदि। इनमें से कोई कोई पदार्थ जैसे कपास दो या अधिक कारखानों से होकर निकलने के बाद ही

उपयोगी माल का रूप लेते हैं। कपास पहले रुई ओटने के पेच में जाती है जहाँ रुई को विनौले से अलग किया जाता है और उसकी गाँठें बाँधी जाती हैं। फिर यह गाँठें कारखानों में जाती हैं जहाँ इनसे सूत और कपड़ा बनता है।

(3) **कारखाने में निर्मित माल** (Manufactured Goods)—तीसरे प्रकार के जो माल विपणन व्यवस्था में प्रवेश करते हैं उन्हें हम **निर्मित माल** कह सकते हैं। **यह निर्मित माल** (Manufactured goods) **भी दो प्रकार के होते हैं** : (I) निर्मित उपभोक्ता माल (Manufactured Consumer Goods), (II) निर्मित औद्योगिक माल (Manufactured Industrial Goods)।

निर्मित उपभोक्ता माल वे हैं जो उपभोक्ताओं के लिए बनाये जाते हैं जैसे, वनस्पति तेल, साबुन, वस्त्र, आदि। **निर्मित औद्योगिक माल** में मशीनरी, बिजली के मोटर आदि आते हैं जो कारखानों के काम में आते हैं। इन दोनों प्रकार के माल का विस्तृत विवरण इसी अध्याय में आगे दिया गया है।

निर्मित माल की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF MANUFACTURED GOODS)

कृषि से प्राप्त होने वाले माल और कारखानों में निर्मित माल की विपणन व्यवस्थाओं में बहुत अन्तर होता है। कृषि से प्राप्त होने वाले माल का उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है इस कारण उन्हें बाजार के लिए इकट्ठा करने में अधिक प्रयत्न करना पड़ता है और इसी कारण मध्यस्थों की संख्या भी अधिक होती है। निर्मित माल के कारखाने साधारणतया बड़े होते हैं और इसी कारण माल को बाजार के लिए इकट्ठा करने का बहुत प्रयत्न आवश्यक नहीं होता है। इसमें मध्यस्थों की संख्या भी कम होती है। उत्पादन करने वाले का खेती के माल के गुण और किस्म पर अधिकार बहुत कम होता है। उसे प्रकृति के ऊपर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। मौसम और ऋतु की अस्थिरताओं के कारण खेती के माल के गुण और किस्म में अन्तर आता रहता है। किसी वर्ष दाना बड़ा होता है तो किसी वर्ष छोटा। कपास का रेशा किसी वर्ष बढ़िया होता है तो किसी वर्ष घटिया। इसके विपरीत, कारखानों में माल जिन परिस्थितियों में बनता है उन पर कारखाने के मालिक का अधिकार बहुत अधिक होता है और वहाँ पर निर्मित माल के गुण और किस्म में अधिक समानता होने की सम्भावना होती है। एक-सी किस्म का माल यहाँ लगातार बनाया जा सकता है। इस प्रकार **निर्मित माल में निम्न विशेषताएँ पायी जाती हैं :**

(1) **उत्पादन की मात्रा पर नियन्त्रण** (Control over Production Quantity)—यदि माँग कम होती है तो उत्पादन किसी हद तक कम किया जा सकता है और यदि माँग बढ़ती है तो कारखाने की उत्पादन क्षमता की सीमा तक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

(2) **मूल्यों में स्थिरता** (Stability in Prices)—इसी कारण किसी हद तक मूल्यों की घटती-बढ़ती पर रोक लगायी जा सकती है और मूल्यों में स्थिरता लायी जा सकती है। यह कार्य भारत का पाट (जूट) उद्योग पिछले कई वर्षों से काफी सरलतापूर्वक करता आया है। गिरती हुई माँग के दिनों में बाजार में माल के आधिक्य को रोकने के लिए यह पहले कारखानों के काम करने के घण्टे कम कर देता है और यदि फिर भी पूर्ति अधिक रहती है तो कुछ प्रतिशत मशीनें सब कारखानों में बन्द कर दी जाती हैं। दूसरी ओर, यदि माँग बढ़ती है तो धीरे-धीरे कारखानों को पूरी उत्पादन क्षमता पर ले आते हैं और यदि फिर भी माँग पूर्ति से अधिक रही तो दो या तीन पारी चालू करके दिन-रात उत्पादन आरम्भ कर देते हैं। कृषि उत्पादन में ऐसे नियन्त्रण की सम्भावना बहुत ही कम है।

(3) **निर्मित माल के गुण और किस्म पर नियन्त्रण** (Control over Quality and Kinds)—उपभोक्ताओं की रुचि का ध्यान रखते हुए उनके अनुकूल माल निर्माण करने का प्रयत्न किया जाता है और जिस गुण और किस्म के माल को अधिकतर उपभोक्ता पसन्द करते हैं उसे **परिमापित** (Standardized) कर दिया जाता है। ऐसा करने से उत्पादन में बहुत सुविधा हो जाती है और उत्पादन व्यय में कमी होकर परिमापित वस्तु कुछ सस्ती भी हो जाती है जिससे उसकी माँग बढ़ती है।

(4) **ब्राण्ड की स्थापना** (Establishment of Brands)—जब उत्पादनकर्ता यह देखते हैं कि उनकी कोई वस्तु विशेष उपभोक्ताओं को अधिक पसन्द आने लगी है तो वे इस वस्तु की एक विशेष ब्राण्ड (Brand) स्थापित कर देते हैं। आजकल साधारणतया ऐसी ब्राण्ड भारत के बाजारों में चाय, साबुन, वनस्पति घी, आदि में बहुत पायी जाती है। ब्राण्ड के नाम से उपभोक्ताओं को वस्तुओं के पहचानने में बड़ी सरलता होती है और यदि उत्पादनकर्ता अपने निर्मित माल में लगातार समान गुण रखने में सफल हो जाता है तो उपभोक्ताओं को बड़ा सन्तोष प्राप्त होता है और वे लगातार उसी ब्राण्ड के माल को खरीदते रहते हैं। इस प्रकार ब्राण्ड स्थापन से उत्पादनकर्ता को एक सीमा तक अपने बाजार पर नियन्त्रण करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

(5) **बड़े पैमाने पर उत्पादन** (Large Scale Production) निर्मित माल का उत्पादन काफी बड़े पैमाने पर होता है। अतः निर्मित माल की खेती की पैदावार की तरह एक जगह इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं होती है। अधिकतर मध्यस्थ संस्थाएँ इस माल की बिक्री का प्रबन्ध उत्पादन के स्थान से ही कर देती हैं।

बड़े पैमाने पर निर्मित माल का उत्पादन बड़े कारखानों मे ही होता है। इन कारखानों में लगे हुए यन्त्रों और उपकरणों की लागत बहुत ऊँची होती है। इस लागत पर उचित लाभ तभी कमाया जा सकता है जब ये कारखाने लगातार काम करते रहें। इनकी उत्पादन क्षमता बहुत होती है और इस कारण निर्मित माल बड़ी

मात्रा में तैयार होता है। इसका परिणाम यह होता है कि इन संगठनों के विपणन और विक्रय विभागों पर अधिक माल की खपत करने का दबाव लगातार बना रहना है। बढ़ती हुई मात्रा में निर्मित माल की खपत के लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं उनके प्रभाव और दूसरी दिशाओं में भी पड़ते हैं। उदाहरण के रूप में, बिना मध्यस्थों के सीधे माल बेचने तथा अपने माल को अन्य निर्माताओं के उसी प्रकार के माल से भिन्न (differentiate) करने के प्रयत्नों का जिक्र किया जा सकता है।

(6) **प्रत्यक्ष विपणन** (Direct Marketing)—निर्मित माल के उत्पादन करने वालों को बाजार प्राप्त करने के लिए काफी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। इस कार्य के लिए आमतौर पर यह आवश्यक समझा जाता है कि जो परिस्थितियाँ बाजार में उनके माल की माँग पर प्रभाव डालती हैं उनसे निकट सम्पर्क रखा जाये। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रख कर कभी-कभी बड़े उत्पादनकर्ता अपने माल के **सीधे विपणन** (Direct marketing) का प्रयत्न करते हैं ताकि उपभोक्ताओं से उनका सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाये और मध्यस्थों को प्रयोग में लाने से सम्बन्धित खर्चों की बचत हो जाये। इसी प्रयत्न के फलस्वरूप कुछ निर्माता फुटकर बिक्री की अपनी निजी दुकानें खोल देते हैं। इसके उदाहरण हमको बाटा की जूते की दुकानों और देहली क्लॉथ मिल की कपड़े की दुकानों की स्थापना में मिलते हैं। कहीं-कहीं निर्माता बिक्री का पूरा भार अपने ऊपर नहीं लेते किन्तु विज्ञापन का भार अपने ऊपर लेकर तथा अपने यात्री विक्रयकर्ताओं (travelling salesmen) के द्वारा बाजार बढ़ाने और बिक्री का क्षेत्र बनाने में मध्यस्थों की काफी सहायता करते हैं।

(7) **प्रतिस्पर्द्धा** (Competition)—यहाँ प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने का प्रयत्न दूसरे प्रकार से किया जाता है। विपणन और उत्पादन की विधियों में सुधार करके व्यय कम करने का प्रयत्न लगातार किया जाता है ताकि अन्य उत्पादन करने वालों के मुकाबले में विक्रय मूल्य कम किया जा सके। किन्तु इसके अतिरिक्त कई वस्तुओं का निर्माण करके, पुरानी वस्तुओं में सुधार करके और अपनी बनायी हुई वस्तुओं को दूसरों की वस्तुओं से भिन्नता प्रदान करके और ब्राण्ड नाम देकर भी प्रतिस्पर्द्धा का सामना किया जाता है। इन प्रयत्नों से प्रतिस्पर्द्धा मूल्य के क्षेत्र से हटकर गुण के क्षेत्र में आ जाती है। मूल्यों का ध्यान भी रखा जाता है किन्तु गुण पर विशेष बल दिया जाता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न निर्माताओं की बनायी हुई वस्तुएँ वास्तव में एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न सी दिखायी पड़ती हैं और जिस ब्राण्ड को विशेष नाम अथवा प्रशंसा प्राप्त हो जाती है वह वस्तु दूसरी उसी प्रकार की वस्तुओं के मुकाबले में कुछ अधिक मूल्य पर भी बिकती रहती है। इस प्रकार से भिन्नता प्रदान करके मूल्य के मुकाबलों में गुण पर अधिक बल देकर 'ब्राण्ड' स्थापन द्वारा प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने के प्रयत्न हमको वनस्पति घी, साबुन और चाय क्षेत्र में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं। उपभोक्ता 'डालडा' घी अथवा 'लक्स' साबुन को अन्य

घी और साबुन से अच्छा समझते हैं और इन्हें खरीदते समय वरीयता (Preference) देते हैं।

निर्मित माल के क्षेत्र में विपणन सम्बन्धी प्रतिस्पर्द्धा का प्रभाव उत्पादन करने वाले संगठनों के आकार पर भी पड़ता है। कच्चा माल और कल-पुर्जे बनाने वाले कारखानों को मिलाकर एक बड़ा संगठन बनाने का प्रयत्न इसलिए किया जाता है कि प्रतिस्पर्द्धा का क्षेत्र संकुचित हो जाये। वस्तु निर्माण के भिन्न-भिन्न स्तरों पर एक ही संगठन का अधिकार हो जाये और निचले स्तरों से कच्चा माल तथा कल-पुर्जे, आदि सरलता से बिना प्रतिस्पर्द्धा के ही प्राप्त होते रहें। उदाहरण के लिए, लोहे और इस्पात अथवा मोटरकार के कारखानों को ले सकते हैं। लोहे और इस्पात के कारखाने कच्चे लोहे, कोयले और चूने, इत्यादि की खानों को अपने कारखाने के साथ सम्मिलित कर लेते हैं ताकि इन वस्तुओं की खरीद के लिए उन्हें दूसरे कारखानों से प्रतिस्पर्द्धा न करनी पड़े और प्रतिस्पर्द्धा का क्षेत्र अन्तिम वस्तु के विपणन क्षेत्र तक ही सीमित हो जाये। मोटरकार बनाने वाली कम्पनियाँ भी इसी प्रकार अपनी आवश्यकता के कल-पुर्जे बनाने वाले कारखानों को अपने साथ सम्मिलित करके प्रतिस्पर्द्धा क्षेत्र को संकुचित करने का प्रयत्न करती हैं। विपणन के क्षेत्र में भी उत्पादन करने वाली कम्पनियाँ कभी-कभी अपनी निजी थोक बिक्री की दुकानें स्थापित करके प्रतिस्पर्द्धा के क्षेत्र को छोटा करने का प्रयत्न करती हैं।

कभी-कभी विपणन में Horizontal Ccmbination भी लाभदायक समझा जाता है। एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत काम करने वाले श्रृंखला स्टोर एक ही प्रकार का माल बेचते हैं। थोक खरीद और परिवहन व्यय में किफायत करने की दृष्टि से ही यह प्रबन्ध किया जाता है। बड़े पैमाने पर उत्पादन के उपरोक्त तीन प्रकार के प्रभाव निर्मित माल की विपणन व्यवस्था पर ही पड़ते हैं। कृषि के क्षेत्र में उत्पादन उद्योगों के मुकाबले में छोटे पैमाने पर होने के कारण यह प्रभाव वहाँ नहीं पड़ते।

(I) निर्मित उपभोक्ता माल
(MANUFACTURED CONSUMER GOODS)

इस प्रकार का माल देश के सभी नागरिकों अथवा जनता के काम आता है। इस कारण क्रेताओं की संख्या लाखों और करोड़ों में होती है जो सारे देश में दूर-दूर तक फैले होते हैं। व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक क्रेता थोड़ी मात्रा में माल खरीदता है और उसकी खरीद का साधारणतया कोई निश्चित समय नहीं होता है। साधारण नागरिकों को जल्दी-जल्दी और बार-बार खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ती इस कारण माल की परख भी उनको कम होती है और बाजार सम्बन्धी जानकारी भी कम होती है। निर्मित उपभोक्ता माल के बाजार की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(1) **फैला हुआ बाजार** (Comrraded Market)—भारत जैसे देश में जहाँ जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग छोटे-छोटे गाँवों में बिखरा हुआ है निर्मित-उपभोक्ता

माल का बाजार बहुत ही विस्तृत और फैला हुआ है। सूती कपड़ा, वनस्पति घी तथा शक्कर या चीनी जैसी वस्तुओं को प्रयोग में लाने वाले क्रेता देश भर में करोड़ों की संख्या में विद्यमान हैं। उत्पादन करने वाले कारखाने देशव्यापी बाजार में न बेचकर यदि देश के कुछ भागों में भी बेचना चाहें तो भी उनका बाजार बहुत ही फैला हुआ रहेगा। इस प्रकार के बाजार में माल बेचने के लिए बिक्री के साधनों का बहुत ही सावधानी से चुनाव करना पड़ेगा। थोक और फुटकर व्यापारियों की सेवाएँ प्राप्त करना आवश्यक-सा हो जायेगा।

(2) **क्रय की छोटी मात्रा** (Small Purchase)—ग्राहक निजी उपभोग की वस्तुओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार खरीदते रहते हैं। साबुन की एक बट्टी अथवा सिगरेट की एक डिब्बी थोड़े-थोड़े समय के बाद बार-बार खरीदते है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि जहाँ-जहाँ लोगों के निवास स्थान हैं वहाँ-वहाँ छोटी तथा बड़ी सभी प्रकार की दुकानों पर इन वस्तुओं के विक्रय का प्रबन्ध किया जाये। इन वस्तुओं से लोगों को परिचित कराने तथा इनकी माँग उत्पन्न करने के लिए भी उत्पादन करने वालों को माँग उत्पन्न करने के लिए विभिन्न साधनों को काम मे लाना पड़ता है। समाचार पत्र, सिनेमा तथा रेडियो, आदि ऐसे विज्ञापन के साधनों का प्रयोग करना पड़ता है जिनके द्वारा जन-समुदाय के साथ सम्पर्क स्थापित हो सकता है।

(3) **क्रेताओं की सीमित जानकारी** (Limited Knowledge to Buyers) – साधारणतया क्रेताओं को अपने प्रयोग की वस्तुओं के गुण-दोषों की परख कम होती है क्योंकि एक ही आवश्यकता की पूर्ति के लिए कई उत्पादन करने वालों की बनायी हुई वस्तुएँ बाजार में मिलती हैं और उसके गुण-दोषों को समझने के लिए समय और विशेष ज्ञान दोनों का ही साधारण क्रेता के पास अभाव होता है। अधिकतर इन वस्तुओं के पहले प्रयोग के अनुभव से क्रेता लोग काम लेना चाहते है। एक ही प्रकार के प्रयोग में पहले से काम आने वाली वस्तुएँ नये ढंग से बनने लग जाती हैं और उसी प्रयोग में आने के लिए अनेक नयी वस्तुओं का निर्माण भी होने लगता है। ऐसी परिस्थितियों में अपने माल के लिए माँग उत्पन्न करने और बढाने के लिए क्रेताओं को अपनी वस्तु का परिचय और जानकारी प्राप्त कराने का प्रयत्न उत्पादनकर्ताओं को लगातार करना पड़ता है।

निर्मित उपभोक्ता माल का वर्गीकरण (Classification of Manufactured Consumer Goods)

निर्मित उपभोक्ता माल को उपभोक्ताओ की आदतों और मनोवृत्तियों के आधार पर तीन भागों में बाँट सकते है : (1) सुविधा का माल (Convenience Goods), (2) सौदे का माल (Shopping Goods), (3) विशिष्ट माल (Speciality Goods)।

(1) **सुविधा का माल** (Convenience Goods)—वह वस्तुएँ जिनकी आवश्यकता नित्य प्रति पड़ती रहती है और जिनका मूल्य भी कम होता है उन्हें हम **सुविधा अथवा सहूलियत का माल** कह सकते हैं। साबुन, सिगरेट, बीड़ी, दियासलाई, पेंसिल, कलम की स्याही, कागज, बिस्कुट, छोटी-मोटी दवाइयाँ, आदि वस्तुएँ इस कोटि में आती हैं। इन वस्तुओं का मूल्य इतना कम होता है कि बाजार में जाकर खरीदने से कोई विशेष बचत नहीं होती है। इन वस्तुओं के मूल्य साधारणतया सभी उपभोक्ताओं को मालूम होते हैं। अधिकतर वस्तुओं की ब्राण्ड होती हैं और गुण (Quality) के ऊपर विशेष बल नहीं दिया जाता है। इन वस्तुओं को आवश्यकतानुसार किसी समय भी खरीदा जा सकता है। इनको खरीदने के लिए उपभोक्ता दूर नहीं जाना चाहता है। जिन दुकानों पर यह वस्तुएँ मिलती हैं उन्हें हम साधारणतया बिसातखाने की दुकानें (General Merchandise Shops) कहते हैं। इन वस्तुओं की दुकानें आबादी वाले मुहल्लों में सुविधाजनक कोनों पर, अथवा काम पर या दफ्तर को आने-जाने के रास्तों पर स्थित होती हैं।

जिन वस्तुओं की माँग हमेशा और लगातार होती रहती है उन्हीं को दुकानदार सुविधा की वस्तुएँ समझता है। इन वस्तुओं के गुण (Quality) और मूल्य अधिकतर प्रमापित होते हैं। इन वस्तुओं को बेचने के लिए अधिकतर दुकानदार को विशेष चतुरता अथवा प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती है। केवल ठीक ढंग से उन वस्तुओं को सजा कर रखने की आवश्यकता होती है ताकि वह उपभोक्ताओं की दृष्टि को आकर्षित करती रहें।

इन वस्तुओं को उपभोक्ता एक बार में थोड़ी ही मात्रा में खरीदते हैं और थोड़ी-थोड़ी दूर पर इनकी बिक्री की आवश्यकता होती है। इस कारण (i) इस प्रकार की दुकानों की संख्या बहुत अधिक होती है। (ii) यदि उत्पादन करने वाला इन वस्तुओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बहुसंख्यक स्थानों पर बेचने का प्रबन्ध स्वयं करना चाहे तो अधिक व्यय और प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण यह काम उसके लिए असम्भव ही होगा। इसलिए अपनी वस्तुओं की बिक्री का प्रबन्ध उसे थोक और फुटकर विक्रेताओं की सहायता से ही करना पड़ता है। (iii) फुटकर विक्रेता ऐसी वस्तुओं को तभी रखेगा जब उनकी माँग हो और थोक विक्रेता भी तभी रखेगा जब फुटकर विक्रेता उन्हें खरीदे। ऐसी परिस्थिति में उत्पादनकर्ता के लिए यह परमावश्यक हो जाता है कि वह विज्ञापन और दूसरे उपायों द्वारा अपनी वस्तु के लिए माँग उत्पन्न करे। (iv) इन वस्तुओं के क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा बहुत ही तीव्र है। जो उत्पादनकर्ता अपनी वस्तु से उपभोक्ताओं को परिचित नहीं करायेगा उसकी वस्तु की बिक्री नहीं होगी; फुटकर विक्रेता उसकी वस्तु को नहीं रखेंगे और थोक विक्रेता उसे नहीं मँगायेंगे। सम्भवतः वह वस्तु बाजार से बाहर हो जायेगी।

(2) **सौदे का माल** (Shopping Goods)—निर्मित-उपभोक्ता माल की दूसरी कोटि में हम उन वस्तुओं को रख सकते हैं जिन्हें खरीदने में उपभोक्ता उनके

मूल्य और गुण (quality) पर विशेष ध्यान देते हैं। कई दुकानों पर मूल्य और गुण (quality) का मिलान करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं और भारत जैसे देश में जहाँ अभी दूकानदार एक निश्चित मूल्य न रखकर घटा-बढ़ी करने को भी तैयार हो जाते हैं ग्राहक को सौदा करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए, ऊनी सूट, रेशमी साड़ियाँ, बढ़िया जूते व चीनी के बर्तनों के बढ़िया सैट, आदि को हम ले सकते हैं। इन्हें हम **सौदे का माल** (Shopping goods) कह सकते हैं।

(i) बड़े-बड़े नगरों में इन वस्तुओं की बिक्री के विशेष बाजार केन्द्र होते हैं जहाँ एक ही प्रकार के माल की कई बड़ी-बड़ी दुकानें होती हैं। (ii) ग्राहक बाजार में घूम-फिरकर तथा कई जगह मूल्य और गुण (quality) का मिलान करने के पश्चात् खरीदने का निश्चय करते हैं। (iii) इन वस्तुओं को उत्पादन करने वालों की बिक्री की समस्या 'सुविधा का माल' बनाने वालों की बिक्री की समस्या से भिन्न होती हैं। इन्हें अपना माल सब जगह पहुँचाने की आवश्यकता नहीं होती। इन्हें अपने माल के लिए वही स्थान प्राप्त करना होता है जहाँ किसी नगर में उस प्रकार की वस्तुओं का बाजार-केन्द्र है। (iv) इस प्रकार के माल के वेचने की दुकानें अधिकतर बड़ी होती हैं और अधिक मात्रा में माल खरीदती हैं। (v) इसलिए ऐसे माल के निर्माता फुटकर विक्रेताओं को सीधे माल बेच सकते हैं और साधारणतया थोक विक्रेताओं को बीच में डालने की जरूरत नहीं पड़ती है।

(3) **विशिष्ट माल** (Speciality Goods)—निर्मित माल की तीसरी कोटि में वह वस्तुएँ आती हैं जिनका मूल्य तो साधारणतया अधिक होता ही है किन्तु इसके अतिरिक्त उनकी ओर खरीददार को कुछ और विशेष खिचाव भी होता है जिसके कारण वह विशेष प्रयत्न करके उन भण्डारों तक जाता है जहाँ पर इस प्रकार की वस्तुएँ बिकती हैं। इन वस्तुओं को विशिष्ट माल (Speciality goods) कहते हैं जैसे, उँचे मूल्य की घड़ियाँ, रेफ्रिजरेटर, विजली के मूल्यवान उपकरण तथा कारें (मोटर गाड़ियाँ), आदि इस कोटि में सम्मिलित की जा सकती हैं। (i) इनकी बिक्री एकमात्र एजेन्सी (Exclusive agency) के द्वारा होती है। (ii) इनमें से अधिकतर वस्तुओं की ब्राण्ड होती हैं और इनका विज्ञापन भी खूब किया जाता है। इस कारण खरीददार को इन्हें पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होती। (iii) खरीददार को ऐसी वस्तु खरीदने में काफी अच्छी रकम लगानी पड़ती है और विक्रेता के दृष्टिकोण से भी प्रत्येक सौदा उसकी पूरी बिक्री का एक काफी बड़ा भाग होता है। (iv) ऐसी वस्तुओं को बिक्री के लिए संग्रह करने में विक्रेता भण्डारों को काफी बड़ी पूँजी लगानी पड़ती है और साथ ही साथ (v) बिक्री के बाद की मरम्मत और विक्रयोपरान्त सेवा (After-sale-service) का प्रवन्ध भी आमतौर पर करना पड़ता है। (vi) इस प्रकार की वस्तुओं के खरीददार निर्माता की विशेष ब्राण्ड और बेचने वाले भण्डार दोनों ही से कुछ विशेष लगाव अनुभव करते हैं। कई बार वे अपनी रुचि की ब्राण्ड अपने विशेष

लगाव वाले भण्डार से ही खरीदना चाहते हैं। खरीददारों का यह झुकाव निर्माता और विक्रेता का भण्डार दोनों ही के अनुकूल पड़ता है।

निर्मित उपभोक्ता माल के वर्गीकरण की सीमाएँ (Limitations of the Classification of Manufactured Consumer Goods)

निर्मित-उपभोक्ता माल का वर्गीकरण—(i) सुविधा का माल, (ii) सौदे के माल, व (iii) विशिष्ट माल में किया जाता है। इन तीनों की दृढ़ सीमाएँ निर्धारित नहीं की जा सकतीं। सुविधा अथवा सहूलियत की वस्तुओं तथा सौदों की वस्तुओं का अन्तर तो साधारणतया स्पष्ट मालूम पड़ता है। कम मूल्य के साबुन, सिगरेट दियासलाई तथा पेंसिल, आदि वस्तुएँ सहूलियत की वस्तुएँ हैं। इसी प्रकार साड़ियाँ तथा बढ़िया ऊनी सूट के कपड़े आदि सौदे के सामान हैं। किन्तु सौदे के सामान के अन्तर्गत आने वाली वस्तुओं तथा विशिष्ट माल (Speciality goods) की कोटि में आने वाली वस्तुओं के बीच की सीमा स्पष्ट नहीं है। कुछ चीजें जैसे, बढ़िया कार अथवा रिफ्रीजिरेटर तो साफ तौर से विशिष्ट माल (Speciality goods) मालूम पड़ते हैं किन्तु कुछ वस्तुएँ जैसे बढ़िया घड़ियाँ दोनों ही वर्गों में रखी जा सकती हैं। इस प्रकार के वर्गीकरण की सीमाएँ भिन्न-भिन्न देशों अथवा एक ही देश के भिन्न-भिन्न भागों की आर्थिक समृद्धि से भी बहुत प्रभावित होती हैं। कम धनी लोगों के लिए जो वस्तुएँ सौदे के सामान की कोटि में आती हैं वही अधिक धनी लोगों के लिए सुविधा की वस्तुओं की कोटि में आ सकती हैं। लोगों की भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों के कारण सौदे के सामान और विशिष्ट माल (Speciality goods) के बीच की सीमा भी अस्पष्ट सी हो जाती है। एक वस्तु को कुछ लोग कई भण्डारों में घूम-फिरकर किस्म और मूल्य आदि का मिलान करके भी खरीद सकते हैं और कुछ लोग उसे अपनी रुचि के अनुकूल किसी एक विशेष भण्डार में से बिना इधर-उधर बाजार में घूमे-फिरे भी खरीद सकते हैं।

निर्मित-उपभोक्ता माल के वितरण के तरीके (Channels of Distribution of Manufactured Consumer Goods)

निर्मित उपभोक्ता माल कई मार्गों द्वारा उपभोक्ताओं तक पहुँचता है। इन मार्गों को हम इस प्रकार दिखा सकते हैं :

(1) निर्माता—उपभोक्ता (Manufacturer → Consumer)

(2) निर्माता—फुटकर विक्रेता-उपभोक्ता (Manufacturer → Retailer → Consumer)

(3) निर्माता – थोक विक्रेता—फुटकर विक्रेता—उपभोक्ता (Manufacturer → Wholesaler → Retailer → Consumer)

(4) निर्माता मध्यस्थ एजेण्ट—थोक विक्रेता—फुटकर विक्रेता- उपभोक्ता (Manufacturer → Agent → Wholesaler → Retailer → Consumer)

(1) **पहले मार्ग** से सबसे कम बिक्री होती है, क्योंकि उपभोक्ता चारों तरफ फैले हुए होते हैं और अधिकतर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खरीदते हैं। निर्माता के लिए सभी उपभोक्ताओं तक पहुँचना असम्भव होता है। फिर भी कुछ निर्मित वस्तुओं में कुछ उपभोक्ताओं को सीधी बिक्री करना सम्भव होता है। उदाहरण के रूप में, हम डबल रोटी, जूता, फर्नीचर (मेज, कुर्सी, आदि) वस्तुओं को ले सकते हैं। इन वस्तुओं का बहुत कुछ निर्माण छोटे पैमाने पर भी होता है और कुछ उपभोक्ताओं को सीधी बिक्री होती रहती है। **इस बिक्री के लिए पाँच साधनों का उपयोग किया जाता है**—(i) **डाक द्वारा**—इसमें समाचार पत्र, मैगजीन, केटेलॉग, आदि के द्वारा उपभोक्ता से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। (ii) **यात्री विक्रयकर्ताओं द्वारा**—कुछ अपने यात्री विक्रयकर्ताओं को भेजकर माल बेचने का प्रयत्न करते हैं। (iii) **स्वयं की दुकानें**—कुछ निर्माता अपनी निजी फुटकर बिक्री की दुकानें स्थापित करके भी सीधे उपभोक्ताओं को अपना माल बेचने का प्रयास करते हैं। बाटा की जूतों की दुकानें तथा दिल्ली क्लॉथ मिल की कपड़े की फुटकर बिक्री की दुकानें इस प्रकार की बिक्री के उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। कुछ निर्माता अपने कारखाने के पास ही अपने कर्मचारियों की सुविधा के लिए फुटकर बिक्री की दुकान खोल देते हैं। (iv) **टेलीफोन द्वारा**—कुछ निर्माता टेलीफोन पर प्राप्त आदेशों को पूरा करते हैं। (v) **विक्रय मशीन द्वारा**—कुछ निर्माता अपनी वस्तुओं को मशीनों में भर देते हैं और इन मशीनों को स्थान-स्थान पर लगा देते हैं जहाँ से उपभोक्ता निर्धारित सिक्के मशीन में डालकर वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। उपभोक्ता-निर्मित माल का थोड़ा-भाग ही इन सभी साधनों से बिक पाता है।

(2) **दूसरा मार्ग** निर्माता—फुटकर विक्रेता—उपभोक्ता मार्ग है। इसका भी काफी प्रयोग किया जाता है। कुछ निर्माता फुटकर विक्रेताओं को कई प्रकार का माल उनकी आवश्यकताओं के अनुसार भेजते रहते हैं। बड़े पैमाने पर काम करने वाले फुटकर बिक्री के भण्डार जैसे. विभागीय भण्डार या शृंखला भण्डार अधिकतर अपनी बिक्री का सामान सीधे निर्माताओं से ही खरीदते हैं। इस प्रकार की बिक्री भी काफी मात्रा में होती है।

(3) **तीसरा मार्ग** निर्माता—थोक विक्रेता—फुटकर विक्रेता—उपभोक्ता मार्ग है। निर्मित-उपभोक्ता माल की बिक्री का शायद यही सबसे बड़ा साधन है। बड़े-बड़े नगरों में थोक व्यापारी बड़ी मात्रा में माल खरीदकर इकट्ठा करते हैं और धीरे-धीरे आवश्यकतानुसार नगर और आस-पास के फुटकर व्यापारी को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में माल बेचते जाते हैं। आगरा नगर में जूतों के बहुत से थोक व्यापारी हैं जो शहर तथा बाहर के फुटकर व्यापारियों को माल बेचते हैं।

(4) **चौथा मार्ग** निर्माता—मध्यस्थ—एजेन्ट—थोक विक्रेता—फुटकर विक्रेता—उपभोक्ता मार्ग है। यह सबसे लम्बा मार्ग है। इस प्रकार की बिक्री में माल

बनाने वाला कारखाना किसी मध्यस्थ एजेण्ट की सेवाओं का उपयोग अपनी बिक्री की समस्याओं का समाधान करने के लिए करता है। यह एजेण्ट कई प्रकार के होते हैं, अधिकतर माल अपने पास नहीं रखते और कमीशन के आधार पर काम करते हैं। सूती और ऊनी वस्त्रों के कारखाने इस प्रकार के एजेण्टों का प्रयोग करते हैं। यह एजेण्ट थोक विक्रेताओं और कारखानों के बीच में पड़कर माल की बिक्री का प्रबन्ध करते हैं। इस मार्ग की शेष कार्यविधि तीसरे मार्ग के ही समान है।

(II) निर्मित औद्योगिक माल
(MANUFACTURED INDUSTRIAL GOODS)

निर्मित माल को दो भागों में बाँटा था। पहले भाग को निर्मित उपभोक्ता माल की संज्ञा दी थी। यह वह माल है जो व्यक्तियों तथा घरों और परिवारों के काम में आता है और उपभोग की क्रिया में समाप्त हो जाता है जैसे चीनी, दियासलाई, कपड़ा आदि। दूसरे भाग को निर्मित-औद्योगिक (Industrial goods) की संज्ञा दी थी। निर्मित-औद्योगिक माल में कारखानों में बनी हुई वह वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं जो उपभोग के लिए नहीं होतीं वरन् कारखानों में उपभोक्ता माल बनाने के काम आती हैं। इस कोटि में सब प्रकार की मशीनरी बिजली के मोटर, भाप के ऐंजिन आदि आ जाते हैं। उपभोक्ता माल का बाजार तो समस्त देश में फैला होता है क्योंकि सभी लोग कारखाने में बने हुए माल का उपभोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते हैं। इस प्रकार से निर्मित उपभोक्ता माल का बाजार बहुत विस्तृत होता है। किन्तु निर्माता माल का उपभोग कारखानों, परिवहन साधनों, बिजलीघर जैसी जन सेवा कम्पनियों तथा खानों आदि में होता है। इस प्रकार निर्माता-माल का बाजार बहुत विस्तृत नहीं होता है।

निर्मित औद्योगिक माल की विशेषताएँ (Characteristics of Manufactured Industrial Goods)

निर्मित औद्योगिक माल (Industrial goods) के बाजार **की कुछ विशेषताएँ** हैं जो इस बाजार को उपभोक्ता माल के बाजार से अलग करती हैं : (1) भौगोलिक दृष्टि से निर्माता माल के बाजार अधिकतर बड़े-बड़े औद्योगिक क्षेत्रों में घनीभूत होते हैं, (2) सम्भावी क्रेताओं की संख्या थोड़ी होती है, (3) प्रत्येक सौदा बड़ी मात्रा में और अधिक मूल्य का होता है, (4) तकनीकी आवश्यकताओं का प्राधान्य होता है, और (5) इस माल की माँग उपभोक्ता माल की माँग पर आधारित होती है।

(1) **बाजार का घनीभूत होना** (Concentration of Markets)—निर्मित माल की उत्पादन क्रिया अधिकतर बड़े-बड़े औद्योगिक क्षेत्रों और केन्द्रों में घनीभूत होती है। किसी भी देश के सारे निर्मित माल का बहुत बड़ा भाग इन्हीं केन्द्रों में बनता है। भारत में नाना प्रकार के निर्मित माल का बहुत बड़ा भाग वृहत् कलकत्ता तथा वृहत् बम्बई के औद्योगिक क्षेत्रों में बनता है। मद्रास, दिल्ली,

कानपुर, इन्दौर, बंगलौर, कोयम्बटूर, आदि अन्य बड़े-बड़े क्षेत्र है जहाँ बड़े-बड़े कारखानों में भाँति-भाँति का माल बनता है। तरह-तरह की मशीनरी, बिजली के मोटर तथा भाप के ऐंजिन, आदि इन क्षेत्रों में स्थित कारखानों की ही आवश्यकता की वस्तुएँ हैं। इस प्रकार निर्मित औद्योगिक माल की देश के समस्त भागों में उपभोक्ता माल की भाँति बिक्री समान नहीं होती वरन् अधिकतर बड़े-बड़े औद्योगिक क्षेत्रों में ही केन्द्रित होती है।

(2) **क्रेताओं की सीमित संख्या** (Limited Number of Buyers)—निर्माता माल निर्मित के अधिकतर खरीददार बड़े-बड़े कारखाने होते हैं जिनकी संख्या सीमित होती है। बिजली घरों की टरबाइन (Turbires) या ट्रांसफार्मर्स (Trarsfcrmers) तथा रेलवे इंजन जैसी बड़ी और भारी वस्तुओं के ग्राहकों की संख्या और भी कम होती है। बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों में बड़े-बड़े खरीददारों के स्थित होने के कारण इस प्रकार की वस्तुओं को उत्पादन करने वालों तथा उपभोक्ता माल को उत्पादन करने वालों के बिक्री के उपायों तथा प्रयत्नों में बड़ा अन्तर पड़ जाता है।

(3) **प्रत्येक खरीद का भारी मूल्य** (Large Value of Every Purchase)—कारखानों तथा रेलवे के ऐंजिन जैसी वस्तुएँ बहुत कीमती होती हैं। इस कारण यदि एक बार में एक वस्तु भी खरीदी जाये तो भी उसका मूल्य बहुत भारी होता है। किन्तु इस प्रकार के सौदे जल्दी-जल्दी नहीं होते हैं। कारखानों में काम आने वाले बड़े-बड़े ऐंजिन तथा भारी मशीनें बहुत समय तक चलती हैं और वर्षों में एक बार खरीदने की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु इन वस्तुओं के उत्पादन करने वालों को उस काल में भी अपने ग्राहकों से लगातार सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है जबकि उनसे कोई भी खरीद नहीं की जाती ताकि खरीददार उसका नाम न भूल जाये और जब खरीद का समय आये तो उनकी वस्तु का विचार ही न किया जाये। इस प्रकार का सम्पर्क बनाये रखने में विपणन व्यय काफी बढ़ जाता है।

भौगोलिक दृष्टि से औद्योगिक क्रिया के केन्द्रीभूत होने, बड़े कारखानों की संख्या सीमित होने तथा प्रत्येक सौदे का मूल्य अधिक होने का प्रभाव यह पड़ता है कि उपभोक्ता माल और निर्माता माल के उत्पादन करने वालों के विपणन सम्बन्धी प्रयत्नों में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। निर्मित उपभोक्ता माल के लिए जन-समूह का प्रत्येक व्यक्ति क्रेता हो सकता है जिससे उत्पादन करने वाले की जानकारी होना असम्भव होता है। इस कारण विज्ञापन के सामूहिक साधनों का प्रयोग करना पड़ता है तथा थोक विक्रेता और फुटकर विक्रेताओं का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु निर्मित औद्योगिक माल की बिक्री के लिए अधिकतर सीधी बिक्री का मार्ग अपनाया जाता है क्योंकि भारी मूल्य देकर खरीदने वाले अल्पसंख्यक ग्राहक औद्योगिक क्षेत्रों में

घनीभूत होते हैं। उत्पादनकर्ता अधिकतर उनसे परिचित भी होता है और उसमें व्यय भी कम होता है।

(4) **तकनीकी आवश्यकताएँ** (Technical Necessities)—उपभोक्ता माल कभी-कभी तो उसके बाह्य आकर्षण के कारण भी खरीद लिया जाता है किन्तु निर्माता माल की उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया जाता है क्योंकि यह माल तो कारखानों में दूसरे माल के बनाने में काम आने के लिए खरीदा जाता है। लोहे की चद्दरें, छड़ें तथा पुर्जे विशेष माप और विशेष गुण वाले होने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मशीनें, मोटर और ऐंजिन आदि भी विशेष मापों और विशेष कार्य-क्षमता तथा शक्ति वाले होने की आवश्यकता होती है। अधिकतर ग्राहक अपने नमूने तथा माप की वस्तुएँ माँगते हैं। उत्पादनकर्ताओं को इन नमूनों और मापों के अनुसार माल बनाकर देना होता है। ग्राहक कम्पनियों के संचालक अथवा कर्मचारी अपने उद्योग की तकनीकी बारीकियों से पूर्णतया परिचित होते हैं। इस कारण उत्पादन करने वाले कारखानों को या तो तकनीकी शिक्षा प्राप्त विक्रेताओं से काम लेना पड़ता है या उनकी सहायता के लिए तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर्मचारियों को भेजना पड़ता है। अधिकतर बिक्री से पूर्व और बिक्री के बाद की तकनीकी सेवा (After Sale Technical Service) का भी प्रबन्ध करना पड़ता है। बड़ी-बड़ी निर्माता माल बनाने वाली कम्पनियों को देश और विदेशों के भी प्रधान औद्योगिक क्षेत्रों में इस प्रकार की तकनीकी सेवाओं की स्थापना करना आवश्यक हो जाता है। बिक्री के पहले अपने माल की उपयोगिता तथा कार्य-क्षमता सम्भावी खरीददारों को समझानी होती है और कभी-कभी अपनी मशीनों का प्रदर्शन भी करना पड़ता है। तकनीकी सलाह-मशविरा भी देना पड़ता है। जब माल की बिक्री हो जाती है तो मशीनों को लगाने और चालू करने में सहायता देनी पड़ती है तथा कभी-कभी खरीददार कम्पनी के कर्मचारियों को नयी मशीनों का प्रयोग करना भी सिखाना पड़ता है। साधारणतया कुछ निश्चित समय (छः महीने या वर्ष भर) तक निःशुल्क मरम्मत और देखभाल की सुविधा भी देनी पड़ती है। इस प्रकार की तकनीकी सेवा की स्थापना करने और उसे चालू रखने में काफी समय व्यय होता है किन्तु बिना इसके काम भी नहीं चलता है। इसके अतिरिक्त तकनीकी सेवा केन्द्रों में काफी मात्रा में अतिरिक्त पुर्जे रखने की भी आवश्यकता होती है ताकि टूट-फूट की पूर्ति तत्काल हो सके और ग्राहक को कामबन्दी की हानि न उठानी पड़े। चाहे यह सेवाएँ निःशुल्क हो जायें अथवा इनके लिए कुछ शुल्क ली जाय किन्तु इनका पूरा व्यय उत्पादनकर्ता अपनी मशीनों के विक्रय मूल्य में शामिल किये रहते हैं।

(5) **उपभोक्ता-माल की माँग पर आधारित** (Dependent on Consumers Goods Demand)—निर्माता माल की माँग दूसरे कारखानों में इसलिए होती है कि वह कारखाने इस माल का प्रयोग उपभोक्ता-माल बनाने में करते हैं। उपभोक्ता-माल में सम्मिलित होने वाली वस्तुओं (जैसे चद्दरें, छड़ें या पुर्जे) आदि की माँग का तथा उपभोक्ता-माल की माँग का सम्बन्ध अधिक निकट होता है। इन

वस्तुओं की माँग उपभोक्ता-माल की माँग के साथ-साथ लगभग समान अनुपात में घटती-बढ़ती है। किन्तु उपभोक्ता माल को बनाने में काम आने वाली मशीनों, मोटरों, आदि की माँग का सम्बन्ध उनसे बने हुए माल की माँग से उतना निकट नहीं होता। क्योंकि यह मशीनें तथा मोटरें आदि बहुत समय तक काम आती हैं। यदि उपभोक्ता-माल की माँग के थोड़े समय के लिए बढ़ने की सम्भावना होती है तो वर्तमान मशीनों को अधिक समय तक चलाकर इसकी पूर्ति करने का प्रयत्न किया जाता है और मशीनों की माँग नहीं बढ़ती किन्तु यदि उपभोक्ता माल की माँग में टिकाऊ वृद्धि की सम्भावना मालूम होती है तो उत्पादन बढ़ाने के लिए नयी मशीनें भी लगायी जाती हैं और उनकी माँग बढ़ती है। उपभोक्ता माल की माँग के गिरने का प्रभाव उस माल को बनाने वाली मशीनों की माँग पर अधिक तीव्र होता है। मान लीजिए कि कपड़ा बनाने वाले करघों में से 5 प्रतिशत हर साल घिसावट से बेकार हो जाते हैं और उनकी पूर्ति के लिए नये करघों की माँग होती है। यदि कपड़े की माँग 5 प्रतिशत गिर जाये तो उस साल पुराने करघों की जगह नये करघे बिना लगाये ही कपड़े की माँग की पूर्ति हो जायेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता माल में 5 प्रतिशत की कमी के कारण उस माल को बनाने वाली मशीनों की माँग में 100 प्रतिशत कमी हो गयी। इस प्रकार की माँग की कमी साधारणतया मशीनों का मूल्य गिराकर नहीं बढ़ायी जा सकती है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि निर्माता माल की बाजार सम्बन्धी समस्याएँ उपभोक्ता माल की बिक्री की समस्याओं से कई प्रकार से भिन्न हैं और इस कारण निर्माता माल के उत्पादन करने वालों को विपणन के दूसरे ढंग अपनाने पड़ते हैं।

निर्मित माल का औद्योगिक वर्गीकरण (Classification of Manufactured Industrial Goods)

निर्मित औद्योगिक माल को चार भागों में बाँट सकते हैं: (1) गढ़ाई का सामान और पुर्जे (Fabricating Materials), (2) उपकरण (Equipment), (3) सामग्री (Supplies), (4) कच्चा माल (Raw Materials)।

इनमें से पहले तीन तो कारखानों में बनकर निकलते हैं और चौथा खेतों, वनों अथवा खानों से प्राप्त किया जाता है। इसका सूक्ष्म विवरण निम्न प्रकार है:

(1) **गढ़ाई का सामान और पुर्जे** (Fabricating Materials)—इस समूह में वह औद्योगिक माल शामिल किया जाता है जो या तो पूरी तरह बना हुआ नहीं है या जो उसी अवस्था में उपभोक्ताओं के काम नहीं आ सकता। जिसको उपयोगी बनाने के लिए या तो और कुछ औद्योगिक क्रिया की आवश्यकता है अथवा जो जैसा का जैसा ही अन्य उपयोगी वस्तुओं में लगा दिया जायेगा या जड़ दिया जायेगा। गढ़ाई के सामान (Fabricating Materials) के अन्तर्गत हम ऐसी वस्तुओं को ले सकते हैं जैसे, धातु के ट्यूब और चद्दरें तथा छड़ें वगैरह। ट्यूब के प्रयोग का एक बहुत

सुन्दर उदाहरण वह इस्पात के ट्यूब हैं जिन्हें मोड़कर साइकिलों के ढाँचे बनाये जाते हैं। धातु की चद्दरें इसी प्रकार सन्दूक तथा ट्रंक वगैरह बनाने में काम आती हैं। बॉयलर वगैरह भी चद्दरों से ही बनते हैं। छड़ें भी इसी प्रकार अन्य ऐसी वस्तुओं के निर्माण में काम आती हैं जो उपभोक्ताओं अथवा कारखानों के लिए बनायी जाती हैं।

पुर्जे हम उन वस्तुओं को कहते हैं जिन्हें फिर मशीन में बिना काटे, बदले सीधा ही दूसरे उपयोगी पदार्थों में फिट कर दिया जाता है। इस कोटि में बिजली के मोटर, बैटरियाँ, पहिये, टायर, ट्यूब, आदि है। बिजली के मोटर खराद या और किसी मशीन के साथ जैसे के तैसे फिट कर दिये जाते हैं। बैटरियाँ, पहिये, टायर, ट्यूब भी ट्रक, कार तथा रेल के डिब्बों में जैसे के तैसे ही फिट कर दिये जाते हैं। जो उत्पादनकर्ता गढ़ाई के सामान और पुर्जों को खरीदते हैं वह अपनी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार प्रमापित सामान चाहते हैं और चूँकि निर्मित वस्तु वह मुनाफे पर बेचने का प्रयत्न करते हैं इसलिए इन वस्तुओं के मूल्यों पर भी उन्हें विशेष ध्यान देना पड़ता है। अधिकतर इन वस्तुओं की खरीद क्रेता द्वारा दिये हुए विशिष्ट विवरणों (Specifications) तथा निरीक्षण के आधार पर होती है। ऐसे स्रोतों से इन वस्तुओं के क्रय करने का प्रयत्न किया जाता है जिन पर उचित मात्रा में उचित समय पर लगातार मिलने का भरोसा किया जा सके। इसी कारण अधिकतर एक निश्चित समय के लिए माल की प्राप्ति का ठेका कर लिया जाता है। कई बार निर्माता अपनी आवश्यकता के लिए ऐसी वस्तुओं को स्वयं भी बना लेते हैं अथवा इस प्रकार का माल बनाने वाले कारखानों पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेते हैं। इन वस्तुओं की अधिकतर बनाने वालों से सीधी खरीद की जाती है। किन्तु छोटे कारखानों को माल सुलभ करने का काम बड़े-बड़े मध्यस्थ व्यापारी भी करते हैं। यह व्यापारी अधिकतर उन्हीं चीजों के बेचने का काम करते हैं जो प्रमापित होती हैं। कुछ वस्तुएँ ऐसी भी हैं जिनकी बिक्री कारखानों तथा साधारण उपभोक्ता दोनों को की जाती है। इस कोटि में टायर, ट्यूब तथा पुर्जों को रखा जा सकता है। टायरों की आवश्यकता कार एवं ट्रक बनाने वाले कारखानों को भी होती है और कार तथा ट्रकों को इस्तेमाल में लाने वाले लोग भी अपने लिए इनकी फुटकर खरीद करते हैं। इस प्रकार के माल के उत्पादन करने वालों को निर्माता माल और उपभोक्ता माल से सम्बन्धित दोनों प्रकार की विपणन व्यवस्था करनी पड़ती है। माँग बढ़ाने के भी दोनों प्रकार के उपाय काम में लाने पड़ते हैं।

(2) **उपकरण** (Equipment)—इस कोटि में कारखानों में लगाये जाने वाले और काम में आने वाले बहुत प्रकार के सामान सम्मिलित होते हैं। इनमें कुछ तो ऐसे होते हैं जो कारखानों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से विशेष-तौर पर बनाये जाते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो बने हुए मिलते हैं। बिजली अथवा

मेकेनिकल शक्ति के संचालन के साधन अधिकतर विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से खासतौर पर बनाये जाते हैं। किन्तु कल-पुर्जे, दफ्तर का सामान, आदि साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पहले से बने हुए भी मिलते हैं। इन वस्तुओं में इनकी बनावट तथा मूल्य के अतिरिक्त इनकी उपयोगिता और कार्यक्षमता का बड़ा महत्व होता है। कार्यक्षमता का पता साधारणतया काफी समय तक प्रयोग करने पर ही चलता है। इस कारण खरीद के समय इनकी भविष्य की कार्य क्षमता का अन्दाज लगाना कठिन ही होता है। इन परिस्थितियों में इन वस्तुओं के बनाने वालों को बिक्री का प्रयत्न करने के लिए काफी गुंजाइश रहती है। दफ्तरों में काम आने वाली वस्तुओं की बिक्री में उपभोक्ता माल की भाँति बनावट, किस्म और व्यक्तिगत पसन्द का भी काफी महत्व रहता है। इसलिए इन वस्तुओं की बिक्री के लिए भी प्रयत्न करने की काफी गुंजाइश रहती है। इन वस्तुओं में नये नमूने भी लगातार निकलते ही रहते हैं और इसीलिए इनकी बिक्री के लिए काफी प्रयत्न की भी आवश्यकता होनी हैं।

(3) **सामग्री** (Supplies)—सामग्री के अन्तर्गत ऐसी वस्तुएँ आती हैं जिनकी आवश्यकता कारखाना चलाने के लिए होती है और जो बनी हुई वस्तु का भाग नहीं बनतीं। उदाहरण के तौर पर, औद्योगिक ईंधन (कोयला, तेल आदि) तया मशीनों और कल-पुर्जों को चिकनाने वाले पदार्थ (Lubricants) इसी प्रकार की वस्तुएँ हैं। दफ्तर में काम आने वाली स्टेशनरी भी इसी वर्ग में सम्मिलित की जाती है। ईंधन और चिकनाहट के पदार्थ (Lubricants) अधिकतर काफी मात्रा में काम आते हैं और लगातार काफी समय तक के लिए इनका प्रबन्ध करना पड़ता है। खरीदने वाले कारखानों के विशेषज्ञ अक्सर इन वस्तुओं को प्रयोग में लाकर इनकी जाँच करने के बाद ही इनकी खरीद करते हैं। एक बार जब चीज परख में ठीक उतर जाती है तो फिर काफी लम्बे समय तक लगातार खरीदने के लिए समझौता भी हो जाता है। इन वस्तुओं में से जिनकी खरीद पर काफी धन व्यय किया जाता है तथा जिनकी जाँच निश्चयात्मक रूप से हो सकती है उनकी माँग बढ़ाने के लिए काफी प्रयत्न करने की गुंजाइश होती है।

औद्योगिक माल के वितरण के तरीके (Channels of Distribution of Industrial Goods)

औद्योगिक माल के उत्पादनकर्ता अधिकतर इन वस्तुओं को प्रयोग में लाने वाले कारखाने को सीधा बेचना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि इस प्रकार से उन्हें अच्छे दाम मिलने की आशा रहती है। प्रयोग करने वाले भी सीधी खरीद पसन्द करते हैं क्योंकि उन्हें इन वस्तुओं के क्षेत्र में होने वाले नवीन आविष्कारों तथा परिवर्तनों के सम्पर्क में बने रहने की सम्भावना रहती है और दूसरे तकनीकी सहायता और सलाह भी सुलभ हो जाती है। इन्हीं कारणों से औद्योगिक माल के बहुत बड़े

भाग की बिक्री उत्पादन करने वालों और प्रयोग करने वालों के बीच में सीधी ही हो जाती है। बिक्री की यह विधि बड़े सौदों और बड़े खरीददारों के लिए अनुकूल पड़ती है। किन्तु इस प्रकार के औद्योगिक माल को प्रयोग में लाने वाले सभी कारखाने बड़े नहीं होते और एक बहुत बड़ी संख्या मझोले और छोटे कारखानों की भी होती है जो बड़ी मात्रा में खरीद नहीं कर सकते। इन मझोले और छोटे कारखानों की सहायता के लिए काफी मात्रा में व्यापारी मध्यस्थ और दलाल मध्यस्थ भी काम करते हैं।

बिक्री (1) उत्पादन करने वाले व्यापारी थोक विक्रेता के माध्यम से प्रयोग करने वाले कारखानों को, (2) उत्पादन करने वाले से दलाल मध्यस्थ के माध्यम से प्रयोग करने वाले कारखानों को, तथा (3) उत्पादन करने वाले से दलाल मध्यस्थ तथा व्यापारी थोक विक्रेता के माध्यम से प्रयोग करने वाले कारखानों को भी होती रहती है। मझोले और छोटे खरीददारों को उपरोक्त तीनों मार्गों में से ही किसी मार्ग के अनुसरण के द्वारा बिक्री की जाती है। इस प्रकार से उपभोक्ता माल और औद्योगिक माल को उत्पन्न करने और बिक्री के मार्गों में काफी अन्तर है। माँग बढ़ाने के उपायों में भी इसी प्रकार अन्तर है।

अब हम तीन निर्मित वस्तुओं के विपणन का वर्णन करेंगे—(I) लोहा एवं इस्पात वस्तुओं का विपणन, (II) सूती कपड़े का विपणन, (III) जूट निर्मित वस्तुओं का विपणन।

(I) भारत में लोहा एवं इस्पात वस्तुओं का विपणन
(MARKETING OF IRON & STEEL MANUFACTURES IN INDIA)

लोहा एवं इस्पात किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आधार है। उद्योग, कृषि, संचार एवं परिवहन, प्रतिरक्षा एवं दैनिक जीवन में लोहा एवं इस्पात बहुत ही आवश्यक है। भारत में लोहा एवं इस्पात के लिए आवश्यक कच्चा माल जैसे, लाइम स्टोन, डोलोमाइट और मैंगनीज आदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। लोहे तथा कोयले की खानें आस-पास हैं। ऐसा अनुमान है कि संसार के कुल कच्चे लोहे का 1/4 भण्डार भारत में उपलब्ध है।

भारत में लोहा एवं इस्पात का उद्योग बहुत प्राचीन है, लेकिन आधुनिक मशीनी युग 19वीं शताब्दी के अन्त की देन है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस उद्योग ने काफी प्रगति की है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत तीन कारखाने सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किये गये हैं—राउरकेला जर्मनी के सहयोग से; भिलाई रूस के सहयोग से; व दुर्गापुर ब्रिटेन के सहयोग से—जिन्होंने अपना उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है। चौथा कारखाना बोकारो भी रूस की सहायता से स्थापित किया गया है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कारखाने भी इस दिशा में स्थापित किये जा रहे हैं जबकि टाटा एवं इण्डियन आयरन इस क्षेत्र में काफी पुराने हैं। गत वर्षों में लोहे एवं इस्पात के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है जिसको अग्र प्रकार दर्शाया जा सकता है :

(दस लाख टनों में)

वर्ष	इस्पात पिण्ड या ढाँके (Steel Ingots)	तैयार स्पात (Finished Steel)
1950-51	1·5	1·0
1960-61	3 4	2·4
1970-71	6·1	4·5
1976-77	8·1	7·4
1977-78	7·7	5·1

(Source : *India*, 1977-78 and *Economic Survey*, 1978-79.)

(1) **माँग** (Demand)—भारत में लोहे एवं इस्पात का वर्तमान उत्पादन देश की आवश्यकताओं से कम होता है तथा यह उद्योग अपनी क्षमता का लगभग 90% उपयोग कर रहा है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के समकक्ष है।

अन्तर्राष्ट्रीय तुलना में विश्व के स्टील उत्पादकों में भारत का 13वाँ स्थान है। प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग की दृष्टि से संसार के स्टील उत्पादकों में भारत का अन्तिम स्थान —36वाँ—है। भारत में प्रति व्यक्ति स्टील का उपभोग 14 किलोग्राम है जबकि अन्य देशों में बहुत अधिक है जैसे, अमरीका में 711 किलोग्राम, रूस में 518 किलोग्राम, जापान में 805 किलोग्राम।

(2) **प्रमापीकरण एवं वर्गीकरण** (Standardisation & Grading)—भारतीय मानक संस्था ने Structural & Metals के लिए 762 मानक तैयार किये हैं जिनमें लोहा एवं इस्पात के मानक भी शामिल हैं। 1965-66 वर्ष से प्रमाणिक चिह्नांकन योजना (Certification Marks Scheme) भी लागू कर दी गयी है। आजकल लोहे की तीन प्रमुख किस्म हैं : (i) S T 32, (ii) S T 42 (iii) S T 44।

उपरोक्त के अतिरिक्त इस्पात एवं लोहे की कुछ Varieties भी होती हैं जैसे, M. S. Angles; C. R. Sheets; G. C Sheets; M. S. Channels आदि।

(3) **निर्यात** (Export)—भारत में लोहे एवं इस्पात का निर्यात किया जाता है। गत कुछ वर्षों से सम्बन्धित आँकड़े इस प्रकार हैं—1960-61 9 करोड़ रुपये, 1969-70 42 करोड़ रुपये, व 1977-78 186 करोड़ रुपये।

निर्यात वृद्धि के उद्देश्य से 10 जून, 1974 को SAIL International Ltd. के नाम से एक संस्था स्थापित की गयी है और ऐसी आशा है कि भविष्य में लोहा एवं इस्पात के निर्यात में भारी वृद्धि होगी।

(4) **संग्रह** (Storage)—लोहे एवं इस्पात का संग्रह बड़े-बड़े टिन शेड में किया जाता है जहाँ से माल ट्रकों व अन्य साधनों से आवश्यकता वाले स्थानों पर भेजा जा सकता है। जो माल बहुत भारी होता है उसको खुले में ही रख दिया जाता है।

(5) **विपणन** (Marketing)—मई, 1967 से लोहा एवं स्पात पर से सभी प्रकार का नियन्त्रण हटा लिया गया है। आजकल लोहा एवं इस्पात कम्पनियों ने बड़े-बड़े स्थानों पर अपने स्टॉकिस्ट नियुक्त कर रखे हैं। यह कम्पनियाँ उन्हीं को माल भेजती हैं। इन स्टॉकिस्टों से अन्य फुटकर दुकानदार व ग्राहक खरीद करते हैं। एक ही शहर में एक ही कम्पनी के कई-कई स्टॉकिस्ट भी पाये जाते हैं लेकिन सामान्यतया एक क्षेत्र या शहर के लिए केवल एक ही स्टाकिस्ट होता है।

साधारणतया विक्रय मूल्य, निर्माता के द्वारा निर्धारित नहीं किया जाता है। माँग और पूर्ति के अनुसार स्टॉकिस्ट मूल्य निर्धारित करते हैं जो इसमें विक्रय प्रणाली का दोष है। इसमें साधारणतया उपभोक्ता को ही हानि होती है। कुछ निर्माता अधिकतम मूल्य निर्धारित कर स्टॉकिस्टों को उस मूल्य पर या उससे नीचे मूल्य पर बेचने के लिए बाध्य करते हैं।

(6) **वित्त** (Finance)—लोहे एवं इस्पात के वितरण में लगी हुई संस्थाओं को कारखानों से माल नगद भुगतान करने पर ही मिलता है लेकिन इन थोक व्यापारियों को बैंकों के द्वारा माल को गिरवीं रखकर 50% से 70% तक धन अग्रिम दिया जाता है जिस पर बैंकें 15% से लेकर 18% तक वार्षिक ब्याज लेती हैं।

(II) भारत में सूती कपड़े का विपणन
(MARKETING OF COTTON PIECE-GOODS IN INDIA)

संसार में भोजन के बाद वस्त्र की आवश्यकता ही मुख्य होती हैं और भारत जैसे गर्म देश में यहाँ की जनता के प्रयोग में सूत्री वस्त्र ही अधिकतर आता है। देश में 650 बड़े मिल (Mills) हैं जो लगभग 400 करोड़ मीटर कपड़ा तैयार करते हैं। उत्पादन का बहुत बड़ा भाग—आधे से अधिक बम्बई और अहमदाबाद के केन्द्रों से प्राप्त होता है और शेष देश के अन्य भागों में बनता है। दिल्ली, कानपुर, कलकत्ता, इन्दौर, नागपुर, मदुरा और मद्रास अन्य बड़े-बड़े सूती उद्योग के केन्द्र हैं। महीन कपड़े का केन्द्र अहमदाबाद, मध्यम वर्ग के कपड़े का केन्द्र बम्बई और मोटे कपड़े का केन्द्र कानपुर है। दिल्ली में भी महीन कपड़ा ही अधिक बनता है। मद्रास की जीनें देश भर में प्रसिद्ध हैं। सूती कपड़े के विपणन के अध्ययन को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

(I) सूती मिलों के विक्रय विभाग (Sales Departments of the Mills),
(II) केन्द्रीय थोक बाजार और थोक विक्रेता (Central Wholesale Markets and Wholesalers),
(III) फुटकर व्यापार (Retail Trade)।

(I) सूती मिलों के विक्रय विभाग
(SALES DEPARTMENTS OF THE MILLS)

कपड़े का विक्रय मिलों से ही आरम्भ होता है। इस विक्रय की व्यवस्था करने के लिए प्रत्येक मिल में एक विक्रय विभाग (Sales Department) होता है।

इस विभाग का संगठन सब मिलों में एक समान नहीं होता। कुछ मिलें अपनी बिक्री का सारा प्रबन्ध एकमात्र एजेण्ट (Sole Agent) के हाथ में दे देती हैं। ऐसी मिलों में विक्रय विभाग बहुत ही छोटा होता है और उसका कार्य भी बहुत ही सीमित होता है। कुछ अन्य मिलें माँग बढ़ाने का कुछ कार्य स्वयं भी करती हैं और अपनी बिक्री का अधिकतर भार क्षेत्रीय (Regional) एजेण्टों को सौंप देती हैं। देहली क्लॉथ एण्ड जनरल मिल्स का विक्रय विभाग बहुत बड़ा और सुसंगठित है। इनके विक्रय संगठन में निर्यात, थोक और फुटकर बिक्री के प्रबन्ध के लिए अलग-अलग उप-विभाग हैं। उत्तरी भारत में शायद देहली मिल का विक्रय विभाग और सभी मिलों के विक्रय विभागों से बड़ा और सुसंगठित है।

मिलों द्वारा बिक्री (Sale by Mills)—मिलों के द्वारा बिक्री दो प्रकार से की जाती है : (अ) सीधी बिक्री (Direct Sale), व (ब) एजेण्टों के माध्यम से (Sale through Agents)।

(अ) **सीधी बिक्री** (Direct Sale by Mills)—माल बनाना और बेचना दोनों अलग-अलग विशिष्ट प्रकार के कार्य हैं। मिलों को दोनों कार्यों को स्वयं करने में कठिनाई होती है। माल को बेचने से सम्बन्धित जो कार्य हैं उनको करने वाले अलग-अलग मध्यस्थ मौजूद हैं जो अपने क्षेत्र का विशेष ज्ञान रखते हैं। साधारणतया बेचने के भिन्न-भिन्न कार्यों को स्वयं करने की अपेक्षा इन विशेषज्ञ मध्यस्थों की सेवा सस्ती और सुलभ रहती है। मध्यस्थ रुपया भी लगाते हैं और मिलों को आर्थिक सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं। इन कारणों से अधिकतर मिलें सीधी बिक्री का प्रयत्न नहीं करतीं। किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में सीधी बिक्री में सुविधा और सहूलियत रहती है। इन परिस्थितियों को दो भागों में बाँट सकते हैं—(i) अधिक मात्रा में खरीदने वाले उपभोक्ताओं को बेचना, और (ii) ऐसी किस्म की वस्तुओं का निर्माण करना जिनमें फैशन जल्दी बदलता है।

(i) कुछ संस्थाएँ अथवा औद्योगिक खरीददार अधिक मात्रा में कपड़ा खरीदते हैं। संस्थाओं में हम सरकारी विभागों, होटलों और अस्पतालों को रख सकते हैं और औद्योगिक खरीददारों में हम चीनी की मिलों और मोटर के कारखानों को उदाहरण के रूप में ले सकते हैं। चीनी मिलों को फिल्टर क्लॉथ (Filter Cloth) की आवश्यकता होती है और मोटर के कारखानों को गाड़ियों में भीतर लगाने के लिए विशेष प्रकार के वस्त्रों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के उपभोक्ताओं को सीधा बेचने में सुविधा रहती है।

(ii) जो मिलें टॉयलेट और सजावट आदि के लिए अधिक सूती माल बनाती हैं जिनमें फैशन जल्दी परिवर्तित होता है वहाँ भी मिल को इस बात की आवश्यकता होती है कि वे लगातार उपभोक्ता बाजार से अपना सम्बन्ध बनाये रखें। दूसरे जिन चीजों में फैशन जल्दी बदलता है उन्हें खरीदने में मध्यस्थों को भी कुछ हिचकिचाहट होती है। इन्हीं परिस्थितियों में कुछ मिलें सीधी बिक्री का प्रबन्ध करती हैं।

इस सम्बन्ध में सबसे अच्छा उदाहरण देहली क्लॉथ मिल्स का है। यह मिल अधिकतर महीन (Fine), अति महीन (Super Fine), टेपेस्ट्री (Tapestry) और तौलिये (Towels) जैसी वस्तुएँ बनाती है जिनमें फैशन भी जल्दी बदलते हैं और प्रतिस्पर्द्धा भी अधिक है। इस मिल की आर्थिक परिस्थिति भी खूब सुदृढ़ है। इन कारणों से सीधी बिक्री के लिए इस मिल की परिस्थितियाँ अनुकूल हैं। देहली क्लॉथ मिल की सीधी बिक्री की दुकानें तीन प्रकार की हैं : (1) **विभागीय दुकानें** (Departmental Stores)—इन दुकानों में से प्रत्येक में एक प्रबन्धक और आवश्यकतानुसार कुछ विक्रयकर्ता (Salesmen) होते हैं। इन सबको वेतन मिलता है और सेवा की शर्तें सब वही होती हैं जो मिल में हैं। (2) **फुटकर बिक्री एजेन्सियाँ** (Retail Agencies)—यह दुकानें आढ़त (Commission) के आधार पर काम करती हैं। जो माल बिक्री के लिए मिल की ओर से प्राप्त होता है उसके लिए नकद जमानत (Cash security) और विश्वास की गारण्टी (Fidelity Guarantee) देनी होती है। इनको पंखे, अलमारियाँ, फर्नीचर, आदि मिल की ओर से मिलता है किन्तु विक्रयकर्ता (Salesmen) यह अपनी ओर से नियुक्त करते हैं। (3) **नामजद फुटकर बिक्री स्टॉकिस्ट्स** (Nominated Retail Stockists)—इन दुकानों को मिल की थोक बिक्री की दर पर माल मिलता है और फुटकर बिक्री की दरों पर बेचा जाता है। दोनों मूल्यों के बीच का अन्तर इन्हें प्राप्त होता है। इनको पंखे, फर्नीचर, बिजली, आदि वस्तुएँ नहीं दी जाती हैं। इन दुकानों के मालिकों को 6,000 रुपये नकद जमा करना पड़ता है और इतने ही रुपये का साख बीमा कराना होता है तब इनको एक बार में 12,000 रुपये तक का माल दिया जाता है। जब तक पूरा रुपया अदा नहीं हो जाता तब तक माल धरोहर (Goods held on trust) समझा जाता है।

देहली क्लॉथ मिल के सिवाय दिल्ली और उत्तर प्रदेश की और किसी मिल में सीधी बिक्री व्यवस्था नहीं है। कानपुर की कुछ मिलें अपने फाटक पर फुटकर बिक्री की एक-एक दुकान रखती हैं। यह दुकान खासकर अपने यहाँ काम करने वाले कर्मचारियों की सुविधा के लिए है। किसी सीमा तक दूकान राज्य सरकार की इस इच्छा का भी फल है कि मिलों को उचित मूल्य की दुकान (Fair Price Shop) का कुछ प्रबन्ध करना चाहिए।

(ब) एजेण्टों के माध्यम से (Sale through Agents)—मिलें अपना कपड़ा बेचने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की एजेंसियों (Agencies) का प्रबन्ध करती हैं। (1) **एकमात्र बिक्री एजेण्ट** (Sole Selling Agents)—कानपुर की अधिकतर मिलों ने इनकी सेवाएँ प्राप्त कर रखी हैं जो इन मिलों का पूरा उत्पादन बेचने की जिम्मेदारी लेते हैं। किन्तु जो कपड़ा देश के बाहर निर्यात कर दिया जाता है अथवा जो सीधा सरकार को बेच दिया जाता है वह एजेन्सी समझौते से बाहर होता है और उसकी

बिक्री पर इन्हें कमीशन नहीं मिलता है। कुछ मिलें अपने एजेण्टों को कमीशन के अतिरिक्त थोड़ी दलाली और देती हैं। यह दलाली उन दलालों को देने के लिए होती है जिनके द्वारा एजेण्ट अपनी मिल के कपड़े की बिक्री का प्रबन्ध करते हैं। साधारणतया यह मिलें अपने कपड़े की बिक्री के लिए एकमात्र बिक्री एजेण्ट (Sole Selling Agents) के प्रयत्नों पर निर्भर रहती हैं और अपनी ओर से विक्रयकर्त्ता (Salesmen) नहीं भेजती हैं। साधारणतया एकमात्र विक्री एजेण्ट (Sole Selling Agetns) कपड़े के वितरण के लिए अधिकृत थोक विक्रेता (Authorised wholesale dealers) की नियुक्ति करते हैं। अक्सर एकमात्र विक्री एजेण्टों (Sole Selling Agents) के साथ 6 से लेकर 10 तक अधिकृत विक्रेता (Authorised wholesale dealers) होते हैं जो अधिकतर केवल एक ही मिल का माल बेचते हैं। कानपुर के एकमात्र बिक्री एजेण्टों (Sole Selling Agents) ने उत्तर प्रदेश के बाहर की बिक्री के लिए कपड़े की प्रमुख मण्डियों में अपने शाखा-दफ्तरों की स्थापना कर रखी है। (2) **क्षेत्रीय या प्रादेशिक एजेण्ट** (Territorial Agents)—कुछ मिलें जो एकमात्र बिक्री एजेण्ट (Sole Selling Agents) की नियुक्ति नहीं करतीं वे देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रादेशिक या क्षेत्रीय एजेण्ट (territorial agents) नियुक्त कर देती हैं। यह एजेण्ट केवल अपने क्षेत्र में अपनी मिल के माल की बिक्री का प्रयत्न करते हैं। जिन प्रादेशिक या क्षेत्रीय एजेण्टों (territorial agents) का क्षेत्र विस्तृत होता है वे एकमात्र बिक्री एजेण्ट (Sole Selling Agents) की ही तरह अधिकृत थोक विक्रेता (Authorised wholesale dealers) के द्वारा अपने मिल के माल की बिक्री का प्रबन्ध करते हैं। यदि क्षेत्र छोटा होता है तो दलालों की मदद से ही काम चला लिया जाता है। (3) **थोक बिक्री एजेण्ट** (Wholesale Agents)—तीसरे प्रकार के मध्यस्थ थोक विक्री एजेण्ट (wholesale agents) कहलाते हैं। यह एजेण्ट भी प्रादेशिक एजेण्ट (territorial agents) की तरह ही काम करते हैं। किन्तु यह कुछ ऐसे कार्य भी करते हैं जो साधारणतया प्रादेशिक या क्षेत्रीय एजेण्ट (territorial agents) नहीं करते और थोक व्यापारियों (wholesale merchants) द्वारा किये जाते हैं। इसलिए इनको कुछ अधिक कमीशन मिलता है। इन एजेण्टों की बिक्री का ढंग और एजेन्टों से भिन्न है। यह लोग माल अपने गोदामों में रखते हैं और वहीं से ग्राहकों को देते हैं जबकि दूसरे एजेण्ट आदेश प्राप्त करके मिल को भेज देते हैं और माल वहाँ से सीधा ग्राहक के पास आ जाता है। यह एजेण्ट खुली गाँठों से पूरे थान भी बेचते हैं और उधार बिक्री और वसूलयाबी का काम भी करते हैं।

(II) केन्द्रीय थोक बाजार और थोक विक्रेता

(CENTRAL WHOLESALE MARKETS AND WHOLESALERS)

सूती वस्त्रों के केन्द्रीय थोक बाजार दूर दूर पर केवल बड़े-बड़े नगरों में होते हैं। पहले उत्तरी भारत में सूती वस्त्रों के चार बड़े-बड़े केन्द्रीय थोक बाजार थे जहाँ से उत्तर भारत के सब भागों में सूती माल का वितरण होता था। यह बाजार

कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली और अमृतसर में स्थित थे। देश के विभाजन के बाद से अमृतसर के थोक बाजार की महत्ता बहुत कम हो गयी क्योंकि जिन भागों में यहाँ से माल का वितरण होता था वे भाग अब पाकिस्तान में चले गये। केन्द्रीय थोक बाजार में अधिकतर बड़े-बड़े थोक व्यापारी और थोक एजेण्ट काम करते हैं। यह अपने नगर के फुटकर विक्रेताओं और आस-पास के छोटे नगरों के छोटे थोक विक्रेताओं को थोक माल बेचते हैं। यहाँ पर हम दिल्ली और कानपुर के केन्द्रीय थोक बाजारों का सूक्ष्म विवरण देंगे।

दिल्ली—रेलों का विस्तार होने के पूर्व भी दिल्ली में सूती कपड़े का केन्द्रीय बाजार था जो पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के विस्तृत क्षेत्रों में सूती कपड़े का वितरण करता था। रेलों के द्वारा सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद में दिल्ली का महत्व और भी बढ़ गया और वह देश का एक बहुत बड़ा कपड़े का केन्द्रीय थोक बाजार बन गया। दिल्ली का मुख्य थोक बाजार चाँदनी चौक में स्थित है। इस बाजार के भिन्न-भिन्न भाग कटरे कहलाते हैं (जैसे कटरा नवाब, कटरा सुभाष, आदि) जिनमें लगभग 1,500 थोक व्यापारी काम करते हैं। एक-एक कटरे में लगभग 50 से लेकर 100 तक दुकानें हैं। दिल्ली में बना हुआ माल इस बाजार की आवश्यकताओं का बहुत ही छोटा भाग है। साल भर में इस बाजार में लगभग सत्तर-अस्सी करोड़ रुपये का माल बिकता है जिसका अधिकतर भाग बम्बई, अहमदाबाद, मद्रास, इन्दौर, कानपुर, मोदीनगर तथा कलकत्ता आदि से, आता है। इस बाजार में बिकने वाले माल का लगभग 55 प्रतिशत बम्बई और अहमदाबाद से आता है। दिल्ली में बिकने वाले माल का लगभग 98 प्रतिशत माल मध्यम और महीन कोटि का होता है। इस बाजार में बिकने वाला माल जैसे प्रधानतया बम्बई और अहमदाबाद के उत्पादन केन्द्रों से आता है उसी प्रकार से इस माल के लगभग 80 प्रतिशत माल का वितरण पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के क्षेत्रों में होता है। शेष माल की खपत हिमाचल प्रदेश, जम्मू तथा कश्मीर, नेपाल, बिहार तथा मध्य प्रदेश आदि के बाजारों में होती है।

कानपुर—दिल्ली के कपड़ा बाजार के मुकाबले में. जो शताब्दियों पुराना है, कानपुर का बाजार थोड़े ही समय का है। गंगा नदी पर स्थित होने के कारण कपास का व्यापार तो यहाँ कुछ पहले से होता था किन्तु जब ईस्ट इण्डिया रेलवे के पहुँचने के बाद 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब कई कपड़े के मिल यहाँ स्थापित हो गये तो कानपुर कपड़े का वितरण केन्द्र भी बन गया है। इस नगर के आस-पास बहुत बड़ा और घनी आबादी वाला उपभोक्ता क्षेत्र होने के कारण शीघ्र ही यह एक अच्छा केन्द्रीय थोक बाजार बन गया। कानपुर के थोक बाजार में लगभग 750-850 दुकानें हैं। मुख्य बाजार जनरल गंज में है और काहू कोठी क्षेत्र में भी काफी दुकानें हैं। कानपुर के बाजार से स्थानीय मिलों के कपड़ों का ही वितरण अधिक होता है। यहाँ की मिलों में अधिकतर मोटे कपड़े का उत्पादन होता है और इसी कपड़े के वितरण के

लिए यह बाजार प्रसिद्ध है। स्थानीय मिलों के एजेण्टों के अतिरिक्त बाहर की मिलों के बहुत से क्षेत्रीय एजेण्टों (territorial agents) के दफ्तर भी इस नगर में हैं। महीन कपड़े की क्षेत्रीय माँग की पूर्ति के लिए कपड़ा बम्बई और अहमदाबाद आदि उत्पादन केन्द्रों से मँगाया जाता है। कानपुर के केन्द्रीय थोक बाजार से कपड़ा पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान और पंजाब को अधिक भेजा जाता है। इस बाजार में लगभग 12 लाख मन कपड़ा बाहर के राज्यों से आता है और लगभग $2\frac{1}{2}$ लाख मन कपड़ा बाहर के राज्यों को जाता है। आयात का 44% बम्बई और अहमदाबाद से, 16% मध्य प्रदेश से, 5% दिल्ली से और शेष अन्य राज्यों से आता है। निर्यात का 43% बिहार को, 11% पंजाब को, 7% दिल्ली को, 6% मध्य प्रदेश को, 4% राजस्थान को और शेष अन्य राज्यों को जाता है। यह आँकड़े पूरे उत्तर प्रदेश राज्य के हैं किन्तु इस माल का अधिकतर आयात-निर्यात कानपुर के बाजार से ही सम्बन्धित है।

बड़े-बड़े केन्द्रीय थोक बाजारों के अतिरिक्त, जो प्रादेशिक आधार पर काम करते हैं, फर्रुखाबाद तथा हाथरस जैसे नगरों में स्थानीय थोक बाजार भी हैं जहाँ से आस-पास के फुटकर विक्रेता अपना माल खरीदते हैं। पहले ऐसे बाजारों की संख्या कम थी। किन्तु द्वितीय युद्ध काल में कपड़े के वितरण पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित हो गया और प्रत्येक जिले में कपड़ा उत्पादन केन्द्रों से पहुँचने लगा। कपड़े का एक जिले से दूसरे जिले में जाना बन्द कर दिया गया। इस परिस्थिति से प्रत्येक जिले के मुख्य नगर (District Head quarter) में कुछ थोक विक्रेता व्यापारी का काम करने लगे और बड़ी संख्या में स्थानीय थोक बाजार बन गये। इन छोटे थोक बाजारों के थोक व्यापारियों के सीधे सम्पर्क उत्पादन केन्द्रों से स्थापित हो गये जो युद्ध काल के नियन्त्रण हटा दिये जाने के बाद भी बने रहे। इस प्रकार से कपड़ों के थोक व्यापार का काफी विकेन्द्रीकरण हो गया।

थोक व्यापारी (Wholesalers)

वह व्यापारी हैं जो बड़ी मात्रा में सूती वस्त्र उत्पादन केन्द्रों से खरीदते हैं और छोटी मात्रा में फुटकर व्यापारियों को बेचते हैं। साधारणतया यह लोग कपड़े की बन्द गाँठें बेचते हैं। थोक व्यापारी और खरीददारों के बीच सौदे आढ़तियों (Commission Agents) द्वारा तय किये जाते हैं। यह थोक व्यापारी स्वयं एकमात्र एजेण्ट (Sole Agents) या क्षेत्रीय एजेण्ट (Territorial Agents) के माध्यम से मिलों से कपड़ा खरीदते हैं। छोटे थोक व्यापारी खुली गाँठों से पूरे थान भी बेचते हैं। अधिकतर फुटकर विक्रेताओं को उधार खाते भी कपड़ा बेचा जाता है। स्थानीय थोक बाजारों में मध्यस्थ का काम आढ़तियों (Commission Agents) के स्थान पर दलालों (Brokers) द्वारा किया जाता है। साधारणतया **थोक व्यापारियों का वर्गीकरण** दो प्रकार से कर सकते हैं: (1) कुछ व्यापारी केवल किसी विशेष मिल का ही माल बेचते हैं, और (2) कुछ व्यापारी केवल कुछ विशेष किस्म का कपड़ा ही

बेचते हैं। क्षेत्रीय आधार पर भी दो वर्ग हो सकते हैं—(1) प्रादेशिक थोक व्यापारी, और (2) स्थानीय थोक व्यापारी।

(III) फुटकर व्यापार
(RETAIL TRADE)

फुटकर व्यापार का बड़ा महत्व है क्योंकि अन्त में कपड़ा फुटकर विक्रेताओं के हाथ से ही अन्तिम उपभोक्ता के हाथ में पहुँचता है। भारत जैसे देश में जहाँ अभी शिक्षा की काफी कमी है और जहाँ अभी उपभोक्ताओं को प्रभावित करने का मिलों का प्रयत्न नगण्य सा ही है, फुटकर विक्रेता का स्थान और भी महत्वपूर्ण है। कहते हैं कि उत्तर प्रदेश में केवल 1·4 प्रतिशत लोग ही किसी विशेष मिल के बने हुए कपड़े को खरीदने का आग्रह करते हैं। शेष क्रेता किसी भी मिल का कपड़ा दुकानदार की राय से खरीद लेते हैं। इन 1·4 प्रतिशत क्रेताओं में से भी अधिकतर शहरों के रहने वाले हैं। इसका आशय यह है कि मिलों की ओर से अपनी वस्तुओं को जन-प्रिय बनाने का प्रयत्न लगभग नहीं के बराबर है। अहमदाबाद में एक अध्ययन यह जानने के लिए किया गया था कि कपड़े के खरीददार अपनी खरीद में किन बातों से प्रभावित होते हैं। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह था कि लगभग 60 से 70 प्रतिशत तक फुटकर दुकानदारों से प्रभावित होते हैं, 20 से 24 प्रतिशत दूसरों को पहने देखकर, लगभग 2 प्रतिशत कपड़ा सीने वाले दर्जियों की राय से, 1 प्रतिशत से भी कम समाचार-पत्रों के विज्ञापन से और शेष अन्य कारणों से प्रभावित होते हैं। इससे पता चलता है कि कपड़े के फुटकर व्यापार में फुटकर विक्रेताओं का बहुत प्रभाव है।

फुटकर विक्रेता साधारणतया दो प्रकार के हैं—(1) स्थायी दुकान रखने वाले और (2) फेरी वाले। (1) **स्थायी दुकान रखने वाले** अधिकतर बड़े शहरों और कस्बों में काम करते हैं। इनमें से कोई-कोई तो काफी ऊँचे पैमाने पर काम करते हैं और कुछ छोटी-छोटी दुकानें रखते हैं। यह लोग अधिकतर सूती कपड़ों के अतिरिक्त, नकली रेशम, रेयन, नायलौन तथा ऊनी कपड़े भी बेचते हैं। (2) **फेरी वाले**—यह लोग अपनी पीठ पर, साइकिल पर, अथवा टट्टू पर लाद कर कपड़ा मुहल्लों और गाँवों में घूम-घूमकर बेचते हैं। इनमें बहुत से तो कोली अथवा जुलाहे होते हैं जो अपना बुना हुआ कपड़ा बेचते हैं। अब ज्यों-ज्यों पक्की सड़कों का विस्तार बढ़ रहा है और मोटर-बस दूर-दूर तक जाने लगी हैं त्यों-त्यों फेरी वालों का क्षेत्र संकुचित होता जाता है, लोग पास के बाजारों में जाकर अपनी रुचि के अनुकूल कपड़े का चुनाव करना अधिक पसन्द करने लगे हैं। उत्तर प्रदेश के शहरों, कस्बों और गाँवों में कमीजों के लिए पापलिन पाजामा और सलवार के लिए लट्ठा और पतलूनों के लिए जीन बहुत चलती है। कपड़े की पूरी बिक्री का लगभग 75 से 80 प्रतिशत मिलों का बना सूती कपड़ा होता है।

हमारे देश का कपड़े का फुटकर व्यापार अभी तक बहुत ही कम संगठित है। गाँवों में अभी कपड़े की फुटकर बिक्री की दुकानों का अभाव-सा ही है। ज्यों-ज्यों पक्की

सड़कों का विकास होगा और गाँव में शिक्षा तथा पक्के मकानों की वृद्धि होगी और जीवन-स्तर ऊँचा होगा त्यों-त्यों गाँवों में भी कपड़े की फुटकर बिक्री की व्यवस्था में सुधार होगा।

(III) जूट निर्मित वस्तुओं का विपणन
(MARKETING OF JUTE MANUFACTURES)

जूट एक कृषि उत्पादित उपज है जिसका उत्पादन लगभग 71 लाख गाँठें प्रतिवर्ष होता है लेकिन यह उत्पादन भारतीय जूट मिल की आवश्यकता से कहीं कम है अत: इसका बंगला देश व अन्य देशों से आयात किया जाता है।

इस कच्चे जूट से हैसियन (Hessian), जूट के बोरे (Sacking), व सुतली आदि, को निर्मित किया जाता है। जिनका उपयोग वस्तुओं के पैकिंग (Packing) व गलीचे आदि, के लिए किया जाता है।

भारत जूट निर्मित वस्तुओं जैसे- बोरे, सुतली व गलीचे आदि का निर्यात भी करता है। 1977-78 में इस प्रकार की वस्तुओं का निर्यात 245 करोड़ रुपये का किया गया है। यह निर्यात मिलों द्वारा सीधा ही विदेशी क्रेता को किया जाता है। कभी-कभी थोक विक्रेता भी निर्यात करने में सहयोग देते हैं।

भारत के अन्दर जूट निर्मित वस्तुओं का विपणन निम्न प्रकार किया जाता है :

मिलों द्वारा बिक्री

जूट मिलों द्वारा निर्मित वस्तुओं की बिक्री दो प्रकार से होती है—एक तो, मिल स्थान-स्थान पर अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर देते हैं जिनका काम मिल से माल मँगाना व अपने शहर में बेचना है। दूसरे, स्थान-स्थान के थोक व्यापारी सीधे ही मिल से सम्पर्क स्थापित करते हैं। यह सम्पर्क पत्र व्यवहार या दलालों के माध्यम से होता है। जब सौदा तय हो जाता है तो मिल उस माल को रेल या ट्रक के माध्यम से भेज देते हैं जिसकी बिल्टी सामान्यतया बैंक के माध्यम से क्रेता को भेज दी जाती है। जब क्रेता को माल मिल जाता है तो वह उसको अपने शहर में बेचने की प्रक्रिया प्रारम्भ करता है।

कुछ मिल सीधे ही ग्राहकों को माल नहीं भेजते हैं। इसके लिए वे अपने प्रतिनिधि या थोक विक्रेता नियुक्त कर देते हैं जिनका कार्य मिल के उत्पादनों को बेचना है। ये इस कार्य को दलालों व उप-दलालों के माध्यम से करते हैं। वस्तुओं की मिल से डिलीवरी यही प्रतिनिधि या थोक विक्रेता लेते हैं जिसका भुगतान भी मिल को यही करते हैं। ग्राहक द्वारा भुगतान इन्हीं प्रतिनिधियों या थोक विक्रेताओं को किया जाता है।

जूट निर्मित वस्तुओं के व्यापार में सट्टेबाजी भी होती है। अत: इसके लिए भावी सौदे भी किये जाते हैं, जिनको एक भावी निश्चित तिथि पर पूरा किया जाता है। ऐसे सौदों में माल की डिलीवरी भी की जाती है। लेकिन ऐसा सदा नहीं होता है।

मध्यस्थों द्वारा बिक्री

जो बिक्री प्रतिनिधि या विक्रेता माल अपने शहर में मँगाते हैं वे वहाँ उसकी बिक्री करते हैं। यह बिक्री नगद व उधार दोनों प्रकार की होती है। इसमें कुछ विक्रेता तो केवल थोक विक्रेता के रूप में ही काम करते हैं जबकि कुछ थोक व फुटकर दोनों ही प्रकार से करते हैं। इस प्रकार शहरों में थोक व फुटकर दोनों प्रकार के विक्रेता पाये जाते हैं।

वित्त व्यवस्था

जूट मिलों को वित्त व्यवस्था बैंकों द्वारा ही प्रदान की जाती है।

भण्डार

जूट निर्मित वस्तुएँ मिल अपने ही गोदामों व भण्डारों में रखते हैं लेकिन आवश्यकता पड़ने पर सार्वजनिक भण्डारों का भी उपयोग करते हैं जिसके लिए उन्हें किराया देना पड़ता है। इनके अतिरिक्त मध्यस्थों द्वारा भी भण्डार सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। निर्यात के लिए कलकत्ता बन्दरगाह पर भी कई भण्डार हैं।

जूट निर्मित वस्तुओं का उपयोग पैंकिग के लिए अधिक किया जाता है लेकिन पैंकिग की नवीनतम वस्तुएँ आ जाने के कारण इस पर असर पड़ रहा है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि निर्माण व विपणन में कुशलता बरती जाये जिससे कि यह प्रतिस्पर्धात्मक बनी रहें।

प्रश्न

1. किस आधार पर निर्मित उपभोक्ता माल का वर्गीकरण सुविधा का माल, सौदे का माल व विशिष्ट माल में किया जाता है? उनके विपणन के विभिन्न तरीकों को सूक्ष्म में समझाइए।

   On what basis are the manufactured consumer goods classified into convenience, shopping and speciality goods? Discuss briefly the different methods of marketing them.

2. भारत में लोहा-इस्पात के विपणन पर एक संक्षिप्त विवरण दीजिए।

   Describe briefly the marketing of Iron-Steel in India.

3. भारत में सूती कपड़े की बिक्री किस प्रकार होती है?

   How are cotton textiles marketed in India?

4. भारत में सूती वस्त्र के विपणन की विवेचना कीजिए। क्या आप निर्माताओं द्वारा सीधे फुटकर विक्रय का समर्थन करते हैं? इसके लाभ तथा हानियाँ बताइये।

   Discuss the marketing of cotton piece-goods in India. Do you favour direct retailing by manufacturers? Explain its advantages and disadvantages.

23
स्कन्ध विनिमय या स्कन्ध विपणि
[STOCK EXCHANGES]

स्कन्ध विनिमय या स्कन्ध विपणि का अर्थ
(MEANING OF STOCK EXCHANGE)

स्कन्ध विनिमय से अर्थ उस बाजार से है जहाँ अंशों, ऋणपत्रों, सरकारी प्रतिभूतियों एवं बॉण्डों का क्रय एवं विक्रय होता है। अंग्रेजी भाषा में इनको Stock Exchanges कहते हैं। सामान्य भाषा में इन्हीं बाजारों को शेयर बाजार, सट्टा बाजार, स्कन्ध विनिमय व स्कन्ध विपणि भी कहते हैं। स्कन्ध विपणि या विनिमय की निम्न परिभाषाएँ हैं :

(1) **पाइल (Pyle) के शब्दों में**, "प्रतिभूति विनिमय वह बाजार स्थान हैं जहाँ पर सूचियन प्रतिभूतियों का विनियोग अथवा सट्टे के लिए क्रय-विक्रय किया जाता है।"[1]

(2) **डा के. एल गर्ग (Dr. K. L Garg) के मत में**, "एक स्कन्ध विनिमय व्यक्तियों का एक संघ है जो जनता के लिए आढ़त (कमीशन) पर स्कन्ध, बॉण्ड व अंशों के क्रय व विक्रय में लगा हुआ है और जो निश्चित नियमों व रीतियों के अनुसार कार्य करता है।"[2]

(3) **प्रतिभूति नियमन अधिनियम** (The Securities Contracts (Regulation) Act) 1956 **के अनुसार**, "स्कन्ध विनिमय से तात्पर्य व्यक्तियों के ऐसे समुदाय से है जो समामेलित हो अथवा नहीं लेकिन जिसके निर्माण का उद्देश्य क्रय, विक्रय या प्रतिभूतियों के व्यवहारों को सहायता पहुँचाना, नियमित करना या नियन्त्रित करना है।"[3]

---

1 "Security exchanges are market places where securities that have been listed thereon may be brought and sold for either investment or speculation." —Pyle: *Marketing Priniciplis.* P. 157.

2 "A Stock Exchange, is an association of persons engaged in the buying and selling of stocks, bonds and shares for the public on commission and are guided by certain rules and usages." —Late Dr. K. L. Garg : *Stock Exchanges in India*, p. 2.

3 "Stock Exchange means any body of individuals, whether incorporated or not, constituted for the purpose of assisting, regulating, or controlling the business of buying, selling or dealing in securities."—*The Securities Contracts (Regulation) Act*, 1956, Section 2 (j).

(4) **हर्टले विदर्स** (Hartley Withers) **की राय में,** "स्कन्ध विनिमय एक बड़े गोदाम की तरह है, जहाँ विभिन्न प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय एक निश्चित मूल्य पर, जो कि एक अधिकारिक सूची में दिये होते हैं, किया जाता है।"[1]

इन परिभाषाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि **स्कन्ध विनिमय एक प्रकार का वह बाजार है जहाँ प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय निश्चित नियमों के अनुसार पहले से पंजीकृत प्रतिभूतियों में ही होता है।** स्कन्ध विनिमय स्वयं अपने लिए प्रतिभूतियाँ न क्रय करता है और न बेचता है। वह केवल क्रय-विक्रय की क्रियाओं को नियमित करने में सहायता करता है। यह वह स्थान है जहाँ पर क्रेता व विक्रेता परस्पर मिलते हैं।

स्कन्ध विनिमयों के लक्षण
(CHARACTERISTICS OF STOCK EXCHANGES)

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि स्कन्ध विनिमयों में निम्न विशेषताएँ या लक्षण पाये जाते हैं :

(1) स्कन्ध विनिमय एक संगठित बाजार है। (2) यहाँ पर विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों जैसे, अंश, ऋण-पत्र, बॉण्ड, आदि का क्रय-विक्रय होता है। (3) स्कन्ध विनिमय पर व्यवहार नियमों के अनुसार ही होते हैं। यह नियम विनिमय के द्वारा बनाये जाते हैं। (4) स्कन्ध विनिमय का कार्य व्यवहारों में सहायता पहुँचाना, उन्हें नियमित करना तथा उन पर नियन्त्रण रखना है। (5) यहाँ पर उन्हीं प्रतिभूतियों में क्रय-विक्रय होता है जो पहले से पंजीकृत होती हैं। (6) स्कन्ध विनिमय पर व्यवहार भी अधिकृत व्यक्तियों द्वारा किये जा सकते हैं जो व्यवहार अपने लिए करते हैं या अन्य व्यक्तियों की ओर से करते हैं।

स्कन्ध विनिमय या प्रतिभूति बाजार के कार्य
(FUNCTIONS OF A STOCK EXCHANGE OR SECURITY MARKET)

स्कन्ध विनिमय का कार्य (i) "सदस्यों द्वारा सुविधापूर्वक सौदे करने के लिए विनिमय कमरे व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध करना, (ii) सदस्यों में उच्च व्यापारिक सम्मान व सत्य निष्ठा बनाये रखना, एवं (iii) व्यापार तथा व्यवसाय के उच्च तथा न्यायोचित सिद्धान्तों को बढ़ावा देना तथा उनका प्रतिपादन करना है।"[2] गोरवाला

---

1 "A stock exchange is something like a vast warehouse where securities are taken away from selves and sold across the counters at a fixed price in a catalogue which is called the official list."
—Hartley Withers : *Stock and Shares*, p. 221.

2 Its function is "to furnish exchange rooms and other facilities for the convenient transaction of their business by its members as brokers, to maintain high standard of commercial honour and intergrity among its trade and business." —*New York Stock Exchange Year Book*, 1934, quoted from the *Stock Exchanges in India*, Late Dr. K. L. Garg, p. 6.

कमेटी के अनुसार, "एक स्कन्ध विनिमय का न्यायसंगत कार्य एक बाजार और एक सेवा को इस प्रकार संगठित करना है कि जनता का विस्तृत हित तथा क्रेता और विक्रेताओं के हितों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिभूतियों का विपणन सरलतापूर्वक लगातार होता रहे।"[1] इन कार्यों के अतिरिक्त स्कन्ध विनिमय के निम्न आर्थिक कार्य और हैं :

(1) **पूँजी रचना** (Capital Formation)—स्कन्ध विनिमयों पर प्रतिभूतियों की भाव सम्बन्धी बातों का प्रकाशन जन-साधारण को बचत करने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा जिनके पास बचत है उन्हें विनिमय पर प्रतिभूतियों में लगाने के लिए प्रेरित करता है। इसका प्रभाव यह होता है कि पूँजी की रचना होती है। इस प्रकार स्कन्ध विनिमय का प्रथम कार्य पूँजी की रचना करना है।

(2) **पूँजी की तरलता एवं गतिशीलता** (Liquidity and Mobility of Capital)—स्कन्ध विनिमयों का दूसरा आर्थिक कार्य एक ओर तो पूँजी को तरलता प्रदान करना व दूसरी ओर गतिशीलता लाना है। स्कन्ध विनिमय पर प्रतिभूतियों की खरीद व बिक्री किसी भी समय की जा सकती है, इससे प्रतिभूतियों में तरलता आ जाती है। अर्थात् विनियोजक किसी भी समय पूँजी को वापिस प्राप्त कर सकता है। यदि कोई प्रतिभूति कम लाभप्रद है तो उसको बेचकर अन्य अधिक लाभप्रद प्रतिभूति खरीदी जा सकती है। इस प्रकार प्रतिभूतियों में गतिशीलता आ जाती है।

(3) **तैयार एवं निरन्तर बाजार** (Ready and Continuous Market)—स्कन्ध विनिमय का तीसरा कार्य तैयार एवं निरन्तर बाजार उपलब्ध करना है। इन बाजारों में हर समय क्रेता एवं विक्रेता पाये जाते हैं जिससे बाजार में निरन्तरता बनी रहती है।

(4) **मूल्य निर्धारण** (Evaluation)—मूल्य निर्धारण स्कन्ध विनिमयों का चौथा कार्य है। स्कन्ध विनिमय पर प्रतिभूतियों के मूल्यों का निर्धारण आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय आदि विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखकर होता है जिससे उचित मूल्य निर्धारित होते हैं।

(5) **व्यवहार में सुरक्षा** (Safety in Dealings)—स्कन्ध विनिमय निश्चित नियमों के अन्तर्गत कार्य करते हैं जिससे जाली प्रतिभूतियों में क्रय-विक्रय का भय कम से कम हो जाता है। साथ ही क्रय-विक्रय का ढंग एवं कमीशन भी निश्चित होता है जिससे विनियोक्ता में विश्वास पैदा होता है। यदि कोई सदस्य स्कन्ध विनिमय के नियमों का पालन नहीं करता तो उसको दण्डित किया जा सकता है व

---

1 "The Legitimate function of a stock exchange is to provide, consistent with the large public interest, a forum and a service which are so organised, in the interests of both buyers and sellers, as to ensure the smooth and continual marketing of shares." —*Report of the Committee on Proposed Legislation for the Regulation of Stock Exchanges and Contracts in Securities,* Government of India.

विनिमय से निकाला भी जा सकता है। इस प्रकार विनिमय विनियोजक को सुरक्षा प्रदान करता है।

(6) **अनुसूचित कम्पनियों के बारे में पूर्ण जानकारी** (Full Information Regarding Listed Companies)—स्कन्ध विनिमय का छठा कार्य यह है कि वह अनुसूचित कम्पनियों के बारे में आर्थिक सूचनाएँ एकत्रित करे तथा उनका प्रकाशन करे जिससे कि सदस्यों को उसकी जानकारी हो सके। अप्रकाशित सूचनाओं को सदस्यों द्वारा माँगने पर भी इस प्रकार की सूचनाएं उनको दे दी जाती हैं।

उपरोक्त कार्यों के अध्ययन में हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि "**स्कन्ध विनिमय न केवल व्यापारिक व्यवहारों की प्रमुख नाट्यशालाएँ हैं बल्कि वे मापदण्ड हैं जो व्यापारिक वातावरण की सामान्य दशाओं को दर्शाते हैं।**"[1] स्वर्गीय डा. के. एल. गर्ग के अनुसार, "**स्कन्ध विनिमय विश्व का एक बड़ा बाजार है, एक राष्ट्र की राजनैतिक एवं वित्तीय दशाओं का स्नायु केन्द्र है तथा उसकी सम्पन्नता एवं विपन्नता का मापदण्ड है।**"[2] स्कन्ध विनिमय के महत्व को देखते हुए एक बार बिस्मार्क ने कहा था कि "**यदि आप ब्रिटेन के बारे में जानना चाहते हैं तो संसद का अध्ययन मत करिए, लन्दन स्कन्ध बाजार को देखिए।**"[3]

स्कन्ध विनिमयों का महत्व
(IMPORTANCE OF STOCK EXCHANGES)

स्कन्ध विनिमय ऐसे साधन हैं जो नये उद्योगों को पूँजी दिलाने में सहायता करते हैं तथा पूँजी प्रवाह में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं जिससे पूँजी में तरलता आ जाती है तथा उद्योगों को वित्तीय सुविधा मिल जाती है। यही कारण है कि स्कन्ध विनिमयों को पूँजी का गढ़ (Citadel of Capital) एवं मूल्यों का मन्दिर (Temple of Values) कहा जाता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में तो स्कन्ध विनिमयों का महत्व और भी अधिक है। इनको एक धुरी समझा जाता है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण पूँजी बाजार घूमता रहता है।

स्कन्ध विनिमयों के सम्बन्ध में प्रो. मार्शल की राय है कि "स्कन्ध विनिमय केवल व्यापारिक व्यवहारों के प्रमुख प्रदर्शनकर्ता ही नहीं हैं, बल्कि वे मापदण्ड हैं जो

---

1 "Stock Exchanges are not merely the chief theatres of business transactions, they are also barometers which indicate the general conditions of the atmosphere of business." —Marshall : *Trade Industry and Commerce*, p. 89.

2 "A Stock Exchange has been described as the mark of the world, the nerve centre of politics and finances of a nation, the barometer of its prosperity and adversity." —Late Dr. K. L. Garg : *Stock Exchanges in India*, p 1.

3 "If you want to know, how things in Britain are going on, do not study the House of Commons, but watch the London Stock Exchange."

व्यापारिक वातावरण की सामान्य दशाओं को दर्शाते हैं। प्रतिभूतियों के मूल्य घटने व बढ़ने से विभिन्न उद्योगों की आर्थिक दशाओं के बारे में विनिमय पर ज्ञान प्राप्त हो जाता है।"[1]

स्कन्ध विनिमय बचतों को प्रोत्साहित करते हैं तथा उन्हें विनियोजित करने में सहायता प्रदान करते हैं। इन विनिमयों का इसलिए भी महत्व है कि ये सरकारों को भी ऋण दिलाने में सहायता प्रदान करते हैं।

भारत में स्कन्ध विनिमयों का उद्गम, विकास एवं वर्तमान स्थिति
(ORIGIN, DEVELOPMENT & PRESENT POSITION OF STOCK EXCHANGES IN INDIA)

भारत में स्कन्ध विनिमयों का उद्गम 19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में बम्बई में हुआ है जहाँ 1875 में दलालों ने मिलकर एक प्रारम्भिक संघ की स्थापना की थी। परन्तु नियमित स्कन्ध विनिमय के रूप में नेटिव शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसियेशन की स्थापना ऐच्छिक-बिना-लाभ (Voluntary Non-Profit) आधार पर दिसम्बर, सन् 1886 में की गयी है। आजकल इस स्कन्ध विनिमय को वम्बई स्टॉक एक्सचेंज के नाम से पुकारते हैं। इस विनिमय की स्थापना से पूर्व यद्यपि भारत में प्रतिभूतियों की खरीद व बिक्री होती थी लेकिन कोई व्यवस्थित व अनुशासित ढंग नहीं था। खरीद व विक्री के लिए कोई संविधान व नियम नहीं थे।

1880 के बाद अहमदाबाद में मिलों की स्थापना तीव्र गति से होने लगी अतः अंशों की खरीद व बिक्री की आवश्यकता प्रतीत हुई। 1894 में दलालों ने एक संघ "दी अहमदाबाद शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसियेशन" के नाम से वम्बई स्टॉक एक्सचेंज के बिल्कुल अनुरूप ऐच्छिक-बिना-लाभ (Voluntary Non-Profit) आधार पर स्थापित किया। भारत का यह दूसरा स्कन्ध विनिमय था।

15 जून, 1908 को कलकत्ता में "दी कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज एसोसियेशन" के नाम से तीसरा स्कन्ध विनिमय स्थापित किया गया। आजकल इसका नाम कलकत्ता स्टॉक एक्सचेंज है। **इस प्रकार प्रथम महायुद्ध से पूर्व भारत में तीन स्कन्ध विनिमय—बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता—कार्य कर रहे थे।**

युद्ध के कारण अंश बाजार में चेतना आयी और प्रतिद्वन्द्वी स्कन्ध विनिमय स्थापित किये गये। सितम्बर, 1917 में बम्बई स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड, बम्बई में व 1920 में गुजरात शेयर एण्ड स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड, अहमदाबाद में स्थापित हुए। बम्बई एक्सचेंज लिमिटेड, बम्बई को अपना कार्य तीन साल बाद बन्द करना पड़ा। 1922 में इसको पुनः जाग्रत करने की कोशिश की गयी लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली। 1925 में बम्बई में "बम्बई प्रतिभूति अनुबन्ध नियन्त्रण अधिनियम"

---

1 "Stock Exchanges are not merely the chief theatres of business trancsations they are also barometers which indicate the general conditions of the atmosphere of business."
—Marshall.

(Bombay Securities Contracts Control Act) 1925, के लागू होने पर बम्बई सरकार ने इस नये विनिमय को अनुमति नहीं दी। अतः इस विनिमय का समापन कर दिया गया। 6 अप्रैल, 1920 को मद्रास में "दी मद्रास स्टॉक एक्सचेंज" के नाम से एक नया विनिमय स्थापित किया गया लेकिन 1923 में व्यापार की कमी के कारण इसको बन्द कर देना पड़ा।

विश्व मन्दी के बाद अंशों के व्यापार की गति तेज हुई और नये-नये स्कन्ध विनिमय स्थापित होने लगे। 1934 में "लाहौर स्टॉक एक्सचेंज" लाहौर में स्थापित किया गया जो 1936 में 'पंजाब स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड" के साथ मिल गया। मद्रास में बागान व मिलों की आवश्यकता की पूर्ति हेतु 4 सितम्बर, 1937 को "मद्रास स्टॉक एक्सचेंज एसोसियेशन प्राइवेट लिमिटेड" के नाम से एक स्कन्ध विनिमय स्थापित किया गया। कलकत्ता, बम्बई में भी क्रमशः 1937 व 1938 में प्रतिद्वन्द्वी स्कन्ध विनिमय "बंगाल शेयर एण्ड स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड" व "इण्डियन स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड" के नाम से गठित किये गये। **इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ (1939) में स्कन्ध विनिमय—बम्बई, कलकत्ता व अहमदाबाद (प्रत्येक में दो-दो) व मद्रास तथा लाहौर (प्रत्येक में एक-एक) में कार्य कर रहे थे।**

द्वितीय महायुद्ध ने स्कन्ध विनिमय को समृद्धि के पथ पर लगा दिया। रुई, सोना, चाँदी, बीज आदि पर नियन्त्रण होने के कारण इन पदार्थों में व्यवहार करने वालों के लिए सिर्फ स्कन्ध विनिमय ही एक रास्ता रह गया था। अतः बहुत से नये एसोसियेशन देश के विभिन्न भागों में स्थापित हुए। अहमदाबाद में जहाँ पहले से ही दो स्कन्ध विनिमय कार्य कर रहे थे, 4 और नये विनिमय स्थापित किये गये। दो तो बहुत जल्दी ही समाप्त हो गये लेकिन दो—इण्डियन शेयर एण्ड जनरल एक्सचेंज एसोसियेशन व बोम्बे शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसियेशन जो 1943 में स्थापित हुए थे 1957-58 तक कार्य करते रहे। लाहौर में भी 4 नये विनिमय खुले—पंजाब शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसियेशन लिमिटेड, दी लाहौर स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड, दी लाहौर सेन्ट्रल एक्सचेंज लिमिटेड, व ऑल इण्डिया स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड। देहली में देहली स्टॉक एण्ड शेयर ब्रोकर्स एसोसियेशन लिमिटेड और देहली स्टॉक एण्ड शेयर्स एक्सचेंज लिमिटेड नाम से दो विनिमय स्थापित हुए। जून, 1947 में इन दोनों को मिलाकर देहली स्टॉक एक्सचेंज एसोसियेशन लिमिटेड के नाम से एक नया विनिमय बना दिया गया। कलकत्ता में भी जहाँ पहले से दो विनिमय थे वहाँ तीसरा विनिमय स्टॉक एक्सचेंज एसोसियेशन ऑफ बंगाल लिमिटेड के नाम से स्थापित किया गया। 1940 में उत्तर प्रदेश में पहला विनिमय दी यू. पी. स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड के नाम से कानपुर में स्थापित किया गया। नागपुर में भी नागपुर स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड के नाम से विनिमय स्थापित किया गया। 1943 में हैदराबाद

(आन्ध्रप्रदेश) में हैदराबाद स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड स्थापित किया गया। एक छोटा-सा विनिमय बंगलौर में भी बनाया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् लाहौर का एक विनिमय आकर देहली के स्कन्ध विनिमय के साथ मिल गया। बाकी विनिमय 1957 तक या तो मुर्झा गये या दुर्बल हो गये या समाप्त हो गये। केन्द्रीय सरकार ने प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत सिर्फ 9 विनिमयों को अब तक स्वीकार किया है जिनका ब्यौरा अगले पृष्ठ पर दिया गया है।

यद्यपि एक शहर में एक से अधिक विनिमय कार्य कर रहे थे लेकिन सरकार ने एक शहर में सिर्फ एक ही विनिमय को मान्यता प्रदान की है। जिन विनिमयों को कार्य करने की अनुमति नहीं दी गयी उनके सदस्यों को वर्तमान विनिमयों से रियायती शर्तों पर सदस्य बना लिया गया है। इन विनिमयों के विधानों में भी आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये हैं जिससे वे सरकार की नीति का पालन कर सकें। प्रत्येक विनिमय के कार्य करने के उपनियम लगभग एक से हो गये हैं तथा प्रत्येक विनिमय के प्रबन्ध मण्डल पर केन्द्रीय सरकार के अधिकारी मनोनीत कर दिये गये हैं जिससे कि वे विनिमय का कार्य नियमानुसार करा सकें व उनकी गतिविधियों पर निगाह रख सकें।

भारतीय स्कन्ध विनिमयों के संविधान एवं प्रबन्ध
(CONSTITUTION AND MANAGEMENT OF INDIAN STOCK EXCHANGES)

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत अभी तक केन्द्रीय सरकार ने 9 विनिमयों को मान्यता प्रदान की है—(1) बम्बई, (2) कलकत्ता, (3) मद्रास, (4) अहमदाबाद, (5) दिल्ली, (6) हैदराबाद, (7) मध्य प्रदेश, (8) बंगलौर, व (9) पूना।

(1) **संविधान** (Constitution)—बम्बई, अहमदाबाद व मध्य प्रदेश के विनिमय ऐच्छिक-बिना-लाभ (Voluntary non-profit making Association) सहयोग के आधार पर गठित किये गये है। कलकत्ता व दिल्ली विनिमय अंशों द्वारा सीमित (Limited by Shares) हैं, मद्रास व हैदराबाद गारण्टी द्वारा सीमित (Limited by Guarantee) हैं व बंगलौर विनिमय प्राईवेट कम्पनी (Private Company) के रूप में रजिस्टर्ड है। इनको सरलता की दृष्टि से निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :

(i) ऐच्छिक बिना लाभ सहयोग ·· बम्बई, अहमदाबाद व इन्दौर विनिमय
(ii) अंशों द्वारा सीमित··· ~ ··· कलकत्ता व दिल्ली विनिमय
(iii) गारण्टी द्वारा ·· ······ मद्रास व हैदराबाद विनिमय
(iv) प्राईवेट कम्पनी ·············बंगलौर विनिमय

इस समय उन सभी विनिमयों के सदस्यता नियम अधिनियम के कारण एक

भारतीय स्कन्ध विनिमयों का विवरण
(Particulars of Indian Stock Exchanges)

स्कन्ध विनिमय का नाम	स्थापना का वर्ष	गठन का तरीका	सरकार द्वारा मान्यता की तिथि	प्रवेश शुल्क या अंश मूल्य	सदस्यता निक्षेप	वार्षिक चन्दा	सदस्यों की संख्या
				रु०	रु०	रु०	
1. बम्बई	1875	ऐच्छिक-बिना-लाभ सहयोग	31-8-1957	....			
2. कलकत्ता	1908	पब्लिक लिमिटेड कम्पनी	10-10-1957	10,000	20,000	15	504
3. मद्रास	1937	कम्पनी लिमिटेड गारण्टी द्वारा	15-10-1957	5,000	20,000	48	660
4. अहमदाबाद	1894	ऐच्छिक-बिना-लाभ उपार्जन सहयोग	16-9-1957	10,000	5,000	180	33
5. दिल्ली	1947	पब्लिक लिमिटेड कम्पनी	9-12-1957	4,000	5,000	25	463
6. हैदराबाद	1943	कम्पनी लिमिटेड गारण्टी द्वारा	29-9-1957	2,571	एक अतिरिक्त अंश व 5,000	कुछ नहीं	105
7. मध्य प्रदेश[1]	1930	ऐच्छिक-बिना-लाभ उपार्जन सहयोग	24-12-1958	1,001	3,000	64	55
8. बंगलौर	1957	प्राइवेट कम्पनी	11-2-1963	250	3,000 5,000	10 300	72 12
9. पूना	1979	—	—1979	—	—	—	—

1 Formerly known as Indore.

से हैं। तथा सभी विनिमय के नियम व विधान सरकार द्वारा स्वीकृत हैं। सरकार द्वारा अनुमति देते समय यह ध्यान रखा गया है कि विनिमयों के नियमों व विधानों में एकरूपता आ जाये।

(2) **प्रबन्ध** (Management)—प्रत्येक विनिमय का प्रबन्ध एक समिति के हाथ में होता है जिसका नाम विभिन्न विनिमयों में विभिन्न है जैसे, बम्बई में प्रशासक मण्डल (Governing Board), मद्रास में प्रबन्ध परिषद् (Council of Management), दिल्ली में संचालक मण्डल (Board of Directors) व कलकत्ता में प्रबन्ध समिति (Committee of Management), आदि। इन प्रबन्ध समितियों का चुनाव प्रतिवर्ष साधारण सभा में सदस्य करते हैं।

इन समितियों के कार्यों को सरल करने के लिए प्रत्येक विनिमय पर उप-समितियाँ हैं, जैसे, बम्बई विनिमय में तीन समितियाँ हैं जिनका नाम (1) पंचायत समिति (Arbitration Committee), (2) चूकदार समिति (Defaulter's Committee), व (3) सूचियन समिति (Listing Committee) है।

कलकत्ता विनिमय में 8 उप-समितियाँ हैं जिनके नाम—(1) पंचायत समिति (Arbitration Committee), (2) अंश परीक्षा समिति (Share Examination Committee), (3) प्रवेश समिति (Admission Committee), (4) अर्थ समिति (Finance Committee), (5) भाव समिति (Quotation Committee), (6) पुस्तकालय समिति (Library Committee), (7) वार्षिक पुस्तक समिति, (Year Book Committee), (8) समाशोधन समिति (Clearing Committee)।

(3) **संचालन** (Operation)—बम्बई स्कन्ध विनिमय भारत का सबसे पुराना व प्रमुख विनिमय है। यहाँ पर तत्काल व भविष्य दोनों प्रकार के सौदे होते हैं। बम्बई विनिमय पर विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियाँ खरीदी व बेची जाती हैं। कलकत्ता विनिमय जूट, कोयला, चाय व खानों के अंशों में क्रय-विक्रय होता है। मद्रास विनिमय पर बगीचा उद्योग की प्रतिभूतियों में व अहमदाबाद विनियम में सूती वस्त्र उद्योग की प्रतिभूतियों में व्यवहार होते हैं।

स्कन्ध विनिमयों के पूर्ण अध्ययन के लिए हमने बम्बई स्कन्ध विनिमय (Bombay Stock Exchange) को लिया है। जिसका विवरण निम्न प्रकार है:

बम्बई स्कन्ध विनिमय
(BOMBAY STOCK EXCHANGE)

भारत में बम्बई स्कन्ध विनिमय सबसे पुराना विनिमय है यद्यपि इसकी स्थापना 13 दिसम्बर, 1887 को नेटिव शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसियेशन (Native Share & Stock Brokers' Association) के नाम से ऐच्छिक-बिना-लाभ आधार पर हुई थी लेकिन इससे पूर्व 1840 व 1850 के बीच करीब आधे दर्जन दलाल बम्बई में जहाँ अब होर्नीमन सर्किल या लफिन्सटन है वहाँ एक पेड़ के

नीचे सौदे किया करते थे। 1 जुलाई, 1875 को दलालों ने एक प्रारम्भिक संघ की स्थापना की जो बाद में 1887 में नेटिव शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसियेशन के नाम से सामने आया। आजकल इसी संघ को बम्बई स्कन्ध विनिमय (Bombay Stock Exchange) कहते हैं।

जिस समय 1875 में अनौपचारिक स्थापना हुई थी उस समय 318 सदस्य थे और प्रवेश शुल्क सिर्फ एक रुपया था लेकिन धीरे-धीरे इन दोनों में बराबर वृद्धि होती रही। 1920 में इसके सदस्यों की संख्या 478 व प्रवेश शुल्क 48,000 रुपये हो गयी। इस समय 504 सदस्य हैं जिनको अपनी सदस्यता दूसरे व्यक्ति को (बोर्ड की अनुमति से) हस्तान्तरित करने का अधिकार है। इसको बम्बई स्कन्ध विनिमय पर कार्ड व लन्दन स्कन्ध विनिमय पर नामांकन (Ncmination) कहते हैं। 1961 में इस कार्ड का मूल्य 33,000 रुपये था। अब इसका मूल्य 15,000 रुपये है। 31 अगस्त, 1957 से इस विनिमय को प्रतिभूति अनुबन्ध नियमन अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत स्थायी मान्यता प्राप्त है।

(1) **प्रशासन एवं प्रबन्ध** (Administration and Management)

बम्बई स्कन्ध विनिमय का प्रबन्ध एक समिति के द्वारा होता है जिसको प्रशासक मण्डल (Governing Board) कहते हैं। इस मण्डल का निर्वाचन प्रतिवर्ष मार्च के महीने में सदस्यों द्वारा साधारण सभा में किया जाता है। इस मण्डल के सदस्यों की संख्या 18 है। 16 सदस्य तो साधारण सभा चुनती है तथा 2 सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। प्रशासन मण्डल स्वयं उन निर्वाचित सदस्यों में से एक सभापति, एक उप-सभापति व एक अवैतनिक खजांची चुनता है। इस मण्डल के प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल (केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यों को छोड़कर) एक वर्ष होता है लेकिन उनको दुबारा भी चुना जा सकता है।

इस मण्डल का कार्य विनिमय के कार्यों की देखभाल करना व 24 घण्टे के लिए विनिमय के कारोबार को बन्द करने का अधिकार है। लेकिन नियमों में परिवर्तन या 24 घण्टे से अधिक विनिमय को बन्द करने के आदेश सरकार की स्वीकृति के बाद ही लागू होंगे। इस मण्डल की बैठक प्रति मंगलवार को साधारणतय होती है लेकिन आवश्यक बैठक इससे पूर्व भी थोड़े समय के नोटिस पर बुलाई जा सकती है। प्रशासन मण्डल का कार्य सुलभ करने के लिए निम्न तीन उप-समितियाँ हैं—(i) पंचायत समिति (Arbitration Committee), (ii) चूकदार समिति (Defaulter's Committee), (iii) सूचियन समिति (Listing Committee)।

(i) **पंचायत समिति** (Arbitration Committee)—इस समिति के सदस्यों की संख्या 16 होती है जिनका चुनाव प्रतिवर्ष साधारण सभा द्वारा किया जाता है। इस समिति का कार्य सदस्यों के वाद-विवादों को सुलझाना है। किसी शिकायत के प्राप्त होने रुर समिति अपने सदस्यों में से 2 सदस्यों को उस विवाद को सुलझाने के लिए

नियुक्त करती है । इन सदस्यों को पंच (Arbitrator) कहते हैं। दोनों पक्षों को अपना-अपना मत प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद उन पंचों द्वारा फैसला दे दिया जाता है । यदि कोई पक्ष मत प्रस्तुत नहीं करता या उपस्थित नहीं होता तो एकपक्षीय (Exparte) फैसला दे दिया जाता है । झगड़े की रकम 1,000 रुपये से कम होती है तो इस समिति का निर्णय अन्तिम है और दोनों पक्षों को मानना आवश्यक है । यदि दोनों पंचों में मतभेद होता है तो पंचायत समिति एक पंच और नियुक्त करती है और बहुमत द्वारा दिया गया निर्णय मान्य होता है । रकम 1,000 रुपये से अधिक होने पर निर्णय के 7 दिन के अन्दर इन पंचों के निर्णय के विरुद्ध प्रशासक मण्डल को अपील की जा सकती है लेकिन इसके लिए 5 रुपये फीस व पंचों द्वारा निर्धारित पूरी रकम पहले जमा करानी होती है । प्रशासन मण्डल द्वारा दिया गया निर्णय अन्तिम होता है और दोनों पक्षों को मानना पड़ता है।

(ii) **चूकदार समिति** (Defaulter's Committee)—इस समिति के सदस्यों की संख्या 6 होती है जिनका चुनाव साधारण सभा प्रतिवर्ष करती है । जिस समय कोई सदस्य अपने भुगतानों को पूरा नहीं कर पाता तो उसको चूकदार (Defaulter) घोषित कर दिया जाता है । इस समिति का कार्य चूकदार के बहीखातों को देखना व दावों को तय करना है । यदि चूकदार 6 महीने तक भुगतानों को पूरा नहीं कर पाता तो उसका सदस्य कार्ड बेच दिया जाता है और उससे प्राप्त रकम उसके लेनदारों को दे दी जाती है ।

(iii) **सूचियन समिति** (Listing Committee)—इस समिति के 4 सदस्य होते हैं और जिनकी नियुक्ति प्रशासक मण्डल अपने सदस्यों में से करता है । इस समिति का कार्य सूचियन के लिए आये हुए, आवेदन पत्रों पर विचार कर व अपनी राय प्रशासक मण्डल को देना है जो सूचियन सम्बन्धी अन्तिम निर्णय करता है ।

(2) **सदस्यता** (Membership)

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) नियम, 1957 के सदस्यता सम्बन्धी नियमों को बम्बई स्कन्ध विनिमय ने मान लिया है । इस विनिमय के सदस्यों की संख्या 504 तक सीमित है । नये व्यक्तियों को सदस्यता के लिए पुराने सदस्यों से कार्ड खरीदना पड़ता है जिसका मूल्य माँग व पूर्ति के कारण समय-समय पर घटता-बढ़ता रहता है । आजकल इसका मूल्य लगभग 15,000 रुपये के है। सदस्यता के लिए आवेदन पत्र प्रार्थी को भरना पड़ता है जिस पर विनिमय के 2 पुराने सदस्यों से सिफारिश करानी पड़ती है । प्रत्येक प्रार्थी को प्रवेश के साथ 20,000 रुपये की प्रतिभूतियाँ जमानत के रूप में जमा करानी पड़ती हैं ।

सदस्यता का आवेदन पत्र विनिमय को प्राप्त हो जाने पर प्रशासक मण्डल सूचना पट पर आवेदन पत्र की सूचना लगा देता है और सदस्यों से ऐतराज़ (यदि हो, तो) भेजने की प्रार्थना करता है । 15 दिन पश्चात् प्रशासक मण्डल उस आवेदन पत्र

पर विचार करता है, और 3/4 बहुमत से सदस्यता स्वीकार करता है लेकिन उपस्थित सदस्यों की संख्या कुल मण्डल के सदस्यों की संख्या के आधे से कम नहीं होनी चाहिए। मण्डल को आवेदन पत्र स्वीकार करने अथवा रद्द करने का पूर्ण अधिकार है। आवेदन पत्र स्वीकार करने पर प्रार्थी को प्रवेश शुल्क व वार्षिक चन्दा जमा कराने के लिए कहा जाता है। धन जमा करा देने पर वह सदस्य बन जाता है।

सदस्यता प्राप्त होने पर नया सदस्य अन्य सदस्यों के साथ साझेदारी कर सकता है लेकिन इसके लिए प्रशासक मण्डल से पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है। कोई भी सदस्य गैर-सदस्य के साथ साझेदारी नहीं कर सकता है। सदस्यता कार्ड सदस्य की व्यक्तिगत सम्पत्ति है लेकिन इसको बिना प्रशासक मण्डल की अनुमति के न बेचा जा सकता है और न गिरवीं रखा जा सकता है। प्रत्येक सदस्य अधिक से अधिक 5 अधिकृत लिपिक नियुक्त कर सकता है जिसके लिए 100 रुपये वार्षिक (प्रत्येक लिपिक के लिए) चन्दे के रूप में देने पड़ते हैं। यह लिपिक अपने मालिक के नाम से व्यवहार कर सकते हैं स्वयं अपने नाम से नहीं। लिपिक द्वारा किये गये सौदों के लिए मालिक (सदस्य) उत्तरदायी होते हैं।

प्रत्येक सदस्य विनिमय के नियम मानने के लिए बाध्य है। यदि वह नियम नहीं मानता तो उसको निलम्बित किया जा सकता है। आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है। निष्कासित भी किया जा सकता है। प्रत्येक सदस्य विनिमय के व्यवहारों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यवसाय नहीं कर सकता है।

(3) **दलाल व तरावनीवाला** (Brokers and Taravaniwalas)

बम्बई विनिमय पर कार्य करने वाले सदस्यों को अनौपचारिक (unofficial) रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं—(i) दलाल (Brokers) व (ii) तरावनीवाला (Taravaniwalas)। **दलाल वे सदस्य** हैं जो क्रेता-विक्रेताओं को मिलाते हैं व सौदा कराते हैं। उस कार्य के लिए उनको पारिश्रमिक दलाली (Brokerage) के रूप में मिलता है। **तरावनीवाला वे सदस्य** हैं जो स्वयं अपने लिए खरीदते एवं बेचते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य मूल्यों के परिवर्तनों से लाभ उठाना है। इनकी तुलना लन्दन स्कन्ध विनिमय के जॉबर (Jobber) से की जा सकती है लेकिन ये वास्तव में जॉबर (Jobber) की तरह कार्य नहीं करते हैं। लन्दन विनिमय पर प्रत्येक सदस्य को प्रति-वर्ष आरम्भ में बता देना पड़ता है कि वह किस रूप में कार्य करेगा—दलाल के रूप में या जॉबर (Jobber) के रूप में—और फिर वर्ष भर उसी रूप में कार्य करता है। लेकिन बम्बई विनिमय पर तरावनीवाला कभी तो जॉबर का कार्य करते हैं तो कभी दलाल का। साधारणतया ये दोनों प्रकार का कार्य साथ-साथ करते हैं। विनिमय के द्वारा इनके कार्यों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

(4) **अधिकृत लिपिक एवं उप-दलाल** (Authorised Clerks and Sub-Brokers)

बम्बई विनिमय पर सदस्यों को उनकी सहायता एवं व्यापार लाने के लिए

अधिकृत लिपिक (Authorised Clerks) तथा उप-दलाल (Sub-Brokers or-Remisers) नियुक्त करने का अधिकार होता है।

अधिकृत लिपिक (Authorised Clerks) सदस्यों के नौकर होते हैं और विनिमय पर सदस्य के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। इनके द्वारा किये गये कार्यों के लिए उनके मालिक (सदस्य) उत्तरदायी होते हैं। ये लिपिक अपने नाम या अपने लिए व्यवहार नहीं कर सकते हैं। एक सदस्य अधिक से अधिक 5 अधिकृत लिपिक रख सकता है।

उप-दलाल (Sub-Brokers or Remisers) की सेवाएँ दलालों के द्वारा प्रयोग में लायी जाती हैं। उप-दलाल का कार्य दलाल के लिए व्यापार लाना है। जितना व्यापार उप-दलाल लाता है उस व्यापार पर दलाली दलाल की बनती है उसकी आधी दलाली उप-दलाल को दलाल दे देता है इसलिए इसको उप-दलाल या आधी दलाली वाला (Half Commission Man) कहते हैं। इन उप-दलालों को विनिमय पर सौदा करने का अधिकार नहीं होता है। इसको स्कन्ध विनिमय पर पाँच हजार रुपये जमानत के रूप में जमा कराने पड़ते हैं। यह अपने व्यापार के लिए विज्ञापन नहीं करा सकता है।

(5) **व्यवहार का ढंग** (Method of Trading)

कोई भी व्यक्ति जो विनिमय का सदस्य नहीं है विनिमय पर नहीं जा सकता है। जो व्यक्ति प्रतिभूति खरीदना या बेचना चाहते हैं उनको दलालों की सहायता लेनी पड़ती है। दलाल चूँकि विज्ञापन नहीं कर सकते हैं, इसलिए ग्राहक अपनी पहिचान वालों के माध्यम से दलालों से सम्पर्क स्थापित करते हैं या दलालों की सूची में से अपने लिए दलाल चुन लेते हैं। दलालों की सूची विनिमय से प्राप्त की जा सकती है। यदि दलाल से सम्पर्क न हो सके तो बैंक के माध्यम से खरीद व बिक्री हो सकती है लेकिन ऐसी दशा में बैंक को कमीशन दलाल की तुलना में अधिक देना पड़ता है क्योंकि बैंक अपना कमीशन व दलाल का कमीशन जिसके माध्यम से बैंक कार्य करता है ग्राहक से वसूल करता है। यदि दलाल से सम्पर्क स्थापित हो जाता है तो दलाल सर्वप्रथम ग्राहक से परिचय माँगता है जिससे कि वह उसकी आर्थिक स्थिति का पता लगा सके। दलाल के सन्तुष्ट हो जाने पर ग्राहक दलाल को आदेश दे देता है जिसमें प्रतिभूतियों की किस्म व मूल्य आदि का विवरण होता है।

(i) **कच्ची पुस्तक** (Rough Memo)—दलाल आदेश प्राप्त होने पर एक पुस्तक लिख लेता है जिसे कच्ची पुस्तक कहते हैं। दलाल को आदेश तार, चिट्ठी, टेलीफोन आदि से दिया जा सकता है। आदेश प्राप्त होने पर दलाल अपने लिपिक को विनिमय पर भेजता है जो आदेश के अनुसार क्रय या विक्रय का सौदा करता है। सौदा होते ही लिपिक अपनी नोट बुक में पेन्सिल से लिख लेता है। विनिमय पर सौदे बन्द हो जाने पर लिपिक अपने दफ्तर में लौटता है जहाँ उनका लेखा पहले कच्ची सौदा वही में व बाद में पक्की सौदा वही में करता है।

(ii) **प्रसंविदा नोट** (Contract Note)—दलाल प्रसंविदा नोट (Contract Note) तैयार करता है जो नकद व भविष्य दोनों प्रकार के सौदों के लिए अलग-अलग है। प्रसंविदे नोट विनिमय द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। सौदे के दूसरे दिन, दिन के 12 बजे से 3 बजे तक इन प्रसंविदे नोटों का मिलान किया जाता है। सौदा सही होने पर दलालों के लिपिक एक-दूसरे के नोटों पर हस्ताक्षर कर देते हैं। यदि इसमें मतभेद होता है तो पंचायत समिति को सौंप देते हैं। बाद में खरीद सूचना (Bought Note) व विक्रय सूचना (Sold Note) बनाकर अपने-अपने ग्राहकों को भेज देते हैं।

(iii) **सौदे** (Contracts)—सौदे दो प्रकार के होते हैं—(अ) नकद या तत्काल सुपुर्दगी प्रसंविदा (Cash or Ready Delivery Contracts), व (ब) अग्रिम सुपुर्दगी प्रसंविदा (Forward Delivery Contracts)।

(अ) **नकद या तत्काल सुपुर्दगी सौदे** भी दो प्रकार के होते हैं—(क) असमाशोधित प्रतिभूतियाँ (Non-cleared Securities), व (ख) समाशोधित प्रतिभूतियाँ (Cleared Securities)। असमाशोधित प्रतिभूतियों का लेन-देन दस्ती सुपुर्दगी (Hand Delivery) से होता है। जिस दिन सौदा होता है उससे आगे आने वाले सोमवार को प्रतिभूति बेचने वाला सुपुर्दगी टिकट (Delivery Ticket) तैयार करता है जो उस दिन 3 बजे तक क्रेता के दलाल के पास पहुँच जाना चाहिए। इस टिकट को बम्बई स्कन्ध विनिमय में कपली (Kapli) कहते हैं। वृहस्पतिवार को प्रतिभूति बेचने वाले का दलाल प्रतिभूति व उसको हस्तान्तरित करने के आवश्यक कागजात क्रेता के दलाल को दे देता है जो प्राप्त होने पर भुगतान कर देता है।

समाशोधित प्रतिभूतियों का निबटारा समाशोधित गृह (Clearing House) के माध्यम से होता है। सौदा होने के दिन से आगे आने वाले वृहस्पतिवार को सौदे का निबटारा होता है। इस दिन को समाशोधन का दिन (Day of Clearing) कहते हैं। इस दिन बेची गयी प्रतिभूतियाँ व उनको हस्तान्तरित करने के कागजात समाशोधन-गृह को सुपुर्द कर दिये जाते हैं जहाँ से क्रेता दलालों को या उनके अधिकृत लिपिकों को दे दिये जाते हैं।

(ब) **अग्रिम सौदों** का निबटारा उस महीने के अन्त में होता है जिस महीने में सौदा हुआ है। इस प्रकार सौदों के 12 महीने होते हैं और अग्रिम सौदा महीने के नाम से पुकारा जाता है। सौदे का निबटारा 6 दिनों में तीन प्रकार से होता है : (क) प्रतिभूति की वास्तविक सुपुर्दगी (Actual delivery), (ख) क्रय-विक्रय की अन्तर राशि का भुगतान (Difference paid or received), (ग) आगे ले जाना या बदला (Carry Over)।

पहले दिन दलाल अपने-अपने सौदों का मिलान करते हैं। दूसरे दिन दलाल समाशोधन-गृह को बकाया प्रतिभूतियों (Balance) का ब्यौरा देते हैं। तीसरे व चौथे

दिन समाशोधन-गृह में वे प्रतिभूतियाँ जमा कर दी जाती हैं। पाँचवें दिन समाशोधन-गृह सदस्यों के खातों को जमा या नाम कर देता है व छठवें दिन समाशोधन-गृह सदस्यों को भुगतान कर देता है व प्रतिभूतियों को सुपुर्द कर देता है। बम्बई में यह कार्य बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा किया जाता है। यदि प्रतिभूति नहीं लेना चाहते हैं तो अन्तर राशि का भुगतान कर दिया जाता है। विनिमय पर ज्यादातर व्यवहार इसी प्रकार के होते हैं। यदि ग्राहक बदला (Carry over or Budli) करना चाहता है तो ऐसा करने के लिए कुछ दलाली देनी पड़ती है। बदले से तात्पर्य सौदे का निबटारा उस महीने में न करके अगले महीने में करने से होता है।

प्रश्न

1. स्कन्ध विनिमय किसे कहते हैं ? इसके क्या कार्य हैं ? बताइए।
   What is a Stock Exchange ? What are its functions ? Explain.
2. किसी भारतीय स्कन्ध विनिमय के संगठन एवं कार्य-विधि की व्याख्या कीजिए।
   Describe the organisation and working of any Indian Stock Exchange.
3. अंशों का विपणन किस प्रकार होता है ?
   How are shares marketed ?
4. स्कन्ध (Stock), अंश (Shares) और बॉण्ड्स (Bonds) के विपणन पर टिप्पणी लिखिए।
   Write a note on the marketing of stocks, shares and bonds.

24

स्कन्ध विनिमयों पर प्रतिभूतियों का सूचियन

[LISTING OF SECURITIES AT STOCK EXCHANGES]

सूचियन का अर्थ
(MEANING OF LISTING)

किसी स्कन्ध विनिमय पर किसी भी प्रकार की प्रतिभूतियाँ बिना स्कन्ध विनिमय की पूर्व अनुमति के न तो क्रय की जा सकती हैं और न बेची जा सकती हैं। **जिस समय कोई संस्था अपनी प्रतिभूतियों को स्कन्ध विनिमय पर खरीदने व बेचने के लिए स्कन्ध विनिमय की सूची में जोड़ने को आवेदन-पत्र देती है तो इस प्रकार की क्रिया सूचियन** (Listing) **कहलाती है** और जब वे प्रतिभूतियाँ उस सूची में जोड़ दी जाती हैं तो ऐसी प्रतिभूतियों को सूचियत प्रतिभूति (Listed Security) कहते हैं।

स्कन्ध विनिमय किसी संस्था की प्रतिभूतियों को सूची में जोड़ने से पूर्व उस संस्था के बारे में छानबीन करता है व उसको कुछ निश्चित नियमों को मानने के लिए बाध्य करता है। सूचियन इस बात का प्रमाण नहीं है कि संस्था की आर्थिक दशा सुदृढ़ है या संस्था अच्छा लाभोपार्जन करने वाली है। विनिमय पर इस प्रकार का कोई दायित्व नहीं होता लेकिन विनियोक्ता पर सूचियन का प्रभाव यह पड़ता है कि उसको यह विश्वास हो जाता है कि संस्था की दशा अच्छी है और विनियोग हानि-कारक नहीं होगा।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम एवं सूचियन
(SECURITIES CONTRACT (REGULATION) ACT AND LISTING)

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 की धारा 21 के अनुसार केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह किसी भी सार्वजनिक कम्पनी को सूचियन के लिए बाध्य करदे। इस प्रकार के प्रावधान का उद्देश्य अंशधारियों के हितों की रक्षा

करना है। इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व स्कन्ध विनिमयों के सूचियन सम्बन्धी नियम या तो थे ही नहीं या उनमें भारी भिन्नता पाई जाती थी। लेकिन प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) नियम, 1957 के नियम 91 के अनुसार एक **सार्वजनिक कम्पनी को सूचियन के लिए निम्न कार्यवाही करनी होगी** और इस प्रकार सभी मान्यता प्राप्त स्कन्ध विनिमयों के सूचियन सम्बन्धी नियम लगभग समान हो गये हैं। **इस कार्यवाही को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :**

(I) आवेदन पत्र एवं उनके साथ भेजने वाले प्रलेख तथा विवरण (Application along with certain Documents), (II) प्रार्थी कम्पनी व स्कन्ध विनिमय की सन्तुष्टि (Applicant Company & satisfaction of the Stock Exchange), (III) प्रार्थी कम्पनी द्वारा वचन देना (Undertaking by Applicant Company)।

(I) **आवेदन पत्र एवं उसके साथ भेजने वाले प्रलेख तथा विवरण** (Application along with certain Documents)

एक सार्वजनिक कम्पनी को अपनी प्रतिभूतियों का सूचियन कराने के लिए आवेदनपत्र के साथ-साथ निम्नलिखित प्रलेख एवं विवरण भेजने होंगे :

(1) पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) व पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) तथा प्रन्यास विलेख (Trust Deed) (यदि ऋण पत्र जारी हुए हों); (2) सभी जारी किये गये प्रविवरणों या स्थानापन्न प्रविवरणों की प्रतिलिपियाँ; (3) गत 5 वर्षों में प्रतिभूति बेचने के लिए जारी किये गये गश्ती पत्र, विज्ञापन, आदि की प्रतिलिपियाँ; (4) गत 5 वर्षों के अंकेक्षित आर्थिक चिट्ठे एवं खातों की प्रतिलिपियाँ; (5) गत 10 वर्षों में दिये गये लाभांश एवं नकद बोनस का विवरण; (6) निम्न के साथ किये गये अनुबन्धों की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ (अ) विक्रेता या प्रवर्तक (Vendors and/or Promoters), (आ) अभिगोपक व उप-अभिगोपक (Underwriters and Sub underwriters), (इ) दलाल व उप-दलाल, (ई) प्रबन्ध अभिकर्ता, सचिव व खजांची, (उ) विक्रय अभिकर्ता, (ऊ) प्रबन्ध संचालक व तकनीकी संचालक (Techerical Directors), (ए) महा प्रबन्धक (General Manager), बिक्री प्रबन्धक या प्रबन्धक या सचिव; (7) ऐसे पत्र, प्रपत्र, प्रतिवेदन, अदालती आदेश, जिनका विवरण प्रविवरण में दिया हो उनकी प्रमाणित प्रतिलिपि; (8) सभी भौतिक प्रसंविदों, समझौतों, रियायतों का विवरण; (9) कम्पनी का संक्षिप्त इतिहास, यदि पुनर्संगठन, पुनर्निर्माण, एकीकरण हुआ हो तो उसका भी विवरण; (10) प्रव्याजि या बट्टे के जारी किये गये या बिना नकदी के जारी किये अंशों व ऋणपत्रों का विवरण; (11) किसी व्यक्ति को दलाली, कमीशन या बट्टा दिया हो तो उसका विवरण; (12) जब्त किये गये अंशों का विवरण; (13) प्रत्येक प्रकार की प्रतिभूति के दस अंशधारियों के नाम जिनके पास अधिकतम अंश हों,

(14) उन अंशों व ऋणपत्रों का विवरण जिनके लिए आवेदनपत्र दिया जा रहा है;
(15) पूंजी निकासी नियन्त्रक (Controller of Capital issue) की अनुमति एवं औद्योगिक वित्त निगम या ऐसी ही अन्य संस्थाओं के साथ हुए समझौते की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ।

(2) **प्रार्थी कम्पनी व स्कन्ध विनिमय की सन्तुष्टि** (Applicant Co. and the Statisfaction of the Stock Exchange)

स्कन्ध विनिमय द्वारा निर्धारित शर्तों के अलावा कम्पनी को विनिमय को निम्न बातों पर भी सन्तुष्ट करना होगा : (1) उस कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियमों में इन बातों का समावेश होना चाहिए : (अ) कम्पनी हस्तान्तरण में एक साधारण तरीका (Common form of transfer) अपनायेगी, (आ) पूर्ण दत्त अंशों पर किसी प्रकार का पूर्वाधिकार (lien) नहीं होगा, (इ) यदि कोई धन याचना के लिए अग्रिम के रूप में जमा होगा तो उस पर ब्याज दी जा सकती है लेकिन लाभांश नहीं होगा, (ई) अयाचित लाभांश (Unclaimed Dividend) जब्त नहीं होगा जब तक कि कानून द्वारा बाधित (Barred) न हो, व (उ) अंशों के माँगने का अधिकार (Right to call of shares) किसी को नहीं दिया जायेगा जब तक कि कम्पनी की साधारण सभा पास न कर दे। (2) कम से कम 49% प्रतिभूतियाँ जनता को बेचने के लिए प्रस्तुत की जायेंगी तथा उनका आबन्टन उचित रूप से होगा। स्कन्ध विनिमय इस नियम को सरकार की पूर्व अनुमति से ढीला कर सकते हैं लेकिन यह तभी होगा जबकि सरकार को सन्तुष्ट कर दिया जाय कि प्रतिभूतियों का जमाव कुछ व्यक्तियों के हाथ में नहीं है।

(3) **प्रार्थी कम्पनी द्वारा वचन देना** (Undertaking by the Applicant Co.)

कम्पनी को, जो सूचियन कराने के लिए आवेदनपत्र दे रही है, निम्न बातों को पूरा करने का वचन देना होगा तभी प्रतिभूतियों का सूचियन किया जायेगा : (1) आबन्टन पत्र एक साथ भेजे जायेंगे और यदि एक साथ पत्र भेजना सम्भव न हो तो सूचना प्रेस द्वारा दी जायेगी। अधिकार पत्र भी एक साथ जारी किये जायेंगे। आबन्टन पत्र, स्वीकार पत्र व अधिकार पत्र, अच्छे कागज पर छपे होंगे व उन पर भी नम्बर पड़े होंगे तथा कम्पनी के किसी अधिकारी के हस्ताक्षर होंगे। आबन्टन पत्र व अधिकार पत्र में यह बात स्पष्ट छपी होगी कि ब्याज व लाभांश की गणना किस प्रकार की जायेगी (2) जो प्रतिभूतियाँ कम्पनी के पास जमा होंगी उनकी प्राप्ति की रसीद माँगने वाले को दे दी जायेगी, (3) जो अंश व ऋणपत्र हस्तान्तरण के लिए जमा होंगे उनका प्रमाणपत्र एक महीने में जारी कर दिया जायेगा, (4) स्कन्ध विनिमय को उस तारीख की पूर्व सूचना देनी होगी जिस तारीख को बोर्ड की बैठक लाभांश घोषित करने या सिफारिश करने जा रही है (5) बोर्ड की बैठक के बाद घोषित या सिफारिश किये गये लाभांश की सूचना विनिमय को देनी होगी, (6) कम्पनी के व्यापार के प्रकार में परिवर्तन होने पर विनिमय को सूचित करना होगा,

(7) संचालक मण्डल, प्रबन्ध अभिकर्ता, प्रबन्ध संचालक, सचिव व खजांची में परिवर्तन होने पर विनिमय को तुरन्त सूचित करना होगा, (8) संचालक प्रतिवेदन, वार्षिक प्रतिवेदन व आर्थिक चिट्ठा जारी होने के तुरन्त बाद विनिमय को भेजना होगा, (9) पुराने अंशधारियों को नये अंशों को खरीदने का प्रस्ताव करने से पूर्व विनिमय को सूचित करना होगा, (10) जब्त किये अंशों को दुबारा जारी करने पर विनिमय को सूचना भेजनी होगी, (11) पूँजी में परिवर्तन होने पर सूचना देनी होगी, (12) पुस्तकों को बन्द करने की पूर्व सूचना विनिमय को देनी होगी।

यदि कम्पनी नयी प्रतिभूतियाँ जारी करे और उनका सूचियन कराना चाहे तो उन नयी प्रतिभूतियों के लिए नया आवेदन पत्र कम्पनी को देना होगा लेकिन यदि प्रतिभूतियाँ पहली ही जैसी हैं तो विनिमय को सूचित करने पर उनका सूचियन कर लिया जायेगा [नियम 19(4)]।

यदि कम्पनी प्रवेश की शर्तों को पूरा नहीं करती तो विनिमय कम्पनी की प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में दी गयी आज्ञा को वापस ले सकता है या निलम्बित (Suspend) कर सकता है लेकिन ऐसा करने से पूर्व कम्पनी को अपना मत रखने का पूर्ण अवसर दिया जायेगा। यदि निलम्बन या निष्कासन तीन महीने से ज्यादा चलता है तो कम्पनी को केन्द्रीय सरकार से अपील करने का अधिकार होगा और केन्द्रीय सरकार ऐसे आदेश को रद्द कर सकती है या उसमें परिवर्तन कर सकती है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया गया आदेश विनिमय को मानना होगा।

केन्द्रीय सरकार विनिमय की सिफारिश पर या स्वयं सूचियन की उपर्युक्त सभी शर्तों को या किन्हीं भी शर्तों को हटा सकती है या उनको ढीला कर सकती है।

बम्बई स्कन्ध विनिमय के सूचियन नियम
(LISTING REGULATION OF THE BOMBAY STOCK EXCHANGE)

बम्बई स्कन्ध विनिमय भारत का सबसे पुराना विनिमय है। इस विनिमय ने 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सूचियन नियम बनाये थे और तब से अब तक उनमें समय-समय पर परिवर्तन होते हैं। इसी विनिमय के नियमों के आधार पर केन्द्रीय सरकार के द्वारा वर्तमान वैधानिक नियम बनाये गये हैं। जैसा कि कहा जा चुका है अब प्रत्येक विनिमय के सूचियन नियम एक समान (Uniform) हैं। बम्बई स्कन्ध विनिमय ने सूचियन नियम लन्दन स्कन्ध विनिमय के समान ही अपनाये हैं।

बम्बई स्कन्ध विनिमय प्रतिभूतियों के तत्काल एवं अग्रिम व्यापार के लिए अनुमति देता है। किसी बैंक के अंशों का सूचियन अग्रिम सूची के लिए नहीं हो सकता। अग्रिम व्यापार की अनुमति के लिए यह आवश्यक है कि कम्पनी कम से कम तीन वर्ष पुरानी हो व कम्पनी सर्टीफिकेट को हिस्सों में विभाजित करने के लिए तैयार हो व 1,000 रुपये प्रतिवर्ष समाशोधन व्यय के रूप में देने के लिए भी तैयार हो।

प्रत्येक कम्पनी को जो अपनी प्रतिभूतियों का सूचियन कराना चाहती है एक प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। यदि कम्पनी प्रार्थना-पत्र स्वयं नहीं देना चाहती है तो वह विनिमय के किसी सदस्य से प्रार्थना-पत्र दिलवा सकती है। यह प्रार्थना-पत्र निर्धारित फार्म में भरकर देना होता है। इस फार्म के साथ चार फार्म और होते हैं जिन पर अ, ब, स, द पड़ा रहता है।

फार्म अ में कम्पनी की पूंजी का विस्तृत ब्यौरा जैसे, अधिकृत, अनिर्गमित, निर्गमित व दत्त पूंजी का अलग-अलग विवरण, प्रविवरण के अखबार में छपने की तारीख, जनता को प्रस्तावित अंशों का विवरण, अधिक अंश प्राप्त करने वालों के नाम, आदि होते हैं। **फार्म ब** में उन सभी बातों का उल्लेख होता है जिनका समावेश कम्पनी ने विनिमय के नियमों के अनुसार अपने अन्तर्नियमों में कर लिया है जैसे पूर्णदत्त अंशों के हस्तान्तरण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा, हस्तान्तरण में साधारण फार्म प्रयोग में लाया जायेगा, आदि। **फार्म स** में अंशों के वितरण का ब्यौरा होता है तथा 10 बड़े अंशधारियों के नाम होते हैं। **फार्म द** में कम्पनी व विनिमय में एक लिखित समझौता होता है जिसके आधार पर कम्पनी विनिमय के नियमों को मानने के लिए बाध्य होती है। इन फार्मों के अलावा वे सब सूचनाएँ व प्रलेख प्रार्थना-पत्र के साथ भेजने पड़ते हैं जिनका विवरण प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) नियम, 1957 के नियम 19 में दिया है।

प्रावेदन पत्र के प्राप्त होने पर विनिमय के सूचना पट (Notice Board) पर एक नोटिस सदस्यों की सूचना के लिए लगा दिया जाता है जिससे कि वे विचार-विमर्श कर सकें। एक हफ्ते के पश्चात् विनिमय की सूचियन समिति (Listing Committee) उस पर विचार कर अपनी राय बोर्ड को भेज देती है। बोर्ड को अनुमति देने या प्रार्थना-पत्र को रद्द करने का पूरा अधिकार होता है। अनुमति देने की तारीख से विनिमय पर उन प्रतिभूतियों में क्रय-विक्रय किया जा सकता है।

विदेशी प्रतिभूतियों का भी सूचियन इस विनिमय पर किया जा सकता है लेकिन शर्त यह है कि ऐसी प्रतिभूतियाँ भारत के बाहर किसी अन्य विनिमय पर भी सूचियत हों तथा वह कम्पनी भारत के अंशधारी पुस्तक रखने के लिए तैयार हो।

यदि कम्पनी विनिमय के नियमों को नहीं मानती या विनिमय के आदेशों पर ध्यान नहीं देती तो बोर्ड ऐसी कम्पनी का नाम, सूची से तत्काल या अग्रिम या दोनों प्रकार के सौदों के लिए निकाल सकता है लेकिन ऐसा करने के लिए कम्पनी को एक महीने का नोटिस मय कारणों के देना होगा और सूची से निकालने का प्रस्ताव 3/4 सदस्यों के बहुमत द्वारा पास किया जायेगा तथा उस बैठक में कम से कम कुल सदस्यों के 3/4 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक होगी।

प्रतिभूतियों के सूचियन से लाभ
(ADVANTAGES OF LISTING OF SECURITIES)

सूचियन से कम्पनी व विनियोक्ता दोनों को ही लाभ होता है अतः दोनों का विवरण अलग-अलग इस प्रकार है—

कम्पनी को लाभ (Advantages to Company)—(1) किसी कम्पनी की प्रतिभूतियों का सूचियन हो जाने से कम्पनी की प्रतिष्ठा जनता की निगाह में बढ़ जाती है। (2) कम्पनी को अपने अंश बेचने व ऋण प्राप्त करने में आसानी रहती है। (3) अंश प्रब्याजि (Premium) पर भी बेचे जा सकते हैं। (4) अधिकार अंशों (Right Shares) के बेचने की सुविधा रहती है। (5) कम्पनी की प्रतिभूतियों का उचित मूल्यांकन हो जाता है।

विनियोक्ताओं को लाभ (Advantages to Investors)—वास्तव में, जितना लाभ सूचियन से कम्पनी को होता है उससे कई गुना लाभ विनियोक्ताओं को भी होता है। (1) विनियोक्ताओं को विश्वास हो जाता है कि कम्पनी का निर्माण व प्रतिभूतियों का निर्गमन विधान के अनुसार हुआ है। (2) सूचियन प्रतिभूतिधारियों को निरन्तर बाजार प्रदान करता है जिससे क्रय एवं विक्रय किसी भी समय किया जा सकता है। (3) प्रतिभूतिधारियों को मूल्य की जानकारी हर समय रहती है जिससे मूल्य बढ़ने पर प्रतिभूति को बेचकर लाभ प्राप्त कर सकते हैं। (4) प्रतिभूति खरीदने व बेचने का कार्य दलालों के माध्यम से तुरन्त हो जाता है जिससे समय व्यर्थ बर्बाद नहीं करना पड़ता है। (5) प्रतिभूति का सूचियन हो जाने से प्रतिभूति की ख्याति बढ़ जाती है और आवश्यकता के समय ऋण के लिए वह बन्धक या गिरवीं के रूप में रखी जा सकती है। (6) प्रतिभूतियों का सूचियन हो जाने से क्रेता एवं विक्रेता दोनों को लाभ होता है। (7) ऐसी प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय मूल्यों में अन्तर कम ही रहता है। (8) सौदे स्वतन्त्रतापूर्वक किये जा सकते हैं।

अधिकृत मूल्य सूची
(OFFICIAL QUOTATION LIST)

भारत के प्रत्येक **स्कन्ध विनिमय के द्वारा प्रतिदिन एक मूल्य-सूची प्रकाशित की जाती है। इस सूची को अधिकृत मूल्य सूची कहते हैं।** इस सूची में उस दिन क्रय एवं विक्रय हुई विभिन्न प्रतिभूतियों के मूल्यों का विवरण दिया रहता है। इसके अतिरिक्त यह सूची उन कम्पनियों की अधिकृत एवं प्रदत्त पूँजी तथा गत लाभांश का विवरण भी देती है। यदि किसी दिन किसी प्रकार की प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय न हो तो पिछले दिन के मूल्य दिये जाते हैं। बहुत से अखबार इन मूल्य सूचियों को अपनी प्रतियों में भी जनसाधारण के ज्ञान के लिए छापते हैं।

स्कन्ध विनिमय पर प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन
(FLUCTUATIONS IN SECURITY PRICES ON A STOCK EXCHANGE)

साधारणतया प्रतिभूतियों के दो मूल्य होते हैं एक मूल्य को अंकित मूल्य (Face Value) व दूसरे को बाजार मूल्य (Market Value) कहते हैं। **अंकित मूल्य वह मूल्य है जो प्रतिभूति पर लिखा है** अर्थात् जिस मूल्य पर कम्पनी ने प्रतिभूति का निर्गमन किया है। **बाजारू मूल्य वह मूल्य है जिस पर बाजार में प्रतिभूति बेची जा सकती है।** इस बाजार-मूल्य में समय-समय पर स्कन्ध विनिमय पर परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के विभिन्न कारण हैं जिनको तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है : (I) मौद्रिक कारण (Monetary), (II) साधारण (Ordinary), (III) विशेष (Special)।

(I) मौद्रिक कारण (Monetary Factors)

मौद्रिक कारणों में वे कारण आते हैं जो मुद्रा से सम्बन्धित हैं। यह कारण निम्नलिखित हैं :

(1) **बैंक दर** (Bank Rate)—बैंक दर वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक अन्य बैंकों के बिल, आदि की कटौती करती है। यदि बैंक दर घटा दी जाती है तो अन्य बैंक भी अपने ऋण देने की ब्याज दर घटा देती हैं जिसका प्रभाव यह होता है कि ऋण सस्ता मिलने लगता है और प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं। इसके विपरीत, बैंक दर बढ़ने से बैंकों के द्वारा ऋण देने की ब्याज दर बढ़ा दी जाती है और जनता को ऋण अधिक ब्याज की दर पर मिलते हैं जिससे प्रतिभूतियों की खरीद कम हो जाती है और इनके मूल्य गिर जाते हैं।

(2) **मुद्रा-चलन** (Currency Circulation)—मुद्रा चलन गति भी प्रतिभूतियों के मूल्यों पर प्रभाव डालती है। यदि देश में मुद्रा-प्रसार की स्थिति होती है तो जनसाधारण की क्रय शक्ति भी बढ़ती है जिसका प्रभाव यह होता है कि स्कन्ध विनिमय पर खरीद होती है और अधिक खरीद होने से प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं। यदि मुद्रा-संकुचन की स्थिति होती है तो मुद्रा की कमी होने के कारण प्रतिभूतियों की माँग कम हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि प्रतिभूतियों के मूल्य भी कम हो जाते हैं।

(3) **मुद्रा-बाजार** (Money Market)—साधारणतया स्कन्ध विनिमय पर दलालों द्वारा जो धन लगाया जाता है उसका अधिकांश भाग बैंक का अल्पकालीन ऋण होता है। यदि बैंकें अपने ऋण को वापस माँगना आरम्भ कर देती हैं तो दलालों को प्रतिभूतियाँ बेचनी पड़ती हैं और अधिक बिकवाली (बिक्री) होने से प्रतिभूतियों के मूल्य गिर जाते हैं। यदि बैंकें अधिक ऋण प्रदान करना प्रारम्भ कर देती हैं तो विनिमय पर अधिक खरीद होने से मूल्य बढ़ जाते हैं।

(II) साधारण (Ordinary)

मौद्रिक कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं जो प्रतिभूतियों के मूल्यों पर प्रभाव डालते हैं जिनमें प्रमुख अग्रवत् हैं :

(4) **विनिमयों की अन्तर्निर्भरता** (Interdependence of Exchanges)—आजकल परिवहन व सन्देशवाहन के शीघ्र साधनों के कारण संसार के लगभग सभी विनिमय एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। यदि एक विनिमय में किसी दिशा में परिवर्तन होता है तो दूसरे विनिमय में भी उसी दिशा में परिवर्तन हो जाता है। विश्व के दो प्रख्यात विनिमय—लन्दन व न्यूयार्क—संसार के सभी विनिमयों पर प्रभाव डालते हैं। भारत में बम्बई विनिमय प्रमुख है जो अन्य विनिमयों पर प्रभाव डालता है। यदि इन प्रख्यात विनिमयों पर प्रतिभूतियों के मूल्यों में वृद्धि की प्रवृत्ति होती है तो अन्य विनिमय भी उनका अनुकरण करते हैं और वहाँ भी मूल्य बढ़ने लगते हैं।

(5) **राजकीय नीति** (State Policy)—किसी भी देश की राजकीय नीति उस देश के उद्योग एवं व्यापार पर प्रभाव डालती है जिसके परिणामस्वरूप प्रतिभूतियों के मूल्य भी प्रभावित होते हैं। संरक्षण नीति, कर प्रणाली, राष्ट्रीयकरण नीति, आदि राजकीय नीति के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी उद्योग के राष्ट्रीयकरण की घोषणा सरकार कर देती है तो इस उद्योग की प्रतिभूतियों के मूल्य गिर जाते हैं।

(6) **व्यापार चक्र** (Trade Cycle)—अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार विश्व में व्यापार चक्र चलते हैं जिनके अनुसार कभी मन्दी काल (Depression) तो कभी तेजी काल (Boom) होता है। जिस समय मन्दी काल चलता है तो वस्तुओं के मूल्य गिर जाते हैं, उत्पादन गिर जाता है, लाभ की दर गिर जाती है, और अन्त में उद्योगों की प्रतिभूतियों के मूल्य भी कम हो जाते हैं। यदि तेजी काल चलता है तो मूल्यों में वृद्धि हो जाती है।

(7) **राजनीतिक स्थिति** (Political Situation)—राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव देश की औद्योगिक एवं व्यापारिक परिस्थितियों पर पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप प्रतिभूतियों के मूल्यों में भी घटत-बढ़त होती है जैसे, सरकार की मन्त्री परिषद (Cabinet) में परिवर्तन प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन ला देते हैं।

(8) **विज्ञापन एवं समाचार** (Publicity and Press)—आजकल प्रायः सभी समाचार-पत्र व्यापारिक सूचनाएँ प्रकाशित करते हैं। कुछ समाचार-पत्र तो केवल व्यापारिक एवं औद्योगिक सूचनाएँ ही देते हैं। उन सूचनाओं के देने के साथ-साथ वे सम्पादकीय राय भी देती हैं। इन सूचनाओं व सम्पादकीय रायों का भी प्रतिभूतियों के मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है। यदि अधिकांश समाचार-पत्रों की भविष्यवाणी सामान्य मूल्य स्तर बढ़ने की होती है तो प्रतिभूतियों के मूल्य भी बढ़ जाते हैं।

(9) **अन्य कारण** (Other Causes)—उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जो प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन ला देते हैं जैसे (i) अफवाहें (Rumours), (ii) विनियोक्ताओं की मनोवृत्ति (Psychology of the Investors), (iii) छुट्टियाँ (Holidays), आदि। अफवाहों से तात्पर्य विनिमय पर फैली धारणाओं

से है। यदि विनिमय पर धारणा मन्दी की है तो मूल्य गिर जायेंगे। इसके विपरीत, यदि धारणा तेजी की है तो मूल्य बढ़ जायेंगे। विनियोक्ताओं की मनोवृत्ति उनको खरीदने या न खरीदने के लिए प्रोत्साहित करती है जिसका प्रभाव प्रतिभूतियों के व्यापार पर पड़ता है। छुट्टियों के बाद साधारणतया अधिक व्यापार होता है।

(III) **विशेष कारण** (Special Causes)

कभी-कभी किसी विशेष समुदाय (Group) की प्रतिभूतियों या एक ही प्रकार की प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन आ जाता है इसके मुख्य कारण निम्न हैं:

(10) **कम्पनी के स्वामित्व में परिवर्तन** (Change of ownership)—यदि किसी कम्पनी का स्वामित्व अच्छी संस्था के हाथ में है और वह संस्था उससे अलग हो जाती है तो उस कम्पनी की प्रतिभूतियों के मूल्य कम हो जाते हैं। इसके विपरीत, यदि स्वामित्व निर्बल हाथों से निकलकर नये सबल एवं प्रतिष्ठित हाथों में आ जाता है तो लाभ की आशा बढ़ जाने से उस कम्पनी की प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार यदि किसी कम्पनी में कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति संचालक मण्डल का सदस्य हो जाता है तो उस कम्पनी की प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं। विपरीत स्थिति में जबकि प्रतिष्ठित व्यक्ति संचालक मण्डल से अलग हो जाता है उस कम्पनी की प्रतिभूतियों के मूल्य कम हो जाते हैं।

(11) **लाभांश** (Dividend)—लाभांश कम्पनी की लाभोपार्जन शक्ति पर निर्भर रहता है। यदि लाभ अधिक होता है तो लाभांश अधिक मिलने की सम्भावना रहती है। इसके विपरीत कम होने पर कम। इस प्रकार लाभोपार्जन लाभांश को प्रभावित करता है और लाभांश प्रतिभूति के मूल्य को। यदि लाभांश की दर अधिक है तो प्रतिभूति का मूल्य भी अधिक होगा और यदि लाभांश की दर कम है तो प्रतिभूति का मूल्य भी कम होगा।

(12) **पूंजी कलेवर में परिवर्तन** (Change in Capital Structure)—पूँजी कलेवर के परिवर्तन भी उस कम्पनी की प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन ला देते हैं। जैसे, यदि ऋण पत्रों का भुगतान (Redemption of Debentures) कोई कम्पनी कर देती है तो वह आर्थिक दृष्टिकोण से अच्छी कम्पनी समझी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उस कम्पनी की प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं।

(13) **हड़ताल व तालाबन्दी** (Strikes and Lockouts)—यदि किसी समुदाय के उपक्रम में हड़ताल या तालाबन्दी हो जाती है तो लाभ की आशा हानि में परिवर्तित हो जाती है जिसका प्रभाव यह होता है कि उस समुदाय या कम्पनी की प्रतिभूतियों के मूल्य कम हो जाते हैं। यदि लम्बे काल तक चल रही हड़ताल व तालाबन्दी समाप्त हो जाती है और कम्पनी पुन: कार्य करने लगती है तो उसकी प्रतिभूतियों के मूल्य फिर से बढ़ने लगते हैं।

संक्षेप में, यह कह सकते हैं कि "जिस प्रकार से समुद्र में नाना प्रकार की हवाएँ अक्रमबद्ध होकर चलती रहती हैं उसी प्रकार स्कन्ध विनिमय पर भी नाना

प्रकार की हवाएँ चलती रहती हैं। वे हवाएँ उत्पाद पैदा करने वाली होती हैं। बाजार से तात्पर्य किसी एक समय स्थापित मूल्य-स्तर से है। ये मूल्य-स्तर अत्यन्त कोमल व ग्रहणशील होते हैं जिन पर प्रत्येक बात का प्रभाव पड़ता है।"

प्रश्न

1. स्कन्ध विनिमयों के सूचियन नियमों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए तथा इसके लाभों पर प्रकाश डालिए।
   Write short notes on Listing regulations of stock exchanges and discuss its advantages.
2. उन मुख्य कारणों पर प्रकाश डालिए जो प्रतिभूतियों के मूल्यों में उच्चावचन उत्पन्न करते हैं।
   Discuss the important factors which cause fluctuations in the prices of securities.

25

स्कन्ध विनिमयों की शब्दावली एवं सट्टा

[TERMINOLOGY OF STOCK EXCHANGES AND SPECULATION]

स्कन्ध विनिमय या विपणि पर अनेकों शब्दों का प्रयोग होता है। हम इस अध्याय में कुछ प्रमुख शब्दों की व्याख्या कर रहे हैं। यह शब्द हैं— (1) विकल्प व्यवहार या सौदे, (2) मन्दड़िया बिक्री (Short Selling), (3) अन्तर व्यापार (Margin Trading), (4) तेजीवाला (Bull), (5) मन्दीवाला (Bear), (6) स्याली या चंचल परिकल्पक (Stag), (7) निरंक हस्तांतरण (Blank Transfer), (8) बदला (Carry over or Budla), व (9) आवरण (Corners)।

(1) विकल्प-व्यवहार या सौदे
(OPTION TRANSACTION OR DEALINGS)

विकल्प व्यवहार या सौदा सट्टे का एक तरीका है। भारत में इन सौदों को तेज-मन्दी सौदों के नाम से पुकारते हैं।

"विकल्प किसी व्यक्ति की हानि एक निश्चित रकम तक सीमित करने का एक तरीका है और इसको निश्चित प्रतिभूतियों को एक निश्चित मूल्य पर और निश्चित समय में बिक्री करने या खरीदने (जैसी भी परिस्थिति हो) के अधिकार की तरह परिभाषित किया जा सकता है।"[1] इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए कुछ धन उस व्यक्ति को देना पड़ता है जिसके साथ यह सौदा हुआ है। इस धन को विकल्प धन (Option Money) या विकल्प प्रब्याजि (Option Premium) कहते हैं। यह विकल्प धन या विकल्प प्रब्याजि किसी भी दिशा में वापस नहीं की जाती है।

विकल्प व्यवहार उन व्यक्तियों के लिए बहुत लाभप्रद है जो अपनी हानि को एक सीमा में रखना चाहते हैं। विकल्प सौदों से न्यूनतम जोखिम या हानि में अधिकतम लाभ कमाये जा सकते हैं। यह व्यवहार आशा के विपरीत मूल्यों में

---

1 "Option is a method of limiting one's loss upto a particular amount and may be defined as the right to sell or buy, as the case may be, a certain amount of security at a certain price within a stipulated time."—Late Dr. K.L. Garg, *Stock Exchanges in India*, p. 144.

परिवर्तन होने पर सीमा का कार्य करते हैं। इन विकल्प व्यवहारों को इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं : मान लें कि अशोक ने अमित से 100 टाटा के अंश 120 रुपये प्रति अंश की दर से खरीदने या बेचने का सौदा किया और 5 रुपये प्रति अंश के हिसाब से विकल्प धन 500 रुपये अमित के पास जमा कराये और दलाल को 25 रुपये दलाली के दिये इस सौदे की अवधि एक मास थी। इस प्रकार अशोक को कुल 525 रुपये देने पड़े। एक मास के अन्दर यदि अंशों के मूल्य बढ़ जाते हैं और 130 रुपये हो जाते हैं तो जिस दिन अशोक मांगेगा उसी दिन अमित को सौदा पूरा करना होगा। यदि यह सौदा खरीद का है तो अशोक को 10 रुपये प्रति अंश से 1,000 रुपये का लाभ होगा लेकिन चूंकि वह 530 पहले ही खर्च कर चुका है अतः 470 रुपये का वास्तविक लाभ होगा। इसके विपरीत, यदि मूल्य गिरकर 110 रुपये ही रह जाते हैं तो अशोक उन अंशों को नहीं खरीदेगा और उसकी हानि 500 रुपये तक ही सीमित रहेगी।

विकल्प व्यवहार तीन प्रकार के होते हैं : (1) विक्रय-विकल्प (Put-Option) या मन्दी सौदा, (2) क्रय-कला (Call Option) या तेजी सौदा, (3) क्रय एवं विक्रय विकल्प (Call and Put Option) या तेजी मन्दी सौदा या दुहरा विकल्प (Double Option)।

(1) **विक्रय-विकल्प** (Put Option)—विक्रय-विकल्प भी दो प्रकार के होते हैं—(i) साधारण विक्रय विकल्प (Ordinary Put Option) एवं (ii) अधिविक्रय विकल्प (Put of More Option)। पहले हम साधारण विक्रय विकल्प की विवेचना करेंगे। (i) **साधारण विक्रय विकल्प** (Ordinary Put Option)—जिस समय भविष्य में मूल्य गिरने की सम्भावना रहती है तो सटोरिये विक्रय विकल्प या मन्दो का सौदा करते हैं अर्थात् भावी तिथि पर प्रतिभूतियों को बेचने या न बेचने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। यदि भविष्य की तिथि तक मूल्य विकल्प धन से नीचे चले जाते हैं तो उन सटोरियों को लाभ होता है जिन्होंने विक्रय विकल्प किया है। वे बाजार से सस्ते मूल्य पर प्रतिभूति खरीदकर अपने पहले से तय किये मूल्य पर बेच कर सौदा पूरा कर देते हैं। यदि मूल्य बढ़ जाते हैं तो वे अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि अधिकार का प्रयोग करने से हानि अधिक होने की सम्भावना रहती है। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं। यदि अशोक ने राजू के साथ टाटा के 100 अंशों का सौदा 130 रुपये अंश की दर से एक मास में बेचने का किया और 5 रुपये प्रति अंश की दर से विकल्प धन राजू को दिया व 25 रुपये दलाली के दलाल को दिये। यदि इन अंशों का मूल्य गिरकर 120 रुपये हो गया तो अशोक को 475 रुपये का लाभ होगा। क्योंकि 100 अंशों को 130 रुपये की दर से बेचने से 13,000 रुपये प्राप्त होंगे लेकिन आज ही 100 अंशों को 120 रुपये की दर से खरीद कर सौदा पूरा करना होगा और इस प्रकार 12,000 रुपये देने होंगे लेकिन वह 100 अंशों पर 5 रुपये अंश से 500 रुपये पहले ही दे चुका है और 25 रुपये

दलाली के दिये हैं तो उसको इन अंशों का मूल्य 12,525 रुपये पड़ेगा और इस प्रकार (13,000—12,525 रुपये) 475 रुपये का लाभ होगा।

इसके विपरीत, यदि मूल्य 140 रुपये हो जाये तो अशोक उन अंशों को बेचने के अधिकार का प्रयोग नहीं करेगा क्योंकि 140 रुपये प्रति अंश की दर से खरीदकर 130 रुपये प्रति अंश की दर पर बेचना पड़ेगा जिसमें हानि अधिक होगी।

(ii) **अधिविक्रय विकल्प** (Put of More Option)—जिस समय सटोरिया बिक्री का सौदा करता है तो वह उस सौदे के साथ अधिविक्रय विकल्प का सौदा भी कर सकता है। अधिविक्रय विकल्प से तात्पर्य निबटारे के दिन सौदे की तादाद से दूनी तादाद की बिक्री करने से है। यदि बिक्री करने वाले को लाभ होगा तो वह इस अधिकार का प्रयोग कर लेगा अन्यथा नहीं। लेकिन जिस समय वह अधिकार का प्रयोग करेगा उसको विकल्प धन उस मात्रा के लिए भी देना होगा। उपर्युक्त उदाहरण में 100 अंशों का सौदा हुआ है यदि अशोक अधिविकल्प का सौदा भी साथ करता है तो निबटारे के दिन वह 100 के स्थान पर 200 अंश बेच देगा। लेकिन वह ऐसा उसी दशा में करेगा जबकि उसको लाभ हो रहा हो अन्यथा वह इस विकल्प का उपयोग नहीं करेगा।

(2) **क्रय-विकल्प** (Call Option) – क्रय-विकल्प दो प्रकार के होते हैं— (i) साधारण क्रय-विकल्प (Ordinary Call Option), एवं (ii) अधिक्रय विकल्प (Call of More Option)। (i) **साधारण क्रय विकल्प** (Ordinary Call Option)—यह एक प्रकार का हस्तान्तरणशील सौदा है "जिसमें क्रेता या वाहक को वह विशेषाधिकार मिल जाता है कि एक निश्चित समय की अवधि में निश्चित अंश प्रसंविदे द्वारा निश्चित मूल्य पर खरीद ले।" यह सौदे उन सटोरियों द्वारा किये जाते हैं जो भविष्य में मूल्य बढ़ने की सम्भावना की आशा रखते हैं। यदि भाव विकल्प धन से अधिक बढ़ जाते हैं तो इस प्रकार का क्रय-विकल्प करने वाले को लाभ होता है इसके विपरीत, यदि भाव कम हो जाते हैं तो निबटारा दिवस पर वह अपने खरीदने के विकल्प का प्रयोग नहीं करता और इस प्रकार इसको विकल्प धन की ही हानि होती है। इसको एक उदाहरण से और अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। जैसे, यदि अभय ने त्रिभुवन से टाटा के 100 अंश एक मास में 120 रुपये प्रति अंश के हिसाब से खरीदने का सौदा किया और 5 रुपये प्रति अंश विकल्प धन त्रिभुवन को दिया व 25 रुपये दलाली के दलाल को दिये। यदि निबटारा दिवस पर या उससे पूर्व किसी भी दिन भाव बढ़कर 135 प्रति अंश हो गये तो अभय अपने सौदे को पूरा कराना चाहेगा और त्रिभुवन से 100 अंश खरीद लेगा। अभय को इस व्यवहार में 975 का लाभ होगा, क्योंकि उसको 100 अंशों का मूल्य 120 रुपये प्रति अंश से 12,000 देने होंगे, साथ ही उसने 500 रुपये विकल्प धन व 25 रुपये दलाली के दिये इस प्रकार उसका क्रय मूल्य 12,525 रुपये हुआ लेकिन चूंकि आज भाव 135 का है तो उसको 13,500 रुपये प्राप्त होंगे और इस प्रकार लाभ (13,500—

12,525) 975 रुपये का होगा। यदि भाव 110 रुपये प्रति अंश रह जाता है तो अभय खरीदने के अधिकार का प्रयोग नहीं करेगा क्योंकि उसको हानि अधिक होगी (100 अंशों पर 10 रुपये अंश से) इस प्रकार उसकी हानि विकल्प धन तक सीमित रहेगी।

(ii) **अधिक्रय विकल्प** (Call of More Option)—अधिक्रय विकल्प से तात्पर्य क्रय-विकल्प में लिखी मात्रा से दुगुनी मात्रा में क्रय करने से है। यदि क्रय करने वाले को लाभ होगा तो वह इस अधिकार का प्रयोग कर लेगा अन्यथा नहीं। जिस समय वह अधिकार का प्रयोग करेगा तो उस अतिरिक्त मात्रा के लिए और विकल्प धन देना होगा। उपर्युक्त उदाहरण में, यदि अभय अधिक्रय का भी सौदा करता है तो निबटारा दिवस पर वह 100 के स्थान पर 200 अंश खरीदेगा लेकिन ऐसा वह तभी करेगा जिस समय उसको लाभ होता होगा अन्यथा वह उस विकल्प का प्रयोग नहीं करेगा।

(3) **क्रय एवं विक्रय विकल्प या दुहरा विकल्प या तेजी मन्दी सौदा** (Call and Put Option or Double Option)—दुहरे विकल्प या क्रय-विक्रय विकल्प से तात्पर्य उन व्यवहारों से है जिनमें व्यवहार करने वाला क्रय एवं विक्रय दोनों विकल्प प्राप्त कर लेता है और भविष्य में निबटारा दिवस पर या इससे पूर्व किसी भी समय इन विकल्पों का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार के विकल्पों के लिए दुहरा विकल्प धन देना पड़ता है। लाभ प्राप्त करने के लिए प्रतिभूतियों के मूल्यों में विकल्प धन से अधिक का परिवर्तन होना चाहिए। किसी भी दशा में विकल्प धन वापस नहीं किया जाता। यदि वह क्रय-विकल्प का उपयोग करना चाहता है तो उसे प्रतिभूतियाँ उनका मूल्य चुकाकर खरीदनी होंगी और यदि वह विक्रय विकल्प का उपयोग चाहता है तो प्रतिभूतियाँ प्राप्त कर बेचनी होंगी। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं : यदि रवि ने अतुल के साथ दोहरा विकल्प टैल्को के 100 अंश 150 रुपये प्रति अंश की दर से किया और 10 रुपये प्रति अंश विकल्प धन दिया जिसमें 5 रुपये विक्रय विकल्प के और 5 रुपये क्रय-विकल्प के हैं। निबटारे के दिवस या उससे पूर्व किसी भी समय यदि मूल्य 10 रुपये प्रति अंश से अधिक गिर जाता या बढ़ जाता है तो वह विक्रय या क्रय-विकल्प का उपयोग कर लाभ प्राप्त कर लेगा। यदि भाव 10 रुपये प्रति अंश से अधिक न बढ़ते हैं और न गिरते हैं तो वह किसी भी विकल्प का उपयोग नहीं करेगा। विकल्प धन किसी भी दशा में वापस नहीं होगा चाहे रवि विकल्पों का उपयोग करे अथवा नहीं।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 की धारा 20 के अनुसार इस अधिनियम के लागू होने की तारीख से विकल्प व्यवहारों को अवैधानिक घोषित कर दिया गया है अतः अब विकल्प व्यवहार भारतीय स्कन्ध विनिमयों पर नहीं होते हैं।

(2) मन्दड़िया बिक्री
(SHORT SELLING)

"मन्दड़िया बिक्री प्रतिभूति बेचने की एक विधि है जिसमें एक व्यक्ति अपने पास प्रतिभूति न होते हुए भी इस आशा में बेच देता है कि मूल्यों के कम हो जाने पर वह खरीद लेगा और विक्रय सौदे को पूरा कर देगा।"[1] इस प्रकार का व्यवहार उन व्यक्तियों के द्वारा किया जाता है जो भविष्य में मूल्यों के कम हो जाने की आशा रखते हैं और वर्तमान ऊँचे मूल्यों से लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे व्यक्तियों को स्कन्ध विनिमय की शब्दावली के अनुसार **मन्दड़िया** (Bear) कहते हैं। यह व्यक्ति पहले ऊँचे मूल्यों पर प्रतिभूतियाँ खरीद लेते हैं और जब निबटारे की तिथि आती है तो उससे पूर्व ही प्रतिभूतियाँ खरीद लेते हैं और निबटारे दिवस पर उन प्रतिभूतियों की सुपुर्दगी का सौदा पूर्ण कर देते हैं। यदि आज बाजार में किसी एक विशेष अंश का मूल्य 125 रुपये है लेकिन मन्दड़िया भविष्य में मन्दी की आशा करता है तो वह आज कुछ अंश एक महीने की सुपुर्दगी पर बेच देगा। यदि एक मास में अंश का मूल्य गिरकर 115 रुपये रह जाता है तो मन्दड़िया इस मूल्य पर उतने ही अंश खरीद लेगा और सौदे को पूरा कर देगा तथा इस प्रकार लाभ प्राप्त कर लेगा। इसके विपरीत, यदि मूल्य बढ़ जाते हैं तो उसको हानि होगी क्योंकि बढ़े हुए मूल्य पर अंश खरीदकर 125 रुपये के भाव से बेचने पड़ेंगे।

मन्दड़िया बिक्री सट्टे के व्यवहारों का एक अंग है। प्रत्येक स्कन्ध विनिमय पर साधारणतया मन्दड़िया बिक्री की जाती है। मन्दड़िया बिक्री से विनियोक्ताओं को लगातार बाजार उपलब्ध होता है और बाजार में माँग व पूर्ति में सन्तुलन भी बना रहता है। लेकिन इसके विपरीत यह कहा जाता है कि मन्दड़िया बिक्री एकत्रीकरण (Cornering) को प्रोत्साहन देती है जिससे विनिमय पर एक अत्यन्त कठिन स्थिति पैदा हो जाती है। नैतिकता के आधार पर भी यह बुरा समझा जाता है कि बिना प्रतिभूति के होते हुए भी उसकी बिक्री कर दी जाती है लेकिन स्वर्गीय डॉ. के. एल. गर्ग के अनुसार, "इसकी नैतिकता के आधार पर आलोचना नहीं की जा सकती है। यह तो मनोविज्ञान की साधारण बात है कि व्यक्ति बिक्री से पहले खरीदना चाहते हैं क्योंकि उनका मस्तिष्क पहले बेचने व बाद में खरीदने का अभ्यस्त नहीं है। लेकिन दोनों ही अवस्थाओं में उद्देश्य लाभ कमाना है।"[2]

---

1 "Short selling has been described as the process of selling a security which one does not possess in the hope of a fall in price; when the sale will be covered by making a purchase."—Late Dr. K. L. Garg. *Stock Exchanges in India*, p. 140.

2 "It can not be criticized on the ethical or moral grounds. It is simply a question of psychology that people wish to buy first than sell because their mind is not adopted to selling first and buying next. In both cases the object is the same, to make a profit." *Ibid*, p. 41.

(3) अन्तर व्यापार
(MARGIN TRADING)

स्कन्ध विनिमय पर व्यवहार नकद व अग्रिम दोनों प्रकार के होते हैं। नकद व्यवहारों को दो भागों में बाँट सकते हैं—एक तो, वे जिनका लेन-देन क्रेता व विक्रेता तुरन्त दलाल के माध्यम से कर लेते हैं। दूसरे, वे जिनमें लेन-देन तो तुरन्त हो जाता है लेकिन दलाल किसी एक की आर्थिक सहायता खाते में नाम-जमा करके करता है, अन्तर व्यापार इसी प्रकार की श्रेणी में आता है। ग्राहक पहले अपने दलाल को चुनता है व उसको कुछ रकम पेशगी (Advance) के रूप में दे देता है। दलाल ग्राहक के आदेश पर प्रतिभूतियाँ खरीद लेता है और उनके मूल्य का भुगतान स्वयं अपनी ओर से करके ग्राहक के खाते में नाम में लिख देता है लेकिन चूँकि ग्राहक ने पूरा मूल्य नहीं चुकाया है, वह प्रतिभूतियाँ अपने पास ही ऋण की एवज में रख लेता है। बाद में ग्राहक के आदेश पर वह उन प्रतिभूतियों को बेच देता है और उनसे प्राप्त रकम ग्राहक के खाते में जमा कर देता है। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है। दलाल के द्वारा प्रतिभूतियों के लिए भुगतान में दी गयी रकम पर कोई ब्याज नहीं ली जाती है।

जिस समय एक ग्राहक या व्यापारी प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय दलाल के यहाँ अपना खाता खोलकर करता है तो इस प्रकार का क्रय एवं विक्रय अन्तर व्यापार (Margin Trading) **कहलाता है और जो व्यापारी ऐसा व्यापार करता है वह अन्तर व्यापारी** (Margin Trader) **कहलाता है। प्रतिभूतियों के बाजार मूल्य व दलाल के यहाँ व्यापारी के खाते में नाम में लिखी राशि के फर्क को अन्तर** (Margin) **कहते हैं।**

स्कन्ध विनिमय के नियमों या परिपाटी के अनुसार प्रत्येक ग्राहक को न्यूनतम मात्रा में अन्तर (Margin) का रुपया जमा रखना पड़ता है। यदि किसी समय प्रतिभूति के मूल्य कम हो जाते हैं तो अन्तर (Margin) भी कम हो जाता है और यदि मूल्य बढ़ जाते हैं तो अन्तर भी बढ़ जाता है। मूल्य कम होने पर दलाल अपने ग्राहक से अतिरिक्त धन या प्रतिभूतियाँ जमा कराने के लिए आग्रह करता है जिससे न्यूनतम-अन्तर-स्तर बनाये रखा जा सके। मूल्य गिरने की दशा में दलाल को प्रतिभूतियाँ बेचने का भी अधिकार होता है। मूल्य में वृद्धि होने की दशा में ग्राहक अतिरिक्त प्रतिभूतियाँ बिना कुछ पेशगी दिये खरीद सकता है।

अन्तर व्यापार को इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं यदि यह मान लें कि एक व्यापारी ने दलाल को 4,000 रुपये पेशगी 1,000 अंश 15 रुपये प्रति अंश खरीदने के लिए दिये। दलाल ने अंश 15,000 रुपये में खरीद लिए व भुगतान कर दिया, इस कार्य के लिए दलाली 75 रुपये हुई, इस प्रकार दलाल के यहाँ खाते में ग्राहक के नाम में 15,075 व जमा में 4,000 रुपये हैं जिसके लिए उसके पास 15,000 रुपये के अंश हैं तो अन्तर राशि (15000—11,075) 3,925 रुपये हुई। यदि अंश के

भाव बढ़कर 18 रुपये हो जाते हैं तो अन्तर राशि बढ़कर (18,000—11,075) 6,925 हो जायेगी व ग्राहक अतिरिक्त प्रतिभूतियाँ खरीद सकेगा। यदि भाव 11 रुपये हो जाता है तो प्रतिभूतियाँ जो दलाल के पास हैं उनका मूल्य 11,000 रुपये हो जायेगा जबकि नाम में रकम 11,075 की होगी। ऐसी दशा में दलाल ग्राहक से अतिरिक्त धन या सहायक प्रतिभूतियाँ (Additional Collateral) जमा कराने का आग्रह करेगा।

भारतीय स्कन्ध विनिमयों पर अन्तर व्यापार सम्बन्धी नियम भिन्न-भिन्न थे। लेकिन 1961 से एक पद्धति अपनायी गयी है जिसे समान स्वचालित अन्तर पद्धति (Uniform Automatic Margin System) कहते हैं। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक विनिमय पर अन्तर व्यापार सम्बन्धी नियम एक समान कर दिये गये हैं।

(4) तेजीवाला
(BULL)

जिस प्रकार से साँड़ ऊपर की ओर देखता है उसी प्रकार यह सटोरिया या परिकल्पक भी मूल्यों के बढ़ने की आशा करता है। यह वर्तमान में खरीद करता है व भविष्य में बेचता है। यदि निबटारा दिवस पर मूल्य बढ़ जाते हैं तो उसको लाभ होता है लेकिन इसके विपरीत, यदि मूल्य कम हो जाते हैं तो उसको हानि होती है। यदि वह हानि से बचने के लिए अगले निबटारा दिवस तक सौदे को स्थगित करना चाहता है तो ऐसा **बदला शुल्क** (Contango Charge) देकर कर सकता है। स्थगित न होने की दशा में क्रय मूल्य एवं वर्तमान विक्रय मूल्य के अन्तर का भुगतान कर सौदा पूरा कर दिया जाता है।

कुछ व्यक्ति सदा ही मूल्यों के बढ़ने की धारणा से व्यवहार करते हैं तो ऐसे सटोरियों को पक्का तेजीवाला (Staunch Bull) **कहते हैं। यदि मूल्य आशा के अनुरूप नहीं बढ़ते और तेजड़िये को स्थगन करना पड़ता है तो ऐसे तेजड़िये को निराश** (Disappointed) **या थका हुआ** (Tired) **तेजीवाला कहते हैं।**

(5) मन्दीवाला
(BEAR)

जिस प्रकार रीछ हमेशा नीचे की ओर देखता है उसी प्रकार **यह सटोरिया हमेशा मूल्यों के कम होने की आशा रखता है। यह वर्तमान में बेचता है व भविष्य में खरीदता है।** यदि निबटारा दिवस पर मूल्य कम हो जाते हैं तो उसको लाभ होता है और इसके विपरीत, यदि मूल्य बढ़ जाते हैं तो इसको हानि होती है। यदि यह हानि से बचने के लिए अगले निबटारा दिवस तक सौदे को स्थगित करना चाहता है तो ऐसा बदला शुल्क देकर कर सकता है। स्थगन न होने की दशा में वर्तमान मूल्य एवं विक्रय मूल्य का भुगतान कर सौदा पूरा कर दिया जाता है।

(6) ख्याली या चंचल परिकल्पक
(STAG)

यह भी एक प्रकार का तेजीवाला सटोरिया है लेकिन तेजीवाला व ख्याली में अन्तर है। तेजीवाला पुरानी प्रतिभूतियों में व्यवहार करता है। **ख्याली नयी प्रति-**

भूतियों में और वह भी उस समय जबकि अंश या प्रतिभूतियों के लिए संस्था किसी के द्वारा आवेदन-पत्र माँगे जाते हैं। यह उन प्रतिभूतियों के लिए आवेदन-पत्र इस आशा में भेज देता है कि आबंटन से पहले ही उन प्रतिभूतियों का मूल्य बढ़ जायेगा और वह इस प्रकार बिना आबंटन अपने नाम कराये मूल्यों के बढ़ने पर प्रतिभूतियों को बेचकर लाभ प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार के सटोरिये को ख्याली या चंचल परिकल्पक कहते हैं और उसकी इन क्रियाओं को ख्याली क्रियाएँ या चपलता (Stagging) कहते हैं। यदि आबंटन से पूर्व उन प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं तो ख्याली को लाभ होता है और यदि मूल्य गिर जाते हैं तो हानि होती है।

आजकल इस ख्याली (Stag) शब्द का प्रयोग विनिमयों पर उन व्यक्तियों के लिए भी किया जाता है जो बैंक से ऋण लेकर औद्योगिक एवं सहकारी प्रतिभूतियाँ इस आशा में खरीद लेते हैं कि आगे मूल्य बढ़ने पर बेच देंगे। ग्राहक प्रतिभूतियाँ खरीदने के बाद बैंक के पास ऋण की एवज में गिरवीं रख देता है। यदि मूल्य बढ़ जाते हैं तो लाभ होता है और यदि गिर जाते हैं तो हानि होती है। **ऐसे सटोरियों को रूपक तेजीवाला या अर्द्ध तेजीवाला** (Bull in the Making) **कहते हैं।**

तीनों तेजीवाला, मन्दीवाला व चंचल परिकल्पक के कार्य एवं विशेषताएँ पृथक्-पृथक् हैं। लेकिन ऐसा कोई नियम नहीं है कि वे केवल एक ही रूप में कार्य कर सकें। एक ही परिकल्पक एक या दोनों या तीनों प्रकार का कार्य कर सकता है।

(7) निरंक हस्तान्तरण
(BLANK TRANSFER)

निरंक हस्तान्तरण एक प्रकार का हस्तान्तरण है जिसमें विक्रेता अंश प्रमाण-पत्रों को एक कोरे हस्तान्तरण फार्म पर हस्ताक्षर करके क्रेता को दे देता है। उस हस्तान्तरण फार्म पर क्रेता का नाम नहीं लिखा जाता है। उसका प्रभाव यह होता है कि यदि क्रेता उन अंशों को बेचना चाहे तो नये क्रेता का नाम भरकर बेच सकता है। साधारणतया विनिमय पर एक कोरे फार्म के साथ कई सौदे उस फार्म के हस्तान्तरण पर ही हो जाते हैं और अन्त में जो ग्राहक वास्तव में उन अंशों को खरीदना चाहता है उसका नाम उसमें भर दिया जाता है और अंश उसके नाम कम्पनी द्वारा हस्तान्तरित कर दिये जाते हैं।

निरंक हस्तान्तरण से स्टाम्प कर की बचत हो जाती है और कम्पनी को बार-बार अंशधारियों के रजिस्टर में परिवर्तन नहीं करना पड़ता है। लेकिन इसके विपरीत, विक्रेता को यह हानि रहती है कि जब तक उसका नाम अंशधारियों के रजिस्टर से हट नहीं जाता तब तक वह अंशों के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

निरंक हस्तान्तरण सट्टे की क्रियाओं में वृद्धि करता है। अतः इसको समाप्त कर देना चाहिए लेकिन इसको समाप्त कर देने से स्कन्ध विनिमयों पर सट्टा व्यापार लगभग समाप्त हो जायेगा जो विनिमयों व जनसाधारण के हित में नहीं होगा क्योंकि फिर कम्पनी में पंजीकरण कराने में समय लगेगा और जब तक पंजीकरण नहीं हो जायेगा हस्तान्तरण अवैध होगा। इसलिए यह सुझाव है कि निरंक हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा देने चाहिए। इसको बिल्कुल समाप्त नहीं करना चाहिए।

(8) बदला
(CARRY OVER OR BUDLA)

जिस समय सटोरिया आशा में विपरीत दिशा में मूल्य परिवर्तन होने पर अपने सौदे को पूरा नहीं करना चाहता और उसको अगली तारीख तक चलाना चाहता है तो इस सौदे को आगे चलाने की कार्यवाही बदला कहलाती है। इस कार्य के लिए सटोरिये को कुछ देना पड़ता है जिसको **बदला शुल्क** कहते हैं। यदि यह शुल्क तेजीवाला (Bull) देता है तो इसको तेजी शुल्क या **बदला शुल्क** (Contango Charges) कहते हैं और जब मन्दीवाला (Bear) शुल्क देता है, तो इसको **मन्दी-बदला शुल्क** (Backwardation Charges) कहते हैं।

(9) आवरण
(CORNERS)

जब विनिमय पर कुछ सदस्यों के द्वारा एक ही प्रकार की प्रतिभूतियों की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण कर दिया जाता है तो ऐसी स्थिति को घेराबन्दी या आवरण (Cornering or Corners) **कहते हैं।** ये सदस्य उन प्रतिभूतियों को मनमाने मूल्य पर बेचकर लाभ प्राप्त करते हैं। जिस समय आवरण या घेराबन्दी की स्थिति हो जाती है तो विनिमय पर संकट उत्पन्न हो जाता है जिसके निवारण के लिए कभी-कभी विनिमय के पदाधिकारियों को हस्तक्षेप करना पड़ता है।

स्कन्ध विनिमय पर सट्टा या परिकल्पना
(SPECULATION ON STOCK EXCHANGES)

यदि कोई व्यक्ति भविष्य में होने वाले आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तनों को ध्यान में रखकर प्रतिभूतियों के मूल्यों की कल्पना कर उनमें व्यवहार करता है तथा जिसका उद्देश्य वास्तविक रूप से प्रतिभूतियाँ खरीदना या बेचना नहीं है तो ऐसे व्यवहारों को परिकाल्पनिक व्यवहार या सट्टे के व्यवहार (Speculative Transactions) **कहते हैं और जिस व्यक्ति के द्वारा इस प्रकार के व्यवहार किये जाते हैं उसे परिकल्पक या सटोरिया** (Speculator) **कहते हैं।**

यदि सटोरिये की कल्पना के अनुसार प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन होते हैं तो उसको लाभ होता है। इसके विपरीत, यदि उसकी कल्पना की साकार नहीं होती अर्थात् कल्पना की विपरीत दिशा में मूल्यों में परिवर्तन होता है तो उसकी हानि होती है। इसको एक उदाहरण लेकर और अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। यदि यह मानलें कि एक व्यक्ति विभिन्न कारणों से भविष्य में प्रतिभूतियों के मूल्यों में बढ़ोत्तरी की कल्पना करता है तो वह व्यक्ति उन प्रतिभूतियों को इस समय खरीद लेगा और यदि उसकी कल्पना के अनुसार मूल्य बढ़ गये तो उन प्रतिभूतियों को निबटारा दिवस या इससे पूर्व बेच देगा। इस प्रकार का सौदा आवरण (cover) कहलाता है। सट्टे के व्यवहारों में प्रतिभूतियों की वास्तविक सुपुर्दगी नहीं होती बल्कि मूल्यों के अन्तर

को देकर या लेकर सौदा पूरा कर दिया जाता है। इस प्रकार उसको क्रय मूल्य व विक्रय मूल्य के अन्तर का लाभ हो जाता है। इसके विपरीत, यदि मूल्य कल्पना के अनुसार नहीं बढ़ते और घट जाते हैं तो उनको हानि होगी क्योंकि क्रय मूल्य विक्रय मूल्य से अधिक होगा।

सट्टे या परिकल्पना का उद्देश्य वर्तमान एवं भविष्य के मूल्यों के अन्तरों से एक निश्चित तिथि पर लाभ प्राप्त करना है।

विनियोग एवं परिकल्पना
(INVESTMENT AND SPECULATION)

विनियोग एवं सट्टे में काफी अन्तर है—(1) विनियोग करने का उद्देश्य विनियोग से नियमित एवं स्थायी आय प्राप्त करना है लेकिन सट्टे का उद्देश्य वर्तमान एवं भावी मूल्यों के अन्तरों से लाभ प्राप्त करना है। (2) विनियोग में प्रतिभूतियों का वास्तविक आदान-प्रदान होता है अर्थात् विक्रेता प्रतिभूतियों को क्रेता के सुपुर्द कर देता है। सट्टे में प्रतिभूतियों का आदान-प्रदान नहीं होता है वल्कि मूल्यों के अन्तरों का आदान-प्रदान होता है। (3) विनियोक्ता अपनी पूँजी से ही व्यवहार करता है लेकिन सटोरिया ऋण लेकर भी व्यवहार करता है। (4) विनियोग करने वाले सदा तैयारी (Ready) के सौदे करते हैं लेकिन सट्टे के सौदे करने वाले प्रायः अग्रिम (Forward) सौदे करते हैं। (5) सट्टा करने वाले एक निश्चित अवधि के लिए अपनी पूँजी का विनियोजन नहीं करते हैं अपितु वे तुरन्त प्रत्याय (Return) में विश्वास करते हैं लेकिन विनियोजक अपनी पूंजी एक निश्चित अवधि के लिए लगाता है इसलिए वह तुरन्त प्रत्याय पर विश्वास नहीं रखता है। (6) विनियोग करने वाले कम्पनी की क्रियाओं एवं उसकी वित्तीय स्थितियों पर विशेष ध्यान देते हैं लेकिन परिकल्पक कम्पनी की आर्थिक स्थिति पर ध्यान नहीं देते हैं बल्कि प्रतिभूतियों के मूल्यों पर अधिक ध्यान देते हैं।

परिकल्पना या सट्टा एवं जुआ
(SPECULATION AND GAMBLING)

साधारणतया सट्टा एवं जुए में अधिक अन्तर नहीं दिखायी देता है क्योंकि दोनों में ही सम्भावना सिद्धान्त (Theory of Probability) लागू होता है। दोनों में अन्तर इतना कम व अस्पष्ट है कि यह कहना कठिन है कि सट्टा कहाँ समाप्त होता है और जुआ कहाँ से शुरू होता है लेकिन फिर भी दोनों में अन्तर पाया जाता है।

(1) सट्टे के निर्णय विपणि ज्ञान, अनुभव एवं व्यापारिक नियमों पर आधारित होते हैं लेकिन जुआ कोरी कल्पना पर आधारित होता है। जुए में किसी प्रकार के ज्ञान एवं अनुभव की आवश्यकता नहीं होती है। जुआरी भाग्य के आधार पर व्यवहार करता है। (2) सट्टा सवैधानिक एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से उचित समझा जाता है और इसके द्वारा माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन लाने का प्रयत्न किया जाता है।

जुआ सामाजिक दृष्टि से एक बुराई है और संवैधानिक दृष्टि से दण्डनीय अपराध है। (3) सट्टा समाज की आर्थिक उन्नति में सहायक होता है लेकिन जुआ समाज के लिए अभिशाप है। (4) सट्टा मूल्यों के परिवर्तन से सम्बन्धित आर्थिक जोखिम को उठाने से सम्बन्धित है लेकिन जुआ कृत्रिम जोखिम को उठाने की क्रिया है। (5) सट्टे में ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर भावी मूल्यों का अनुमान लगाते हैं लेकिन जुए में केवल अनुमान ही आधार होता है जिससे जुआ अन्धविश्वास पर ही खेला जाता है। (6) परिकल्पना या सट्टा का उद्देश्य भावी उच्चावचनों के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त करना है, तथा लाभ कमाना है लेकिन जुआ का उद्देश्य तो मूल्यों के अन्तर पर लाभ कमाना है। (7) सट्टे के व्यवहारों में वस्तुओं का आदान-प्रदान हो सकता है लेकिन जुए में तो वस्तुओं का आदान-प्रदान होता ही नहीं है।

स्वस्थ सट्टा या परिकल्पना
(HEALTHY SPECULATION)

जो सट्टा व्यापारिक ज्ञान एवं दूरदर्शिता पर आधारित है, समाज के लिए कल्याणकारी होता है और यही स्वस्थ सट्टा कहलाता है। स्वस्थ सट्टा विपणि का जीवन रक्त कहा जाता है। "**आर्थिक वास्तविकताओं पर आधारित सट्टा लाभप्रद हो सकता है लेकिन सट्टा सट्टे के लिए निश्चित ही हानिकारक होता है।**"[1]

स्वस्थ सट्टे से समाज को लाभ होता है—(1) लगातार क्रय एवं विक्रय होने से उन प्रतिभूतियों का विपणन क्षेत्र विस्तृत हो जाता है जिससे वास्तविक विनियोक्ताओं को क्रय-विक्रय में सुविधा रहती है। (2) बाजार के विस्तृत हो जाने से पूँजी की गतिशीलता में भी वृद्धि होती है। (3) व्यापारी वर्ग भविष्य की अनिश्चितताओं से बचने के लिए सटोरियों से द्वैधरक्षण (Hedging) के सौदे कर सकता है और अपना व्यापार योजना के अनुसार चला सकता है। (4) सटोरियों के व्यवहारों से माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन बना रहता है जिससे अनायास न मूल्य वृद्धि होती है और न कमी होती है। क्योंकि मूल्य बढ़ने की सम्भावना में तेजी वाले व मूल्य घटने की सम्भावना में मन्दी वाले व्यवहार करते रहते हैं। (5) सट्टे के कारण भावी परिवर्तनों का पूर्वानुमान हो जाता है।

सट्टे या परिकल्पना के दोष
(EVILS OF SPECULATION)

यदि किसी अच्छी वस्तु का प्रयोग उचित विधि से न किया जाय तो वह अच्छी वस्तु भी हानिकारक सिद्ध हो सकती है। इसी प्रकार स्कन्ध विनिमय पर जो सट्टा होता है यह लाभकारक होते हुए भी हानिकारक हो सकता है यदि इसका

---

1 "Speculation based on economic realities may be beneficial but speculation on speculation is definitely injurious." —*Arthur Salter*

प्रयोग उचित प्रकार से न किया जाय। (1) यदि अपरिपक्व व अनुभवहीन, सटोरिये विनिमय पर व्यवहार करने लग जाते हैं तो व्यवहारों में असन्तुलन पैदा हो जाता है जिनका परिणाम यह होता है कि मूल्यों में भारी परिवर्तन (Fluctuation) होने लगते हैं जिसका प्रभाव वास्तविक व्यापार पर पड़ता है और मूल्य विनिमय के मूल्यों के अनुरूप चलने लगते हैं। (2) कभी-कभी सटोरिये जानबूझकर **बाजार समेटने** (Covering) की क्रियाएँ करते हैं जिससे विनिमय पर क्रियाएँ असन्तुलित हो जाती हैं और अव्यवस्था फैल जाती है। (3) इन सटोरियों के द्वारा विभिन्न प्रकार की अफवाहें समय-समय पर व्यक्तिगत लाभ कमाने की दृष्टि से फैलाई जाती हैं जिनका वास्तविक व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है। (4) अत्यधिक परिकल्पना के परिणाम-स्वरूप प्रतिभूतियों का ऋण मूल्य (Collateral Value) कम हो जाता है।

भारतीय स्कन्ध विनिमयों पर सट्टा होने के कारण
(CAUSES OF SPECULATION ON INDIAN STOCK EXCHANGES)

भारत में लगभग सभी स्कन्ध विनिमय पर सट्टा होता है लेकिन बम्बई, कलकत्ता व मद्रास अधिक प्रसिद्ध है और इनमें भी बम्बई विनिमय प्रमुख है। विनिमय पर सट्टे की क्रियाएँ अधिक होने के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :

(1) विनिमय की प्रबन्ध समिति नियमों का कठोरता से पालन नहीं कराती है। (2) कई विनिमयों पर कोई भी अन्तरराशि (Margin) जमा कराने का नियम नहीं है और यदि कोई नियम है भी तो उसका पालन उचित रूप में नहीं किया जाता है। (3) विनिमय पर अधिकाश व्यवहार उधार होते है जो अधिक व्यापार करने को प्रोत्साहित करते हैं। (4) दलालों की पारस्परिक स्पर्द्धा व्ययों में कमी कर देती है जिससे व्यवहारों मे वृद्धि होती है। (5) दलालो व तरावनी वालों के व्यापार करने की कोई सीमा निर्धारित नहीं है। वे किसी भी सीमा तक सट्टा कर सकते हैं। (6) प्रतिभूतियों का हस्तान्तरण सरलता से हो जाता है जो सट्टे व्यवहारों को प्रोत्साहित करता है। (7) अग्रिम सौदा पूरा होना आवश्यक न होने के कारण सौदे अधिक होते हैं।

सट्टे पर रोक
(PREVENTION ON SPECULATION)

सट्टे पर रोक लगाने के विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ विद्वानो का मत है कि इस पर रोक लगा देनी चाहिए जबकि कुछ का मत है कि इस पर रोक नहीं लगानी चाहिए। लेकिन अधिकांश विद्वान इस मत से सहमत हैं कि **सट्टे पर नियन्त्रण अवश्य रखा जाना चाहिए और इस सम्बन्ध में निम्नांकित सुझाव दिये जाते हैं :**

(1) **अग्रिम व्यवहार** (Forward Trading)—अग्रिम व्यवहार तथा बदला पद्धति सट्टे को प्रोत्साहित करती है अतः अग्रिम व्यवहारों पर इस प्रकार नियन्त्रण

किया जाय कि उनकी मात्रा कम हो जाय। इसके लिए व्यवहारों पर कर लगाकर महँगा कर दिया जाय तथा प्रत्येक सदस्य के व्यवहार करने की सीमा भी निश्चित कर दी जाय।

(2) **निरंक-हस्तान्तरण** (Blank Transfer)—निरंक हस्तान्तरण से भी सट्टे के व्यवहारों में वृद्धि होती है। निरंक हस्तान्तरण स्टाम्प कर (Stamp Tax) अधिक होने के कारण किया जाता है। इसके निवारण के लिए स्टाम्प कर में कमी की जानी चाहिए।

(3) **अन्तर धन** (Margin Money)—प्रत्येक व्यवहार के साथ एक निश्चित सीमा में अन्तर धन विनिमय के पास जमा किया जाना चाहिए जिससे सट्टे के व्यवहारों में कुछ कमी आ जायेगी क्योंकि व्यवहार करने वाले को अन्तर धन जमा कराना होगा।

(4) **विनिमय के सदस्यों का वर्गीकरण** (Classification of Members)—विनिमय के सदस्यों का वर्गीकरण वर्ष के आरम्भ में उनकी सहमति से कर दिया जाना चाहिए। वे वर्ष भर किस प्रकार कार्य करेंगे, दलाल की तरह या तरावनी वाले की तरह। इससे लाभ यह होगा कि व्यवहार करने वालों की संख्या कम हो जायेगी।

(5) **वायदा तोड़ने वाले सदस्यों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही** (Firm action against Defaulters)—जो सदस्य वायदा तोड़े उनके विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाय। उनको अन्य सदस्यों के साथ समझौता करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

(6) **बैंकों द्वारा ऋण** (Advances by Banks)—अधिकतर सट्टे के व्यवहार बैंकों से ऋण प्राप्त करके किये जाते हैं; अतः आवश्यकता इस बात की है कि बैंकों पर इस सम्बन्ध में कुछ नियन्त्रण रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा किया जाय जिससे अत्यधिक धन व्यवहार करने वालों को बैंक से ऋण मिल सके।

(7) **स्कन्ध विनिमय आयोग की स्थापना** (Establishment of Stock Exchanges Commission)—जिस प्रकार के पदार्थों के लिए अग्रिम बाजार आयोग केन्द्रीय सरकार ने स्थापित कर दिया है उसी प्रकार से प्रतिभूतियों के अग्रिम व्यवहारों के नियन्त्रण के लिए एक स्कन्ध विनिमय आयोग की स्थापना करनी चाहिए। जिसका कार्य स्कन्ध विनिमयों की दैनिक कार्य-विधि एवं व्यवहारों पर उचित नियन्त्रण रखना होना चाहिए। इसको वे सभी अधिकार होने चाहिए जो अग्रिम-बाजार-आयोग को हैं।

प्रश्न

1.* 'विकल्प-व्यवहार' से आप क्या समझते हैं? विकल्प की विभिन्न शक्लों को उदाहरणों से समझाइए तथा यह भी बताइए कि वे विपरीत मूल्य परिवर्तन के विरुद्ध बीमा के रूप में किस प्रकार सेवा करते हैं?

What do you understand by 'option dealing' ? Explain with examples, the different forms of options and indicate how they serve as insurance against adverse price changes.

2. सट्टे का क्या आर्थिक अभिनय है ? यह जुए में कब परिवर्तित हो जाता है ? क्या जुआ स्कन्ध विनिमय पर रोका जा सकता है ?

What is the economic role of speculation ? When does it turn into gambling ? Can gambling on a stock exchange be prevented.

3. निम्न पर टिप्पणी लिखिए :

(i) अन्तर व्यापार
(ii) मन्दड़िया बिक्री
(iii) चंचल परिकल्पक
(iv) बदला
(v) आवरण

Wri e notes on the following :

(i) Margin Trading
(ii) Short Selling
(iii) Stag
(iv) Carry over
(v) Corners.

26

स्कन्ध विनिमयों का नियमन

[REGULATION OF STOCK EXCHANGES]

स्कन्ध विनिमयों का नियमन
(REGULATION OF STOCK EXCHANGES)

स्कन्ध विनिमयों के नियमन का अध्ययन (i) स्वतन्त्रता से पूर्व एवं (ii) स्वतन्त्रता के पश्चात् के रूप में किया जा सकता है।

स्वतन्त्रता से पूर्व नियमन (Regulation Before Independence)—प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम [The Securities Contracts (Regulation) Act] अखिल भारतीय स्तर पर पहला अधिनियम है जो स्वतन्त्रता के पश्चात् 20 फरवरी, 1957 को लागू किया गया है। इससे पूर्व स्कन्ध विनिमयों का नियमन एवं नियन्त्रण करने के लिए पहला प्रयत्न बम्बई राज्य सरकार ने किया तथा बाद में निजाम (हैदराबाद) सरकार ने भी बम्बई अधिनियम को अपना लिया था। यह अनुबन्ध 1925 में प्रतिभूति अनुबन्ध नियन्त्रण अधिनियम (The Securities Contracts Control Act) के नाम से बना था और जून, 1927 से लागू किया गया। इस अधिनियम के बनाने की आवश्यकता जनता की स्कन्ध विनिमयों की कड़ी आलोचना के कारण हुई थी। इस अधिनियम के बनाने से पूर्व राज्य सरकार ने 14 सितम्बर, 1923 को श्री एटली (Atlay) की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की थी। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर यह अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई भी स्कन्ध विनिमय सरकार से स्वीकृति प्राप्त करने हेतु आवेदनपत्र दे सकता था। एक बार स्वीकृति प्राप्त होने पर विनिमय अपने नियमों में परिवर्तन बिना राज्यपाल की स्वीकृति के नहीं कर सकता था। राज्य सरकार को स्वीकृति वापस लेने का अधिकार था। इस अधिनियम के अन्तर्गत दी नेटिव शेयर एण्ड ब्रोकर्स एसोसिएशन, बम्बई व शेयर एण्ड स्टाक ब्रोकर्स एसोसिएशन, अहमदाबाद केवल दो ही विनिमय स्वीकृत हुए यद्यपि इनके अतिरिक्त अन्य विनिमय भी कार्य कर रहे थे।

प्रतिभूति अनुबन्ध नियन्त्रण अधिनियम, 1925 को अधिक प्रभावशाली प्रतीत न होते देखकर 1936 में डब्लू. बी. मोरीसन (W. B. Morrison) की अध्यक्षता

में जो लन्दन स्टॉक एक्सचेंज के सदस्य थे, एक समिति नियुक्त की। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर 1937 में भविष्य अनुबन्ध नियन्त्रण अधिनियम (Forward Contracts Control Act) पास किया गया। इस अधिनियम ने बम्बई राज्य सरकार को पदार्थों व शेयरों के विनिमयों के नियन्त्रण करने के विस्तृत अधिकार दे दिये लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ हो जाने के कारण स्कन्ध विनिमयों पर भारत सुरक्षा कानून (Defence of India Rules) के अन्तर्गत नियन्त्रण किया जाने लगा।

स्वतन्त्रता के पश्चात् (After Independence) —युद्ध के समय नियन्त्रण के अनुभव के आधार पर यह सोचा गया कि भारत में अखिल भारतीय स्तर पर एक अधिनियम होना चाहिए। अत 1945 मे केन्द्रीय सरकार ने अपने आर्थिक सलाहकार (Economic Adviser) डॉ. पी. जे. टामस को ब्रिटेन, अमरीका व भारत के स्कन्ध विनिमयों का अध्ययन कर भारतीय स्कन्ध विनिमयों को किस प्रकार नियमित किया जाये, इस सम्बन्ध में अपना प्रतिवेदन देने को कहा। डॉ. टामस ने अपना प्रतिवेदन 1947 में प्रस्तुत कर दिया। इस प्रतिवेदन पर दो विभागीय समितियों ने विचार-विमर्श किया। इसी बीच 26 जनवरी, 1950 को भारतीय गणतन्त्र का संविधान लागू हो गया और स्कन्ध विनिमय व पदार्थ विनिमय केन्द्रीय सरकार के विषय बन गये। इन समितियों के प्रस्ताव 25 जून 1951 को एक समिति को सौंप दिये गये जिसके अध्यक्ष श्री ए. डी. गोरवाला थे। इस समिति से कहा गया था कि वह (1) सरकार के प्रस्ताव पर विचार करे व प्रतिवेदन प्रस्तुत करे, (2) एक विधेयक बनाये, व (3) इस विषय पर अन्य सिफारिशें पेश करे। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 14 जुलाई, 1951 को केन्द्रीय सरकार को प्रस्तुत कर दिया।

गोरवाला समिति के द्वारा तैयार विधेयक कुछ परिवर्तनों के बाद लोक सभा में 24 दिसम्बर, 1954 को प्रस्तुत किया गया। गोरवाला समिति की (i) स्टॉक एक्सचेंज आयोग की स्थापना, (ii) प्रत्येक मान्यता प्राप्त विनिमय पर समाशोधन गृह की स्थापना, (iii) केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिकारों को किसी अधिकारी या सत्ता को सौंपना, व (iv) कुछ प्रकार के संविदों को इस अधिनियम से छूट देने के सम्बन्ध की सिफारिशों को नहीं माना गया और इनको विधेयक में सम्मिलित नहीं किया गया। यह विधेयक संयुक्त प्रवर समितियों (Joint Select Commitee) को भी सौंपा गया व अन्त में इस विधेयक ने 4 सितम्बर, 1956 को प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम का रूप ले लिया जिसको केन्द्रीय सरकार ने 20 फरवरी, 1957 से लागू कर दिया।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF THE SECURITIES CONTRACT (RAGULATION) ACT)

वित्त मन्त्री ने अपने वक्तव्य में कहा था कि "स्कन्ध विनिमय सुधार का मुख्य

उद्देश्य सट्टेवाली क्रियाओं को नियमित करना है जिससे कि वे जुए में अपकर्षित न हो सकें; इस सुधार का यह उद्देश्य नहीं है कि विनियोग की खरीद या बिक्री में हस्तक्षेप करे या वैध सट्टे में हस्तक्षेप करे जब तक कि वे नियमों के अनुसार हैं। इस उद्देश्य को ध्यान से रखते हुए, विधेयक, जो अब संसद के समक्ष है, बनाया गया है।"[1] इस प्रकार इस अधिनियम का उद्देश्य (i) अवांछित सौदों को रोकना, (ii) विकल्प व्यवहारों (option dealings) को समाप्त करना, व (iii) ऐसी स्वस्थ परम्परा डालना है जिससे अवांछित परिकल्पना समाप्त हो जाये, और (iv) सौदे पहले से निर्धारित नियमों के अनुसार उचित रूप में हो सकें।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम की मुख्य बातें
(MAIN PROVISIONS OF THE SECURITIES CONTRACTS (REGULATION) ACT)

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 में समय-समय पर संशोधन किये गये हैं। इस संशोधित अधिनियम की मुख्य बातों का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं :

(I) स्कन्ध विनिमयों को मान्यता (Recognition of Stock Exchanges), (II) केन्द्रीय सरकार के अधिकार (Powers of the Central Government), (III) प्रतिभूतियों में सौदे (Dealings in Securities), (IV) स्कन्ध विनिमय की कार्यप्रणाली पर नियन्त्रण (Control on the working of the Stock Exchanges), (V) सदस्यता (Membership), (VI) हिसाब-किताब की पुस्तकों का अनुरक्षण (Maintenance of Account Books)।

(I) **स्कन्ध विनिमयों को मान्यता** (Recognition of Stock Exchanges)—कोई भी स्कन्ध विनिमय बिना केन्द्रीय सरकार की मान्यता के कार्य नहीं कर सकता है और न कोई नया स्कन्ध विनिमय बिना केन्द्रीय सरकार की अनुमति के खोला जा सकता है (धारा 19)। मान्यता प्राप्त करने के इच्छुक विनिमय को केन्द्रीय सरकार को निर्दिष्ट रूप में आवेदनपत्र देना पड़ता है। इस आवेदनपत्र के साथ उपनियमों की व विधान की एक प्रतिलिपि भी देनी पड़ती है। केन्द्रीय सरकार आवश्यक जाँच पड़ताल करने के बाद, यदि सन्तुष्ट हो जाती है, तो उस विनिमय को मान्यता प्रदान कर सकती है। **लेकिन मान्यता प्रदान करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार इन बातों पर विशेष ध्यान देती है कि** (1) स्कन्ध विनिमय के नियम

---

1 "The basic object of stock exchange reform is, therefore, to regulate speculative activities so that they may not degenerate into gambling; it is not the object of such reform to interfere with investment-buying or selling or even with legitimate speculation as long as it conforms to the rules of the game. It is with this object in view that the Bill now before the house has been framed." —Statement of the then Finance Minister in the Parliament during discussion on the Securities Contracts (Regulation) Bill.

व उपनियम इस प्रकार के हैं कि विनियोक्ताओं के साथ उचित व्यवहार होगा व उनके हितों की रक्षा होगी। (2) स्कन्ध विनिमय सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों को मानने के लिए तैयार हैं। (3) स्कन्ध विनिमय को अनुमति देना व्यापार तथा, राष्ट्र के हित में होगा।

केन्द्रीय सरकार मान्यता प्रदान करते समय निम्नांकित बातों से सम्बन्धित शर्तें लगा सकती है : (1) स्कन्ध विनिमय के सदस्यों की योग्यता; (2) सदस्यों के बीच अनुबन्धों के ढंग; (3) विनिमय पर केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधित्व (3) सदस्यों से अधिक नहीं); व (4) सदस्यों द्वारा हिसाब-किताब रखना व उनका अंकेक्षण।

नयी शर्त (New Condition)—"केन्द्रीय सरकार ने कलकत्ता स्कन्ध विनिमय की मान्यता की वृद्धि अगले पाँच वर्ष के लिए और कर दी है लेकिन मान्यता में वृद्धि करते समय दो नवीन शर्तें लगा दी हैं : (i) स्कन्ध विनिमय का कोई सभापति या उप-सभापति तीन लगातार वर्षों से अधिक सभापति या उप-सभापति पद पर नहीं रह सकता है। (ii) कलकत्ता स्कन्ध विनिमय की सदस्यता के लिए किसी व्यक्ति में मैट्रीकुलेशन या उसके समकक्ष योग्यता का होना अनिवार्य है। वित्त मन्त्रालय के प्रेस नोट के अनुसार कलकत्ता स्कन्ध विनिमय से उपर्युक्त परिवर्तनों को अपने विधान में एक वर्ष के अन्दर जोड़ने को कहा गया है।"

यदि केन्द्रीय सरकार यह अनुभव करती है कि मान्यता को व्यापार व जन-हित में वापस ले लेना चाहिए तो केन्द्रीय सरकार विनिमय को अपनी बात रखने का उचित अवसर देते हुए मान्यता को वापस ले सकती है।

उपर्युक्त नियमों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने 9 स्कन्ध विनिमयों को मान्यता प्रदान की है—बम्बई स्कन्ध विनिमय, कलकत्ता स्कन्ध विनिमय, मद्रास स्कन्ध विनिमय, दिल्ली स्कन्ध विनिमय, अहमदाबाद स्कन्ध विनिमय, हैदराबाद स्कन्ध विनिमय, मध्य प्रदेश स्कन्ध विनिमय, इन्दौर व बंगलौर स्कन्ध विनिमय, व पूना स्कन्ध विनिमय।

(II) **केन्द्रीय सरकार के अधिकार** (Powers of the Central Government)—इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये हैं – (1) विनिमय की मान्यता को वापस लेना (धारा 5); (2) विनिमय से समय-समय पर विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ माँगना (धारा 6); (3) प्रत्येक विनिमय द्वारा वार्षिक प्रतिवेदन सरकार को भेजना (धारा 7); (4) मान्यता प्राप्त विनिमय के नियमों में बिना सरकार की पूर्व अनुमति के परिवर्तन न होना (धारा 7 अ); (5) किसी भी विनिमय को नये नियम व उपनियम बनाने के लिए बाध्य करना व उसके वर्तमान नियमों व उपनियमों में परिवर्तन करना (धारा 10); (6) किसी मान्यता प्राप्त विनिमय की प्रबन्ध समिति को भंग करना (Supersede),

(धारा 11); (7) यदि व्यापार व जनहित में आवश्यक हो तो किसी विनिमय का व्यापार अधिक से अधिक 7 दिन के लिए बन्द करना (धारा 12); (8) विशेष परिस्थितियों में अनुबन्धों के व्यापार को रोकना (धारा 16); (9) किसी सार्वजनिक कम्पनी को अपने अंशों को विनिमय पर सूचियन कराने के लिए बाध्य करना (धारा 21); (10) इस अधिनियम के अन्तर्गत नियम बनाना (धारा 30); (11) प्रतिभूतियों में व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को जो मान्यता प्राप्त विनिमय के सदस्य न हों अनुमतिपत्र लेने के लिए बाध्य करना; (12) तत्काल सुपुर्दगी व्यवहारों (Spot Delivery Contracts) को नियमित करना; (13) विनिमय के कार्यों की जाँच कराना, (14) विनिमय के सदस्यों को व्यवहारों का पूरा लेखा रखने के लिए बाध्य करना तथा उनका अंकेक्षण चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट से कराना; आदि ।

(iII) **प्रतिभूतियों में सौदे** (Dealings in Securities)— विकल्प व्यवहार (Options dealings) अधिनियम द्वारा अवैधानिक घोषित कर दिये गये हैं। यदि कोई व्यक्ति या विनिमय इस प्रकार के सौदे करेगा तो उसको दण्ड दिया जा सकता है ।

तत्काल सुपुर्दगी अनुबन्ध यद्यपि इस अधिनियम की परिधि में नहीं आते लेकिन फिर भी सरकार को ऐसे अनुबन्धों को नियमित करने का अधिकार दिया गया है ।

जिन स्थानों पर मान्यता प्राप्त स्कन्ध विनिमय नहीं है वहाँ प्रतिभूतियों में व्यापार करने वाले व्यवसायियों को अनुमति पत्र दिये जा सकते हैं । वे व्यवसायी उस क्षेत्र में अग्रिम व्यवहार भी कर सकते हैं ।

(IV) **स्कन्ध विनिमय की कार्य प्रणाली पर नियन्त्रण** (Control on the Working of the Stock Exchange)—स्कन्ध विनिमय की कार्य प्रणाली पर नियन्त्रण के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित विषयों का निर्धारण कर सकती है—(1) विनिमय के खुलने व बन्द होने तथा कार्य करने का समय, (2) व्यवहारों को निपटाने के लिए समाशोधन गृह की स्थापना, (3) समाशोधन गृह द्वारा समय-समय पर सरकार को ब्यौरा देना, (4) निरंक हस्तान्तरणों (Blank Transfers) का नियमन करना या समाप्त करना, (5) वदला या पूर्व विशिष्ट (carry over) को समाप्त करना या उसका नियमन करना, (6) बाजार दरों का निर्धारण करना, (7) तरावनी (Taravani) व्यापार का नियमन करना, (8) प्रतिभूतियों का सूचियन करना, (9) झगड़ों को तय करने का तरीका, (10) फीस, जुर्माना व दण्ड, दलाली आदि को निर्धारित करना, (11) आपत्ति काल में प्रतिभूतियों का न्यूनतम व अधिकतम मूल्य निर्धारित करना, (12) सदस्यों के व्यवहारों का नियमन करना, (13) जाबर (Jobber) व दलाल के कार्यों को अलग-अलग करना ।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 की धारा 30 के द्वारा केन्द्रीय सरकार को नियम बनाने का अधिकार दिया गया है । इस धारा के अन्तर्गत

सरकार ने **प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) नियम,** 1957 बनाये है। जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार है—

(V) **सदस्यता** (Membership)—नियम 8 के अनुसार निम्न व्यक्ति किसी विनिमय के सदस्य नही हो सकते हैं—(1) जिनकी आयु 21 साल से कम है, (2) जो भारत के नागरिक नही है, (3) जो दिवालिया हैं या दिवालिया घोषित किये जा चुके है, (4) जिन्होंने अपने लेनदारों को पूरा धन नही चुकाया है, (5) जो धोखादेही या वेईमानी के लिए अदालत द्वारा सजा प्राप्त है, (6) जो प्रतिभूतियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार से व्यापार मे या तो प्रधान है या कर्मचारी हैं, (7) वे व्यक्ति जो ऐसी संस्था से सम्बन्धित है जो प्रतिभूतियो मे व्यापार करती है या वह ऐसी कम्पनी के संचालक, साझेदार या कर्मचारी है, (8) जिसको किसी विनिमय से बहिष्कृत कर दिया गया है या जो दोषी (Defaulter) पाया गया है. (9) जिसका सदस्यता का आवेदनपत्र अस्वीकार किया जा चुका है और दुबारा आवेदन-पत्र देने तक एक वर्ष का समय व्यतीत नही हुआ है।

उपर्युक्त शर्तो को पूरा करने के साथ-साथ सदस्य बनने के लिए निम्न मे से एक शर्त अवश्य पूरी हो जानी चाहिए—(1) उसने कम से कम दो वर्ष तक किसी संस्था में साझेदार या अधिकृत सहायक (Authorised Assistant) या अधिकृत लिपिक (Authorised Clerk) या उपदलाल (Remiser) के रूप में कार्य किया हो, (2) वह साझेदार या प्रतिनिधि सदस्य (Representative members) या अन्य सदस्य के साथ कम से कम दो वर्ष तक कार्य करने के लिए तैयार हो और विनिमय पर सौदे उनके नाम में न होकर सदस्यों के नाम में हों, (3) वह स्कन्ध विनिमय पर कार्य करने वाले किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु के कारण स्वामी बना हो।

यदि किसी व्यक्ति को प्रतिभूतियों मे व्यवहार करने का ज्ञान, अनुभव, हैसियत, सत्यनिष्ठा (integrity) हो तो विनिमय की प्रबन्धक सभा (Governing Body) को उपर्युक्त तीनों शर्तो में से किसी भी शर्त का पालन न कराने का अधिकार दिया जा सकता है।

कोई भी व्यक्ति जो सदस्य बन गया है यदि (1) वह भारतीय नागरिक नही रहता; (2) दिवालिया घोषित कर दिया जाता है; (3) धोखादेही या वेईमानी के लिए दोषी पाया जाता है, (4) किसी अंशधारी या ऋणपत्रधारी का साझीदार हो जाता है जहाँ प्रतिभूतियो मे व्यवहार होता है; या (5) उस संस्था में संचालक, साझीदार या कर्मचारी हो जाता है; (6) प्रतिभूतियों के व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय में वह लग जाता है, तो वह विनिमय का सदस्य नही रह सकता है।

(VI) **हिसाब किताब की पुस्तकों का अनुरक्षण** (Maintenance of Account Books)—नियम 14 के अनुसार प्रत्येक विनिमय को निम्न वस्तुएं एव प्रलेख 5 वर्ष तक सुरक्षित रखने होंगे—(1) सदस्यों, प्रबन्धक सभा व अन्य समितियों की

कार्यवृत्त पुस्तक (Minutes Book), (2) सदस्यों का रजिस्टर जिसमें सदस्यों का नाम व पता लिखा हो, (3) अधिकृत लिपिकों का रजिस्टर, (4) अधिकृत सहायकों का रजिस्टर, (5) जमानत जमा (Security deposit) का प्रलेख, (6) अन्तरराशि जमा पुस्तक (Margin Deposit Book), (7) बही-खाते (Ledgers), (8) रोजनामचा (Journal), (9) रोकड़ बही, व (10) बैंक पास बुक।

इसी प्रकार नियम 15 के अनुसार प्रत्येक सदस्य को इन पुस्तकों एवं प्रलेखों को 5 वर्ष तक सुरक्षित रखने होंगे—(1) सौदा बही, (2) ग्राहकों के बही-खाते (Clients Ledgers), (3) रोजनामचा व रोकड़ बही, (4) बैंक पास बुक, (5) प्रलेख रजिस्टर जिसमें प्रतिभूतियाँ प्राप्त होने व देने का पूरा ब्यौरा हो। प्रत्येक सदस्य इन विवरणों व प्रलेखों को 2 वर्ष तक सुरक्षित रखेगा—(1) सदस्य प्रसंविदा पुस्तक जिसमें प्रसंविदा का विस्तृत विवरण हो, (2) ग्राहकों को जारी किये गये प्रसंविदे नोट की नकल का प्रतिपर्ण, (3) ग्राहकों की लिखित आज्ञा जिसके आधार पर सदस्य ने प्रधान की तरह कार्य किया।

अधिनियम का प्रबन्ध

(ANDMINISTRATION OF THE ACT)

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 के विनियामिक (Regulatroy) प्रावधानों (Provisions) के उचित प्रबन्ध के लिए केन्द्रीय सरकार ने 1959 में वित्त मन्त्रालय के आर्थिक मामले के विभाग (Department of Economic Affairs) के अन्तर्गत स्कन्ध विनिमय मण्डल (Stock Exchanges Divison) खोला है। इसका मुख्य कार्यालय बम्बई है और शाखाएँ कलकत्ता, देहली व मद्रास में हैं। इस **स्कन्ध विनिमय मण्डल के मुख्य कार्य निम्नलिखित** हैं :

(1) यह मण्डल यह देखता है कि विभिन्न स्कन्ध विनिमयों का संचालन एवं प्रशासन प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम के अनुसार हो रहा है ? इस कार्य के लिए मण्डल विनिमयों पर निगरानी रखता है और जब कभी भी बाजार में अप्रिय स्थिति उत्पन्न होती है तो सरकार को आवश्यक सलाह देता है।

(2) यह मण्डल सदस्यों द्वारा किये गये सौदों का दैनिक विवरण उनसे प्राप्त करता है और उन विवरणों की जाँच करता है तथा जिन सदस्यों ने अधि-व्यापार (over-trading) किया है उनके विरुद्ध कार्यवाही करने की सलाह देता है।

(3) मण्डल इस बात की जाँच करता है कि किसी कम्पनी ने सूचियन सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं को उचित रूप में पूरा कर दिया है जिससे धन विनियोजना करने वालों को किसी प्रकार का धोखा न हो और उन्हें आर्थिक दशा का ज्ञान हो सके।

(4) मण्डल का कार्य कर्ब[1] (Kerb) व्यापार को नियन्त्रण में लाना व विकल्प व्यवहार पर निगरानी रखना है। जिससे अधिनियम के उद्देश्य का उल्लंघन न हो सके।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 की उपलब्धियाँ

(ACHIEVEMENTS OF SECURITIES CONTRACTS (REGULATION) ACT, 1956)

(1) प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम के अन्तर्गत सरकार एक शहर के एक ही विनिमय को स्वीकृति प्रदान करती है। इसका प्रभाव यह हुआ है कि विनिमयों में प्रतियोगिता समाप्त हो गयी है और वर्तमान स्कन्ध बाजारों में अच्छी परिपाटी स्थापित होने लग गयी है और छोटे-छोटे असंवैधानिक बाजार जैसे, कलकत्ता का कटनी बाजार व बम्बई का ग्रे बाजार समाप्त हो गये हैं।

(2) सदस्यता पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगने के कारण अब केवल प्रतिष्ठित व पर्याप्त धन वाले व्यक्ति ही विनिमयों के सदस्य बन पाते हैं जिससे उनके चूकदार (Defaulter) होने की सम्भावना कम हो गयी है।

(3) सभी प्रसंविदों या अनुबन्धों को लिखित रूप दे दिया गया है तथा साथ ही सौदों का लेखा 5 वर्ष तक रखना आवश्यक होने के कारण झगड़ों की सम्भावना कम हो गयी है।

(4) सरकार द्वारा प्रत्येक विनिमय की कार्यकारिणी समिति में कुछ सरकारी व्यक्ति नामांकित किये जाते हैं जिनका कार्य विनिमय की कार्य प्रणाली की देखभाल करते रहना है जिससे कोई असंवैधानिक कार्य विनिमय न कर सके।

(5) सरकार को विनिमय से विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ माँगने व विनिमय को भंग (Supersede) करने का अधिकार होने के कारण अब विनिमय अपनी सेवाओं में ही कार्य करते हैं।

(6) सरकार किसी भी कम्पनी को सूचियन के लिए कह सकती है और उस कम्पनी को सूचियन कराना होगा। सट्टे की रोकथाम के लिए विभिन्न प्रकार के सौदों को विनिमय पर करने से रोक दिया गया है और अन्य प्रकार के सौदों को भी जनहित में सरकार रोक सकती है। इन सबका प्रभाव यह है कि अब विनिमयों पर सट्टेबाजी कुछ कम हो गयी है।

(7) विनिमय के नियमों को स्वीकार करते समय सरकार इस बात की चेष्टा करती है कि दलाली क्रम (Scale) में दी जाय, समाशोधन गृह स्थापित किया

---

1 कर्ब से अर्थ उन गलियों से है जहाँ प्रतिभूतियों में सौदे होते हैं। इनकी अपनी इमारत नहीं होती है और न इनके प्रमापित नियम होते हैं जैसे, कलकत्ता में कटनी बाजार या बम्बई का ग्रे बाजार।

जाय, समय के घण्टे निश्चित हों, प्रसंविदे की शर्तें उचित हों, सदस्यों के व्यापार करने की सीमा हो, प्रतिभूतियों के न्यूनतम व अधिकतम मूल्य निश्चित हों, झगड़ों का निबटारा पंचायत से हो, आदि। इन सब का प्रभाव यह होता है कि विनिमय की क्रियाएँ प्रमापित हो जाती हैं और मतभेद होने या धोखा खाने की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं।

(8) इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस अधिनियम ने (i) सारे भारत के विनिमयों के कार्यों व विधियों में एकरूपता ला दी है, (ii) कुछ सीमा तक अवांछित व्यक्तियों को सदस्य बनने से रोक दिया है, (iii) अवांछित व्यवहारों पर भी रोक लगा दी है, तथा (iv) सट्टे पर भी कुछ प्रतिबन्ध लग गया है।

प्रश्न

1. प्रतिभूति अनुवन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 के प्रमुख प्रावधानों को बताइए।
   Give the important provisions of the Securities Contract (Regulation) Act, 1956.
2. प्रतिभूति अनुवन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
   State the achievements of the Securities Contract (Regulation) Act, 1956.

27

विज्ञापन

[ADVERTISING]

विज्ञापन का अर्थ एवं परिभाषा

(MEANING AND DEFINITION OF ADVERTISING)

विज्ञापन शब्द का यदि विश्लेषण किया जाय तो पता लगता है कि यह वि + ज्ञापन के संयोग से बना है। 'वि' का अर्थ 'विशेष' (Special) होता है और ज्ञापन का अर्थ 'ज्ञान कराना' या सूचना देना (to notify) से लगाया जाता है। इस प्रकार विज्ञापन का अर्थ 'विशेष रूप मे सूचना देना' होता है।

आजकल विज्ञापन की परिभाषा मे उन सभी साधनों को सम्मिलित करते हैं जिनके द्वारा उपभोक्ताओं को नवनिर्मित वस्तुओं की जानकारी दी जाती है, पुरानी वस्तुओं की माँग मे कमी नही आने दी जाती है बल्कि उसमे निरन्तर वृद्धि होती रहती है तथा व्यापार की साख स्थापित होती है। **विज्ञापन एक कला है जो किसी वस्तु अथवा सेवा की उपयोगिता का जनता के ऊपर प्रभाव डालने से सम्बन्ध रखती है।** विज्ञापन की **कुछ परिभाषाएं** निम्न हैं :

(1) **अमरीकन मार्केटिंग एसोसिएशन** (American Marketing Association) के अनुसार, "विज्ञापन का तात्पर्य एक परिचय प्राप्त प्रायोजक द्वारा विचारों, वस्तुओं या सेवाओं का अवैयक्तिक प्रस्तुतीकरण और प्रवर्तन करने के ढंग से है, जिसका भुगतान किया जाता है।"[1]

(2) **मैसन व रथ** (Mason and Rath) के मत मे, "विज्ञापन बिना वैयक्तिक विक्रयकर्ता के विक्रय-कला है।"[2]

---

1 Advertising has been defined as "any paid form of non-personal presentation and promotion of goods, services or ideas by an identified sponser."
—Report of the Definitions Committee : *Journal of Marketing*, America, October 1948.

2 "Adveritising is salesmanship without a personal salesman."
—Mason & Rath : *Marketing and Distribution*, p. 381.

(3) अमरीकन पत्रिका **एडवरटाईजिंग ऐज** (Advertising Age) के अनुसार, "विज्ञापनकर्ता की इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए विवश करने के उद्देश्य से विचार, सेवा या वस्तु के सम्बन्ध में सूचना का फैलाव विज्ञापन कहलाता है।"[1]

(4) **विलियम जे. स्टाण्टन** (William J. Statnton) की राय में, "विज्ञापन में ऐसी सब क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो कि एक वस्तु, सेवा या विचार के बारे में किसी समूह को कोई अवैयक्तिक, मौखिक या दृश्यगत एवं खुले रूप से प्रायोजित सन्देश प्रस्तुत करने से सम्बन्धित हैं।"[2]

(5) **रिचार्ड बसकर्क** (Richard Buskirk) के मत में, "विज्ञापन एक परिचय प्राप्त प्रायोजक द्वारा विचारों, वस्तुओं या सेवाओं के अवैयक्तिक प्रस्तुतीकरण या प्रवर्तन का एक ढंग है जिसका कि भुगतान किया जाता है।"[3]

इन परिभाषाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि **विज्ञापन एक प्रकार की अवैयक्तिक विक्रय-कला है जो वस्तुओं, सेवाओं व विचारों की सूचना देता है तथा इस सूचना को देने के लिए भुगतान किया जाता है।**

विज्ञापन विचारों, सेवाओं या वस्तुओं को प्रस्तुत करने का एक ढँग है; (i) यह प्रस्तुतीकरण वैयक्तिक नहीं होता अर्थात एक व्यक्ति दूसरे से नहीं कहता, (ii) यह एक परिचय प्राप्त प्रायोजक द्वारा किया जाता है, (iii) इसके लिए भुगतान करना पड़ता है अर्थात यह मुफ्त में नहीं कराया जा सकता है।

विज्ञापन का महत्व
(IMPORTANCE OF ADVERTISING)

"आज के वृहत उत्पादन के युग में विज्ञापन बहुत ही महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से उस समय जबकि प्रतियोगिता बराबर बढ़ती जा रही है। यदि विज्ञापन का उपयोग उचित रूप से किया जाय तो यह विज्ञापनकर्ता के लिए बहुत ही लाभदायक है। विज्ञापन से ही उपभोक्ता से वस्तु की स्वीकृति ली जा सकती है और ब्राण्ड के प्रति आकर्षित किया जा सकता है। ब्राण्ड वाली वस्तुओं को अधिक मूल्य पर भी बेचा जा सकता है और अधिक लाभ कमाया जा सकता है। अमरीका में उपभोक्ता

---

1 "Advertising has been defined as the dissemination of information concerning an idea, service, or product to compel action in accordance with the interest of the advertiser."
—*Advertising Age*, American Journal, quoted from *Business Organisation*, Mritunjoy Benerji, p. 300.

2 "Advertising consists of all the activities involved in presenting to a group a non-personal, oral, or visual openly sponsored message regarding a product, service, or idea." —Stanton : *Fundamentals of Marketing*, p. 577.

3 "Advertising is a paid form of non-personal presentation or promotion of ideas, goods or services by an identified sponsor."
—Richard Buskrik : *Principles of Marketing*, p. 425.

वस्तुओं के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि विज्ञापित ब्राण्ड (Advertised brands) की बिक्री उस प्रकार की वस्तुओं की कुल बिक्री के 70 से 90 प्रतिशत तक होती है जबकि बिना विज्ञापन का भाग 10 से 30 प्रतिशत तक ही रह जाता है। इसी प्रकार विज्ञापित एवं अविज्ञापित वस्तुओं की समीक्षा से यह निष्कर्ष निकला है कि विज्ञापित वस्तुएँ प्रीमियम पर बिकती हैं और यह प्रीमियम पोर्टेबिल टाइपराईटर के सम्बन्ध में 35 प्रतिशत व पुरुषों के मोजे के सम्बन्ध में 36·5 प्रतिशत पाया गया था।"[1]

विज्ञापन एक प्रकार का उद्योग है। इसमें हजारों व्यक्तियों को रोजगार के अवसर मिल जाते हैं। आजकल अमरीका में लगभग 5,000 विज्ञापन एजेन्सियाँ कार्य कर रही हैं जिनमें 80 हजार से अधिक व्यक्ति कार्य कर रहे हैं। भारत में भी इस समय 180 ऐजेन्सियाँ कार्य कर रही हैं।

"विज्ञापन व्यय वैयक्तिक विक्रय (Personal selling) की तुलना में कम पड़ते हैं जो 1 प्रतिशत से लेकर 3 प्रतिशत तक होते हैं लेकिन वैयक्तिक व्यय तो 10 प्रतिशत से लेकर 15 प्रतिशत तक के होते हैं।"[2]

विज्ञापन के माध्यम से बिक्री के निर्धारित लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं और व्यापार का विकास एक योजनाबद्ध तरीके से किया जा सकता है।

विज्ञापन के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF ADVERTISING)

वर्तमान युग "विज्ञापन का युग है।" विज्ञापन आधुनिक व्यवसाय तथा वाणिज्य की धुरी है। वर्तमान व्यापार की जीवन संजीवनी भी विज्ञापन ही है।

(1) **कन्वर्स, ह्यूजी एवं मिचल** (Converse, Huegy & Mitchell) की राय में, "विज्ञापन का उद्देश्य माल, सेवाओं या विचारों को सम्भावित क्रेताओं के बड़े समूह को बेचना है।"[3]

(2) **ई. एफ. एल. ब्रीच** (E. F. L. Breach) के अनुसार, "विज्ञापन का उद्देश्य उत्पादन एवं वितरण की प्रतिशत लागत में कमी करना है।"[4]

एक विपणन प्रबन्धक द्वारा विज्ञापन कार्यक्रम (Advertising Programme) बनाते समय पहले उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। यह उद्देश्य अल्पकालिक व दीर्घ-कालिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। साधारणतया विज्ञापन का दीर्घकालिक उद्देश्य

---

1 McCarthy : *Basic Marketing*, p. 529.
2 Stanton : *Fundamentals of Marketing*, p. 582.
3 "The purpose of advertising is to sell goods, service or ideas to a large group of prospective purchasers."
—Converse, Huegy & Mitchell : *Elements of Marketing*, p. 639.
4. "The purpose of advertising is to reduce percentage costs of production and distribution." —*E. F. L. Breach*

वस्तु को बेचना व अधिक लाभ कमाना है। लेकिन यह उद्देश्य बहुत व्यापक है। अतः विपणन कार्यक्रम में विशिष्ट उद्देश्य की स्थापना की जाती है। यह उद्देश्य विपणन स्थिति पर आधारित होते हैं लेकिन मुख्यतया विज्ञापन निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किये जाते हैं। इन्हीं को विपणन उद्देश्य कहते हैं :[1]

(1) **पूर्ण विक्रय कार्य करना** (To do entire selling job)—विज्ञापन का उद्देश्य विक्रय कार्य करना होता है। जैसा कि हम देखते हैं कि डाक द्वारा व्यापार (Mail Order Business) में सभी कार्य विज्ञापन के द्वारा ही किया जाता है।

(2) **नयी वस्तु को आरम्भ करना** (To introduce new product)—विज्ञापन का दूसरा उद्देश्य नयी वस्तु की सूचना देना है जिससे कि सम्भावित ग्राहकों में चेतना आ जाय और वे उस वस्तु की ब्राण्ड से परिचित हो जायें जिससे कि वे उसको क्रय कर सकें।

(3) **मध्यस्थों को वस्तु रखने के लिए विवश करना** (To force middlemen to handle the product)—विज्ञापन का तीसरा उद्देश्य मध्यस्थ विक्रेताओं को इस बात के लिए विवश कर देना है कि वे उस निर्माता की वस्तुओं को अपने यहाँ विक्रय हेतु रखें जिनका विज्ञापन किया जा रहा है। यह तभी सम्भव है जबकि ग्राहक विज्ञापनों से प्रभावित होकर उस वस्तु को क्रय करने के लिए उन मध्यस्थ विक्रेताओं से पूछताछ करें।

(4) **ब्राण्ड वरीयता बनाना** (To build brand preference)—विज्ञापन इस उद्देश्य से भी कराया जा सकता है कि ब्राण्ड के प्रति वरीयता (brand preference) बन जाय जिससे कि उपभोक्ता उसी ब्राण्ड को खरीदें और प्रतियोगियों के लिए यह कठिन करदें कि वे अपनी वस्तुओं को न बेच सकें।

(5) **उपभोक्ताओं को याद दिलाना** (To remind the consumers)—विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ताओं को क्रय करने के लिए याद दिलाया जा सकता है। यह याद बार-बार विज्ञापन कराकर दिलायी जा सकती है।

(6) **परिवर्तनों के बारे में सूचित करना** (To inform about changes)—विज्ञापन का उद्देश्य संस्था की नीतियों व वस्तुओं में परिवर्तन की सूचना देना भी होता है। यह उद्देश्य नये मॉडल की सूचना देना, मूल्यों में परिवर्तनों को बताना, आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं।

(7) **प्रतियोगी के विज्ञापनों को प्रभावहीन करना** (To neturalize competitors advertising)—विज्ञापनों का उद्देश्य प्रतियोगी संस्था द्वारा किये जा रहे विज्ञापनों के प्रभावों को शून्य करना भी हो सकता है।

(8) **विचारयुक्त क्रय करना** (To provide rationalizations for buying)—कुछ विद्वान कहते हैं कि क्रेता विवेकहीन होता है। अतः विज्ञापन का

---

1 Cundiff & Still : *Basic Marketing*, p. 409.

उद्देश्य क्रेता को विवेकशील या विचारयुक्त बनाना है जिससे कि वह विज्ञापनकर्ता व प्रतियोगी संस्थाओं की वस्तुओं में अन्तर कर सके और सबसे अच्छी वस्तु का चुनाव कर सके।

(9) **क्रेताओं को नये प्रयोगों की जानकारी देना** (To acquaint buyers with new uses)—विज्ञापन का उद्देश्य वस्तुओं के नये-नये प्रयोगों की सूचना देना है जिससे कि क्रेता उनसे लाभ उठा सके।

(10) **मध्यस्थों व विक्रयकर्ताओं के नैतिक स्तर को उठाना** (To improve the morale of dealers and salesmen)—विज्ञापन का उद्देश्य मध्यस्थों व विक्रयकर्ताओं के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना है जिससे कि वे अधिक विक्रय कर सकें।

विज्ञापन के उपर्युक्त उद्देश्य अपूर्ण हैं। इसको इस प्रकार कह सकते हैं कि **विज्ञापन के उद्देश्य उपर्युक्त लिखित से कहीं अधिक होते हैं** जो विपणन कार्यक्रम पर आधारित होते हैं।

विज्ञापन के साधन या माध्यम
(MEANS OR MEDIA OF ADVERTISING)

एक विपणन प्रबन्धक के लिए विज्ञापन के विभिन्न साधनों एवं माध्यमों की जानकारी आवश्यक है जिससे कि वह अपने व्यवसाय के अनुरूप विज्ञापन का साधन चुनकर व्यापारिक जगत में लाभ ही प्राप्त न कर सके बल्कि ख्याति भी प्राप्त कर सके। विज्ञापन व्यवसाय एवं वस्तु दोनों के अनुरूप होना चाहिए जिससे कम व्यय में लक्ष्य की पूर्ति की जा सके और प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध न हों। आजकल **विज्ञापन के विभिन्न साधन** प्रचलित हैं जो निम्नलिखित हैं जिनका चार्ट अगले पृष्ठ पर दिया गया है।

(I) समाचार पत्रीय विज्ञापन
(PRESS ADVERTISING)

समाचार पत्रीय विज्ञापन आधुनिक युग का सर्वाधिक लोकप्रिय साधन है। यह विज्ञापन छपा हुआ होता है और जो समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं उनमें छापा जाता है। समाचार-पत्र कई प्रकार के होते हैं और विभिन्न भाषाओं में छापे जाते हैं। दैनिक समाचारपत्र का अर्थ है वे समाचारपत्र जो प्रतिदिन नये छपते और बिकते हैं, जैसे—हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इण्डिया, हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, इण्डियन एक्सप्रैस, लीडर, नेशनल हैराल्ड, नार्दन पत्रिका, आदि—ये सभी अंग्रेजी के हैं। इसी प्रकार हिन्दी में हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, मध्यभारत, विश्वमित्र, इन्दौर समाचार, वीर अर्जुन व नई दुनिया आदि प्रकाशित होते हैं। भारत में इस समय 1 ,3 0 समाचार पत्र हैं जिनमें 3 289 हिन्दी में, 2,765 अंग्रेजी में, 2,965 उर्दू में व शेष अन्य भाषाओं में हैं।

विज्ञापन के माध्यम या साधन

(MEANS OR MEDIA OF ADVERTISING)

(I) समाचारपत्रीय विज्ञापन (Press Advertising)

1. समाचार पत्र (Newspapers)
2. पत्रिका (Magazines)

(III) डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन (Direct Mail Advertising)

1. परिपत्र (Circular)
2. व्यापारिक जबाबी लिफाफे या कार्ड (Business Reply Envelopes and Cards)
3. मूल्य-सूची (Price-List)
4. सूची-पत्र (Catalogue)
5. लीफलेट्स या फोल्डर्स (Leaflets and Folders)
6. पुस्तिकाएँ (Booklets)
7. अभिनव भेंट (Novelty)
8. व्यक्तिगत पत्र (Personal letters)
9. अन्य (Others)

(II) बाह्य विज्ञापन (Outdoor or Mural Advertising)

1. विज्ञापन पत्र (Posters)
2. विज्ञापन बोर्ड (Bords)
3. बिजली द्वारा सजावट (Electric display)
4. सेण्डविच बोर्ड-सजावट (Sandwitch Board Advertising)
5. बस, ट्राम व गाड़ी विज्ञापन (Bus, Tram and Train Advertising)
6. आकाश लेख विज्ञापन (Sky Advertising)
7. स्टीकर विज्ञापन (Sticker Advertising)
8. अन्य (Others)

(IV) अन्य विज्ञापन (Miscellaneous Advertising)

1. रेडियो एवं टेलीविजन (Radio and Television)
2. सिनेमा एवं सिनेमा स्लाइड (Cinema and Cinema Slides)
3. मेले एवं प्रदर्शनियाँ (Fairs and Exhibitions)
4. लाउडस्पीकर (Loudspeakers)
5. प्रदर्शन (Demonstration)
6. डाकतार विभाग (Post and Telegraph Dept.)
7. रेनवे (Railways)

दैनिक समाचार-पत्रों के अतिरिक्त कुछ पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती हैं जो साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, छमाही अथवा वार्षिक होती हैं। इनमें विज्ञापन कराया जा सकता है।

(2) **पत्रिका विज्ञापन** (Magzine Advertising)—प्रेस विज्ञापन में पत्रिका विज्ञापन भी आता है। यह पत्रिकाएँ दैनिक समाचार-पत्रों से भिन्न होती हैं और एक निश्चित अवधि के उपरान्त प्रकाशित की जाती हैं जैसे साप्तहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, आदि। यह पत्रिकाएँ दो प्रकार की होती हैं—(1) सामान्य, (2) विशिष्ट।

(1) **सामान्य** (General)—वे पत्रिकाएँ जो किसी एक वर्ग की नहीं होतीं बल्कि सामान्य होती हैं इस वर्ग में आ जाती हैं। यह पत्रिकाएँ साधारणतया पारिवारिक होती हैं और परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए लाभकारी होती हैं। भारत में इस प्रकार की बहुत-सी पत्रिकाएं हैं जैसे साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग। यह सप्ताह में सिर्फ एक बार निकलती हैं। इसी प्रकार मासिक पत्रिकाएँ कादम्बनी, नवनीत सारिका व मुक्ता भी प्रकाशित होती हैं। पढ़ने वालों के आधार पर भी पत्रिकाओं को अलग-अलग किया जा सकता है जैसे बच्चों के लिए चन्दामामा, नन्दन, चम्पक आदि व महिलाओं के लिए मनोरमा व सरिता, आदि। सिनेमा में रुचि रखने वालों के लिए फिल्मशेयर, माधुरी, चित्रलेखा, आदि। इन सामान्य पत्रिकाओं में भी विज्ञापन कराये जा सकते हैं।

(2) **विशिष्ट** (Special)—विशिष्ट पत्रिकाएँ वे हैं जो विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों के लिए होती हैं जैसे व्यावसायिक पत्रिकाएँ। भारत में इस प्रकार की पत्रिकाएँ बहुत हैं। अंग्रेजी की इन पत्रिकाओं में Commerce, Industrial Times, Capital, Eastern Economist, Indian Journal of Commerce, Trade, & Finance, Indian Journal Economics, Economic and Political Weekly, आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार की पत्रिकाएँ हिन्दी में भी निकलती हैं जैसे सम्पदा, योजना, उद्योग एवं व्यापार पत्रिका, आदि। इन पत्रिकाओं में भी विज्ञापन कराया जा सकता है।

(II) बाह्य विज्ञापन
(OUTDOOR OR MURAL ADVERTISING)

दीवारी विज्ञापन और बाहरी विज्ञापन दोनों एक ही हैं। इसी को इस प्रकार कह सकते हैं कि दीवारी विज्ञापन का दूसरा नाम बाह्य विज्ञापन है। बाह्य विज्ञापन में दीवारों पर विज्ञापन किया जाता है। विज्ञापन का यह बहुत ही प्राचीन साधन है और यह उस समय अपनाया गया था जबकि आधुनिक प्रेस पद्धति नहीं थी। रोम व इंगलैण्ड के व्यापारी अपनी दुकान के दरवाजे पर एक बोर्ड लगाते थे जिस पर उन सभी वस्तुओं का उल्लेख होता था जिनमें वे क्रय-विक्रय करते थे।

ऐसा कहा जाता है कि दीवारी विज्ञापन से प्रेरित होकर लोगों में पोस्टर चिपकाने की कल्पना आयी। आजकल बाह्य या दीवारी विज्ञापन में केवल दीवार के ही विज्ञापन नहीं आते हैं बल्कि अन्य विज्ञापन भी इसमें सम्मिलित कर लिये जाते हैं जैसे स्टेशनों पर इश्तिहार चिपकाना, ऊँचे-ऊँचे मकानों की दीवारों पर आकर्षक ढंग के पेण्ट कराना या बड़े-बड़े इश्तिहार चिपकाना या ऊँची-ऊँची चिमनियों पर पोस्टर चिपकाना या रंग-बिरंगे अक्षरों से उन पर विज्ञापन लिखना, वायुयान के धुएँ से आकाश में अक्षर लिखना, या गुब्बारों पर लिखकर उनको ऊपर उड़ाना, बाजार में बिकने वाले होल्डर, पैन, कापी, डायरी, पेन्सिल, दियासलाई, आदि पर छपवा देना, मोटरों व बसों में अन्दर या बाहर बोर्ड लगवा देना, बिजली की सजावट साइन बोर्ड या चौराहों पर करना, आदि। 'मूरल' का अर्थ दीवार सम्बन्धी है।

बाह्य विज्ञापन सदैव सुझावात्मक (suggestive) होते हैं। यह तार्किक नहीं होते। इनके द्वारा उन वस्तुओं का विज्ञापन किया जाता है जो प्रतिदिन काम में आती हैं जैसे माचिस, सिगरेट, बीड़ी, साबुन, चाय, कॉफी, चीनी, ब्लेड, दवाइयाँ सिनेमा, जूते, कपड़े आदि।

बाह्य विज्ञापन के स्वरूप (Forms of Outdocr or Mural Advertising)

बाह्य विज्ञापन निम्न प्रकार किया जा सकता है :

(1) **विज्ञापन पत्र** (Posters)—विज्ञापन पत्र या पोस्टर्स से आशय ऐसे कागजों, कार्ड बोर्डों, लकड़ियों या धातुओं की प्लेटों से है जिन पर कुछ लिखा हुआ या छपा हुआ होता है। यह चौराहों, रेलवे स्टेशनों, दुकान या सड़कों के किनारे या दुकान के भीतर लगे होते हैं या बिजली के टेलीफोन के खम्भों पर लटके रहते हैं या उन पर चिपका दिये जाते हैं।

यह विज्ञापन-पत्र या पोस्टर देखने में आकर्षक होने चाहिए जिससे कि वे राहगीरों की निगाह को अपनी ओर आकर्षित कर सकें।

(2) **विज्ञापन बोर्ड** (Advertising Bcard)—बड़े-बड़े नगरों के ऐसे चौराहों पर जहाँ अधिक संख्या में लोग गुजरते हैं यह विज्ञापन बोर्ड लगाये जाते हैं जैसे ग्वालियर में फूलबाग के पास ग्वालियर रेयन का विज्ञापन बोर्ड तथा लक्ष्मी होटल का बोर्ड, लखनऊ में चारबाग रेलवे स्टेशन के बाहर जे. बी. मंघाराम के बिस्कुट का विज्ञापन बोर्ड, आगरा में राजा की मण्डी के चौराहे पर जीवन बीमा निगम का बोर्ड आदि।

यह बोर्ड ऊँचे मकानों की दीवारों पर भी लगाये जाते हैं जिससे राहगीर उन्हें देखलें। इन बोर्डों के लिए मकान मालिक को कुछ धन किराये के रूप में दिया जाता है। सिनेमा के विज्ञापन बोर्ड भी इसी प्रकार लगाये जाते हैं। सड़क पर विज्ञापन बोर्ड लोहे की छड़ों की सहायता से लगाये जाते हैं। सड़क पर इस प्रकार का बोर्ड लगाने

के लिए चुंगी, नगरपालिकाएँ, आदि किराया वसूल करती हैं। यह बोर्ड इस उद्देश्य से लगाये जाते हैं कि जनता को उस वस्तु की सदैव याद बनी रहे।

(3) **बिजली द्वारा सजावट** (Electric Display)—विज्ञापन बोर्डों को जब बिजली से सजा दिया जाता है तो इसको बिजली द्वारा सजावट कहते हैं। यह चलते-फिरते राहगीरों का ध्यान आकिषत करने का सबसे अच्छा साधन है। रंगीन बल्बों या ट्यूब लाइटों से सजे या बार-बार जलते और बुझते बल्बों से सजे बोर्ड ऊँचे ऊँचे मकानों पर या चौराहों पर लगा दिये जाते हैं।

(4) **सेण्डविच बोर्ड सजावट** (Sandwitch Board Advertising)—बाह्य विज्ञापन का यह चौथा स्वरूप है। इसमें विज्ञापनकर्ता कुछ व्यक्तियों को नौकरी पर रखता है, उनके चारों ओर गत्ते के बने बोर्डों को लटका दिया जाता है जिन पर वस्तु का विज्ञापन लिखा होता है। यह लोग एक पंक्ति बनाकर गाजे-बाजे के साथ शहर में घूमते हैं। कभी-कभी यह लोग अपने सिर पर कागज की लम्बी टोपी लगा लेते हैं और चेहरों को बनावटी बनाकर निकलते हैं। यह व्यक्ति देखने में सर्कस के जोकर जैसे लगते हैं। इनकी वेशभूषा इस प्रकार की होती है कि दर्शकों की निगाहें इनकी ओर स्वतः ही खिंच जाती हैं।

(5) **बस, ट्राम व गाड़ी विज्ञापन** (Bus, Tram and Train Advertising)—परिवहन के साधन जैसे बस, ट्राम, रेलगाड़ी आदि भी विज्ञापन के माध्यम में सहायक होते हैं। इन सभी में आजकल कुछ स्थान विज्ञापन के लिए नियत होता है। इसके लिए विज्ञापन के पोस्टर बस, ट्राम् व रेलगाड़ी के अन्दर व बाहर लगाये जाते हैं। अन्दर से अर्थ है जहाँ यात्री बैठते हैं वहाँ उनके सामने वाली दीवार पर या बराबर वाली दीवार पर कागज के या पट्ठे के पोस्टर चिपका दिये जाते हैं। अधिकांश दशाओं में यह टिन की प्लेट पर चित्रित वह लिखे हुए होते हैं। यात्री जब बस, ट्राम या रेलगाड़ी में बैठता है तो उनको पढ़ता है और जब उसको काफी समय तक वहीं बैठे रहना पड़ता है तो उसकी निगाह उस पोस्टर पर बार-बार पड़ती है और वह उनको बार-बार पढ़ता है। कभी-कभी समय व्यतीत करने या दिल बहलाने के लिए उसको पढ़ता है। इससे उस पर अमिट छाप पड़ती है।

(6) **आकाश लेख विज्ञापन** (Sky Advertising)—विज्ञापन के स्वरूपों में यह भी एक रूप है। इसमें वायुयान की सहायता से आकाश में धुआँ इस प्रकार छोड़ा जाता है कि उससे किसी वस्तु का नाम या शक्ल बनती है। यह धुआँ रंगीन भी होता है जिससे आकर्षक लगता है।

(7) **स्टीकर विज्ञापन** (Sticker Advertising)—भारत में यह विज्ञापन अभी हाल ही में शुरू किया गया है जिसका शुभारम्भ एयर इण्डिया ने किया है। एयर इण्डिया ने अन्तर्राष्ट्रीय टेनिस खिलाड़ी विजयानन्द तथा अशोक अमृतराज से एक अनुबन्ध किया है जिसके अनुसार अमृतराज बन्धु रेडियो, टेलीविजन तथा प्रेस

द्वारा एयर इण्डिया का प्रचार करेंगे। मैचों के दौरान टी शर्टों पर एयर इण्डिया लिखा रहेगा। इसी प्रकार उनके रैकेट, तौलिये, जूते, बैग, अटैची पर भी एयर इण्डिया के स्टीकर लगे रहेंगे। यह सभी सामान एयर इण्डिया उनको प्रदान करेगी। इसके बदले एयर इण्डिया इन भाइयों को अपने विमानों में मुफ्त यात्रा की सुविधा प्रदान करेगी।

भारत में इस प्रकार का यह पहला प्रयास है जबकि विदेशों में खिलाड़ियों को इसके द्वारा लाखों डालर प्रतिवर्ष मिलते हैं। स्वीडन के बजोर्न बोर्ग को प्रतिवर्ष इसी प्रकार के विज्ञापनों द्वारा 3 लाख पौण्ड मिलते हैं। खेल के मैदान में बोर्ग जो कुछ भी पहनते हैं उसका उन्हें रुपया मिलता है। यहाँ तक कि वे जिस कम्पनी की दवा को खराश आदि दूर करने के लिए खाते हैं वह उन्हें इसके बदले रुपये देती है। बोर्ग विश्व की प्रमुख बीयर कम्पनी 'टूबोर्ग' का हेड बैण्ड पहनते हैं इसके बदले में उन्हें 15 हजार पौण्ड कम्पनी प्रदान करती है। इसी प्रकार ट्रिटान जूता कम्पनी उन्हें 20 हजार पौण्ड देती है। ब्रैकाफट रैकेट गट्स कम्पनी 12 हजार पौण्ड देती है। बोर्ग स्कैण्डिनवियान एयर लाइन्स की टीशर्ट पहनते हैं। यह एयर लाइन्स इन्हें 15 हजार पौण्ड व मुफ्त यात्रा की सुविधा देती है।

इसी प्रकार अमरीका के जिम्मी कानर्स को कम्पनियों से 2 लाख पौण्ड प्रतिवर्ष मिलते हैं। यह धन राशि उनके द्वारा टूर्नामेण्टों में जीती गयी धन राशि के अतिरिक्त है।

(8) **अन्य** (Others)—विज्ञापन के उपर्युक्त छः ढंगों के अतिरिक्त अन्य ढंग भी हैं जैसे (i) गुब्बारों पर विज्ञापन करना; (ii) पर्चे बाँटना (जैसे सिनेमा वाले आमतौर पर बाँटते हैं); (iii) कापी, पेन्सिल, डायरी पर विज्ञापन लिखना; (iv) दियासलाई की डिब्बी के एक ओर खाली स्थान पर विज्ञापन करना; (v) दैनिक उपयोग की कम मूल्य की वस्तुओं पर विज्ञापन कराकर बाँटना जैसे ताली के गुच्छे, पेन्सिल, डायरी, आदि; (vi) आकाश में विज्ञापन लिखे गुब्बारों को छोड़ना।

(III) डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन
(DIRECT MAIL ADVERTISING)

डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन का अर्थ एक ऐसे विज्ञापन से है जिसमें विज्ञापनदाता कुछ चुने हुए लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उनके पास स्थायी रूप से छपे हुए या लिखित सन्देश भेजता है। इस प्रकार इसमें व्यक्तिगत रूप से आकर्षित किया जाता है। इसकी कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं :

(1) **रिचर्ड मैसनर** (Richard Messner) के अनुसार, "प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन, विज्ञापन के सन्देश को जो स्थायी, छपा हुआ, लिखित या प्राविधिक रुप में हो, नियन्त्रित वितरण द्वारा सीधे चुने हुए व्यक्तियों तक पहुँचने का एक साधन है।"[1]

---

1 "Direct mail advertising is a vehicle for transmitting a publicit's message in permanent printed, written or processed form with controlled distribution direct to selected individuals." —*Richard Messner*.

(2) **जे. डब्ल्यू. डब्ल्यू. कैसिल्स** (J. W. W Cassels) के मत में, "डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन के अन्तर्गत लेटरबॉक्स का प्रयोग करके सही व्यक्तियों को, सही वस्तुओं के बारे में, सही समय पर सूचित किया जाता है।"[1]

इस प्रकार विज्ञापन की यह पद्धति डाक पद्धति पर आधारित है। इसमें डाक के माध्यम से ग्राहकों को गश्ती चिट्ठियाँ, सूचीपत्र, मूल्य-पुस्तक, वस्तुओं के विवरण-पत्र आदि भेजे जाते हैं और वस्तु की जानकारी दी जाती है। यदि उनको वस्तु का विवरण पसन्द आता है तो वे विवरण भेजने वाले से डाक के माध्यम से पत्र-व्यवहार करते हैं और यदि दोनों एक राय हो जाते हैं तो माल डाक से भेज दिया जाता है। विक्रेता को माल का विक्रय-मूल्य भी डाक के माध्यम से मिल जाता है।

डाक विज्ञापन किन व्यक्तियों को भेजे जायें, तथा उनके क्या नाम व पते हैं? इसके लिए टेलीफून तथा ट्रेड-डायरेक्ट्री की सहायता ली जाती है। इन डायरेक्ट्रियों में नाम व पते दिये रहते हैं। डाक विज्ञापनकर्ता इनसे सम्भावित ग्राहकों की सूची बनाता है जिनको वह अपना साहित्य भेजना चाहता है। इस सूची को डाक-सूची (Mailing List) कहते हैं।

एक बार इस सूची के वन जाने के बाद उसमें समय-समय पर परिवर्तन करते रहते हैं। जिन ग्राहकों से बार-बार पत्र भेजने पर भी कोई उत्तर नहीं आता उनके नाम इस डाक सूची में से हटा दिये जाते हैं तथा नये नाम जोड़ दिये जाते हैं।

डाक विज्ञापन की सामग्री (Mail Advertising Literature)

डाक-विज्ञापन की सामग्री से अर्थ उस साहित्य से है जो डाक द्वारा भेजा जाता है। इसमें निम्नलिखित साहित्य भेजा जाता है :

(1) **परिपत्र** (Circular)—परिपत्र एक पत्र है जिसको बहुत से ग्राहकों को एक साथ भेजा जाता है तथा जिसकी विषय-वस्तु (Subject-matter) एक ही होती है जैसे नये माल आने की सूचना, विशेष उपहार भेंट की सूचना, नये मूल्यों की सूचना। डाक विज्ञापन में परिपत्र की भाषा एक-सी होती है और यह डुप्लीकेटिंग मशीन से तैयार किये जाते हैं। जब इनको बहुत बड़ी मात्रा में भेजना होता है तो इनको छपवा लिया जाता है।

(2) **व्यापारिक जबाबी लिफाफा या कार्ड** (Business Reply Envelope or Post Card)—इस विधि में विज्ञापनकर्ता कार्डों का प्रयोग करता है। यह कार्ड लगभग उसी आकार के होते हैं जैसे डाकखाने से मिलते हैं। जिस प्रकार से जबाबी कार्ड डाकखाने से मिलता है उसी प्रकार के बिना टिकट लगे कार्ड व्यापारी बाजार से लेकर छपवा लेता है। एक कार्ड पर अपनी वस्तु सम्बन्धी विज्ञापन या सूचना छपवाता है। दूसरा कार्ड ग्राहक को आदेश देने के लिए होता है। यह भी व्यापारी

---

1 "Direct mail advertising is using the letter box to tell the right people about the right goods at the right time in the right way."
—J. W. W. Cassels : *How to Sell Successfully by Direct Mail.*

छपवा देता है। जब दोनों जुड़े हुए कार्ड किसी ग्राहक पर पहुँचते हैं तो वह उन कार्डों में से एक को (जो उसके लिए हैं) रख लेता है और दूसरे पर अपने हस्ताक्षर, पता एवं वस्तु का नाम, आकार-प्रकार आदि लिखकर डाकखाने में डाल देता है। जब यह कार्ड उस व्यापारी को मिलता है तब उसको इसका डाक महसूल चुकाना पड़ता है। भेजने वाले ग्राहक को इस पर कोई डाक टिकट नहीं लगाना पड़ता है। ऐसे कार्डों के प्रयोग से लाभ यह है कि ग्राहक द्वारा तुरन्त निर्णय को कार्यान्वित किया जा सकता है और ऐसा करने में ग्राहक को कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता है।

ऐसे कार्डों के अतिरिक्त लिफाफों का भी प्रयोग किया जा सकता है। बहुत से व्यापारी विज्ञापन साहित्य लिफाफे में रखकर भेजते हैं और उसी लिफाफे में एक और लिफाफा जिस पर व्यापारी का पता छपा रहता है, रखा होता है। जब ग्राहक उस व्यापारी को आदेश देता है तो वह उसका प्रयोग करता है। ऐसा करने पर ग्राहक के द्वारा कोई डाक टिकट नहीं लगाना पड़ता है। जब यह लिफाफा व्यापारी के पास पहुँचता है तब उसको डाक महसूल देना पड़ता है। ऐसे लिफाफे को जबावी लिफाफा कहते हैं।

(3) **मूल्य-सूची** (Price List)—वस्तुओं के मूल्य समय-समय पर बदलते रहते हैं, लेकिन बदले हुए मूल्यों की सूचना सम्भावित ग्राहकों को मिल जानी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु बहुत-से व्यापारी अपनी मूल्य सूची छपवाकर या डुप्लीकेटर से तैयार करवाकर ग्राहकों को भेजते रहते हैं। यह सूची उन ग्राहकों को भेजी जाती है जिनके द्वारा दुकान से माल खरीदा जाता है। ऐसी मूल्य-सूचियों में सिर्फ मूल्य ही लिखे होते हैं। वस्तुओं के गुणों का विवेचन नहीं होता है। यह सूचियाँ प्रमापित वस्तुओं के बारे में ही होती हैं।

(4) **सूचीपत्र** (Catalogue)—जब मूल्य-सूची के साथ वस्तुओं का कुछ विवरण भी दिया जाता है तो उसको सूचीपत्र कहते हैं। वस्तुओं के विवरण से अर्थ वस्तु के आकार, प्रकार, गुण, किस्म, आदि के बारे में भी सूचना देने से है।

(5) **लीफलेट्स एवं फोल्डर्स** (Leaflets & Folders)—जब वस्तुओं के बारे में जानकारी परचों पर छपी होती है जो इसको लीफलेट कहते हैं, लेकिन जब इन पर्चों का ही विषय कुछ मोटे कागज पर छापा जाता है और इस मोटे कागज को कई ओर से मोड़ा जाता है ताकि एक मोड़ पर वस्तु की एक विशेषता दिखायी दे तो उसको फोल्डर कहते हैं। यह लीफलेट्स एवं फोल्डर्स कई रंगों में अच्छे कागज पर छापे जाते हैं जिससे ग्राहक पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(5) **पुस्तिकाएँ** (Booklets)—यह पुस्तक जैसी होती है। लेकिन पुस्तक एवं पुस्तिकाओं में अन्तर सिर्फ इतना है कि पुस्तक बड़े आकार की और अधिक पन्नों की होती है जबकि पुस्तिकाएँ छोटे आकार की। साधारणतया यह पुस्तिकाएँ 4 से

32 पन्ने की होती हैं। पुस्तिकाओं में वस्तु के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी दी जाती है तथा वस्तु के गुणों एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला जाता है।

(7) **अभिनव भेंट** (Novelty Gifts)—कभी-कभी बहुत से व्यापारी दैनिक व्यवहार की वस्तुओं को मुफ्त छपवाकर डाक से भेजते हैं जैसे, कलेण्डर, स्योही सोखता, राइटिंग पैड, पेन्सिल, कलम, कलमदान, आदि। इन सब पर भेजने वाले का नाम एवं पता लिखा रहता है। ऐसी वस्तुएँ हर समय सामने रहने के कारण ग्राहक को याद दिलाती रहती हैं।

(8) **व्यक्तिगत पत्र** (Personal Letters)—कभी-कभी व्यापारी ग्राहकों को व्यक्तिगत पत्र लिखता है और इन पत्रों में वस्तु के गुण एवं विक्रय सम्बन्धी बातें सूक्ष्म रूप से दे देता है। इन पत्रों के साथ जबाबी कार्ड या लिफाफे का भी प्रयोग किया जाता है। ऐसे पत्र या तो हाथ से लिखे जाते हैं या टाइप किये जाते हैं। टाइप में भी प्रत्येक पत्र अलग-अलग टाइप किया जाता है। ऐसे पत्रों को साधारणतया छपवाया नहीं जाता है। लेकिन आजकल समय एवं धन की बचत से इनको छपवाकर भी भेजा जाता है।

(9) **अन्य** (Others)—उपर्युक्त के अतिरिक्त डाक विज्ञापन अन्य प्रकार से भी किया जा सकता है जैसे, पत्रिकाएँ। बहुत-सी अच्छी कम्पनियाँ अपनी स्वयं की मासिक पत्रिकाएँ निकालती हैं जिनमें कम्पनी की सूचनाओं के साथ वस्तुओं का विवरण दिया रहता है। जैसे, डनलप कम्पनी की एक पत्रिका 'Dunlop News' के नाम से निकलती है।

(IV) अन्य विज्ञापन
(MISCELLANEOUS ADVERTISING)

विज्ञापन के अन्य साधनों में निम्न साधन उल्लेखनीय हैं :

(1) **रेडियो एवं टेलीविजन** (Radio and Television)—आज के युग में रेडियो एवं टेलीविजन विज्ञापन का बहुत ही महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। यद्यपि रेडियो व टेलीविजन केन्द्र सरकार के अधीन हैं लेकिन फिर भी वे विज्ञापन के साधन के रूप में कार्य करते हैं। जनता के मनोरंजन के लिए जो कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं उनके बीच-बीच में वस्तुओं का विज्ञापन भी कर दिया जाता है।

इस समय देश में 1·74 करोड़ रेडियो लाइसेन्स हैं जबकि 1947 में 2·76 लाख थे। इस प्रकार अब प्रत्येक 35 व्यक्तियों के पीछे भारत में एक रेडियो सेट है जबकि 1951 में यह संख्या 527 थी।

भारत में रेडियो से विज्ञापन 1 नवम्बर, 1967 से प्रारम्भ किया गया है और इसके लिए एक 'व्यापार विभाग' अलग से खोल दिया गया है। विविध भारती प्रोग्राम के अन्तर्गत बीच-बीच में यह विज्ञापन किये जाते हैं। आजकल यह विज्ञापन 28 स्टेशनों से किये जाते हैं जिनमें बम्बई, पुणे, नागपुर, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास,

केन्द्र प्रमुख हैं। इस प्रकार के विज्ञापनों से केन्द्र सरकार को 1978-79 में 8·5 करोड़ रुपये की आय हुई है।

भारत में टेलीविजन सेवा 1959 से प्रारम्भ की गयी है लेकिन जनता के लिए यह 1965 से उपलब्ध है। इस समय इसके 9 टेलीविजन स्टेशन हैं—दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, पुणे, लखनऊ, कानपुर, श्रीनगर, अमृतसर। अभी 1 जनवरी, 1976 से टेलीविजन से विज्ञापन सेवा प्रारम्भ कर दी गयी है। 1978-79 में इससे 5 करोड़ रुपये की आय हुई है।

(2) **सिनेमा एवं सिनेमा स्लाइड** (Cinema or Cinema Slide)—सिनेमा के माध्यम से भी विज्ञापन कराया जा सकता है। यह दो प्रकार से होता है। **एक तो,** सिनेमा स्लाइड बनवाकर किया जा सकता है। इसमें काँच पर रंगीन रंगों आदि से लिख दिया जाता है और सिनेमा वाले को दे दिया जाता है। वह उसे खेल आरम्भ होने से पहले या मध्यान्तर में मशीन लगाकर दिखाता है जो एक विज्ञापन बोर्ड जैसा लगता है। **दूसरे,** विज्ञापन कराने वाले एक फिल्म अपनी स्वयं की बनाकर सिनेमाओं में प्रदर्शित कराते हैं। यह फिल्म भी खेल प्रारम्भ होने से पहले या मध्यान्तर में दिखायी जाती है। जैसे, डालडा वनस्पति घी का चित्र, 'बेचारा बन्दगोभी,' लाइफबॉय साबुन का चित्र 'सफर', लक्स साबुन का 'गाँव की गोरी', सेन्फराइज्ड का चित्र 'ममता भरी भूल', व एस्ट्रेला बैटरीज का चित्र 'रोशनी'।

(3) **मेले एवं प्रदर्शनियाँ** (Fairs and Exihibitions)—विश्व में सभी देश मेले एवं प्रदर्शनियाँ समय-समय पर लगाते हैं। इन प्रदर्शनियों में वस्तु का प्रचार किया जाता है। अभी हाल ही में जापान में 'एक्सपो 70' तथा भारत में 'विश्व मेला' लगा था। दिल्ली में 1955 व 1958 में औद्योगिक मेले 1972 में Asia Fair व 1977 में ऐग्री एक्सपो 77 मेला लगाया गया था जिनमें बहुत-सी देशी एवं विदेशी संस्थाओं के द्वारा अपने-अपने मण्डप लगाये गये थे। इन प्रदर्शनियों को देखने हजारों व्यक्ति प्रतिदिन आते थे। ऐसा मौका विज्ञापन के लिए बहुत ही अच्छा होता है।

भारत में कुछ मेले विख्यात हैं जो निश्चित स्थान पर व निश्चित समय पर लगते हैं जैसे, 12 वर्ष बाद इलाहबाद में कुम्भ का मेला, गढ़ मुक्तेश्वर का मेला, बीकानेर में कोलापति का मेला, मेरठ में नौचन्दी का मेला, कलकत्ता में पूजा मेला, आदि। इसी प्रकार कुछ प्रदर्शनियाँ भी लगाई जाती हैं जैसे, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) की प्रदर्शनी, इटावा (उत्तर प्रदेश) की प्रदर्शनी, ग्वालियर (मध्य प्रदेश) की प्रदर्शनी। इन सभी मेलों और प्रदर्शनियों में दूर-दूर के दुकानदार आते हैं और अपनी दुकान लगाते हैं। कुछ कम्पनियाँ क्रय एवं विक्रय के लिए कोई दुकान नहीं लगातीं बल्कि सिर्फ प्रचार हेतु दुकान लगती हैं।

(4) **लाउडस्पीकर** (Loudspeaker)— लाउडस्पीकर भी विज्ञापन का एक साधन है। बहुत से व्यापारी एक साईकिल, रिक्शा, ताँगा या मोटर में लाउडस्पीकर लगाकर स्थान-स्थान पर घूमते हैं। पहले तो फिल्मी गाने सुनाकर जनता को आकर्षित करते हैं और फिर अपनी वस्तु का प्रचार करते हैं। आमतौर पर मंजन बेचने वाले व बीड़ी बेचने वाले इस साधन को काम में लाते हैं। बहुत-से स्थानीय कपड़ा विक्रेता भी इसको अपनाते हैं। जब कभी उनके पास नया माल आता है या वे विशेष छूट देते हैं तो लाउडस्पीकर के माध्यम से जनता को सूचित करते हैं। यह तरीका जनता की शान्ति को भंग करता है। इसकी आवाज काफी तेज होती है अत: लोग इसको पसन्द नहीं करते हैं। कभी-कभी जिला अधिकारियों द्वारा इसके प्रयोग पर रोक लगा दी जाती है।

(5) **प्रदर्शन** (Demonstration)— यदि किसी वस्तु का कार्य-संचालन या प्रदर्शन किया जाता है तो देखने वाले उस वस्तु से काफी प्रभावित होते हैं और उसकी कार्य-विधि समझ में आने के कारण खरीदने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। सब्जियाँ छीलने, काटने तथा विभिन्न प्रकारों से बनाने के लिए चाकू बेचने वालों के द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। हाथ से काढ़ने वाली मशीनों से सड़क के किनारे काढ़कर बताते हैं। ऐसा करके जनसाधारण को वस्तु के गुणों के प्रति विश्वास जम जाता है और वे तुरन्त उस वस्तु का क्रय कर लेते हैं।

(6) **डाकतार विभाग** (Post and Telegraph Dept.)—डाकतार विभाग द्वारा बेचे जाने वाले पोस्टकार्डों, अन्तर्देशीय पत्रों एवं मनीआर्डर फार्मों पर भी विज्ञापन कराया जा सकता है जिसके लिए निर्धारित दर एक रुपया प्रति सैकड़ा है। इस योजना के अन्तर्गत भारतीय जीवन बीमा निगम मनीआर्डर फार्मों पर विज्ञापन करा रहा है।

(7) रेलवे (Railways)—कुछ बड़े भारतीय रेलवे स्टेशनों पर गाड़ियों के आने व जाने की सूचना देने के लिए लाउडस्पीकर लगे हैं। इन लाउडस्पीकरों से भी स्थानीय व्यापारी अपने विज्ञापन करा सकते हैं। इसके लिए रेल विभाग कुछ राशि शुल्क के रूप में उनसे वसूल करता है।

विज्ञापन के लाभ अथवा उपयोगिता
(ADVANTAGES OR UTILITY OF ADVERTISING)

विज्ञापन के महत्व के सम्बन्ध में कोई दो राय नहीं हैं। विज्ञापन का प्रयोग आजकल एक आवश्यकता है। विज्ञापन के लाभ या उपयोगिताएँ अग्रवत हैं :

विज्ञापन के लाभ

I. उत्पादकों को लाभ (Advantages to Producers or Manufacturers)

1. प्रतिस्पर्द्धा में सफलता
2. मध्यस्थों की प्राप्ति
3. बड़े पैमाने के लाभ
4. विशिष्टीकरण के लाभ
5. ख्याति में वृद्धि
6. स्थायी माँग
7. कुशल कर्मचारियों की प्राप्ति
8. ग्राहक को बनाये रखना
9. संस्था के कर्मचारियों पर सुप्रभाव
10. वस्तु के विक्रयकर्ताओं का कार्य आसान

II. उपभोक्ताओं को लाभ (Advantages to Consumers)

1. ज्ञानवर्द्धन
2. वस्तुओं के चुनाव में सुविधा वृद्धि
3. कम मूल्य पर श्रेष्ठ वस्तु की
4. रहन-सहन के स्तर में वृद्धि
5. सहज प्राप्ति
6. मूल्यों की जानकारी

III. मध्यस्थों को लाभ (Advantages to Middlemen)

1. विक्रय में सुविधा
2. जीविका का स्थायी साधन
3. विक्रेताओं को समर्थन एवं प्रोत्साहन
4. वस्तु की बिक्री में वृद्धि

IV. समाज को लाभ (Advantages to Society)

1. अनेक व्यक्तियों को जीविका
2. सदस्यों की संख्या में कमी
3. समाज के रहन-सहन के स्तर में वृद्धि
4. स्वस्थ प्रतिस्पर्धा
5. समाचार-पत्रों की आय में वृद्धि
6. अन्य

(I) **उत्पादकों को लाभ** (Advantage to Produceres or Manufacturers)—विज्ञापन से उत्पादकों को लाभ मिलते हैं : (1) **प्रतिस्पर्धा में सफलता**—विज्ञापन के कारण ही निर्माता या उत्पादक प्रतिस्पर्द्धा में सफलता प्राप्त कर पाता है। सामूहिक विज्ञापन अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा का विनाश करता है और विज्ञापन व्ययों में बचत करता है। (2) **मध्यस्थों की प्राप्ति**—विज्ञापन से निर्माता या उत्पादक को मध्यस्थ मिल जाते हैं जो वस्तु को अपनी दुकान पर बेचने हेतु रखने को तैयार हो जाते हैं। (3) **बड़े पैमाने के लाभ**—विज्ञापन में वस्तु की माँग बढ़ जाती है और उत्पादक को उसकी पूर्ति हेतु अपने निर्माण कार्य को बड़े पैमाने पर करना पड़ता है। फलतः बड़े पैमाने के निर्माण के सभी लाभ उत्पादक को मिल जाते हैं जैसे, उत्पादन लागत में कमी, आधुनिक मशीनों का प्रयोग आदि। (4) **विशिष्टीकरण के लाभ**—

उत्पादक के द्वारा उनका ध्यान केवल उन वस्तुओं तक ही केन्द्रित कर लिया जाता है जिनकी कि बाजार में माँग है और जिनका वह उत्पादन कर रहा है। ऐसा करने से वह अपने को एक वस्तु में विशिष्ट बना लेता है और इस प्रकार विशिष्टीकरण का लाभ उसको मिल जाता है। (5) **ख्याति में वृद्धि**—विज्ञापन उत्पादक की ख्याति में वृद्धि करता है। इसके ज्वलन्त कई उदाहरण हैं जैसे हिन्दुस्तान लीवर कम्पनी की ख्याति उसके साबुन एवं डालडा घी ने बनायी है। फिलिप्स कम्पनी की ख्याति उसके रेडियो व बल्बों ने बनायी है। (6) **स्थायी माँग**—वस्तुओं की स्थायी माँग बनाने में विज्ञापन बड़ी सहायता करता है। निर्माता अपना उत्पादन योजनाबद्ध कर सकता है। चाय की माँग गर्मियों में भी बनी रहती है और विज्ञापन किया जाता है कि नीबू की चाय गर्मियों में बहुत ठण्डक पहुँचाती है। (7) **कुशल कर्मचारियों की प्राप्ति**—विज्ञापन एक कम्पनी की ख्याति में वृद्धि करता है। यदि ऐसी कम्पनी अच्छे कर्मचारी नियुक्त करना चाहती है तो उसको मिल जाते हैं क्योंकि ऐसी कम्पनी में कार्य करने से कर्मचारी अपने को गौरवान्वित मानते हैं। (8) **ग्राहक को बनाये रखना**—विज्ञापन ग्राहक को बनाये रखता है और उसको छूटकर जाने नहीं देता जिसका लाभ उत्पादक को मिलता है। (9) **संस्था के कर्मचारियों पर सुप्रभाव**—विज्ञापन करने वाली संस्थाओं के कर्मचारियों पर विज्ञापन का अच्छा प्रभाव पड़ता है। उनमें उत्तरदायित्व की भावना आ जाती है और वे क्वालिटी माल बनाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। (10) **उत्पादक के विक्रयकर्ताओं का कार्य आसान**— जिन वस्तुओं का विज्ञापन होता है उन वस्तुओं के विक्रेताओं को वस्तु के सम्बन्ध में ग्राहकों को जानकारी देने का कार्य आसान हो जाता है और साथ ही अधिक बिक्री कर निर्माता को लाभ पहुंचाते हैं।

(II) **उपभोक्ताओं को लाभ** (Advantages to Consumers)—विज्ञापन से उपभोक्ताओं को लाभ मिलते हैं : (1) **ज्ञानवर्द्धन**—विज्ञापन उपभोक्ताओं के ज्ञान में वृद्धि कर उपभोक्ता को लाभ पहुँचाता है। विज्ञापन वस्तुओं के विभिन्न प्रयोगों की जानकारी देता है जिससे उपभोक्ता के ज्ञान में वृद्धि होती है। (2) **वस्तुओं के चुनाव में सुविधा**—विज्ञापन उपभोक्ता को वस्तु का चुनाव करने में सुविधा प्रदान करता है और समय की बचत करता है। (3) **कम मूल्य पर श्रेष्ठ वस्तुओं की प्राप्ति**—विज्ञापित वस्तु की माँग बढ़ने पर उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है जो कम लागत पर होता है। कम लागत वस्तु के मूल्य को कम करने में सहायक होती है और इस प्रकार उपभोक्ता को कम मूल्य पर ख्याति प्राप्त वस्तु मिल जाती है। (4) **रहन-सहन के स्तर में वृद्धि**—विज्ञापन उपभोक्ता के रहन सहन के स्तर में वृद्धि करता है। विज्ञापन उपभोक्ता को अधिक वस्तुओं के प्रयोग को प्रेरित करता है। एक व्यक्ति जितनी अधिक वस्तुओं का उपयोग करता है उसका स्तर उतना ही ऊँचा माना जाता है। (5) **सहज प्राप्ति**—विज्ञापित वस्तुएँ बाजार में आसानी से मिल जाती हैं

और उन्हें अधिक ढूँढ़ना नहीं पड़ता। इस प्रकार उपभोक्ता को वे वस्तुएँ सहज प्राप्त हो जाती हैं। (6) **मूल्यों की जानकारी**— साधारणतया विज्ञापन में वस्तुओं के मूल्य दिये रहते हैं जिससे उपभोक्ता को उनके मूल्यों की जानकारी हो जाती है और उन्हें धोखा नहीं दिया जा सकता है।

(III) **मध्यस्थों को लाभ** (Advantages to Middlemen)— विज्ञापन से मध्यस्थों को लाभ मिलते हैं : (1) **विक्रय में सुविधा**—जिन वस्तुओं का विज्ञापन निर्माता करता है उनका पुनः विज्ञापन करना मध्यस्थों के लिए आवश्यक नहीं है। उन वस्तुओं के लिए तो क्रेता स्वतः ही आते हैं और ऐसे क्रेताओं को अधिक समझाने की भी आवश्यकता नहीं होती। अतः उनके लिए विक्रय सुविधाजनक हो जाता है। (2) **जीविका का स्थायी साधन**—विज्ञापन की माँग में स्थायित्व आ जाता है और वस्तु के क्रेता पूरे वर्ष-भर मिलते रहते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि मध्यस्थों की जीविका का स्थायी साधन हो जाता है। (3) **विक्रेताओं को समर्थन एवं प्रोत्साहन**—विज्ञापन मध्यस्थ विक्रेताओं को एक प्रकार से समर्थन एवं प्रोत्साहन देता है तथा उनका कार्य आसान बनाता है। (4) **वस्तु की बिक्री में वृद्धि**—जिन वस्तुओं का विज्ञापन होता है उनकी बिक्री अधिक होती है जिससे मध्यस्थों के लाभ में भी वृद्धि होती है।

(IV) **समाज को लाभ** (Advantages to Society)—विज्ञापन से समाज को लाभ हैं : (1) **अनेक व्यक्तियों को जीविका**—विज्ञापन में अनेक लेखकों, कलाकारों एवं विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। इन लोगों का पेट भरने का सिर्फ यही एक साधन है। इसके अतिरिक्त बहुत-सी एडवरटाइजिंग फर्म भी स्थापित हो जाती हैं जिनमें बहुत से कर्मचारी कार्य करते हैं। ये संस्थाएँ विज्ञापन से ही जीविका अर्जित करती हैं। (2) **मध्यस्थों की संख्या में कमी**—विज्ञापन मध्यस्थों की संख्या में कमी करता है और ग्राहक एवं विक्रेता का सीधा सम्पर्क स्थापित करता है जिससे विपणन व्ययों में कमी होती है और उपभोक्ता को कम मूल्य पर वस्तु मिल जाती है। (3) **समाज के रहन-सहन के स्तर में वृद्धि**—विज्ञापन वस्तुओं का उपभोग बढ़ाता है जिससे समाज के रहन-सहन के स्तर में वृद्धि होती है। (4) **स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा**—विज्ञापन स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को जन्म देता है जो व्यवसाय के विकास के लिए लाभकारी है। (5) **समाचार-पत्रों की आय में वृद्धि**—सामाचार-पत्रों को विज्ञापनों से अपनी कुल आय का लगभग 75% मिलता है तथा शेष 25% समाचार पढ़ने वालों से मिलता है। इस प्रकार विज्ञापन समाचार-पत्रों की आय का एक मुख्य साधन है। विज्ञापनों के कारण ही समाचार-पत्र पढ़ने वालों को समाचार-पत्र भी कम मूल्य पर मिल जाते हैं। (6) **अन्य**—समाज का नैतिक स्तर उठाया जा सकता है। समाचार-पत्रों की आय में वृद्धि होती है आदि।



विज्ञापन के दोष या आलोचनाएँ

(DEMERITS OF ADVERTISING OR ADVERTISING IS A WASTE OR OBJECTIONS AGAINST ADVERTISING)

"विज्ञापन पर किया गया व्यय अपव्यय ही होता है।"[1] ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। इसके लिए निम्न तर्क दिये जाते हैं। इन्हीं तर्कों को विज्ञापन की आलोचनाएँ कहते हैं और साधारण भाषा में इन्हें विज्ञापन के दोष कहते हैं।

(1) **धन का अपव्यय**—विज्ञापन उपभोक्ता को उन वस्तुओं को खरीदने के लिए प्रेरित करता है जिनकी आवश्यकता उसको नहीं है या जो उसके स्तर को देखते हुए विलासता की हैं। इस प्रकार ऐसी वस्तुओं पर उसके द्वारा किया गया खर्च अपव्यय ही होता है।

(2) **एकाधिकारी मूल्य**—जिन वस्तुओं का विज्ञापन किया जाता है वे वस्तुएँ धीरे-धीरे साधारण जनता के मन में बैठ जाती हैं और जनता उन्हीं वस्तुओं को खरीदती है। जैसे, आज अधिकांश नहाने के साबुन हिन्दुस्तान लीवर कम्पनी बनाती है, जैसे लाइफबॉय, लक्स, रेक्सोना, आदि।

जिस कम्पनी का एकाधिकार स्थापित हो जाता है वह अपनी इच्छानुसार मूल्य बढ़ाकर एकाधिकारी प्रवृत्ति का लाभ उठाती है।

(3) **मिथ्या वस्तुओं का प्रचार**—विज्ञापन में अधिकांशतः मिथ्या वर्णन होता है, असत्य कथन होता है तथा स्वयं विज्ञापन कपट पर आधारित होता है। विज्ञापन करने वाले अधिक मूल्यवान वस्तुओं को कम मूल्य पर देने का विज्ञापन करते हैं। उपभोक्ता ऐसे विज्ञापनों के चक्कर में पड़ जाता है और चंचल मन के कारण सन्तुलन खो बैठता है जिसका परिणाम यह होता है कि उपभोक्ता ठग जाता है।

(4) **अश्लील विज्ञापनों से हानियाँ**—कुछ विज्ञापन इस प्रकार के होते हैं कि उनमें लड़कियों के नग्न या अर्द्धनग्न फोटो छपे रहते हैं या स्त्रियों का हाव-भाव विलासतापूर्ण दिखाया जाता है। आजकल यह एक साधारण बात बन गयी है। ऐसे चित्र जनता को आकर्षित करते हैं तथा उस पर इन अश्लील विज्ञापनों से अनैतिक प्रभाव डालते हैं। यही कारण है कि विवेकशील व्यक्ति इनका विरोध करते हैं।

(5) **चंचलता**—उपभोक्ता का मन विज्ञापनों से प्रभावित होकर चंचल हो जाता है और वह अपनी पूर्व-निश्चित इच्छा के अनुसार कार्य नहीं कर पाता है। वह उन वस्तुओं का उपयोग करता है जो उस पर विज्ञापन के कारण प्रभाव डाल चुकी हैं तथा जो उसके लिए अनावश्यक तथा मिथ्या हैं।

(6) **सामाजिक बुराइयाँ**—विज्ञापन सामाजिक बुराइयों को जन्म देता है। विलासता की वस्तुओं का उपभोग अनेक सामाजिक बुराइयों को जन्म देता है। विज्ञापन बुरी आदतों को भी जन्म देता है। यदि कोई व्यक्ति सिगरेट या शराब के विज्ञापन से प्रभावित होकर शौकिया किसी दिन सिगरेट या शराब पी लेता है तो

---

1 "Money spent on advertisement is a waste."

धीरे-धीरे उनकी आदत उन्हें पीने की बन जाती है। विज्ञापन से प्रभावित होकर क्रय करने से एक साधारण व्यक्ति का आर्थिक सन्तुलन बिगड़ जाता है, जैसे, इस प्रकार के विज्ञापन भी देखे जाते हैं—'Wine is a symbol of friendship' या 'Smoking adds to personality' आदि।

(7) **प्रतिस्पर्द्धा का जन्म**—विज्ञापन प्रतिस्पर्द्धा को जन्म देता है जिससे मूल्य कम करने पड़ते हैं। वस्तु से कम मूल्य वस्तु की क्वालिटी को गिराते हैं।

(8) **प्राकृतिक सौन्दर्य का विनाश**—विज्ञापन सभी ओर दिखायी देते हैं और वे शहर की प्राकृतिक शोभा को नष्ट कर देते हैं। गलियों व बाजारों में दीवारों को गन्दा किया जाता है जिससे मकानों का सौन्दर्य बिगड़ जाता है और स्वच्छता में कमी आ जाती है।

(9) **खर्चीला**—विज्ञापन पर पर्याप्त मात्रा में व्यय करना पड़ता है जो किसी न किसी रूप से वस्तु के मूल्य में वृद्धि करता है और जिसका अन्तिम बोझ उपभोक्ता पर ही पड़ता है अर्थात् उपभोक्ता को वस्तु का अधिक मूल्य देना पड़ता है।

(10) **फैशन परिवर्तन**—विज्ञापन फैशन में परिवर्तन करता है जिसका प्रभाव उपभोक्ता व मध्यस्थ दोनों पर पड़ता है। उपभोक्ता को फैशन वाली वस्तु खरीदने में ज्यादा व्यय करना पड़ता है तथा मध्यस्थ को फैशन में परिवर्तन होने से हानि होती है क्योंकि उसकी वस्तु या तो बिकती नहीं है या कम मूल्य पर बेचना पड़ता है।

(11) **राष्ट्रीय स्रोतों का अपव्यय**—विज्ञापन राष्ट्रीय स्रोतों का अपव्यय करता है। जैसा कि अभी ऊपर कहा है फैशन परिवर्तन या मॉडल परिवर्तन से ग्राहक नयी वस्तु खरीदता है और पुरानी नहीं। यदि किसी प्रकार पुराना मॉडल या पुराने फैशन का माल स्टॉक में रह जाता है तो वह बहुत ही कम मूल्य पर बिकता है जिससे राष्ट्रीय स्रोतों का अपव्यय होता है।

(12) **निर्णय में कठिनाई**—जब एक ही प्रकार की कई वस्तुओं का विज्ञापन होता है तो ग्राहक को निर्णय लेने में कठिनाई होती है जैसे, जब फोरहन्स, कोलगेट, बिनाका, नीम आदि टूथपेस्टों का विज्ञापन एक ग्राहक देखता है तो उसको निर्णय लेने में कठिनाई होती है कि किस वस्तु को खरीदे।

प्रश्न

1. विज्ञापन किसे कहते हैं ? इसके गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।
   What is advertising ? Describe its advantages and disadvantages.
2. विज्ञापन के विभिन्न तरीकों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
   Briefly describe the forms of advertising.
3. क्या विज्ञापन निरर्थक है ? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कीजिए।
   Is advertising wasteful ? Support your answer with arguments.
4. विपणन में प्रचार का क्या महत्व है ? आधुनिक विज्ञापन की सामान्य आपत्तियों का वर्णन कीजिए।
   What is the importance of publicity in marketing ? What are the common objections against modern advertisements ?

28

विक्रय प्रवर्तन

[SALES PROMOTION]

विक्रय प्रवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा

(MEANING AND DEFINITION OF SALES PROMOTION)

विक्रय प्रवर्तन की परिभाषा भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दी हैं। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं :

(1) **ए. एच. आर. डेलेन्स** (A. H. R. Delens) के अनुसार, "वे कदम जो विक्रय करने या बढ़ाने के लिए किये जाते हैं विक्रय प्रवर्तन में शामिल किये जाते हैं।"[1]

(2) **ल्यूक एवं जीगलर** (Luick & Ziegler) की राय में, "विक्रय प्रवर्तन विपणन प्रवर्तन के उपकरण के रूप में वस्तु के प्रयोग में वृद्धि करता है और वस्तु के बाजार में विस्तार भी करता है या नयी वस्तु के परिचय में वृद्धि करता है।"[2]

(3) **परिभाषा समिति** (Definitions Committee) के मत में, विक्रय प्रवर्तन में "वैयक्तिक विक्रय, विज्ञापन तथा प्रचार के अतिरिक्त वे सब क्रियाएँ आती हैं जो उपभोक्ता क्रय एवं विक्रेता की तत्परता को प्रेरित करती हैं; जैसे, सजावट, तमाशे एवं नुमायशें, प्रदर्शन तथा विभिन्न अनैत्यक विक्रय प्रयत्न जो साधारण जीवन में नहीं किये जाते हैं।"[3]

(4) **परिभाषा समित** (Definitions Committee) के अनुसार, "........वे

---

1 Sales Promotion means "any steps that are taken for the purpose of obtaining or increasing sales."
—A. H, R. Delens : *Principles of Market Research*, p. 244.

2 "Sales Promotion as a tool of marketing promotion gives rise to increase in product usage as well as expansion of markets for a product or introduction of a new product."
—John F. Luick & William Lee Ziegler : *Sales Promotion and Modern Merchandising*, p. 1.

3 "Those marketing activities other than personal selling, advertising, and publicity that stimulate consumer purchasing and dealer effectiveness such as display, shows and exhibitions, demonstrations, and various non-recurrent selling efforts not in the ordinary routine."
—*American Marketing Association* : Chicago, 1960, p. 20

क्रियाएँ जो वैयक्तिक विक्रय व विज्ञापन – दोनों को जोड़ती हैं, सहयोग करती हैं और उनको अधिक प्रभावकारी बनाने में सहायता करती हैं विंक्रय प्रवर्तन कहलाती हैं।"[1]

विक्रय प्रवर्तन की उपर्युक्त परिभाषाएँ दो प्रकार की हैं। कुछ विद्वान विक्रय सम्बन्धी सभी क्रियाओं को 'विक्रय प्रवर्तन' में जोड़ लेते हैं जैसा कि श्री डेलेन्स ने किया है। उन्होंने विक्रय करने के सभी प्रयत्न इसमें शामिल कर लिए हैं। यह एक प्रकार के विद्वान हैं।

दूसरे प्रकार के विद्वान वे हैं, जो विक्रय प्रवर्तन का अर्थ सीमित क्षेत्र में लगाते हैं जिसमें उपर्युक्त तीन परिभाषाएँ हैं—एक ल्यूक एवं जीगलर की व अन्य दो परिभाषा समिति की। इसमें विक्रय प्रवर्तन का अर्थ विज्ञापन व वैयक्तिक विक्रय से नहीं लगाया जाता है बल्कि इन दोनों के कार्यों को समन्वित करने से लगाया जाता है। इस प्रकार विक्रय प्रवर्तन का अर्थ इनके कार्यों में सहयोग करना व उनको प्रभावकारी बनाना है।

विक्रय प्रवर्तन के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF SALES PROMOTION)

विक्रय प्रवर्तन के बहुत से उद्देश्य हो सकते हैं लेकिन प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :

(1) **नयी वस्तु का परिचय कराने के लिए** (To introduce new product)—प्रवर्तन का पहला उद्देश्य नयी वस्तु के बारे में जानकारी देना है। इस जानकारी से ग्राहकों को खरीदने के लिए उकसाया जा सकता है और साथ ही मध्यस्थ विक्रेताओं को भी वस्तु अपनी दुकान पर रखने के लिए लालायित किया जा सकता है। इस कार्य के लिए उपभोक्ताओं के उद्देश्य से मुफ्त नमूने व प्रीमियम वाली पद्धति को अपनाया जा सकता है। इसी प्रकार मध्यस्थों के लिए भी क्रय-भत्ता की नीति अपनायी जा सकती है।

(2) **नये ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए** (To attract new customers)—एक निर्माता का विक्रय प्रवर्तन उद्देश्य नये ग्राहकों को आकर्षित करना भी होता है। विक्रय प्रवर्तन क्रियाओं के करने से नये ग्राहक आकर्षित होते हैं और कुल ग्राहकों की संख्या में वृद्धि होती है। विक्रय प्रवर्तन के तरीके जैसे, मुफ्त नमूने, मुफ्त भेंट, प्रतियोगिताएँ, प्रीमियम, आदि ग्राहकों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि करती हैं।

(3) **वर्तमान ग्राहकों द्वारा अधिक प्रयोग करने के लिए** (To incre se use by present customers)—विक्रय प्रवर्तन क्रियाओं का उद्देश्य उन ग्राहकों के प्रयोग को बढ़ावा देना होता है जो वर्तमान में वस्तु को प्रयोग में ला रहे हैं। इस

---

1 "......those activities that supplement both personal selling and advertising, co-ordinate them and help to make them more effective."
—American Marketing Association : *Journal of Marketing*, October, 1948, p. 24.

प्रयोग को बढ़ाने के लिए उनको विभिन्न प्रकार के प्रलोभन दिये जाते हैं जैसे, मूल्य में कमी (Price off promotion), प्रीमियम, प्रतियोगिताएँ, आदि ।

(4) **प्रतियोगी के विक्रय प्रवर्तन के जबाब के लिए** (To counter a competitor's sales promotion device)—जब प्रतियोगी संस्था इस नीति को अपनाती है तो दूसरी प्रतियोगी संस्था द्वारा भी यह नीति अपना ली जाती है। इसका उद्देश्य प्रतियोगी संस्था के विक्रय प्रवर्तन के प्रयत्नों को या तो प्रभावहीन बना देना या उनके प्रभाव को कम कर देना है।

(5) **मौसमी कमी के प्रभाव को कम करने के लिए** (To reduce seasonal decline)— कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी माँग एक खास मौसम में तो बहुत अधिक होती है लेकिन वर्ष के एक खास समय में बहुत कम हो जाती है। विक्रय प्रवर्तन का उद्देश्य इस मौसमी कमी के प्रभाव को कम करना होता है। विक्रय प्रवर्तन क्रियाएँ होने से कुछ बिक्री बढ़ जाती है जैसे, भारत में गर्मियों में चाय व काफी बेचने वाली कम्पनियाँ अपने पैकिटों के साथ कुछ मुफ्त उपहार भेंट करती हैं।

(6) **विक्रयकर्ताओं को बिक्री आसान करने के लिए** (To make easier for salesmen to sell)—विक्रय प्रवर्तन का छठवाँ उद्देश्य विक्रयकर्ता की बिक्री आसान करना है। जिन वस्तुओं में विक्रय प्रवर्तन नीति अपनायी जाती है उन वस्तुओं के विक्रयकर्ताओं के लिए बिक्री करना आसान हो जाता है। इसका कारण यह है कि उस वस्तु के क्रेता बाजार में पाये जाते हैं, अतः मध्यस्थ व डीलर, आदि उस वस्तु को अपने यहाँ रखने व बेचने को आसानी से तैयार हो जाते हैं।

(7) **मध्यस्थों को अधिक क्रय करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए** (To induce middlemen to purchase more)— उपभोक्ता को वस्तु हर समय व हर मौसम में मिलती रहनी चाहिए। इसके लिए मध्यस्थों द्वारा उचित स्टॉक रखा जाना चाहिए। लेकिन मध्यस्थ अपनी निजी कठिनाइयों के कारण ऐसा नहीं कर पाते। अतः ऐसे मध्यस्थों को अधिक भत्ता देकर या अन्य प्रकार के साधन अपनाकर विवश किया जा सकता है।

विक्रय प्रवर्तन के कार्य
(FUNCTIONS OF SALES PROMOTION)

बहुत-से निर्माता विक्रय प्रवर्नन का प्रयोग भिन्न-भिन्न रूपों में करते हैं। कुछ निर्माता तो विक्रय प्रवर्नन का विभाग ही अलग रखते हैं जिसका काम नयी-नयी योजनाएँ बनाना व व्यवसाय के विज्ञापन व अन्य विभागों में सहयोग करना है। लेकिन कुछ निर्माता अपने यहाँ विज्ञापन विभाग का नाम ही प्रवर्नन विभाग रखते हैं। अतः विक्रय प्रवर्तन के कार्यों से इसको अन्य विभागों से अलग किया जा सकता है। विक्रय प्रवर्नन के निम्न चार कार्य हैं :

(1) **उपभोक्ताओं को प्रेरित करना** (Stimulation of Consumers)—विक्रय प्रवर्तन का प्रमुख कार्य उपभोक्ताओं को क्रय करने के लिए प्रेरित करना है

जिससे कि वे क्रय करें। यह प्रेरणा कई साधनों से दी जा सकती है; जैसे वस्तु का मुफ्त ट्रायल, मुफ्त नमूना बाँटना, उपभोक्ता प्रतियोगिताओं का आयोजन करना, धन वापिसी प्रस्ताव, मूल्य में कमी, प्रीमियम बाँटना, टिकट एकत्रित करना, आदि।

(2) **मध्यस्थों की सहायता करना** (Aid to Middlemen)—मध्यस्थों की विक्रय में सहायता करना भी विक्रय प्रवर्तन का कार्य है। मध्यस्थों में थोक विक्रेता; फुटकर विक्रेता, शृंखलाबद्ध दुकानें, विभागीय भण्डार, डीलर, वितरक, आदि आते हैं। विक्रय प्रवर्तन इनके कार्यों में सहयोग करता है। यह सहयोग मध्यस्थों के माध्यम से वस्तुओं के नमूने बाँटना, डीलरों व मध्यस्थों के स्टोरों में प्रदर्शन करना, डीलरों व मध्यस्थों को शो-केस देना, मध्यस्थों व डीलरों में प्रतियोगिताएँ एवं दाँव लगाने की क्रियाएँ करना, मुफ्त माल देना, क्रय भत्ता देना, आदि के रूप में होता है।

(3) **विज्ञापन विभाग की सहायता करना** (Aid to Advertising Department)—विक्रय प्रवर्तन का तीसरा कार्य विज्ञापन विभाग की सहायता करना है। यह सहायता विज्ञापन बोर्ड बाँटकर, सहकारी विज्ञापन कर, विज्ञापन खाका तैयार करने में सहायता देकर, आदि ढंगों से की जा सकती है।

(4) **विक्रयकर्ता की सहायता** (Aid to Salesman)—विक्रय प्रवर्तन का चौथा कार्य विक्रयकर्ता की सहायता करना है। विक्रय प्रवर्तन उसको अधिक विक्रय करने में योग देता है क्योंकि ग्राहकों को समझाने में अधिक समय नहीं लगता है। विक्रय प्रवर्तन करने से पूछ-ताछ के पत्र आते हैं जिनसे विक्रयकर्ता सम्पर्क स्थापित कर विक्रय कर सकता है।

विक्रय प्रवर्तन का महत्व या लाभ
(IMPORTANCE OR ADVANTAGES OF SALES PROMOTION)

आज के युग में विक्रय प्रवर्तन का महत्व ही नहीं है बल्कि यह अति आवश्यक हो गया है। विक्रय प्रवर्तन क्रियाएँ निर्माता, मध्यस्थ एवं उपभोक्ता सभी को लाभ पहुँचाती हैं। यह क्रियाएँ चाहे किसी के द्वारा की जायें लेकिन इनका लाभ सभी को मिलता है। जैसे, यदि विक्रय प्रवर्तन मध्यस्थ-डीलर के द्वारा किया जाये तो उससे डीलर को तो लाभ होता ही है लेकिन निर्माता को भी लाभ होता है। उपभोक्ता को तो प्रत्येक दशा में लाभ मिलता है। हम यहाँ विक्रय प्रवर्तन के महत्व का अध्ययन निम्न पंक्तियों में करेंगे :

(1) **निर्माता** (Manufacturer)—विक्रय प्रवर्तन निर्माता के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है—(i) विक्रय प्रवर्तन नये क्रेता बनाने में सहायक होता है। (ii) पुराने उपभोक्ताओं में उपभोग बढ़ाने में कारगर है। (iii) नयी वस्तु के ग्राहक बनाने के लिए संजीवनी बूटी है। (iv) अधिक माँग की पूर्ति हेतु उत्पादन बढ़ाकर प्रति वस्तु लागत कम की जा सकती है। इससे संस्था की ख्याति में चार चाँद लग जाते हैं। (v) क्रेता द्वारा वस्तु माँगी जाने पर मध्यस्थ भी वस्तु को अपनी दूकान पर रखने में रुचि लेता है और वस्तु को निर्माता से क्रय करता है। (vi) विक्रय प्रवर्तन

मौसमी वस्तुओं का भी निरन्तर विक्रय करने में सहायक होता है। (vii) वस्तु के नये-नये उपयोग प्रस्तुत करता है। (viii) प्रतिस्पर्द्धा पर विजय व ख्याति में वृद्धि करता है। इस प्रकार निर्माता के लिए विक्रय प्रवर्तन का काफी महत्व है और यह उसके लिए लाभकारी है।

(2) **मध्यस्थ** (Middlemen) - मध्यस्थ में थोक व फुटकर विक्रेता आते हैं। विक्रय प्रवर्तन का इन मध्यस्थों के लिए भी काफी महत्व है—(i) विक्रय प्रवर्तन वस्तु को बेचने में ही सहायक नहीं होता बल्कि (ii) कुल बिक्री की वृद्धि करने में योग देता है। (iii) ग्राहक को अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं रहती और बिक्री में भी सरलता रहती है। (iv) अधिक बिक्री कुल लाभ में वृद्धि करती है।

(3) **उपभोक्ता** (Consumer)—जहाँ तक उपभोक्ता का प्रश्न है, उपभोक्ता के लिए भी विक्रय प्रवर्तन का महत्व है और यह उसके लिए लाभकारी है—(i) विक्रय प्रवर्तन उपभोक्ता को नयी-नयी वस्तुओं की जानकारी देता है, (ii) पुरानी वस्तुओं के नये प्रयोगों को बताता है, तथा (iii) मुफ्त नमूना (बिना जोखिम) वस्तु के प्रयोग का अवसर प्रदान करता है, (iv) यही नहीं, विभिन्न योजनाओं से वस्तु कम मूल्य पर मिल जाती है, (v) साथ ही प्रतियोगिताओं में भाग लेने का अवसर भी मिलता है जिससे देश-विदेश की मुफ्त यात्रा या एक मुश्त लम्बी रकम (जैसे 20,000 रु. या 10,000 रु.) या अन्य घरेलू कीमती वस्तुएँ मिलने का मौका भी मिल जाता है जो शायद उपभोक्ता को अपने जीवनकाल में प्राप्त नहीं हो पाती, (vi) विक्रय प्रवर्तन द्वारा उपभोक्ता को नयी-नयी वस्तुएँ मिल जाती हैं जिससे उसके जीवन-स्तर में वृद्धि होती है।

विक्रय प्रवर्तन के उपकरण
(TOOLS OF SALES PROMOTION OR SALES PROMOTION DEVICES)

विक्रय प्रवर्तन का मुख्य उद्देश्य बिक्री को बढ़ावा देना है। बिक्री को बढ़ावा देने वाली संस्थाएँ तीन है : (I) उपभोक्ता (Consumer), (II) मध्यस्थ (Middlemen), व (III) विक्रय शक्ति (Sales Force)। यह संस्थाएँ विक्रय प्रवर्तन अगले पृष्ठ पर दिये गये चार्ट के आधार पर से करती है :

(I) **उपभोक्ता** (Consumer)—किसी वस्तु के उपभोक्ता दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो वस्तु का प्रयोग कर रहे है। ऐसे उपभोक्ताओं को पुराने ग्राहक कह सकते हैं। दूसरे वे जो ग्राहक नहीं है लेकिन उनको ग्राहक बनाया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियों को सम्भावित ग्राहक (Prospective customer) कहा जाता है। जहाँ तक पुराने ग्राहकों का प्रश्न है उनके लिए तो विक्रय प्रवर्तन उपकरण उस वस्तु को अधिक खरीदकर अधिक प्रयोग करने के लिए प्रलोभन देने वाला है। लेकिन नये व्यक्तियों को तो विक्रय प्रवर्तन उपकरण उस वस्तु को क्रय करने के लिए प्रलोभन देता है। यदि वे किसी अन्य निर्माता की वस्तु का प्रयोग कर रहे है तो विक्रय प्रवर्तन उपकरण इस निर्माता की वस्तुओं को क्रय करने के लिए विवश करता है।

विक्रय प्रवर्तन उपकरण

(I) उपभोक्ता (Consumer)

1. नमूने (Samples)
2. कूपन (Coupons)
3. धन वापसी प्रस्ताव (Money Refund Offers)
4. मूल्य में कमी (Price off Promotion)
5. प्रीमियम (Premium)
6. प्रतियोगिताएँ एवं दाँव लगाना (Contests and Sweepstakes)
7. टिकट (Trading Stamps)
8. प्रदर्शन (Demonstrations)

(II) मध्यस्थ (Middlemen)

1. क्रय भत्ता (Buying Allowance)
2. पुनः खरीद भत्ता (Buy-back Allowance)
3. गणना एवं पुनः गणना (Count and Recount)
4. मुफ्त माल (Free Goods)
5. व्यापारिक भत्ता (Merchandise Allowance)
6. डीलर-सूची प्रवर्तन (Dealer-listing Promotion)

(III) विक्रय शक्ति (Sales Force)

इस प्रकार विक्रय प्रवर्तन उपकरणों के प्रयोग से नये ग्राहक बनाये जा सकते हैं तथा पुराने ग्राहकों को अधिक क्रय करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। उपभोक्ता को अधिक क्रय करने या नये ग्राहक बनाने के लिए एक निर्माता द्वारा जो साधन काम में लाये जाते हैं उन्हें **उपभोक्ता विक्रय प्रवर्तन उपकरण** (Consumer Sales Promotion) कहते हैं। यह उपकरण निम्न हैं :

(1) **नमूने** (Samples)—"नमूने विक्रय प्रवर्तन का एक उपकरण है जिसमें एक उपभोक्ता को एक वस्तु का मुफ्त परीक्षण करने का वास्तविक प्रस्ताव किया जाता है।"[1] इस उपकरण के अपनाने में वस्तु के छोटे-छोटे आकार के नमूने तैयार करके बाँटे जाते हैं और उपभोक्ताओं को अवसर दिया जाता है कि वे मुफ्त में उस वस्तु का प्रयोग कर स्वयं यह अनुभव करें कि वस्तु किस प्रकार की है। यह नमूने घर-घर मुफ्त बाँटे जाते हैं या डाक से भेजे जाते हैं या इनको कुछ निश्चित दुकानदारों की दुकान पर इस आशय से रख देते हैं कि दुकान पर आने वाले ग्राहक उसमें से एक-एक नमूना ले जायें। कभी-कभी इन तरीकों को न अपनाकर किसी वस्तु के साथ इस नमूने को पैक कर दिया जाता है और जो उपभोक्ता उस वस्तु को क्रय करता है उसको यह नमूना मुफ्त में ही मिल जाता है।

---

1 "Sampling as a sales promotion device is the actual offering of a free trial of a Product to consumers." —Otto Klepner : *Advertising Procedure*, p. 421.

भारत में यह तरीका बीड़ी, सिगरेट, चूरन की गोलियाँ, दवाइयाँ, साबुन आदि, के निर्माताओं के द्वारा अपनाया जाता है। जब हिन्दुस्तान लीवर कम्पनी ने कपड़े धोने का सर्फ (Surf) साबुन बनाया तो बड़े-बड़े नगरों में इसके नमूने के पैकिट मुफ्त बाँटे थे। चाय के सम्बन्ध में भी यही कहा जाता है कि आज से करीब 50 वर्ष पूर्व चाय बगानों के मालिकों द्वारा चलते-फिरते राहगीरों को रोककर चाय मुफ्त पिलाई जाती थी। बीड़ी निर्माता तो इस उपकरण का उपयोग आज भी खूब करते हैं और चलते-फिरते राहगीरों को बुला-बुलाकर मुफ्त बीड़ी बाँटते हैं।

(2) **कूपन** (Coupons)—"कूपन एक प्रकार का प्रमाण-पत्र है। जब कभी भी इसको भुगतान के लिए एक फुटकर दुकानदार के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा तो इसके धारक को इसमें लिखी बचत एक खास वस्तु के क्रय करने पर हो जायेगी।"[1] कूपन एक प्रकार का नोट है जिसको किसी खास वस्तु के क्रय करने के लिए भुनाया जा सकता है। इसको निर्माता या अन्य मध्यस्थों के द्वारा जारी किया जा सकता है। जो दुकानदार इन कूपनों के भुनाने का कार्य करते हैं उनको उसके जारी करने वाले के द्वारा एक फीस दी जाती है जिसको सेवा फीस (Handling Fee) कहते हैं। यह दुकानदार इन कूपनों को एकत्रित करके जारी करने वाले को भेज देते हैं या उनके प्रतिनिधि एक निश्चित समय के बाद आकर ले जाते हैं। दोनों ही दशा में नकद भुगतान किया जाता है।

कूपन ग्राहकों को डाक से भी भेजे जा सकते हैं यदि भेजने वाले को उनका पता मालूम है, अन्यथा उनको अखबार व पत्रिका आदि में छापा जा सकता है। कभी-कभी कूपन को अन्य वस्तुओं के साथ पैक कर दिया जाता है। एक तरीका और है जिसमें कूपन घर-घर बाँटे जाते हैं और प्रत्येक परिवार को एक कूपन दिया जाता हैं।

भारत में यह तरीका बहुत ही कम अपनाया गया है। सन् 1969 में स्वास्तिक ऑयल मिल्स, बम्बई ने इस कूपन के तरीके को अपनाया था। इस कम्पनी ने कूपन को कई अखबारों में छपवाया था और जनता से आग्रह किया था कि वह इनको अखबार से काट ले और फिर उनको किसी Cali-Cloth डीलर से बदल ले। इसी प्रकार हिन्दुस्तान लीवर कम्पनी ने जब RIN साबुन की शुरूआत की तो इसने RIN की प्रत्येक तीन टिकियों के साथ एक कूपन का वितरण घर-घर जाकर किया था। यह कूपन 25 पैसे का था जिसको अगली टिकिया खरीदते समय उपयोग किया जा सकता था।

---

1 "A coupon is a certificate that, when presented for redemption at a retail store, entitles the bearer to a stated saving on the purchase of a specific product."

—John F. Luick & William Lee Ziegler : *Sales Promotion & Modern Merchandising*, p. 48.

(3) **धन वापिसी प्रस्ताव,** (Money Refund Offers)—"धन वापिसी प्रस्ताव में उपभोक्ताओं को एक प्रतिज्ञा का प्रस्ताव किया जाता है जिसमें एक धन-राशि उन भाग लेने वालों को वापिस कर दी जाती है जो एक विशेष वस्तु के क्रय करने का प्रमाण डाक से भेज देते हैं।"[1] यह प्रस्ताव साधारणतया उन वस्तुओं के लिए किया जाता है जो नयी हैं और उपभोक्ताओं की दृष्टि से जिनके परीक्षण (Trial) की आवश्यकता है। इसमें वस्तु के पैकेज पर यह प्रस्ताव लिखा रहता है और इसका विज्ञापन भी विभिन्न साधनों से खूब किया जाता है। इसमें उपभोक्ता को पहले एक वस्तु को क्रय करना पड़ता है फिर उसकी नकद रसीद (Cash Memo) उसके निर्माता को भेजनी पड़ती है। निर्माता उसके आधार पर उसका सम्पूर्ण मूल्य या उसका कुछ भाग डाक के माध्यम से रसीद भेजने वाले को वापिस कर देता है।

धन वापिसी प्रस्ताव कम मूल्य की वस्तुओं में ही पाया जाता है, जैसे टूथपेस्ट, व ब्रुश, मक्खन, दन्त मंजन, आदि। भारत में यह उपकरण शायद बिल्कुल नहीं अपनाया जाता है। यद्यपि हाल ही में "मैक्लीन्स टूथपेस्ट" ने इस प्रकार का प्रस्ताव किया था। भारत में शायद इस प्रकार का यह पहला प्रस्ताव था।

(4) **मूल्य में कमी** (Price off Promotion)—"वे विक्रय तरीके जो उपभोक्ताओं को एक वस्तु के नियमित मूल्य से एक निश्चित रकम कम कर देने का प्रस्ताव करते हैं और कमी की रकम वस्तु के पैकिट या उसके लेबिल पर झण्डी के रूप में लगी होती है, मूल्य में कमी प्रवर्तन कहलाते हैं।"[2] मूल्य में यह कमी अस्थायी तौर पर विशेष रूप से त्यौहारों व अन्य उसत्वों के अवसर पर की जाती है। उपभोक्ताओं को मूल्य में कमी का लाभ एक निश्चित समय में क्रय करने पर ही होता है या जब तक वह वस्तु स्टॉक में रहती है। इस मूल्य में कमी के भी दो ढंग हैं। **पहला,** इसमें वस्तु अकेले ही पैक होती है और उसको क्रय करने पर मूल्य में कमी हो जाती है। **दूसरे,** दो या अधिक वस्तुओं को एक साथ पैक कर दिया जाता है लेकिन मूल्य कम वस्तुओं का ही लिया जाना है; जैसे, दो की लागत में तीन (Three in two's cost)।

भारत में इस तरीके का पूरा-पूरा उपयोग किया जाता है। दीपावली, दशहरा होली, रक्षाबन्धन व अन्य त्यौहारों पर मूल्य में कमी विभिन्न दुकानदारों के

---

1 "In money refund offers, consumers are presented with a proposition in which a sum of money is returned by mail to participants who mail in a proof of purchase of a particular product."—John F. Luick & William Ziegler : *Sales Promotion & Modern Merchandising*, p. 65.

2 "Price off promotion are those sales devices which offer consumers a certain amount of money off the regular price of a product and flag the amount of the reduction on the label or the package." —*Ibid.*, p. 61.

द्वारा की जाती है और इसके विज्ञापन आमतौर पर इस प्रकार दिखायी देते हैं—दीपावली के अवसर पर 10% छूट, प्रधानमन्त्री के मूल्य घटाने के अनुरोध पर मूल्यों में 10% की कमी।

(5) **प्रीमियम** (Premium)—"प्रीमियम व्यापारिक माल की एक वस्तु है जो कि लागत पर या कम लागत पर एक खास वस्तु के क्रय करने पर बोनस के रूप में दी जाती है।"[1] अधिकांश दशाओं में प्रीमियम लागत या कम लागत पर न देकर मुफ्त में ही प्रदान करते हैं। लेकिन शर्त यह है कि कोई खास वस्तु क्रय की जाये इसका मुख्य उद्देश्य एक खास निर्माता की वस्तु का प्रयोग करने का अवसर प्रदान करने के लिए प्रलोभन देना है।

यह प्रीमियम चार प्रकार के होते हैं : (i) पैकेट के अन्दर ही वस्तु के साथ प्रीमियम भी पैक कर दिया जाता है और पैकेट के ऊपर सूचना छाप दी जाती है कि प्रीमियम इसके अन्दर पैक है। इसको पैकेट के अन्दर प्रीमियम (In-pack or On-pack Premium) कहते हैं। (ii) क्रेता द्वारा पहले वस्तु क्रय की जाती है फिर उस वस्तु के क्रय का सबूत उस वस्तु के निर्माता को भेजा जाता है। वस्तु का निर्माता प्रीमियम को डाक से उसके क्रेता को भेज देता है। इसको डाक से मुफ्त प्रीमियम (Free in the Mail Premium) कहते हैं। (iii) इसमें वस्तु के क्रेता को एक अन्य वस्तु बाजार-मूल्य से कम मूल्य पर प्रीमियम के रूप में प्रदान की जाती है। इस तरीके को स्वयं-समाप्त प्रीमियम (Self-liquidating Premium) कहते हैं। (iv) वस्तु को जिस आधानपात्र (Container) में पैक किया जाता है वह ऐसा बनाया जाता है कि उसको पुनः किसी अन्य प्रकार से गृहस्थी के काम में लाया जा सके। इस प्रकार क्रेता को वह आधानपात्र प्रीमियम के रूप में बच रहता है। इसको पुनः प्रयोग करने योग्य प्रीमियम (Re-usable Containers Premium) कहते हैं।

भारत में हम देखते हैं कि चाय, साबुन व अन्य उपभोक्ता पदार्थों को बेचने वाले निर्माता इस तरीके को अपनाते हैं; उदाहरण के लिए, ताजमहल चाय के 250 ग्राम के पैकेट के साथ "तीन स्विस ब्लेड का पैकेट", "सर्फ के तीन डिब्बों के साथ एक प्लास्टिक की बाल्टी मुफ्त", 'बीड़ी के एक पुड़ा के साथ एक चम्चम मुफ्त", सेवा आश्रम उदयपुर के "काला दन्त मंजन या ब्राह्मी तेल की प्रत्येक शीशी के साथ लक्ष्मीजी का कलेण्डर मुफ्त" आदि।

1 "A premium is an item of merchandise that is offered at cost or at relatively low cost as a bonus to purchaser of a particular product."
—George Christopoulous : *P... iums Management Review*, Vol. 38. No. 5, p. 9, May, 1958.

(6) **प्रतियोगिताएँ एवं दाँव लगाना** (Contests and Sweepstakes)—"प्रतियोगिता विक्रय प्रवर्तन की एक विधि है जिसमें भाग लेने वाले अपनी युक्ति के आधार पर एक निश्चित आकांक्षा, जो साधारणतया विश्लेषणात्मक या उत्पादक होती है; को पूरा करते हुए पुरस्कार या पुरस्कारों को पाने के लिए स्पर्द्धा करते हैं।"[1] साधारणतया प्रतियोगिताओं में दो बात होती हैं। एक तो, प्रत्येक बार प्रतियोगिता में भाग लेते समय वस्तु के क्रय का सबूत देना पड़ता है जो उसकी नकद की रसीद या पैकिंग पर छपे कूपन का हिस्सा या पैकिंग का ढक्कन होता है; दूसरे, इस रसीद, हिस्सा या ढक्कन को भेजते समय एक या कुछ वाक्य वस्तु की प्रशंसा में या उसके सुझाव के लिए देने पड़ते हैं। इनके भेजने की अन्तिम तारीख समाप्त होने पर उन सभी सुझावों व प्रशंसाओं का अवलोकन एक निर्णायक समिति (Panel of Judges) के द्वारा किया जाता है। जो वाक्य सबसे अच्छा वाक्य माना जाता है उसके भेजने वाले को प्रथम पुरस्कार घोषित कर दिया जाता है। उसके बाद के अच्छे वाक्य वालों को द्वितीय, तृतीय व अन्य पुरस्कार दिये जाते हैं।

दाँव लगाना (Sweepstakes)—प्रतियोगिता से आसान है। इसमें वस्तु क्रय करने वाले के द्वारा केवल अपना नाम पुरस्कार निकालने वाली संस्था को भेजा जाता है। अन्तिम तिथि के बीत जाने पर इन सभी नामों को एक ड्रम में डालकर उसमें से नामों की पर्ची खिचवाते हैं। जो पर्ची पहले निकलती है उसको पहला इनाम दिया जाता है और जो बाद में निकलती है उन्हें इसी क्रम में रखा जाता है। यह लॉटरी की तरह है। लेकिन इनमें अपना नाम जुड़वाने के लिए वस्तु के क्रय का प्रमाण देना आवश्यक है। यह प्रमाण नाम भेजते समय निर्माता को भेज दिया जाता है।

भारत में प्रतियोगिताओं का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है और इसके बहुत से उदाहरण हैं; जैसे, सर्फ साबुन की "लकी होम प्रतियोगिता", लाइफबॉय साबुन की "फुटबाल ढूँढ़ो प्रतियोगिता", कैंची सिगरेट की "खेलों के नाम बताओ प्रतियोगिता", मैक्लीन्स टूथपेस्ट कम्पनी की "फिल्मी सितारों के चेहरे बनाने व नाम देने वाली प्रतियोगिता," आदि। लेकिन दाँव लगाने वाली पद्धति का उपयोग छोटे-छोटे स्थानीय व्यवसायों में पाया जाता है। इसका अभी वृहत् स्तर पर उपयोग नहीं हो रहा है।

(7) **टिकट** (Trading Stamps)—यह प्रीमियम पद्धति का ही एक ढंग है। इसमें विक्रेता अपने ग्राहकों को वस्तु बेचते समय एक टिकट भी देता है। जितनी बार उस विक्रेता से किसी विशेष वस्तु को क्रय किया जाता है उतनी ही बार टिकट दे

---

1 "A contest is a sales promotion device in which the participants compete for a prize or prizes on the basis of their skill in fulfilling a certain requirement, usually analytical or creative." —John. F Luick & Wlliam Lee Ziegler: *Sales Promotion & Modern Merchandising*, p. 76.

दिये जाते हैं। जब यह टिकट एक निश्चित मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं तो फिर उनको उस दुकानदार से किसी अन्य वस्तु के भुगतान के बदले में दिया जा सकता है। भारत में इस प्रकार का ढंग अब अपनाया जाने लगा है और इसके लिए 'रेमन-टिकट' नामक टिकट दिये जाते हैं।

(8) **प्रदर्शन** (Demonstration)—ग्राहक को आकर्षित करने का एक तरीका प्रदर्शन भी है। इसके दो ढंग हैं। एक तो, मुफ्त नमूने बाँटते समय वस्तु का प्रदर्शन भी करते जाते हैं। दूसरे, वस्तु का प्रदर्शन ही करते हैं; मुफ्त नमूने नहीं बाँटते हैं। प्रदर्शन का कार्य खाद्य पदार्थों, साबुनों व छोटे-मोटे औजारों के लिए किया जाता है। औद्योगिक वस्तुओं में भी प्रदर्शन किया जाता है—लेकिन यह प्रदर्शन क्रेता के स्थान पर ही होता है। भारत में प्रदर्शन पद्धति पर्याप्त रूप में प्रयोग में लायी जा रही है। सब्जी छीलने वाले चाकू विक्रेता जगह-जगह पर प्रदर्शन करते हुए देखे जा सकते हैं।

(II) **मध्यस्थ** (Middemen)—अधिकांश वस्तुओं की बिक्री मध्यस्थों के द्वारा होती है। अतः **मध्यस्थों को अधिक क्रय करने या अधिक बेचने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए भी विक्रय प्रवर्तन उपकरण काम में लाये जाते हैं। यह उपकरण कई हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं। इनको विक्रय प्रवर्तन में डीलर की सहायता** (Dealers' aid of Sales Promotion) **भी कहते हैं।**

(1) **क्रय-भत्ता** (Buying Allowance) —क्रय-भत्ता प्रणाली एक अल्पकालिक प्रणाली है जिसका उद्देश्य थोक या फुटकर विक्रेताओं को एक निश्चित समय में साधारण क्रय से अधिक क्रय करने के लिए प्रोत्साहित करना है। इस प्रणाली में क्रेता एक निश्चित मात्रा से अधिक क्रय करने पर क्रय-भत्ता पाने का अधिकारी हो जाता है जो उसको साधारणतया नकदी में दे दिया जाता है या मूल्य का भुगतान करने पर मूल्य में से घटा दिया जाता है। इसका प्रभाव यह होता है कि व्यापारियों के लिए उन वस्तुओं की लागत कम हो जाती है जिसका परोक्ष लाभ यह है कि उनको माल बेचने में लाभ अधिक होता है। उदाहरण के लिए, यदि एक दन्त मंजन बनाने वाली कम्पनी एक दर्जन क्रय करने वाले को कोई क्रय-भत्ता नहीं देती लेकिन अगले दर्जन खरीदने पर 10 प्रतिशत क्रय-भत्ता देती है और फिर अगले दर्जन पर 15 प्रतिशत, इसका अर्थ यह हुआ कि व्यापारी क्रय-भत्ता प्राप्त करने के लिए अधिक क्रय करने का प्रयत्न करेगा जिससे निर्माता अपना माल अधिक मात्रा में बेचने में समर्थ हो सकेगा।

यह प्रणाली साधारणतया नयी वस्तुओं के लिए अपनायी जाती है लेकिन पुरानी वस्तुओं के लिए भी अपनायी जा सकती है। पुरानी वस्तुओं के लिए उस समय अपनायी जाती है जबकि उनकी बिक्री कम हो गयी है या उत्पादन बढ़ने से अधिक विक्रय की आवश्यकता है। भारत में यह प्रणाली काफी काम में लायी जाती है लेकिन अभी हाल ही में एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ आयोग ने

इस प्रणाली को उचित नहीं बताया है और इस प्रकार इसका उपयोग अवैधानिक करार दे दिया गया है।

(2) **पुनः खरीद भत्ता** (Buy-back Allowance)—यह एक भत्ता है जो हर प्रथम खरीद पर दिया जाता है। प्रथम खरीद के भत्ते का उपयोग दुबारा खरीदने के लिए किया जा सकता है और इस प्रकार जो दुबारा खरीद पर भत्ता मिलेगा उसका उपयोग तीसरी बार खरीद के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है और बिक्री घटने नहीं पाती। हर खरीद प्रथम खरीद कहलाती है। इस उपकरण का प्रयोग तो शायद ही भारत में कहीं होता हो। वैसे अमरीका में भी इसका प्रयोग सीमित मात्रा में ही होता है जहाँ के बारे में यह कहा जाता है कि विपणन का विकास वहाँ बहुत अधिक हुआ है।

(3) **गणना एवं पुनः गणना** (Count and Recount)—इस पद्धति में थोक या फुटकर विक्रेता के स्टॉक की गणना दो बार की जाती है; एक बार योजना प्रारम्भ होने के समय व दूसरी बार योजना बन्द होते समय। इन दोनों समयों के बीच में जो माल उस विक्रेता के द्वारा बेच दिया जाता है उस माल की मात्रा पर या बिक्री की रकम पर कुछ रकम भत्ते के रूप में दे दी जाती है। इस पद्धति में स्टॉक की गणना दो बार होती है अतः इसको गणना एवं पुनः गणना पद्धति कहते हैं।

यह पद्धति एक विक्रेता को अपना स्टॉक बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है। निर्माता द्वारा भत्ते का भुगतान तभी किया जाता है जबकि उसके माल की दुबारा गणना हो जाती है। इस प्रकार इस भत्ते का भुगतान बाद में किया जाता है लेकिन इसमें निर्माता के कर्मचारियों को दो बार उन विक्रेताओं के पास जाना पड़ता है।

(4) **मुफ्त माल** (Free Goods)—इस उपकरण के अपनाने में कुछ माल एक क्रेता को मुफ्त में देना पड़ता है लेकिन इसकी मात्रा निश्चित खरीद पर आधारित होती है। यह पद्धति भारत में पर्याप्त मात्रा में अपनायी जाती है। जैसे नैनोल, काजल की 12 दर्जन डिब्बी क्रय करने पर एक दर्जन काजल की डिब्बियाँ मुफ्त दी जाती हैं। इसी प्रकार 24 दर्जन पर तीन दर्जन मुफ्त। यह उपकरण एक कारगर उपकरण है। इसमें भुगतान नकद न करके वस्तुओं में करते हैं।

इसमें थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता व अन्य मध्यस्थों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से विज्ञापन एवं प्रदर्शन में भी निर्माता के द्वारा सहयोग दिया जाता है जिसके लिए व्यापारिक भत्ता, सहकारी विज्ञापन एवं डीलर सूची परिवर्तन, आदि साधन अपनाये जाते हैं।

(5) **व्यापारिक भत्ता** (Merchandise Allowance)—"व्यापारिक भत्ता एक अल्पकालिक प्रसंविदाजनित समझौता है जिसके द्वारा एक निर्माता अपने थोक या फुटकर विक्रेताओं को वस्तु का विज्ञापन या आन्तरिक प्रदर्शन करने के लिए क्षति-

पूर्ति करता है।"[1] इस प्रणाली में निर्माता व थोक या फुटकर विक्रेता के बीच एक समझौता होता है। यदि थोक या फुटकर या कोई मध्यस्थ निर्माता की वस्तुओं के लिए कोई विज्ञापन करता है या आन्तरिक प्रदर्शन (In-store-display) करता है तो निर्माता उसका इस प्रकार के व्यय के लिए क्षतिपूर्ति करता है। यह क्षतिपूर्ति तीन प्रकार से की जाती है: (i) **विज्ञापन भत्ता**—यह भत्ता निर्माता की वस्तुओं का विज्ञापन कराने के लिए व्यापारियों को दिया जाता है। इसी प्रकार (ii) **प्रदर्शन भत्ता** भी निर्माता की वस्तुओं के प्रदर्शन के लिए व्यापारियों को दिया जाता है। बहुत से निर्माता एक-सा प्रदर्शन कक्ष (Show Room) सभी स्थानों के विक्रेताओं को रखने के लिए अनिवार्य कर देते हैं और इस प्रकार सभी प्रदर्शन कक्ष एकरूप जैसे होते हैं। ऐसे कक्षों के प्रदर्शन के लिए निर्माता की ओर से यह भत्ता दिया जाता है। (iii) जब विज्ञापन एवं प्रदर्शन को मिलाकर एक भत्ता दिया जाता है तो यह **व्यापारिक भत्ता** कहलाता है।

(6) **डीलर-सूची प्रवर्तन** (Dealer-listing Promotion)—डीलर सूची प्रवर्तन एक प्रकार का विज्ञापन है जो एक वस्तु या उपभोक्ता प्रदर्शन का संदेश ले जाता है। इसमें उन फुटकर विक्रेताओं के नाम एवं पते होते हैं जो उस वस्तु को बेचते हैं। इस प्रकार के विज्ञापन भारत में प्रतिदिन अखबारों व पत्रिकाओं आदि में देखे जा सकते हैं। ऐसे विज्ञापन फिलिप्स रेडियो, ऊषा पंखे, जीप टार्च एवं शैल, एवरेडी टार्च व शैल, आदि के देखे जा सकते हैं। इनके विज्ञापनों में फुटकर विक्रेताओं के नाम एवं पते भी दिये हुए रहते हैं। यह विज्ञापन निर्माताओं द्वारा किये जाते हैं।

(III) **विक्रय शक्ति** (Sales Force)—विक्रय प्रवर्तन उपकरण एक निर्माता द्वारा अपनी विक्रय शक्ति को अधिक विक्रय करने के लिए भी काम में लाया जा सकता है। इसके लिए अधिक विक्रय पर बोनस (Bonus) दिया जा सकता है या कमीशन की दर को बढ़ाया जा सकता है।

भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India) इस उपकरण का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में कर रहा है। यह अपने एजेण्टों को पारिश्रमिक कमीशन के आधार पर देता है जो प्रारम्भ में बीमा किस्त का 25 प्रतिशत है लेकिन जैसे-जैसे किये हुए बीमे की रकम बढ़ती जाती है इस कमीशन का प्रतिशत भी बढ़कर 35 तक पहुँच जाता है। यही नहीं, इसके अतिरिक्त कुछ बोनस भी दिया जाता है। इसी प्रकार यदि फील्ड ऑफीसर के द्वारा अपने कोटे (Quota) से अधिक बीमा कराया जाता है तो उसको वेतन वृद्धियाँ दी जाती हैं। घर पर टेलीफोन की

---

1 "A merchandise allowance is a short-term, contractual agreement through which a manufacturer compensates wholesalers or retailers for advertising or instore display of his products."
—*Advertising Age of America*, Sept. 26, 1966, p. 54.

सुविधा दी जाती है और एक मोटर साइकिल के खरीदने की सुविधा भी दे दी जाती है।

भारत में विक्रय प्रवर्तन
(SALES PROMOTION IN INDIA)

भारत में इस बात के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं जिससे यह पता लग सके कि विक्रय प्रवर्तन पर कितना व्यय किया जाता है ? लेकिन इस तथ्य को सभी स्वीकार करते हैं कि भारत में इस मद पर व्यय अवश्य ही किया जाता है। यहाँ पर उपभोक्ता वस्तुओं के सम्बन्ध में विक्रय प्रवर्तन की नीति आमतौर पर अपनायी हुई दिखायी देती है। इन वस्तुओं में चाय, काफी, सिगरेट, बीड़ी, साबुन, सूती व ऊनी कपड़ा, बिजली के पंखे, सिलाई की मशीनें, स्टीरोग्राम, रेफ्रीजरेटर, आदि प्रमुख हैं।

इस सम्बन्ध में 'दी इकोनोमिक टाइम्स' के अनुसन्धान ब्यूरो ने 100 बड़ी एवं मध्यम आकार वाली कम्पनियों का एक सर्वे किया था जिसके अनुसार इन कम्पनियों के द्वारा अपनी विक्रय आय का 3 प्रतिशत से लेकर 4 प्रतिशत तक प्रवर्तन पर व्यय किया गया है। इस व्यय में विज्ञापन व्यय, छूट, एकमात्र एजेन्सी कमीशन, आदि शामिल हैं।

भारत में विक्रय प्रवर्तन व्यय अन्य देशों की तुलना में नगण्य है। इसका कारण यह है कि यहाँ पर अधिकांश वस्तुओं के सम्बन्ध में विक्रेता बाजार पाये जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहाँ पर वस्तुओं का उत्पादन इनकी माँग से कम है। विक्रय प्रवर्तन क्रियाएँ तो वहीं लाभप्रद होती हैं जहाँ वस्तुओं की पूर्ति अधिक होती है और माँग कम। अत: यह कहा जाता है कि भारत में विक्रय प्रवर्तन प्रयत्नों की सीमाएँ हैं। यह प्रयत्न कुछ सीमा तक ही फल दे सकते हैं। साथ ही अधिकांश जन-संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और वह भी अशिक्षित है तथा जिसकी प्रति व्यक्ति आय भी बहुत कम है। ऐसी स्थिति में इन प्रयासों से अभी पर्याप्त फल नहीं निकल सकते हैं लेकिन शहरीकरण, बढ़ती हुई शिक्षा, उठता हुआ रहन-सहन का स्तर व बढ़ती हुई औसत आय के कारण यह दिखायी देने लगा है कि कुछ वर्षों के उपरान्त इस प्रकार के प्रयासों से पर्याप्त फल मिलने लगेंगे और भारतीय बाजार जो विक्रेता बाजार हैं उपभोक्ता बाजार में परिणत हो जायेंगे।

प्रश्न

1. प्रर्वतन क्या है ? इसके महत्व को समझाइए।
   What is promotion ? Explain its importance,
2. विक्रय प्रवर्तन के मुख्य उपकरणों को समझाइए।
   Explain the main tools of sales promotion.
3. "बिक्री प्रवर्तन एक पुल है जो राष्ट्रीय विज्ञापन और क्षेत्रीय बिक्री की दूरी को पाटता है।" ऊपर के कथन की व्याख्या कीजिए।
   "Sales promotion is a bridge-covering the distance between national advertising and field selling. Explain the statement.
4. बिक्री संवर्धन की विभिन्न रीतियों को भली-भाँति समझाइये।
   Explain the various methods of sales promotion.

29
राज्य एवं विपणन
[STATE AND MARKETING]

वर्तमान में संसार के लगभग सभी देश किसी न किसी रूप में अपने-अपने देश में या तो स्वयं ही विपणन क्रियाएँ कर रहे हैं या सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने के सन्दर्भ में विपणन क्रियाओं पर विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से नियन्त्रण कर रहे हैं। **इस प्रकार राज्य द्वारा विपणन में हस्तक्षेप किया जा रहा है। यह हस्तक्षेप निम्न चार प्रकार से किया जा सकता है :**

(1) उपभोक्ता के हितों की रक्षा के लिए विभिन्न अधिनियम बनाना एवं उनका लागू करना; (2) वस्तुएँ क्रय करना एवं उनके वितरण पर नियन्त्रण रखना; (3) वस्तुओं का स्वयं निर्माण एवं विक्रय करना; (4) वस्तुओं के विपणन को प्रोत्साहित करना।

(1) **उपभोक्ता के हितों की रक्षा के लिए विभिन्न अधिनियम बनाना एवं उनको लागू करना**—सामान्यतः व्यापारियों में लाभ कमाने की होड़ सर्वाधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप वे अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को भूलकर समाज का शोषण करना प्रारम्भ कर देते हैं। आधुनिक सरकारें इस शोषण प्रवृत्ति पर नियन्त्रण पाने के लिए विभिन्न प्रकार के अधिकार विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत प्राप्त कर लेती हैं। भारत में इस प्रकार के बहुत से अधिनियम हैं जिनमें उपभोक्ता के हितों की रक्षा की गयी है। यह अधिनियम वे ही हैं जिनका विस्तृत विवरण 'भारत में विपणन विधान' नामक अध्याय में किया गया है।

(2) **वस्तुओं का क्रय करना एवं उनका वितरण करना**—बहुत-सी सरकारें उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुएँ बेचती हैं। इसके लिए पहले उन वस्तुओं को क्रय किया जाता है फिर उनको बेचा जाता है। भारत में खाद्यान्नों एवं चीनी, कपास, जूट आदि के सम्बन्ध में यही नीति अपनायी जाती है। इसका विस्तृत विवरण इसी अध्याय में आगे दिया गया है।

(3) **वस्तुओं का स्वयं निर्माण एवं विक्रय करना**— संसार में साम्यवादी व समाजवादी अर्थ-व्यवस्थाओं का विस्तार हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप राज्य स्वयं

ही वस्तुओं का निर्माण एवं विक्रय करने लगे हैं। यह निर्माण एवं विक्रय दो रूपों में किया जाता है—एक तो विभागीय उपक्रम के रूप में (Departmental Enterprises) व दूसरे गैर-विभागीय उपक्रम (Non-Departmental Enterprises)। भारत में दोनों प्रकार के उपक्रम पाये जाते हैं। विभागीय उपक्रमों की कार्य-विधि, उत्पादन आदि सभी बातें गोपनीय ही रहती हैं, जबकि गैर-विभागीय उपक्रम वाणिज्यिक आधार पर चलते हैं और यही वास्तविक विपणन क्रियाएँ करते हैं।

भारत में इस समय केन्द्रीय सरकार के इस प्रकार के 153 उपक्रम हैं जिनमें 12,803 करोड़ रुपये की दत्त पूंजी लगी है। इन उपक्रमों में स्टील, परिवहन, कैमीकल्स, खादें, भारी इन्जीनियरिंग, पैट्रोलियम, खनिज पदार्थ, धातुएँ, कोयला, दवाइयाँ, परिवहन उपकरण, उपभोक्ता वस्तुएँ, आदि कई प्रकार के हैं। इन सभी उपक्रमों ने 1977-78 वर्ष में 17,556 करोड़ रुपये की बिक्री की है। इन केन्द्रीय उपक्रमों के अतिरिक्त राज्य सरकारों के भी उपक्रम हैं।

(4) **वस्तुओं के विपणन को प्रोत्साहित करना**—वे देश, जो सामान्यत: आयात अधिक व निर्यात कम करते हैं और इस प्रकार उनमें विदेशी व्यापार में अन्तर रहता है, इस बात की चेष्टा करते रहते हैं कि निर्यात विपणन को बढ़ावा दिया जाये। यह वे देश हैं जो अविकसित या अर्द्ध-विकसित हैं तथा जहाँ नियोजन कार्यक्रम चल रहे हैं। भारत भी इसी श्रेणी में आता है। यहाँ भी निर्यात विपणन को प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रयत्न किये जा रहे हैं, जैसे, निर्यात सम्वर्द्धन परिषदों की स्थापना, निर्यात के आधार पर आयात की अनुमति देना, अग्रिम लाइसेंस देना, निर्यात वाली वस्तुओं को प्रमाप के अनुसार ही निर्यात करना, आदि। इन सभी का विस्तृत विवरण इसी अध्याय में दिया गया है।

भारत में राजकीय व्यापार
(STATE TRADING IN INDIA)

जिस समय राज्य वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन या वितरण, या दोनों क्रियाएँ करने लगता है तो ऐसी क्रियाओं को राजकीय व्यापार कहते हैं।

भारत में राजकीय व्यापार की आवश्यकता द्वितीय महायुद्ध के काल में प्रतीत हुई थी। उस समय मूल्य बढ़ रहे थे तथा उत्पादन सीमित था। अत: सरकार ने खाद्यान्न, चीनी व कपड़े, आदि का वितरण अपने हाथ में ले लिया जो राशनिंग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात 1949 में केन्द्रीय सरकार ने डॉ. पंजाव राव देशमुख की अध्यक्षता में राजकीय व्यापार के औचित्य की जाँच के लिए एक समिति नियुक्त की, जिसने अपने प्रतिवेदन में राजकीय व्यापार को चालू रखने तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु राजकीय व्यापार निगम की स्थापना की सिफारिश की। बाद में

एम. वी. कृष्णामूर्ति राव की अध्यक्षता में नियुक्त समिति ने भी निर्यात एवं लघु तथा कुटीर उद्योगों के निर्यात के लिए राजकीय व्यापार पर जोर दिया।

अत: मई, 1956 में भारतीय राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation of India) की स्थापना की गयी। इसके बाद 1962 में हस्तशिल्प एवं हथकरघा निर्यात निगम व 1963 में भारतीय चल निर्यात निगम की स्थापना की गयी। बाद में अक्टूबर, 1963 में खनिज एवं धातु निर्यात हेतु खनिज एवं धातु व्यापार निगम (Minerals and Metals Trading Corporation) बनाया गया।

राजकीय व्यापार **को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(1) खाद्यान्नों में राजकीय व्यापार, व (2) अन्य वस्तुओं में राजकीय व्यापार।**

(1) **खाद्यान्नों में राजकीय व्यापार** (State Trading in Food Grains)—**जब सरकार खाद्य पदार्थों में स्वयं व्यापारिक क्रियाएँ करने लगती है तो ऐसी क्रियाओं को खाद्यान्नों में राजकीय व्यापार कहते हैं।** सरकार इसके लिए खाद्यान्नों को क्रय करती है एवं आवश्यकता पड़ने पर आयात करती है। क्रय करने की पद्धति को सरकारी खरीद (Procurement) कहते हैं और सरकार जब खाद्यान्नों का वितरण निर्धारित दुकानों व निर्धारित मूल्यों पर करने लगती है तो इसको सामान्यतया वितरण (Distribution) राशनिंग (Rationing) कहते हैं। भारत सरकार की ओर से खरीद व वितरण का कार्य करने के लिए खाद्य निगम स्थापित किया गया है। अब हम इन्हीं बातों की विवेचना करेंगे।

(अ) **सरकारी खरीद** (Procurement)—देश में सरकारी खरीद के दो तरीके हैं : (i) स्वेच्छा से (Voluntary), व (ii) कर (Levy)। स्वेच्छा से खरीद उस समय होती है जबकि मूल्य या तो सामान्य होते हैं या गिरने की सम्भावना होती है। जो किसान या व्यापारी अपनी उत्पत्ति बेचना चाहें वे सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर उसे बेच सकते हैं।

जिस समय मूल्य बढ़ जाते हैं और सरकार को राशन व्यवस्था चलाने से लिए या बफर स्टॉक (Buffer Stock) बनाने के लिए खाद्यान्नों की आवश्यकता होती है तो सरकार निर्धारित मूल्यों पर किसानों व व्यापारियों से कर के रूप में खरीद करती है। यदि व्यापारी या किसान उन मूल्यों पर बेचने का विरोध करते हैं तो उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाती है।

सामान्यतया सरकारी खरीद (i) केन्द्रीय सरकार, (ii) प्रान्तीय सरकार, (iii) सहकारी समितियों, व (iv) भारतीय खाद्य निगम द्वारा की जाती है। गत तीन वर्षों में खाद्यान्नों की सरकारी खरीद इस प्रकार हुई है—1976—129 लाख टन; 1977—100 लाख टन; व 1978—110 लाख टन।

सरकारी खरीद के लिए मूल्य केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित किये जाते हैं जो कृषि मूल्य आयोग की सिफारिशें व प्रान्तीय सरकारों के आग्रहों को ध्यान में रख कर तय किये जाते हैं।

(ब) **वितरण** (Distribution)—जो खाद्यान्न सरकार व भारतीय खाद्य निगम क्रय करता है तथा जो सरकार द्वारा आयात किया जाता है वह सभी सरकार के द्वारा उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से बेचा जाता है। इन दुकानों पर बिकने वाले खाद्यान्नों का मूल्य सरकार ही निश्चित करती है। इस समय देश भर में 2·42 लाख उचित मूल्य की दुकानें हैं। 1977-78 वर्ष में इन दुकानों के माध्यम से 106 लाख टन खाद्यान्नों का विक्रय किया गया है।

(स) **भारतीय खाद्य निगम** (Food Corporation of India)—खाद्यान्नों के न्यायपूर्ण वितरण करने एवं उनके मूल्यों में स्थायित्व बनाये रखने के लिए केन्द्रीय सरकार ने इस भारतीय खाद्य निगम की स्थापना 1 जनवरी, 1965 को की है। इस निगम के प्रमुख कार्य हैं : (i) खाद्यान्नों का पर्याप्त भण्डार बनाना; (ii) किसानों द्वारा लिए जाने वाले ऋणों की गारण्टी देना; (iii) कृषि फसलों व तकनीकों के बारे में अनुसन्धान करना तथा कृषकों में नवीनतम वैज्ञानिक विधियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना; (iv) संग्रह क्षमता में वृद्धि करना; (v) बफर स्टॉक बनाना जिससे मूल्यों में स्थिरीकरण हो; (vi) सरकार के लिए खाद्यान्नों की खरीद करना; (vii) आयातित खाद्यान्नों के वितरण की व्यवस्था करना; (viii) खाद्यान्नों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं में सहायता करना।

इस निगम की अधिकृत पूंजी 200 करोड़ रुपये है। 1977-78 वर्ष में इस निगम ने 4,090 करोड़ रुपयों के खाद्यान्नों का विक्रय किया है।

(2) **अन्य वस्तुओं में राजकीय व्यापार**—सरकार द्वारा खाद्यान्नों के अतिरिक्त कुछ अन्य वस्तुओं में भी व्यापार किया जाता है। इन वस्तुओं में रुई (Cotton) व जूट (Jute) हैं। इन दोनों वस्तुओं के लिए क्रमशः भारतीय रुई निगम (Cotton Corproration of India) व भारतीय जूट निगम (Jute Corporation of India) हैं। यह दोनों निगम फसल के समय सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर क्रमशः रुई व जूट खरीदते हैं और बाद में कमी के समय उनको बेचते हैं। इन दोनों निगमों का उद्देश्य फसल के समय मूल्यों को नीचे जाने से रोककर किसान को उचित प्रतिफल दिलाना है।

निर्यात व्यापार में वृद्धि करने व आवश्यकता पड़ने पर देशी व्यापार में भी हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से दो निगम भारतीय राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation of India) व खनिज एवं धातु व्यापार निगम (Minerals and Metals Trading Corporation) भी देश में कार्य कर रहे हैं, जिनका विस्तृत विवरण अग्र प्रकार है।

भारतीय राज्य व्यापार निगम

(STATE TRADING CORPORATION OF INDIA)

(1) **स्थापना** (Establishment)—द्वितीय महायुद्ध के काल में यह आवश्यकता महसूस की गयी कि देश में एक विदेशी व्यापार हेतु स्वायत्त संस्था होनी चाहिए। इसका कारण यह था कि विदेशी संस्थाएँ सामान्यतः देश की व्यापारिक नीति के विरुद्ध कार्य कर रही थीं। लेकिन इस पर कोई निर्णय नहीं किया गया।

इस सम्बन्ध में 1949 में केन्द्रीय सरकार ने एक समिति बिठायी थी जिसने सुझाव दिया था कि राजकीय व्यापार निगम स्थापित किया जाये। इस समिति की सिफारिशों की समीक्षा (Review) के लिए फिर एक समिति 1953 में बनायी गयी जिसका विचार था कि निर्यात के लिए तो राजकीय व्यापार निगम की आवश्यकता नहीं है लेकिन इस प्रकार का निगम देश की आर्थिक नीतियों को कार्यरूप में परिणत करने में अधिक सहायक होगा।

अतः नवम्बर, 1955 में राजकीय व्यापार निगम की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और 18 मई, 1956 को भारतीय राजकीय व्यापार निगम प्राइवेट लिमिटेड (State Trading Corporation of India Private Limited) के नाम से यह संस्था भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत हो गयी। इसका प्रधान कार्यालय नयी दिल्ली में है। आरम्भ में इसकी स्थापना 1 करोड़ रुपये की अधिकृत पूँजी से हुई थी लेकिन बाद में इसको बढ़ाकर 5 करोड़ रुपये कर दिया गया है।

प्रधान कार्यालय के अतिरिक्त निगम के अब 9 कार्यालय देश के भीतर कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नयी दिल्ली, कोचीन, आगरा, ट्यूटीकोरीन, गुन्टूर व आदीपुर, कानपुर व लुधियाना में कार्य कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त 20 कार्यालय विदेशों में भी कार्य कर रहे हैं।

(2) **प्रबन्ध** (Management)—इसका प्रबन्ध 11 सदस्यों के प्रबन्ध मण्डल के माध्यम से होता है जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करती। इस प्रबन्ध मण्डल का सभापति व दो संचालक पूरे समय के लिए नियुक्त किये जाते हैं।

(3) **उद्देश्य** (Objects)—निगम की स्थापना का उद्देश्य "उन वस्तुओं एवं पदार्थों का भारत में आयात एवं भारत से निर्यात करना है जिनको कम्पनी निश्चित करे और वे सभी कार्य करना है जो इसके लिए सहायक हों।"[1] निगम के मुख्य उद्देश्य अग्र प्रकार रहे हैं :[2]

---

1 The Corporation has been established in the main "to organise and effect exports from and imports into India of all such goods and commodities as the company may from to time determine and to do all such other things as are incidental or coductive."—State Trading Corporation's Annual Report, 1956-57, p. 1.

2 Eight Years of State Trading Corporation 1956-57 to 1963-64, pp. 3 and 4.

(i) बड़ी मात्रा में पदार्थों का निर्यात सम्वर्द्धन एवं विकास करना; (ii) वर्तमान बाजारों को विस्तृत करना एवं नये बाजार बनाना; (iii) भारत के निर्यात व्यापार फैलाव (diversification) को बढ़ाना; (iv) राजकीय व्यापार करने वाले देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध संगठित करना; (v) भारी पदार्थों के आयात को सारणीबद्ध करना; (vi) देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक पदार्थों की अस्थाई माँग व पूर्ति के अन्तर को कम करना; (vii) व्यक्तिगत व्यापार की ऐसी परिस्थितियों में सहायता करना जहाँ उनको व्यापार करने में कठिनाई हो या उनमें भारी प्रतियोगिता हो; (viii) मूल्यों के स्थिर करने एवं वितरण हेतु आयात या वितरण या दोनों कार्य केन्द्रीय सरकार के आदेश पर करना; (ix) आयात, निर्यात, आन्तरिक व्यापार या वितरण के सम्बन्ध में दिये गये केन्द्रीय सरकार के आदेशों को पालन करने के लिए विशेष प्रबन्ध करना; (x) केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपे जाने पर उन पदार्थों से सम्बन्धित मूल्य सहायता एवं समीकरण भण्डार (Price Support & Buffer Stock) क्रियाएँ करना।

(4) **कार्य एवं क्रियाएँ** (Functions & Activities)—निगम का मुख्य कार्य विदेशी व्यापार करना है। प्रारम्भ में निगम ने सभी वस्तुओं का आयात-निर्यात किया लेकिन 1 अक्टूबर, 1963 से खनिज एवं धातु के लिए अलग से निगम बन जाने से खनिज एवं धातुओं के निर्यात का कार्य उस निगम को सौंप दिया गया। गत वर्षों में निगम का निर्यात एवं आयात व्यापार निम्न प्रकार है :

(करोड़ रुपयों में)

	निर्यात	आयात	आन्तरिक व्यापार	कुल योग
1956-57	5·8	3·4	—	9 2
1967-68	48·5	114·1	4·6	162 2
1971-72	71·0	192·5	11·5	275·0
1976-77	666·0	301·0	9·0	976 0
1977-78	555·0	493·0	11·0	1,059·0
1978-79	608·0	510·0	अप्राप्त	अप्राप्त

भारतीय राज्य व्यापार निगम 126 से अधिक मदों के आयात की व्यवस्था करता है जिनमें 123 मदें वर्गीकृत हैं। आयात की प्रमुख मदें अखबारी कागज, कच्ची ऊन, विभिन्न खाद्य तेल, विभिन्न रसायन एवं जीवनरक्षक दवाइयाँ, आदि हैं। निर्यात में चीनी, चाँदी, चमड़े का सामान, तेल, कपड़ा, सीमेण्ट, आदि प्रमुख हैं। देश के निर्यात एवं आयात व्यापार में इस निगम का हिस्सा क्रमशः 13·3% एवं 6·1% है।

इन निगम कार्यों में पिछले 22 वर्षों में काफी वृद्धि हुई है अतः इस निगम के कार्यों में सहायता देने के लिए चार सहायक निगम भी गठित किये गये हैं—(i)

परियोजना एवं उपस्कर निगम (Project and Equipment Corporation); (ii) हस्तशिल्प तथा हस्तकरघा निर्यात निगम (Handicrafts and Handloom Exports Corporation); (iii) भारतीय काजू निगम (Indian Cashew Corporation); व (iv) राज्य रसायन तथा भेषज निगम (State Chemicals and Pharmaceuticals Corporation)।

(5) **निगम का भविष्य** (Future)—निगम ने देश के आयात-निर्यात में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है तथा इसका भविष्य काफी उज्जवल है।

(6) **निगम की सफलताएँ** (Achievements)—(i) निगम ने देश के आयात निर्यात में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। (ii) यह भारी मात्रा में वस्तुओं को निर्यात करने में सफल रहा है जैसे, चीनी। (iii) निर्यात उत्पादन को इसने बढ़ावा दिया है जैसे चमड़े की वस्तुएँ। (iv) इसने नयी-नयी वस्तुएँ एव नये-नये बाजारों का पता लगाकर उनके निर्यात को प्रोत्साहित कर बढ़ाया है। (v) इसने समर्थित मूल्य एवं बफर स्टॉक की क्रियाओं में काफी योगदान दिया है। (vi) लघु उद्योगों की वस्तुओं का निर्यात इसने बढ़ाया है तथा उन्हें संगठित करने में सहायता की है। (vii) देश की आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आयात कर निगम ने आम जनता को राहत प्रदान की है।

(7) **निगम की आलोचना** (Criticism of S. T. C.)—निगम की आलोचना इन आधारों पर की जाती है: (i) निगम का लाभ कुल बिक्री की तुलना में बहुत ही कम है जबकि व्यक्तिगत संस्थाओं का लाभ साधारणतया बिक्री का 10% होता है। (ii) निगम के विभिन्न मण्डलों में तालमेल का अभाव है। निगम के द्वारा निर्णय लेने में काफी समय लगाया जाता है। (iii) निगम के अधिकांश अधिकारी एवं कर्मचारी सरकारी विभागों के हैं जिनमें व्यापारिक रीति-रिवाजों एवं कार्य-कलापों के अनुभव का अभाव है जिसके कारण उनके निर्णय व्यापारिक नीति के अनुकूल नहीं होते हैं। (iv) निगम के अधिकारियों में सत्य, निष्ठा एवं कार्य-सम्पन्नता की कमी है। (v) जिन वस्तुओं में निगम को एकाधिकार प्राप्त है उनका मूल्य वह अधिक वसूल करता है जबकि उसको वे वस्तुएँ सामान्य लाभ पर बेचनी चाहिए। (vi) निगम सामान्यतया अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक मूल्य पर वस्तुओं को खरीदता है जबकि वे ही वस्तुएँ देशी व्यापारी कम मूल्य पर वहाँ से क्रय कर सकते हैं। (vii) इसके व्यय व्यापारिक संस्थाओं की तुलना में काफी हैं। (viii) देश के उद्योग एवं व्यापार से इसका उचित पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। (ix) निगम के द्वारा सेवा-मूल्य (service-charge) अधिक लिया जाता है। इसकी मूल्य नीतियाँ उचित नहीं हैं।

(8) **सुधार हेतु सुझाव** (Suggestions)—उपर्युक्त वर्णित आलोचनाओं को दूर करने के लिए सुझाव दिये गये हैं कि (i) निगम व्यापारिक सिद्धान्तों के अनुसार

कार्य करे, (ii) विभिन्न सहायक निगमों को अलग-अलग कार्य करने के स्थान पर इसके संभाग (division) के रूप में कार्य करें, (iii) अधिकारी ईमानदारी से कार्य करें, (iv) निर्णय लेने के कार्य का विकेन्द्रीयकरण किया जाये, (v) व्ययों में कमी की जाये, (vi) व्यापारिक योग्यता वाले अधिकारी ही नियुक्त किये जायें। सरकारी अधिकारियों को उनके विभागों में वापस भेज दिया जाये, (vii) देश के उद्योग एवं व्यापार से इसका पारस्परिक सम्बन्ध बना रहना चाहिए, (viii) इसको यथार्थवादी व्यापारिक मूल्य नीति अपनानी चाहिए।

खनिज एवं धातु व्यापार निगम
(MINERALS AND METALS TRADING CORPORATION OF INDIA)

(1) **स्थापना** (Establishment)—खनिज एवं धातु व्यापार निगम की स्थापना 1 अक्टूबर, 1963 को राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation) के विभाजन से हुई है। इसका प्रधान कार्यालय नयी दिल्ली में तथा 6 क्षेत्रीय कार्यालय मद्रास, गोवा, बम्बई, कलकत्ता, विशाखापट्टनम, व भुवनेश्वर में हैं। इसकी अधिकृत पूँजी 5 करोड़ रुपये है जो 100 रुपये मूल्य वाले 5 लाख अंशों में विभक्त है।

(2) **प्रबन्ध** (Management)—इसका प्रबन्ध 9 सदस्यों के प्रबन्ध मण्डल के माध्यम से होता है जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करती है। सभापति इसके प्रबन्ध संचालक के रूप में कार्य करता है।

(3) **कार्य एवं क्रियाएँ** (Functions and Activities)—गत वर्षों में निगम का कुल व्यापार इस प्रकार रहा है : 1963-64 में 41 करोड़ रुपये, 1971-72 में 302 करोड़ रुपये, व 1976-77 में 842 करोड़ रुपये।

इस निगम का प्रमुख कार्य खनिज एवं धातुओं का आयात एवं निर्यात करना है। इसके प्रमुख निर्यातों में खनिज लोहा, मैंगनीज, कोयला, बोराइटिस, आदि व आयात में नॉन फैरस मैटिल, खादें आदि हैं। यह निगम भारत के कुल आयात का 10% आयात करता है। इस प्रकार इस निगम ने आयात-निर्यात में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

राजकीय व्यापार से लाभ एवं हानियाँ
(ADVANTAGES & DISADVANTAGES OF STATE TRADING)

राजकीय व्यापार से कुछ लाभ हैं जबकि इससे कुछ हानियाँ भी हैं। **इसके लाभ निम्नलिखित हैं :**

(i) राजकीय व्यापार से उत्पादक एवं समाज दोनों को लाभ होता है। उत्पादक को अपनी उत्पत्ति का उचित मूल्य मिलने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। (ii) वस्तु की माँग व पूर्ति में सन्तुलन बनाये रखा जा सकता है। (iii) मध्यस्थों की जमाखोरी की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है। (iv) उपभोक्ता को वस्तु उचित मूल्य पर मिल जाती है। (v) राज्य द्वारा प्रोत्साहन नीतियों को अपनाकर कुल उत्पादन वृद्धि की जा सकती है।

लेकिन राजकीय व्यापार से कुछ हानियाँ भी हैं—(i) सरकार द्वारा उत्पादक को उचित मूल्य नहीं दिया जाता है। यह मूल्य लागत मूल्य के लगभग होते हैं। (ii) इससे उस वस्तु के उत्पादन को न करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है जिससे आगे चलकर उस वस्तु का उत्पादन गिर जाने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। (iii) सरकारी कर्मचारी उचित ईमानदारी का परिचय नहीं देते हैं। उनके द्वारा वस्तु को क्रय करते या बेचते समय उचित तुलाई नहीं की जाती है। (iv) उपभोक्ता को वस्तु की अच्छी क्वालिटी नहीं मिलती है। (v) सरकार द्वारा विक्रय मूल्य सामान्य मूल्य से अधिक निर्धारित किये जाते हैं। (vi) राशन या उचित मूल्य की दुकानों पर वस्तुएँ पूरे वर्ष भर उपलब्ध नहीं रहती हैं। यह दुकानें महीने में कुछ ही दिन खुलती हैं।

इस प्रकार राजकीय व्यापार से लाभ व हानियाँ दोनों ही हैं लेकिन यदि इन हानियों पर नियन्त्रण लगा दिया जाये तो निश्चय ही राजकीय व्यापार उत्पादक, समाज व सरकार सभी वर्गों के लिए लाभप्रद हो सकता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली
(THE PUBLIC DISTRIBUTION SYSTEM)

(1) **सार्वजनिक वितरण प्रणाली का अर्थ** (Meaning of Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली से अर्थ उस प्रणाली से है जिसमें **उपभोक्ता वस्तुओं को सार्वजनिक रूप से इस प्रकार वितरित किया जाता है कि वे सभी उपभोक्ताओं को निर्धारित मूल्यों पर उचित मात्रा में प्राप्त हो सकें।** इस प्रणाली में सरकारी सहयोग आवश्यक होता है तथा सरकार द्वारा निर्धारित मध्यस्थ विक्रेता ऐसी वस्तुओं का विक्रय करते हैं। इस प्रकार की प्रणाली में मध्यस्थ विक्रेता के लाभ की मात्रा निश्चित होती है। वस्तुओं के विक्रय मूल्य भी निश्चित होते हैं जिनसे कम या अधिक वस्तु की बिक्री नहीं की जा सकती है। प्रत्येक मध्यस्थ विक्रेता को बिक्री का पूरा हिसाब-किताब रखना पड़ता है जिसकी समय-समय पर जाँच सरकारी अधिकारी करते रहते हैं। यदि मध्यस्थ विक्रेता द्वारा कोई अनियमितता की जाती है तो उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है जिसमें उसकी दुकान रद्द की जा सकती है। उसकी जमा सिक्योरिटी जब्त की जा सकती है तथा गम्भीर अपराध में देश के सामान्य नियमों के अनुसार दण्ड भी दिलाया जा सकता है।

(2) **भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का इतिहास** (History of Public Distribution System in India)

द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के समय तक उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण भारत में साधारण व्यापारिक स्रोतों—थोक, फुटकर बिक्री आदि—द्वारा सन्तोष-

जनक रूप से हो रहा था। युद्ध के आरम्भ के दो-तीन वर्षों में भी विशेष कठिनाई अनुभव नहीं हुई। किन्तु योरोप में फ्रांस के पतन के पश्चात् तथा पूर्व में जापान के युद्ध में सम्मिलित होने के फलस्वरूप सन् 1942 से उपभोक्ता वस्तुओं की कमी का काल आरम्भ हो गया। युद्ध की परिस्थितियों का सामना करने के लिए भारत में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का बड़ा जमाव हो गया। दूसरे स्वेज से पूर्व के देशों को पश्चिमी राष्ट्रों से उपभोक्ता वस्तुओं का मिलना कठिन हो गया। इस काल में भारत को न केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबन्ध करने के लिए प्रयत्नशील होना पड़ा वरन् मित्र राष्ट्रों की पूर्व-स्थित सेनाओं तथा स्वेज के पूर्व के मित्र देशों की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग देने के लिए मजबूर होना पड़ा।

इस काल में विशेष कमी खाद्यान्न, वस्त्र, चीनी तथा कागज आदि की अनुभव हुई। इन्हीं परिस्थितियों में राशन व्यवस्था प्रारम्भ हुई। गेहूँ, चावल, चीनी, आदि पदार्थ एक सीमित मात्रा में सरकार द्वारा स्थापित की गयी राशन की दुकानों पर राशन कार्डों पर मिलने लगी। दुकानों पर खरीददारों की लम्बी पंक्तियाँ लगती थीं और घण्टों इन्तजार करने के पश्चात् सामान मिल पाता था।

खाने की वस्तुओं की कमी के साथ-साथ कपड़े की कमी भी हो गयी। इसके लिए भी कपड़े की दुकानें मुहल्ले के हिसाब से निश्चित कर दी गयीं जहाँ निश्चित मूल्य पर एक निश्चित मात्रा में कपड़ा मिल सकता था। किन्तु कपड़े की इतनी कमी थी कि जिस समय जो उपलब्ध होता था वही लेना पड़ता था चाहे आवश्यकता किसी दूसरे प्रकार के वस्त्र की रही हो। गरीबों को शरीर ढकना कठिन हो गया। ऊनी कपड़े के वितरण की व्यवस्था भी इसी प्रकार की गयी।

कागज की भी बहुत भारी कमी हो गयी थी। विद्यार्थियों को कापियाँ खरीदने के लिए आज्ञापत्र (Permit) मिलते थे। इन्हीं के आधार पर एक निश्चित मूल्य पर कागज मिलता था।

युद्ध समाप्त होने के पश्चात् भारत में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई। वास्तव में यहीं से मूल्यों की वृद्धि और मुद्रा-स्फीति का इतिहास आरम्भ होता है। ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं जिनमें निर्बल-वर्ग के लोगों को उनके जीवन निर्वाह की वस्तुओं का मिलना कठिन हो गया।

इस नवीन परिस्थिति में राशन-प्रणाली स्थायी-सी बन गयी। बड़े-बड़े नगरों में सन् 1945-46 के पश्चात् कोई ऐसा समय नहीं आया जब नागरिकों की बहुत बड़ी संख्या के पास राशन कार्ड न रहे हों। खाद्यान्नों की कमी लगातार चलती आयी और बड़ी मात्रा में खाद्यान्न आयात करके Subsidised मूल्यों पर बड़े नगरों में राशन की दुकानों से कमजोर वर्गों के लोगों को बाँटने का प्रबन्ध करना पड़ा। पिछले दो-तीन वर्षों से ही देश में गेहूँ का उत्पादन बढ़ जाने से इस परिस्थिति में

कुछ सुधार हुआ है। इन दिनों खुले बाजार में पर्याप्त मात्रा में अन्न बाजार में मिलता है।

इसी बीच में समय-समय पर किसी-किसी वस्तु की कमी होती आयी है और उसके उचित मूल्य और उचित मात्रा में वितरण का प्रबन्ध कुछ विशेष दुकानों पर करना पड़ा है। कुछ समय मिट्टी का तेल मिलना कठिन हो गया तो इसकी बिक्री का प्रबन्ध भी राशन की दुकानों पर करना पड़ा। कभी वनस्पति घी और कभी सरसों के तेल की कमी हो गयी तो इन वस्तुओं के निर्धारित मूल्य पर बिक्री का प्रबन्ध भी राशन की दुकानों तथा कुछ अन्य दुकानों पर करना पड़ा।

सरकार की सस्ते कपड़े के वितरण की नीति भी काफी समय से चल रही है। इस नीति के अनुसार सूती कारखाने एक निश्चित मात्रा में कपड़े की कुछ निश्चित किस्में सस्ती बिक्री के लिए बनाते हैं। सस्ते कपड़े की बिक्री का प्रबन्ध भी सरकार द्वारा अनुमोदित दुकानों पर होता है। लोगों का झुकाव महीन कपड़े की ओर होने से कभी-कभी सस्ते कपड़े का काफी मात्रा में जमाव मिलों के पास हो जाता है और उसकी बिक्री नहीं होती। अभी तक यह योजना चल ही रही है।

कुछ समय पूर्व साबुन की भी कमी हो गयी थी जब सरकार ने निश्चित मूल्य पर एक निश्चित मात्रा में साबुन की बिक्री का प्रबन्ध कुछ निर्धारित दुकानों पर किया था। बढ़ती हुई कीमतों की कठिनाई तो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से लगातार चलती ही आयी है। जून, 1975 में जब आपात स्थिति लागू की गयी उस समय भी मुद्रा-स्फीति की खतरनाक हालत थी। किन्तु आपात-स्थिति के दौरान कड़े उपायों द्वारा तस्करी, चोर-बाजारी पर नियन्त्रण करके व्यापारियों को मूल्यों के स्तर को कुछ नीचा लाने को सरकार ने मजबूर कर दिया और आर्थिक स्थिति कुछ सुधरी हुई-मालूम पड़ी।

चुनावों के बाद, जैसे ही नयी सरकार बनी, मूल्यों का बढ़ना फिर से आरम्भ हो गया। खाद्यान्नों के मूल्यों में तो थोड़ी ही वृद्धि हुई है किन्तु खाने के तेलों, वनस्पति, दालों तथा अन्य साधारण उपयोग की वस्तुओं के मूल्य बहुत बढ़ गये हैं।

इस परिस्थिति में कमजोर वर्ग के लोगों की परेशानियों को हल्का करने की दृष्टि से एक बार फिर से सरकार और जनता सभी की दृष्टि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की ओर आकर्षित हो रही है।

(3) **वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मुख्य अंग** (Main Constituents of the Present Public Distribution System)

इस समय सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मुख्य अंग इस प्रकार हैं :

(i) **उचित मूल्य या राशन की दुकानें** (Fair Price Shops or Ration Shops)—सारे देश में खाद्यान्नों को उचित मूल्य पर बेचने वाली राशन की दुकानें

हैं। इनकी संख्या लगभग 2,42,000 है। इन दुकानों पर गेहूँ, गेहूँ से बनी हुई वस्तुएँ—आटा, मैदा, सूजी—चावल तथा चीनी सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर उपभोक्ताओं को राशन कार्डों के आधार पर एक निश्चित मात्रा में बेची जाती है। इन दुकानों को उचित मूल्य की दुकानें (fair price shops) भी कहा जा सकता है। इन्हीं दुकानों पर आवश्यकतानुसार कभी-कभी वनस्पति, सरसों का तेल तथा मिट्टी का तेल भी उपलब्ध कर दिया जाता है।

(ii) **सहकारी उपभोक्ता भण्डार** (Consumer's Co-operative Stores)—सहकारी उपभोक्ता भण्डार भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली का एक अंग हैं। इन भण्डारों में उपभोक्ताओं की आवश्यकता की वस्तुओं के साथ-साथ कण्ट्रोल की वस्तुओं की भी बिक्री का प्रबन्ध होता है। "30 जून, 1978 को 493 केन्द्रीय उपभोक्ता भण्डार तथा उनकी 3,480 शाखाएँ, 16,152 प्राथमिक उपभोक्ता सहकारी समितियाँ, 14 राज्य स्तरीय उपभोक्ता फैडरेशन थे, जिन्होंने 1977-78 वर्ष में 650 करोड़ से भी अधिक मूल्य की वस्तुओं का विक्रय किया है। इस मूल्य में नियन्त्रित वस्तुओं की बिक्री का मूल्य भी शामिल है।"

(iii) **नियन्त्रित कपड़े की बिक्री की दुकानें** (Shops Selling Controlled Cloth)— सस्ते कपड़े की बिक्री की दुकानों की संख्या उतनी अधिक नहीं है किन्तु फिर भी यह दुकानें देश के सभी भागों में हैं और इन दुकानों पर सरकार को सस्ते कपड़े की योजना के अन्तर्गत बना हुआ कपड़ा राशन कार्डों के आधार पर बेचा जाता है। इस समय इस प्रकार की दुकानों की संख्या 62,200 है। इस संख्या की 78% दुकानें ग्रामीण क्षेत्रों में हैं।

(iv) **साफ्ट कोक डिपो** (Soft Coke Depotrs)—उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर साफ्ट कोक बेचने के लिए सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोयले के डिपो सब बड़े नगरों में काम कर रहे हैं जिनकी संख्या 2·45 लाख है। इन दुकानों की सहायता से ईंधन की समस्या सुलझाने में सुविधा होती है।

(v) **सुपर बाजार** (Super Bazas)—सुपर बाजारों की स्थापना दिल्ली जैसे बड़े-बड़े नगरों में हो गयी है। इन भण्डारों में तो साधारण उपभोग की सभी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। इस समय इन भण्डारों की संख्या 100 के लगभग है। यहाँ कुछ राशन की वस्तुओं जैसे, कपड़ा, चीनी, खाद्यान्न आदि का विक्रय भी होता है।

(vi) **मिट्टी के तेल के विक्रेता** (Retailers of Kerosene Oil)—इस समय मिट्टी का तेल नियन्त्रित वस्तुओं के अन्तर्गत आता है जिसकी बिक्री के लिए 2,45,000 विक्रेता हैं जो सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर मिट्टी के तेल का विक्रय करते हैं।

(4) नवीन सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मुख्य बातें (Main Elements of the new Public Distribution System)

मूल्यों में स्थिरता लाने और समाज के कमजोर वर्गों को जीवन की मूलभूत आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने के लिए सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत किया जा रहा है जिसके लिए 1 जुलाई, 1979 से एक नवीन सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू की गई है। इस योजना की मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं :

(1) **प्रत्येक 2 हजार आबादी पर एक दुकान**—लेकिन आदिवासी या पहाड़ी क्षेत्रों में प्रत्येक 1 हजार की आबादी वाले गाँव व गाँव के समूह के लिए एक दुकान होगी।

(2) **वितरण प्रणाली में निजी सार्वजनिक व सहकारी क्षेत्र शामिल**—वितरण प्रणाली में सभी निजी सार्वजनिक व सहकारी क्षेत्र शामिल हो सकते हैं। लेकिन निजी स्वामित्व की उचित मूल्य की दुकानों का जितना उपयोग सम्भव हो उतना किया जायेगा, लेकिन शर्त यह है कि वे अनुशासन संहिता के अनुसार कार्य करें।

(3) **सार्वजनिक वितरण की वस्तुएँ—गेहूँ, चावल, मोटे अनाज, नियन्त्रित कपड़ा, साफ्ट कोक, मिट्टी का तेल जैसी वर्तमान वस्तुओं के अतिरिक्त इसमें चुनी विनिर्मित वस्तुओं** (Manufactured Articles) **भी सम्बन्धित राज्य सरकारों व केन्द्र शासित प्रशासनों की सलाह पर शामिल की जा सकती हैं।** भविष्य में इस प्रणाली में वे सभी वस्तुएँ दी जायेंगी जो 24 घण्टे के दैनिक जीवन में आम रूप से उपयोगी होती हैं।

(4) **सार्वजनिक एजेन्सियों द्वारा खरीद एवं भण्डार—सार्वजनिक एजेन्सियों द्वारा निर्धारित वस्तुओं की खरीद करना एवं उनका सुरक्षित भण्डार बनाना।** इसके लिए प्रत्येक राज्य व केन्द्र शासित प्रदेश में भण्डारण एवं वितरण केन्द्र (Stocking-cum-distribution Centres) स्थापित किये जायेंगे तथा ऐसी एजेन्सियों की भी स्थापना की जायेगी जो अपेक्षित मात्रा में वसूली एवं आयात कार्य कर सकें।

(5) **केन्द्र द्वारा सहायता—राज्य स्तर पर अनुमोदित एजेन्सियों की स्थापना के लिए केन्द्र द्वारा सहायता प्रदान की जायेगी।** इसके लिए वाणिज्य, नागरिक पूर्ति एवं सहकारिता मन्त्रालय के औद्योगिक विकास विभाग के सचिव की अध्यक्षता में विभिन्न मन्त्रालयों के प्रतिनिधियों की एक स्थायी समिति गठित की गयी है।

(6) **सतर्कता समितियों की स्थापना—उचित मूल्य की दुकानों में वस्तुओं की क्वालिटी व उपलब्धता, उपभोक्ताओं को बेहतर सेवाएँ व विभिन्न बुराइयों को दूर करने के लिए सतर्कता समितियाँ बनायी जायेंगी।**

(7) **उच्च अधिकार प्राप्त समितियों की स्थापना**—सम्पूर्ण वितरण प्रणाली में ताल-मेल व पर्यवेक्षण के लिए केन्द्र तथा राज्य स्तरों **या उच्चाधिकार प्राप्त समितियों का गठन किया जायेगा।**

(8) **राज्य द्वारा परिवीक्षा व सूचना प्रणालियों को मजबूत करना**—आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन एवं उपलब्धता पर निरन्तर निगरानी रखने और समय से आवश्यक उपचार करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा परिवीक्षा (Monitoring) व सूचना प्रणालियों को मजबूत किया जायेगा।

(9) **केन्द्र व राज्य सरकारों के उत्तरदायित्व**—इस योजना में **केन्द्रीय सरकार सामान्य मूल्य स्थिरीकरण के उपाय सुनिश्चित करने, राष्ट्रीय नीति तैयार करने व आयात तथा सुरक्षित भण्डार बनाने के लिए उत्तरदायी होगी। राज्य सरकारें इनके बारे में पूर्ण परिचालन की जिम्मेदारी सम्भालेंगी।** वस्तुओं के वितरण, उचित मूल्य की दुकानों की आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करना, अतिरिक्त खुदरा बिक्री-केन्द्र खोलना, दुकानों का परिवीक्षण तथा पर्यवेक्षण (Monitoring & Supervis ng) करना, सतर्कता समितियाँ गठित करना और अन्य सभी प्रशासनिक जिम्मेदारी निभाने का कार्य राज्य सरकारों का होगा।

"इस योजना के अन्तर्गत 3 लाख 50 हजार दुकानें खोली जा रही हैं" तथा योजना के पूर्ण क्रियान्वयन के पश्चात् देश का 90 प्रतिशत व्यापार निजी हाथों में ही रहेगा।

(5) **सार्वजनिक वितरण प्रणाली में कठिनाइयाँ** (Difficulties in Public Distribution System)

(i) इस समय जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली काम कर रही है इसका विस्तार साधारणतया नगरों तक ही सीमित है। ग्रामीण क्षेत्रों में राशन की दुकानें नहीं हैं। इन क्षेत्रों में इन दुकानों को पहुँचाने में कठिनाइयाँ भी हैं। बड़े नगरों में पूर्ति के लिए सरकारी भण्डार मौजूद हैं। इन भण्डारों से ग्रामीण क्षेत्रों की दुकानों की पूर्ति करना सरल काम नहीं है।

(ii) दूसरे ग्रामीण क्षेत्रों के निकट जो कस्बे हैं उनमें खुले बाजार में खाद्यान्न साधारणतया मिलते ही रहते हैं यद्यपि उनके लिए कई बार अधिक मूल्य देना पड़ता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जहाँ सरकार ने निकट के नगरों से चीनी का quota दिलवाने का प्रबन्ध कर रखा है, वहाँ स्थिति बड़ी विचित्र है। जिन लोगों के नाम गाँव का quota है वे शायद ही कभी चीनी कस्बे से गाँव में ले जाकर बाँटते हैं। अधिकतर ऐसा होता है कि वे लोग अधिक मूल्य पर चीनी शहर में ही बेच जाते हैं। खरीद और बिक्री के मूल्य का अन्तर उनका लाभ बन जाता है।

(iii) उचित मूल्य की दुकानों से बिकने वाली वस्तुओं की संख्या में और अधिक वस्तुओं को इच्छानुसार जोड़ देना सरल कार्य नहीं है। इन दुकानों पर बिकने

वाली वस्तुओं का सरकार को स्टॉक रखने की आवश्यकता होती है। बिना स्टॉक रखे राशन-प्रणाली नहीं चलाई जा सकती।

(iv) राशन की दुकानों के काम करने में और भी कुछ बाधाएँ हैं। जिस समय खाद्यान्न की पूर्ति कम होती है तो इन दुकानों पर कार्ड वालों का दबाव बहुत बढ़ जाता है और सामान देने में घण्टों लग जाते हैं। किन्तु जब खुले बाजार में भी खाद्यान्न मिलते रहते हैं तो बहुत बड़ी संख्या में उपभोक्ता खुले बाजार से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगते हैं और कभी-कभी तो राशन की दुकानों पर चीनी को छोड़कर और किसी वस्तु की बिक्री नहीं रहती। इन दुकानों को अपना खर्च निकालना मुश्किल पड़ जाता है।

(v) जब खुले बाजार में वस्तुएँ मिलती हैं तो लोग खुले बाजार को ही पसन्द करते हैं, राशन की दुकान से नहीं खरीदना चाहते क्योंकि खुले बाजार में वस्तु की किस्म का चुनाव करने का अवसर प्राप्त है जो राशन की दुकान पर नहीं है।

(vi) इन बातों को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को विस्तृत बनाने के लिए इस बात पर विचार करना भी परमावश्यक है कि खुले बाजार में काम करने वाले खुदरा दुकानदारों को किस प्रकार इस प्रणाली में सम्मिलित कर लिया जाये ताकि जो लोग रोजगार से लगे हैं वह लगे रहें और प्रणाली भी स्थायी बन जाये और वस्तुएँ सुविधा के साथ उपभोक्ताओं के निवास स्थान के निकट ही मिल जायें और समय भी अधिक नष्ट न हो।

(6) **सार्वजनिक वितरण प्रणाली की आलोचना** (Criticism of Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली अच्छी है लेकिन भारत जैसे देश में इसके सफल होने में आशंका है अतः इसकी आलोचना निम्न आधारों पर की जाती है :

(1) **खुदरा व्यापार का राष्ट्रीयकरण**—सार्वजनिक वितरण प्रणाली एक प्रकार से समस्त खुदरा व्यापार का सरकारीकरण है। भारत में राष्ट्रीयकृत संस्थाओं का अनुभव सुखद नहीं है। अतः यह प्रणाली भी लाभप्रद रूप से चल सके इसमें सन्देह है।

(2) **अफसरशाही**—सरकारी तन्त्र में अफसरशाही अधिक चलती है। इसलिए ऐसा तन्त्र हमेशा टौप हैवी (Top Heavy) बन जाता है। उन अफसरों का वेतन भी वितरित वस्तुओं की लागत में शामिल किया जायेगा "इसलिए उचित दर पर" नाम रहते हुए भी उपभोक्ता को वस्तु "अनुचित दर" पर ही मिलेगी।

(3) **सरकारी तन्त्र में भ्रष्टता**—भ्रष्टता की जितनी शिकायतें व्यापारियों के सम्बन्ध में की जाती हैं वे ही सब शिकायतें सरकारी तन्त्र के दुकानदारों से नहीं पनप सकेंगी, अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है। जिन वस्तुओं का उत्पादन कम होता है वे काले बाजार में पहुँच जाती हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि जो

वस्तुएँ दुर्लभ हो जाती हैं वे सुपर बाजार या उचित दर की दुकानों पर भी नहीं मिल पाती हैं।

निर्यात संवर्द्धन से अर्थ
(MEANING OF EXPORT PROMOTION)

"निर्यात संवर्द्धन से अर्थ निर्यात प्रोत्साहन से लगाया जाता है जिसमें निर्यात वृद्धि के लिए पुराने निर्यातकर्ताओं को तथा नवीन निर्यातकर्ताओं को निर्यात करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।" (i) इसके लिए उन्हें नगद सहायता (Cash Subsidy) दी जाती है। (ii) बैंकों से ऋण प्रदान किये जाते हैं। (iii) कुछ पूँजीगत एवं अन्य आवश्यक मशीनों व कच्चे माल को निर्यात के बदले में आयात करने की अनुमति दी जाती है। (iv) निर्यात के लिए भेजे जाने वाले माल पर रेल भाड़े व सामुद्रिक भाड़े में छूट दी जाती है। (v) निर्यात करने वाली संस्थाओं को आयकर में कुछ छूट दे दी जाती है।

भारत में निर्यात संवर्द्धन की आवश्यकता
(NEED FOR EXPORT PROMOTION IN INDIA)

भारत में निर्यात संवर्द्धन की आवश्यकता निम्न कारणों से अधिक है :

(1) **प्रतिकूल व्यापार संतुलन को ठीक करने के लिए** (To Correct Unfavourable Balance of Trade)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत का व्यापार दो वर्षों को छोड़कर शेष सभी वर्षों में प्रतिकूल (Unafavourable) रहा है जिससे भारत के कोषों में कमी ही नहीं हुई है बल्कि आर्थिक योजनाओं को इच्छानुसार ढालने में भी कठिनाई हो रही है। अतः असन्तुलित व्यापार को सन्तुलित करने के लिए निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता है।

(2) **विदेशी ऋण-भार को कम करने के लिए** (To Reduce Foreign Loans)—असन्तुलित विदेशी व्यापार एवं आर्थिक योजनाओं के दबाव ने भारत सरकार के लिए आवश्यक कर दिया कि वह विदेशी सरकारों व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण ले। यह क्रम वर्षों चलने के उपरान्त विदेशी ऋणों की मात्रा दिनों-दिन बढ़ती चली गयी। भारत ने 1978-79 के अन्त तक कुल 17,964 करोड़ रुपये के विदेशी ऋणों व सहायता का उपयोग किया है जिस पर इसी वर्ष में 820 करोड़ रुपये ब्याज व ऋण वापसी के रूप में चुकाये गये हैं। इन ऋणों की वापसी व ब्याज आदि के भुगतान के लिए आवश्यक है कि निर्यात सम्वर्द्धन की नीति अपनायी जाये।

(3) **विकास योजनाओं की सफलता के लिए** (To Get Development Projects Seccessful)—निर्यात वृद्धि के फलस्वरूप ही विकास योजनाओं के लिए आवश्यक मशीनरी व साज-सज्जा आयात की जा सकती है। अतः निर्यात संवर्द्धन आवश्यक है।

(4) **नवीन वस्तुओं के निर्यात के लिए** (To Export New Products)—आर्थिक योजनाओं के अन्तर्गत देश में अनेक नये-नये कारखाने स्थापित हुए हैं जो देश की आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद निर्यात करने में समर्थ हो सकेंगे। अतः यह उचित ही है कि नवीन वस्तुओं के निर्यात के लिए कोई प्रोत्साहन कार्यक्रम अपनाया जाये।

(5) **स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था बनाने के लिए** (To Make Economy Self-Sufficient)—देश को विदेशी ऋणों के भार से मुक्ति दिलाने एवं आत्मनिर्भर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि निर्यात बढ़ाये जायें।

निर्यात वृद्धि के लिए सरकारी प्रयास
(GOVERNMENT EFFORTS TO INCREASE EXPORTS)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में प्रयास किये हैं तथा अनेक समितियाँ बिठायी हैं जैसे, गौशाला समिति, 1949; डीसूजा समिति, 1957; मुदालियर समिति, 1961; अलैक्जेण्डर समिति, 1977। इन समितियों की सिफारिशों के फलस्वरूप निर्यात वृद्धि के लिए भारत सरकार ने निम्न प्रयास किये हैं :

(1) **व्यापार बोर्ड** (Board of Trade)—देश के विदेशी व्यापार से सम्बन्धित समस्याओं एवं नीतियों की समीक्षा करने एवं अपनी सलाह केन्द्रीय सरकार को देने के लिए 1962 मे व्यापार बोर्ड की स्थापना की गयी है। यह बोर्ड समय-समय पर (i) वस्तु विकास (Product Development), (ii) उत्पादन विस्तार (Expansion of Production), (iii) निर्यात विपणन व्यवस्था एवं माध्यम में सुधार (Improvement to Export Marketing Mechanism and Media), (iv) निर्यात कार्यक्रमों के सम्बन्ध में व्यापारिक समुदाय को वाणिज्यिक सेवाओं की व्यवस्था (Provisions of Commercial Services to the Commercial Community with regard to Export Programmes) के सम्बन्ध में सरकार को सुझाव देता है।

(2) **निर्यात संवर्द्धन परिषदें** (Export Promotion Councils)—निर्यात व्यापार में उपयोजनाओं, उत्पादकों एवं निर्यातकों के सहयोग को प्राप्त करने के लिए निर्यात परिषदें स्थापित की गयी हैं। यह परिषदें उत्पादकों को निर्यात वृद्धि के लिए सलाह देती हैं। आजकल इस प्रकार की 17 परिषदें हैं जो अलग-अलग वस्तुओं के लिए हैं; जैसे, काजू, सूती वस्त्र, रेशम, रासायनिक पदार्थ, खेल का सामान, मसाले, तम्बाकू, चमड़ा, आदि। इन विभिन्न निर्यात सम्वर्द्धन परिषदों के कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए Federation of Indian Export Organisations की स्थापना की गयी है।

(3) **वस्तु मण्डल** (Commodity Boards)—सरकार ने 6 वस्तुओं के लिए अलग-अलग वैधानिक निगम स्थापित किये हैं जिनका कार्य अपनी-अपनी वस्तु के उत्पादन, विकास एवं निर्यात के लिए कार्य करना है। यह वस्तु हैं—चाय, काफी, इलायची, रबर, नारियल की जटा एवं सिल्क।

(4) **भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान** (Indian Institute of Foreign Trade)—नयी दिल्ली में 1964 में भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान के नाम से एक संस्था स्थापित की गयी है जिसका मुख्य कार्य विदेशी व्यापार के लिए कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देना व विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में बाजार सर्वेक्षण एवं अनुसन्धान करना है।

(5) **निर्यात निरीक्षण परिषद** (Export Inspection Council)—निर्यात (किस्म नियन्त्रण एवं निरीक्षण) अधिनियम [Export (Quality and Inspection) Act], 1963 के अन्तर्गत, निर्यात निरीक्षण परिषद बनायी गयी है। इसका कार्य निर्यात के लिए माल लादने से पूर्व वस्तुओं का निरीक्षण करना है जिससे कि क्वालिटी की वस्तुएँ ही निर्यात हो सकें।

(6) **व्यापार विकास संस्थान** (Trade Development Authority)—इस संस्थान की स्थापना 18 फरवरी, 1971 को हुई है। इसका कार्य छोटे एवं मध्यम आकार वाली संस्थाओं के साहसियों को निर्यात के लिए प्रेरित करना तथा उनको इस कार्य के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करना है।

(7) **निर्यात साख एवं गारण्टी निगम** (Export Credit & Guarantee Corporation)—यह निगम 1964 में स्थापित किया गया है। इसका कार्य निर्यात सम्बन्धी जोखिम का बीमा करना एवं निर्यातकर्ताओं को इस सम्बन्ध में आर्थिक साख की सुविधाएँ देना है।

(8) **भारतीय व्यापार मेला एवं प्रदर्शनी परिषद तथा वाणिज्यिक प्रचार निदेशालय** (Indian Council for Trade Fairs and Exhibitions & Directorate of Commercial Publicity)—परिषद एक स्थायी संस्था है जिसका कार्य देश व विदेश में निर्यात संवर्द्धन के उद्देश्य से विदेशों में औद्योगिक एवं व्यापारिक मेले एवं प्रदर्शनियाँ आयोजित करना है जिससे कि वहाँ की जनता भारतीय वस्तुओं के बारे में जान सके। भारत सरकार का वाणिज्यिक प्रचार निदेशालय भी इसमें सहायता करता है और एक पूरक संस्था का पार्ट अदा करता है। इसके द्वारा विदेशों में आयोजित अन्य प्रदर्शनियों में भारतीय मण्डप लगता है जिसमें भारतीय वस्तुओं का प्रदर्शन किया जाता है।

(9) **निर्यात गृह** (Export Houses)—1 जुलाई, 1968 से सरकार के द्वारा उन प्रमुख संस्थाओं को मान्यता प्रदान की जाती है जो निर्यात में अग्रणी हैं तथा जिनका निर्यात परम्परागत वस्तुओं के सम्बन्ध में 9 लाख रुपये प्रतिवर्ष तथा

अपरम्परागत वस्तुओं के सम्बन्ध में 25 लाख रुपये प्रतिवर्ष से अधिक है। इन मान्यता प्राप्त संस्थाओं का विपणन विकास निधि (Market Development Fund) से सरकार द्वारा उनकी अनेक क्रियाओं के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

(10) **भारतीय पैकेजिंग संस्थान** (Indian Institute of Packaging)—यह संस्थान 1966 में बम्बई में स्थापित किया गया है। इसका कार्य निर्यात एवं आन्तरिक सामान के पैकेजिंग का अध्ययन कर उन्नति के सुझाव देना है। इसके लिए प्रशिक्षण प्रोग्राम व विचारगोष्ठी आदि की व्यवस्था इसके द्वारा की जाती है।

(11) **भारतीय पंचायत परिषद** (Indian Council of Arbitration)—भारतीय पंचायत परिषद, 1965 में स्थापित की गयी है जिसका कार्य व्यापारिक विवादों विशेष रूप से विदेशी व्यापार सम्बन्धी विवादों को निपटाना है।

(12) **समुद्री वस्तु निर्यात विकास संस्था** (Marine Products Export Development Authority)—1972 में कोचीन में समुद्री वस्तु निर्यात विकास संस्था स्थापित की गयी है जिसका कार्य समुद्री वस्तु उद्योग का विकास, निर्यातों की दृष्टि से विशेष रूप से करना है।

(13) **निर्यात प्रक्रियन क्षेत्र** (Export Processing Zone)—बम्बई में सान्ताक्रुज पर निर्यात प्रक्रियन क्षेत्र स्थापित किया गया है। यह पूर्णरूप से निर्यात-प्रधान योजना है। जिन इकाइयों को इस क्षेत्र में प्रवेश दिया जाना है उन्हें अपना शत-प्रतिशत उत्पादन निर्यात करना अनिवार्य होता है।

(14) **भारतीय राज्य व्यापार निगम तथा खनिज एवं धातु व्यापार निगम** (State Trading Corporation of India & Minerals and Metals Corporation of India)—भारतीय राज्य व्यापार निगम की स्थापना मई, 1956 में हुई है। इसकी स्थापना का उद्देश्य उन वस्तुओं एवं पदार्थों में आयात एवं निर्यात करना है जिनको निगम निश्चित करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निगम ने 1956-57 में 5·8 करोड़ रुपये के निर्यात एवं 3·4 करोड़ रुपये के आयात किये थे लेकिन 1978-79 में निगम के निर्यात बढ़कर 608 करोड़ रुपये के व आयात 510 करोड़ रुपये के हो गये हैं।

भारतीय राज्य व्यापार निगम के कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिए चार निगम और गठित किये गये हैं—(i) परियोजना एवं उपस्कर निगम (Project & Equipment Corporation), (ii) हस्तशिल्प तथा हस्तकरघा निर्यात निगम (Handicrafts & Handloom Exports Corporation), (iii) भारतीय काजू निगम (Cashew Corporation of India), व (iv) राज्य रसायन एवं भेषज निगम (State Chemicals and Pharmaceuticals Corporation)।

खनिज एवं धातु व्यापार निगम की स्थापना 1 अक्टूबर, 963 को भारतीय राज्य व्यापार निगम के विभाजन के फलस्वरूप हुई है। इसका मुख्य कार्य खनिज

एवं धातुओं का आयात एवं निर्यात करना है। 1976-77 में इसका कुल व्यापार 842 करोड़ रुपये का रहा है।

(15) **व्यापारिक समझौते** (Trade Agreements)—भारत ने बहुत से देशों से द्विपक्षीय व बहुपक्षीय व्यापारिक समझौते (Bilateral & Multilateral Trade Agreements) किये हैं जिनके फलस्वरूप निर्यातों में वृद्धि हुई है। भारत के अनेक समझौते रुपया भुगतान (Rupee Payments) के आधार पर भी हुए हैं जिनमें रूस एवं अन्य साम्यवादी देशों के साथ हुए समझौते प्रमुख हैं। कुछ समझौते अदल-बदल (Barter) व कुछ विदेशी मुद्राओं में भी किये गये हैं। भारत बहुपक्षीय समझौते जैसे, चीनी समझौता व काफी समझौता में भी सदस्य है जिनके फलस्वरूप भी निर्यातों में वृद्धि हुई है।

(16) **दूतावासों में व्यापारिक प्रतिनिधि** (Trade Representative)—भारत सरकार ने निर्यातों में वृद्धि करने के उद्देश्य से अपने 50 से भी अधिक दूतावास कार्यालयों में व्यापारिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति की है। इन प्रतिनिधियों का कार्य उन देशों में सर्वेक्षण कर इस बात का पता लगाना है कि वहाँ भारत की किन वस्तुओं की माँग हो सकती है।

(17) **निर्यात को प्राथमिक क्षेत्र के रूप में मान्यता** (Export Trade Recognised as a Priority Sector)—निर्यात करने वाली संस्थाओं को प्राथमिकता के आधार पर सरकार व रिजर्व बैंक द्वारा साख सुविधाएँ उपलब्ध की जाती हैं। उनसे कम दर पर ब्याज ली जाती है। बैंक Pre-Shipment व Post-Shipment दोनों पर अग्रिम (Advance) प्रदान करती हैं। रिजर्व बैंक इस प्रकार के अग्रिमों व ऋणों पर पुनर्वित्त सुविधाएँ प्रदान करता है। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक भी निर्यात करने वालों को प्रत्यक्ष वित्तीय सुविधाएँ प्रदान करता है। केन्द्रीय सरकार इस कार्य के लिए एक बैंक (आयात-निर्यात बैंक के नाम से) स्थापित करने पर विचार कर रही है।

(18) **विपणन विकास निधि** (Marketing Development Fund)—भारत सरकार ने जुलाई, 1963 में विपणन विकास निधि की स्थापना की है। इस निधि में से उन भारतीय उत्पादकों व निर्माताओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है जो विदेशों में भारतीय वस्तुओं के निर्यात के लिए प्रयत्न करते हैं।

(19) **राज्यों में निर्यात संवर्द्धन दफ्तर** (Export Promotion Office)—केन्द्रीय सरकार ने यह निश्चय किया है कि विभिन्न राज्यों में निर्यात संवर्द्धन दफ्तर खोले जायें जिससे कि निर्यात बढ़ाकर विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके।

(20) **अन्य उपाय** (Other Efforts)—निर्यात वृद्धि के लिए कई उपाय किये गये हैं—जैसे (i) निर्यात प्रक्रिया को सरल बनाना, (ii) निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के लिए आयातों पर कम आयात शुल्क लगाना या बिल्कुल न लगाना, (iii)

कुछ वस्तुओं के लिए निर्यात लाइसेंस आवश्यक न होना, (iv) निर्यात के लिए नगद सहायता (Cash Subsidy) देना, आदि । 1977-1978 में 311 करोड़ रुपये की नगद सहायता दी गई है ।

सरकार शीघ्र ही एक विधेयक संसद में ला रही है जिससे कि अच्छे किस्म का माल निर्यात किया जा सके और खराब माल भेजने वालों के विरुद्ध कार्यवाही की जा सके ।

वृद्धि या संवर्द्धन के मार्ग में बाधाएँ
(OBSTACLES IN THE WAY OF EXPORT PROMOTION)

भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अपने निर्यात बढ़ाने का हर सम्भव प्रयास किया है लेकिन फिर भी वांछित उपलब्धि प्राप्त नहीं हो सकी है और व्यापार सन्तुलन दो वर्षों को छोड़कर सदा ही भारत के विपरीत रहा है । भारत के निर्यात वृद्धि में निम्न बाधाएँ हैं जिन्हें दूर किया जाना आवश्यक है :

(1) **उच्च मूल्य** (High Prices)—अधिकांश भारतीय वस्तुओं की उत्पादन लागत अधिक होने के कारण उनका विक्रय मूल्य अधिक होता है, जिससे वे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उचित स्थान प्राप्त नहीं कर पाती हैं । अतः भारत सरकार को कई वस्तुओं के निर्यात में हानि के लिए सहायता (Subsidy) देनी पड़ती है जैसे, चीनी, सूती वस्त्र, जूट वस्तुएँ, आदि ।

(2) **वस्तुओं का निम्न स्तर** (Low Quality of Products)—निर्यात की जाने वाली भारतीय वस्तुओं की क्वालिटी निम्न होती है जिससे उनको विदेशी प्रतिस्पर्द्धा में खड़े रहना कठिन हो जाता है । इसके दो मुख्य कारण हैं—धीमी गति से आधुनिकीकरण एवं तकनीकी ज्ञान का अभाव ।

(3) **प्रशुल्क नीतियाँ** (Tariff Policies)—अनेक देशों ने भारतीय माल के आयात पर ऊँची दर से आयात शुल्क व आयात परिमाण (Import Quantity) सीमाएँ निर्धारित कर रखी हैं जिसके फलस्वरूप भारतीय माल विदेशों में कम ही पहुँच पाता है । भारत के कुल निर्यात का लगभग दो-तिहाई माल इस प्रकार का है जिसे इन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।

(4) **स्थानापन्न वस्तुएँ** (Substitute Products)—भारतीय निर्यात वृद्धि के प्रयासों में एक बाधा स्थानापन्न वस्तुओं की है । भारत के निर्यातों में जूट एवं जूट से बनी वस्तुएँ तथा सूती-वस्त्र महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, लेकिन इनकी स्थानापन्न वस्तुएँ आ जाने के कारण इनका निर्यात प्रभावित हो रहा है । जूट के बोरों का स्थान सूती व कागज के बोरे ले रहे हैं । सूती वस्त्रों का स्थान कृत्रिम रेशों के वस्त्र ले रहे हैं ।

(5) **विदेशी प्रतिस्पर्द्धा** (Foreign Competition) – भारतीय वस्तुओं की विदेशी बाजारों में कटु प्रतियोगिता है जिसके कारण उनको वहाँ बेचने में कठिनाइयाँ

पैदा हो रही हैं जैसे, जूट की वस्तुओं में बंगला देश से प्रतियोगिता है। सूती वस्त्रों में जापान व चीन से। चाय में श्रीलंका व इण्डोनेशिया से।

(6) **प्रचार की कमी** (Lack of Publicity)—भारतीय वस्तुओं के बारे में विदेशों में विज्ञापन एवं प्रचार बहुत ही कम हैं जिसके फलस्वरूप निर्यात हमारी आशा के अनुरूप नहीं बढ़ पाये हैं।

(7) **सीमित बाजार** (Limited Market)—भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा सीमित है तथा उनका बाजार भी सीमित है। यदि किसी प्रकार विदेशी बाजार में भारतीय वस्तु की माँग कम हो जाती है तो हमारे निर्यात स्वत: ही कम हो जाते हैं। जैसे, भारत द्वारा निर्यात की जाने वाली चाय का लगभग 2/3 भाग ब्रिटेन खरीदता है। इसी प्रकार काजू के निर्यात का 3/4 भाग केवल संयुक्त राज्य अमरीका खरीदता है।

भारत के निर्यात में परम्परागत निर्यातों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यदि इन वस्तुओं की माँग विदेशों में कम होती है तो भारतीय निर्यात स्वतः ही प्रभावित हो जाते हैं।

(8) **भारतीय व्यापारियों की नीतियाँ** (Policies of Indian Business-men)—भारतीय व्यापारियों द्वारा अपनायी जाने वाली नीतियाँ भी निर्यात वृद्धि में रुकावट पैदा करती हैं जैसे, भारतीय व्यापारी नमूने के अनुरूप माल नहीं भेजते हैं जिसके फलस्वरूप करोड़ों रुपये का माल वापस ही नहीं लौट आता बल्कि देश की प्रतिष्ठा में गिरावट आ जाती है।

निर्यात वृद्धि के लिए सुझाव
(SUGGESTIONS FOR EXPORT PROMOTION)

भारत को निर्यात वृद्धि के लिए निम्न प्रयत्न करने चाहिए :

(1) **निर्यात विपणन अनुसन्धान** (Export Marketing Re earch)—भारत सरकार, व्यापारिक संघों, व भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान, आदि को विपणन अनुसन्धान कराना चाहिए और इस बात का पता लगाना चाहिए कि विदेशों में किन-किन वस्तुओं की माँग है जिससे कि उस प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन कर निर्यात किया जा सके।

(2) **अधिक प्रचार** (Mcre Publicity)—भारत सरकार व व्यापारियों को विदेशों में भारतीय वस्तुओं का विज्ञापन एवं प्रचार कराना चाहिए जिससे कि वहाँ पर वस्तु की माँग उत्पन्न हो सके और उसको पूरा कर निर्यातों को बढ़ाया जा सके।

(3) **निर्यात वस्तुओं की किस्म एवं डिजायनों में सुधार** (Improvements in the Quality & Designs)—विदेशों में प्रतिस्पर्द्धा से मुकाबला करने के लिए भारतीय निर्माताओं को अपनी-अपनी वस्तुओं की किस्मों व डिजाइनों में सुधार करना चाहिए तथा किस्म नियन्त्रण (Qualily Contrσl) पर विशेष आँख रखनी चाहिए जिससे कि विदेशियों को अपनी आशाओं के अनुरूप वस्तु मिल सके। इससे निर्यात वृद्धि को सहायता मिलेगी।

(4) **वस्तुओं की लागतों में कमी** (Reduction in the Cost of Products)—निर्माताओं को वस्तुओं की लागतों में कमी करनी चाहिए जिससे कि वस्तुएँ अन्तर्राष्ट्रीय लागतों पर तैयार हो सकें और प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त कर सकें।

(5) **निर्यात प्रोत्साहन प्रेरणाएँ** (Incentives to Export Promotion)—भारत सरकार को निर्यात प्रोत्साहन के लिए और अधिक प्रेरणा देनी चाहिए। इसके लिए (i) सहायता (Subsidy), व (ii) आयात अधिकार (Import Entitlement) जैसे कारगर हथियारों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है। सहायता से अर्थ निर्यात की रकम का एक निश्चित प्रतिशत निर्यातकर्ता को नकद देने से है। आयात अधिकार में निर्यातकर्ता को उसके द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा की मात्रा का एक निश्चित प्रतिशत के मूल्य की वस्तुओं के आयात के लिए अनुमति दे दी जाती है।

(6) **वित्तीय व अन्य सुविधाएँ** (Financial & Other Facilities)—यद्यपि निर्यात करने वाले उद्योगों को रिवर्ज बैंक व अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा वित्तीय सहायता दी जा रही है लेकिन फिर भी इसमें गति लाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इन उद्योगों को कच्चा माल व बिजली आदि को भी प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए जिससे कि वे अवरुद्ध उत्थान कर सकें और निर्यात वृद्धि में अपना पूर्ण योग दे सकें।

(7) **व्यापारिक समझौते** (Trade Agreements)—जिन देशों ने विदेशी माल के आयात पर प्रतिवन्ध लगा रखे हैं उन देशों से भारत को द्विपक्षीय व बहुपक्षीय समझौते करने चाहिए जिससे कि भारतीय माल वहाँ प्रवेश कर सके और कुल निर्यात बढ़ सकें।

प्रश्न

1. भारत में राजकीय व्यापार की प्रगति, वर्तमान स्थिति एवं समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

   Discuss the progress, present position and problems of state trading in India.

2. भारतीय राज्य व्यापार निगम के स्वभाव, संगठन एवं कार्यप्रणाली की परीक्षा कीजिए।

   Examine the nature, organisation, and working of the State Trading Corporation of India.

3. खाद्य पदार्थों में राजकीय व्यापार के सम्बन्ध में आपके स्वयं के क्या विचार हैं?

   What are your own views regarding state trading in food-grains?

4. भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

   Write a detailed note on public distribution system in India.

5. भारत में विदेशी व्यापार सम्वर्द्धन के लिए क्या प्रयत्न किये जा रहे हैं? बताइए।

   What efforts are being made for the export promotion in India? Explain.

30

भारत में विपणन विधान

[MARKETING LEGISLATION IN INDIA]

भारत में विपणन से सम्बन्धित कई अधिनियम हैं लेकिन अध्ययन की सुविधा के लिए हम कुछ प्रमुख अधिनियमों को ले रहे हैं जिनका विस्तृत विवरण इस अध्याय में दिया गया है। यह अधिनियम निम्नलिखित हैं :

विवरण	अधिनियम का नाम
1. नाप-तोल के सम्बन्ध में	(I) बाट एवं माप-मान अधिनियम, 1976
2. खाद्य पदार्थों में मिलावट के सम्बन्ध में	(II) खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम, 1954
3. नकली वस्तुओं के सम्बन्ध में	(III) व्यापार एवं व्यापारिक चिह्न अधिनियम, 1958
4. उद्योगों की स्थापना के सम्बन्ध में	(IV) औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, 1951
5. वस्तुओं की पूर्ति के सम्बन्ध में	(V) आवश्यक वस्तुएँ अधिनियम, 1955
6. एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक रीतियों के सम्बन्ध में	(VI) एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ अधिनियम, 1969
7. अग्रिम प्रसंविदों के सम्बन्ध में	(VII) अग्रिम प्रसंविदे नियमन अधिनियम, 1952
8. प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय के सम्बन्ध में	(VIII) प्रतिभूति अनुबन्ध नियमन अधिनियम, 1956
9. वस्तुओं की पूर्ति, मूल्य निर्धारण एवं वितरण के सम्बन्ध में	(IX) भारत सुरक्षा नियम
	(X) औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, 1951
	(XI) आवश्यक वस्तुएँ अधिनियम, 1955
	(XII) एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ अधिनियम, 1969

(I) बाट एवं मान-माप अधिनियम, 1976
(THE STANDARDS OF WEIGHTS AND MEASURES ACT, 1976)

बाट एवं माप-मान अधिनियम का उद्देश्य तोल एवं माप के मान स्थापित करना है तथा तोल, माप व अन्य वस्तुएँ जो तोल, माप या अंक से बेची या वितरित की जाती हैं उनके अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य को नियमित करना है एवं इससे सम्बन्धित प्रासंगिक कार्य करना है। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

(1) **तोल एवं माप मानों की स्थापना**—बाट एवं माप की प्रत्येक इकाई मैटिक प्रणाली पर आधारित होगी। इसके लिए मीटर, किलोग्राम, एम्पीयर, केलविन आदि को काम में लाया जायेगा।

(2) **गैर-मान बाट, माप या अंक के प्रयोग तथा उनके बनाने पर प्रतिबन्ध**—गैर-मान के बाट व माप के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। साथ ही ऐसे बाट व माप बनाने पर भी रोक लगा दी गयी है।

कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु के बेचने के लिए भाव गैर-मान के बाट एवं माप में नहीं बता सकता है, न छाप सकता है, न कैशमीमो, बिल या बीजक आदि बना सकता है। यदि कोई परम्परा, रीति या तरीका ऐसा है जिसमें मान से कम या अधिक वस्तु की माँग की जाती है या वस्तु की सुपुर्दगी की जाती है तो इस प्रकार की माँग या सुपुर्दगी व्यर्थ (void) होगी।

यदि कोई व्यक्ति बाट, माप या अंक को बनाता, बेचता या वितरित करता है या उनकी मरम्मत करता है तो उसको इस प्रकार की वितरण विक्रय या मरम्मत का रिकार्ड रखना होगा।

(3) **मान उपकरणों का सत्यापन**—प्रत्येक मान पर प्रमाणित होने की मुहर लगवाना आवश्यक है। यह मुहर निर्धारित अधिकरण द्वारा निर्धारित फीस लेकर लगायी जायेगी। यदि किसी मान पर मुहर नहीं लगी है तो उसका प्रयोग वर्जित है। सभी प्रयोग में आने वाले मापों व बाटों पर एक निश्चित समय के बाद मुहर लगवाना अनिवार्य है।

(4) **सरकारी अधिकारियों के अधिकार**—इस अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त निदेशक या उसके द्वारा अधिकृत कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे स्थान पर उचित समय में घुस सकता है तथा तोल, माप या उससे सम्बन्धित रिकार्ड को अपने कब्जे में ले सकता है जहाँ इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध तोल माप-मान के सम्बन्ध में किया जा रहा है या किये जाने की सम्भावना है। यदि कोई अप्रमाणित तोल या माप के बाट पाये जायेंगे तो उनको जब्त करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है।

(5) **दण्ड** (Penalties) —यदि कोई व्यक्ति निर्धारित मान के मापों व बाटों का उपयोग नहीं करता है तो उसको प्रथम अपराध पर 6 माह तक की सजा या एक

हजार रुपये तक जुर्माना या दोनों दिये जा सकते हैं। लेकिन द्वितीय व बाद के अपराधों पर दो वर्ष तक की सजा व जुर्माना किया जा सकता है। (धारा 50)

यदि कोई व्यक्ति या बाटों व मापों को बनाते समय मान का ध्यान नहीं रखता है तो उसको 2 वर्ष तक की सजा या 5,000 रुपये का जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं। (धारा 51)

(II) खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम, 1954
(THE PREVENTION OF FOOD ADULTERATION ACT, 1954)

खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम, 1954 का मुख्य उद्देश्य असामाजिक बुराई—खाद्य पदार्थों में मिलावट को—रोकना एवं जनता को शुद्ध खाद्य वस्तुओं को दिलाना है। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

(1) **कुछ वस्तुओं के बनाने व बेचने, आदि पर रोक**—कोई भी व्यक्ति न तो ऐसी वस्तु बनायेगा, न बेचेगा, न संग्रह करेगा और न वितरित करेगा जो (i) कोई मिलावटी खाद्य पदार्थ हो, (ii) कोई धोखे वाली बाण्ड का खाद्य पदार्थ हो, (iii) कोई खाद्य पदार्थ जिसकी बिक्री पर स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा रोक लगा दी गयी हो, (iv) कोई मिलावटी वस्तु हो, (v) या कोई खाद्य पदार्थ जिसकी बिक्री के लिए कोई लाइसेन्स लेना आवश्यक है। (धारा 7)

(2) **कुछ खाद्य पदार्थों के आयात पर रोक**—कोई भी व्यक्ति (i) मिलावटी खाद्य पदार्थ ; (ii) कोई धोखे देने वाली ब्राण्ड का खाद्य पदार्थ; (iii) कोई खाद्य पदार्थ जिसके आयात के लिए लाइसेन्स लेना आवश्यक है; (iv) कोई खाद्य पदार्थ जो इस अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध हो; आयात नहीं करेगा। (धारा 5)

(3) **खाद्य निरीक्षकों की नियुक्ति एवं अधिकार**—केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारें गजट में प्रकाशित करके खाद्य निरीक्षकों की नियुक्ति कर सकती हैं। जिनको अधिकार है कि वे किसी भी विक्रेता या ऐसे व्यक्ति से जो वस्तुओं को दे रहा है नमूना ले सकते हैं। इस कार्य के लिए खाद्य निरीक्षक जहाँ ऐसी वस्तुएँ बन रही हों या संग्रह की गयी हों या रखी गयी हों घुस सकता है और ऐसी वस्तु का नमूना ले सकता है लेकिन इसके लिए मूल्य देना होगा जो कि सामान्य मूल्य होगा। इसके साथ-साथ वह पुस्तकें व किताबों को भी अपने कब्जे में ले सकता है।

खाद्य मिलावट निवारण नियम, 1955 के अनुसार नमूने लेते समय उसकी मात्रा का ध्यान रखा जाये जो दूध के लिए 220 मिली लीटर, घी व मक्खन के लिए 150 ग्राम, चाय व आटे के लिए 125 ग्राम, आदि के बराबर होना चाहिए।

(4) **नमूने का विश्लेषण एवं मुकद्दमा**—खाद्य निरीक्षक ने जो नमूना लिया है वह जन विश्लेषक (Public Analyst) को भेजा जायेगा जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों द्वारा की जायेगी। यह जन विश्लेषक निर्धारित फार्म पर अपनी रिपोर्ट देगा। रिपोर्ट प्राप्त होने पर यदि यह पाया गया कि वस्तु मिलावटी है तो

उचित न्यायालय में मुकद्दमा दायर कर दिया जायेगा। न्यायालय द्वारा ऐसे मामलों में कम से कम 6 माह की सजा और जुर्माना जो एक हजार रुपये से कम नहीं होगा किया जा सकता है। लेकिन यह सजा तीन वर्ष तक की, की जा सकती है। कुछ मामलों में कम से कम तीन माह की सजा जिसको 2 वर्ष तक भी किया जा सकता है तथा कम से कम 500 रुपये का जुर्माना किया जा सकता है। यदि राज्य सरकार द्वारा अधिकृत कर दिया जाये तो मुकद्दमे सरसरी (summary) में भी सुने जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में न्यायाधीश को एक वर्ष तक ही सजा देने का अधिकार होगा।

(III) व्यापार एवं व्यापारिक चिह्न अधिनियम, 1958

(THE TRADE AND MERCHANDISE FOR MARKS ACT, 1958)

भारत में ट्रेडमार्क के पंजीकरण के लिए एक अधिनियम है जिसको The Trade and Merchandise Marks Act, 1958 के नाम से पुकारते हैं। जब कोई भी निर्माता अपनी वस्तु की पहचान एवं उसका नाम याद रखने के लिए कोई चिह्न, नाम, शब्द, डिजायन या इनके सम्मिश्रण से कोई चिह्न या नाम बनाकर अपनी वस्तु पर छाप देता है तो इसे हम ब्राण्ड कहते हैं। लेकिन जब इस ब्राण्ड का पंजीकरण इस अधिनियम के अन्तर्गत करा लिया जाता है तो वही ब्राण्ड ट्रेडमार्क हो जाती है। इससे निर्माता या विक्रेता को लाभ होता है। अब इस प्रकार के ट्रेडमार्क की नकल कोई और नहीं कर सकता है और इसके प्रयोग का एकमात्र अधिकार पंजीकरण कराने वाले को मिल जाता है।

भारत में इस अधिनियम के अन्तर्गत ट्रेडमार्क के पंजीकरण का कार्य पेटेन्ट डिजाइन्स, ट्रेडमार्क्स महानिदेशक, बम्बई के द्वारा किया जाता है जो इस अधिनियम के अन्तर्गत ट्रेडमार्क्स रजिस्ट्रार कहलाता है। इसके तीन शाखा दफ्तर कलकत्ता, मद्रास व नई दिल्ली में हैं।

1978 वर्ष में 3,046 नवीन ट्रेडमार्क्स पंजीकृत हुए हैं तथा 5,792 मामलों में पुराने पंजीकरणों का नवीनीकरण किया गया है।

(IV) औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, 1951

(THE INDUSTRIES DEVELOPMENT AND REGULATION ACT, 1951)

इस अधिनियम के बनाने का मुख्य उद्देश्य केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित औद्योगिक नीति को कार्यरूप में परिणत करना है जिससे कि निम्न बातें की जा सकें :

(i) औद्योगिक विकास का नियमन करना एवं योजना-प्राथमिकताओं तथा लक्ष्यों के अनुसार साधनों के प्रवाह को मोड़ देना; (ii) एकाधिकार को दूर रखना एवं धन के केन्द्रीयकरण को रोकना; (iii) वृहत-स्तरीय उद्योगों की अनुचित प्रतिस्पर्द्धा से लघु स्तरीय उद्योगों को संरक्षण देना; (iv) नये उद्यमियों को उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना; (v) विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिक विकास का वितरण

अधिक व्यापक रूप से करना; तथा (vi) आर्थिक इकाइयों की स्थापना करना एवं आधुनिक विधियों के प्रयोग से उद्योगों में तकनीकी एवं आर्थिक सुधार का प्रयत्न करना है। यह अधिनियम 8 मई, 1952 से कार्यशील हुआ है, तथा इस समय यह जम्मू एवं काश्मीर को शामिल करते हुए सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। इस अधि-नियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

(1) **उपक्रमों का पंजीकरण एवं लाइसेन्स**—यह अधिनियम 38 उद्योगों जैसे, बिजली के यन्त्र, कृषि यन्त्र, वैज्ञानिक यन्त्र, खादें, कैमीकल्स, वस्त्र, कागज व गत्ता, वनस्पति तेल, ग्लास, सिगरेट, आदि पर लागू होता है। इन 38 उद्योगों को बिना केन्द्रीय सरकार से लाइसेंस प्राप्त किये न तो स्थापित किया जा सकता है और न ही ऐसी किसी स्थापित इकाई का विस्तार किया जा सकता है। लेकिन यदि इकाई की स्थायी सम्पत्तियों (भूमि, मकान एवं सम्पन्न मशीनरी में विनियोग) 1 करोड़ रुपये के मूल्य से अधिक न हों तो उसकी स्थापना के लिए लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं है। केन्द्रीय सरकार लाइसेंस देते समय उद्योग की स्थापना का स्थान एवं उस उद्योग द्वारा निर्माण की जाने वाली वस्तु के आकार आदि के सम्बन्ध में शर्तें लगा सकती है। साथ ही ऐसे उद्योग किसी नवीन वस्तु का निर्माण नहीं कर सकते हैं जिसका लाइसेंस इनको नहीं मिला है।

यदि किसी उपक्रम ने मिथ्या वर्णन करके केन्द्रीय सरकार से लाइसेंस ले लिया है तो ऐसे लाइसेंस को रद्द करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है। (धारा 10 अ) इस प्रकार यदि लाइसेंस प्राप्त कर लेने के बाद भी निर्धारित समय के अन्तर्गत उपक्रम की स्थापना नहीं होती है तो केन्द्रीय सरकार को ऐसी संस्था के लाइसेंस को निरस्त करने या उसमें परिवर्तन करने का अधिकार है। (धारा 12)

(2) **अनुसूचित उद्योगों या औद्योगिक उपक्रमों के बारे में जाँच** (धारा 15)—केन्द्रीय सरकार किसी भी अनुसूचित उद्योग या औद्योगिक उपक्रम के बारे में जाँच कर सकती है जबकि (i) उसके उत्पादन की मात्रा में कमी हो रही है या कमी होने की आशंका है; या (ii) उसकी क्वालिटी में गिरावट हो गयी है या गिरावट होने की आशंका है; या (iii) बिना उचित कारणों के उनकी वस्तु या वस्तुओं के मूल्य बढ़ रहे हैं या बढ़ने की आशंका है; या (iv) किसी राष्ट्रीय साधन की रक्षा की आवश्यकता है जिसका वह उद्योग या उपक्रम उपयोग कर रहा है।

यदि जाँच के बाद केन्द्रीय सरकार सन्तुष्ट है कि ऐसे उद्योग या उपक्रम के बारे में निर्देश दिये जायें जिससे कि उत्पादन नियमित हो सके, प्रमाप निर्धारित हो सके, उसका विकास हो सके, मूल्य नियन्त्रित हो सके या वितरण नियमित हो सके, तो उसे ऐसा करने का अधिकार है।

(3) **सरकार द्वारा प्रत्यक्ष प्रबन्ध एवं नियन्त्रण**—यदि किसी औद्योगिक इकाई का प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं है या वह इकाई सरकारी आदेशों व निर्देशों की अव-

हेलना करती है तो सरकार ऐसी इकाई का नियन्त्रण एवं प्रबन्ध 17 वर्ष के लिए अपने हाथ में ले सकती है। सर्वप्रथम इस अधिकार का उपयोग 5 वर्ष तक के लिए किया जायेगा। लेकिन इसके बाद प्रति दो वर्ष के लिए वृद्धि की जायेगी। इसके लिए संसद की स्वीकृति लेना आवश्यक है। (धारा 18A)

किसी औद्योगिक उपक्रम के सम्बन्ध में यदि केन्द्रीय सरकार के पास पर्याप्त प्रमाण हैं तो वह बिना जाँच-पड़ताल कराये ऐसे उपक्रम को अधिकार में ले सकती है। (धारा 18 AA)

(4) **वस्तुओं की पूर्ति, वितरण, मूल्य आदि पर नियन्त्रण**—धारा 18G के अनुसार केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह वस्तुओं के उचित वितरण एवं मूल्यों का उचित स्तर बनाये रखने के लिए उनकी बिक्री को नियमित एवं नियन्त्रित कर सके। इसके लिए (i) वस्तुओं की खरीद एवं बिक्री के लिए मूल्य निर्धारित किये जा सकते हैं, (ii) लाइसेंस, परमिट, आदि से वितरण किया जा सकता है, (iii) बिक्री को रोका जा सकता है, (iv) उत्पादन किसी एक निश्चित व्यक्ति या संस्था को बेचने के लिए कहा जा सकता है, (v) वस्तु सम्बन्धी अन्य व्यापारिक या वित्तीय व्यवहारों को नियन्त्रित किया जा सकता है।

(5) **केन्द्रीय परामर्श समिति की स्थापना**—इस अधिनियम के अन्तर्गत एक केन्द्रीय परामर्श समिति (Central Advisory Council) के गठन का प्रावधान है जिसमें उद्योगपतियों, श्रमिकों व उपभोक्ताओं के अतिरिक्त अन्य ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं जिनको केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझती है। इस समिति के सदस्यों की संख्या 30 से अधिक नहीं होगी। इस समिति का कार्य सरकार को सलाह देना है।

(6) **विकास परिषदों की स्थापना**—केन्द्रीय सरकार किसी भी उद्योग के लिए एक विकास परिषद स्थापित कर सकती है। इस विकास परिषद में औद्योगिक उपक्रमों के मालिक, श्रमिक, उपभोक्ता, तकनीकी विशेषज्ञ आदि होते हैं। इस परिषद का कार्य उत्पादन लक्ष्य निर्धारित करना, तकनीकी परामर्श देना, प्रमापीकरण व गुण आदि का सुझाव देना, उपभोक्ताओं के हितों का ध्यान रखकर विक्रय व वितरण-प्रणाली अपनाने का सुझाव देना, लागत लेखा पद्धति को प्रोत्साहन देना, श्रमिकों की कुशलता बढ़ाने के उपाय बताना, आधुनिकीकरण व विवेकीकरण का परामर्श देना आदि हैं।

(7) **दण्ड** (Penalties)—यदि कोई व्यक्ति अपने उपक्रम का पंजीकरण नहीं कराता है या कोई नया उपक्रम लाइसेंस नहीं लेता है या नयी वस्तु को उत्पादित करने की अनुमति नहीं लेता है या वस्तु के वितरण, पूर्ति एवं मूल्य सम्बन्धी दिये गये आदेशों का पालन नहीं करता है तो ऐसे व्यक्ति को 6 महीने की सजा या 5,000 रुपये का जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति आदेशों की अवहेलना लगातार करता रहता है तो ऐसे व्यक्ति को 500 रुपये प्रतिदिन जब तक जुर्माना किया जा सकता है तब तक कि वह आदेशों की पूर्ति न करदे।

(V) आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955
(ESSENTIAL COMMODITIES ACT, 1955)

भारत सुरक्षा नियमों (Defence of India Rules) के अन्तर्गत सर्वप्रथम 1939 में कुछ वस्तुओं के उत्पादन, पूर्ति एवं वितरण पर प्रतिबन्ध लगाये गये थे जो 30 सितम्बर, 1946 तक लागू रहे। इन प्रतिबन्धों को लागू रखने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए सरकार ने एक अध्यादेश के माध्यम से इनको जारी रखा और इस अध्यादेश का स्थान आवश्यक पूर्ति (अस्थायी अधिकार) अधिनियम [Essential Supplies (Temporary Powers) Act, 1946] ने ले लिया। इस अधिनियम का जीवन केवल 1 अप्रैल, 1947 तक सीमित था लेकिन समय-समय पर इसके जीवन को बढ़ाया जाता रहा जो अन्त में 26 जनवरी, 1955 तो समाप्त हो गया। लेकिन इसकी आवश्यकता को स्वीकार करते हुए फिर एक अध्यादेश जारी कर सरकार ने उन सभी अधिकारों को पुनः प्राप्त कर लिया। इस अध्यादेश का स्थान आवश्यक वस्तु अधिनियम (Essential Commodities Act) 1955 ने ले लिया है। यह अधिनियम 1 अप्रैल, 1955 से लागू किया गया है। प्रारम्भ में यह अधिनियम अस्थायी था और केवल दो वर्षों के लिए लागू किया गया था लेकिन अब इसको स्थायी बना दिया गया है।

(1) **आवश्यक वस्तु अधिनियम का क्षेत्र एवं उद्देश्य** (Scope & Object of the Essential Commodities Act)—यह अधिनियम जम्मू व काश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। इस अधिनियम की धारा 3(1) बहुत ही महत्वपूर्ण है और यह उद्देश्य एवं नीति को दर्शाती है। इसके अनुसार यदि केन्द्रीय सरकार की राय में यह जरूरी है कि किसी वस्तु की पूर्ति बनाये रखी जाये या बढ़ायी जाये या समान वितरण करने के लिए उचित मूल्य (fair price) पर वस्तुएँ उपलब्ध बनी रहें या भारत की सुरक्षा के लिए या सैनिक कार्यवाही को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए किसी वस्तु का प्राप्त करना आवश्यक है तो एक आदेश से ऐसी वस्तु के उत्पादन, पूर्ति एवं वितरण और उसके व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा सकती है या उसका नियमन कर सकती है। इसमें समान वितरण एवं उचित मूल्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि जनहित में किसी वस्तु के उचित मूल्य पर समान वितरण की आवश्यकता है तो सरकार अपने अधिकार का प्रयोग कर सकती है।

(2) **आवश्यक वस्तुएँ** (Essential Commodities)—वे वस्तुएँ जिनका प्रयोग मानव जीवन में आवश्यक है उनको इस अधिनियम में आवश्यक वस्तुएँ बताया गया है। अधिनियम की धारा 2(a) के अनुसार निम्न वस्तुएँ इसके अन्तर्गत आती हैं :

(i) जानवरों के खाने वाला चारा जिसमें खल व अन्य concentrates शामिल हैं, (ii) कोयला, (iii) सूती एवं ऊनी कपड़े, (iv) खाद्य पदार्थ (तिलहन

एवं तेल सहित), (v) लोहा एवं इस्पात (इसकी बनी हुई वस्तुओं सहित), (vi) कागज (कागज, न्यूजप्रिंट, गत्ता आदि), (vii) पैट्रोलियम एवं इसके पदार्थ, (viii) कच्ची रुई एवं बिनौले, (ix) कच्चा जूट, (x) मोटर गाड़ियों के पुर्जे एवं अन्य सहायक सामान, (xi) दवाइयाँ, (xii) अन्य कोई वस्तु जिनको केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझती है तो एक आदेश जारी कर उसको भी आवश्यक वस्तु मान सकती है।

उपर्युक्त अधिकारों का प्रयोग कर केन्द्रीय सरकार ने इन वस्तुओं को भी आवश्यक घोषित कर दिया है—दवाएँ, जूट के बने कपड़े या टाट, भारी रसायन, सिनेमा फिल्म, पावरलूम, सीमेंट, साबुन, सिल्क के बने कपड़े, दियासलाई, साईकिल के टायर एवं ट्यूब, बिजली की ट्यूब लाइट, सोडा ऐस, बैटरी के सैल, लालटेन, रबर, गृहस्थी के यन्त्र जैसे, बिजली का लोहा, आदि। इस समय 61 पदार्थों पर यह अधिनियम लागू है।

(3) **केन्द्रीय सरकार के अधिकार** (Powers of the Central Government)—जैसा कि ऊपर बताया गया है केन्द्रीय सरकार को आवश्यक वस्तुओं के (i) उत्पादन, (ii) पूर्ति, एवं (iii) वितरण, आदि के सम्बन्ध में पर्याप्त अधिकार हैं और केन्द्रीय सरकार इन अधिकारों का उपयोग करते हुए कोई भी आदेश दे सकती है जिसमें निम्नलिखित बातों की व्यवस्था हो सकती है :

(i) किसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन या निर्माण को लाइसेंस या परमिट या अन्य किसी प्रकार से नियमित करना, (ii) किसी भूमि पर खाद्य फसलों या अन्य प्रकार की फसलों की खेती करना, (iii) आवश्यक वस्तु के क्रय-विक्रय का मूल्य निर्धारित कर उसका मूल्य नियन्त्रित करना, (iv) किसी आवश्यक वस्तु का भण्डार, परिवहन वितरण, बिक्री, प्राप्त करना, काम में लाना या उपभोग को लाइसेंस, परमिट या अन्य प्रकार से नियमित करना, (v) किसी आवश्यक वस्तु की बिक्री को रोकने के लिए आदेश देना, (vi) किसी भी व्यक्ति को आदेश देना कि वह अपना स्टॉक या उत्पादन या प्राप्ति या भावी उत्पादन पूरा या उसका कोई भाग केन्द्रीय सरकार या प्रान्तीय सरकार या इन सरकारों के प्रतिनिधि को सौंप दे, (vii) जनहित में खाद्य पदार्थ या सूती वस्त्र से सम्बन्धित आर्थिक या वाणिज्यिक सौदे पर रोक लगाना या उनका नियमित करना, (viii) नियमन करने के उद्देश्य से उपर्युक्त वर्णित किसी भी मद से सम्बन्धित सूचनाएँ या आँकड़े एकत्रित करना, (ix) किसी भी व्यक्ति को जो किसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन, पूर्ति या वितरण में लगा हो पुस्तकें रखने एवं उनका अवलोकन करने और सूचनाओं को देने के लिए कहना, (x) किसी भी मकान, जहाज, मोटर वाहन, जानवर की तलाशी लेना और उनको अपने अधिकार में लेना।

(4) **दण्ड** (Penalties)—यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त वर्णित (viii) व (ix) के सम्बन्ध में आदेशों की अवहेलना करता है तो उसको एक वर्ष तक की सजा एवं जुर्माना किया जा सकता है।

उपर्युक्त वर्णित (viii) व (ix) के अतिरिक्त अन्य मामलों में अवहेलना करने पर कम-से-कम तीन माह की सजा दी जा सकती है व जुर्माना भी किया जा सकता है। लेकिन इस सजा की अवधि सात वर्ष तक हो सकती है।

यदि कोई व्यक्ति झूठे बयान या सूचनाएँ देता है तो उसको पाँच वर्ष तक की सजा या जुर्माना दोनों किये जा सकते हैं।

(5) **सरसरी तौर पर जाँच का अधिकार** (Power to try Summarily)—इस अधिनियम की धारा 12A के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को अधिकार दिया गया है कि यदि उसकी राय में ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है कि उत्पादन, पूर्ति या वितरण के हित में सरसरी तौर पर जाँच (summary Trial) आवश्यक है तो वह इस आशय की एक अधिसूचना जारी कर सकती है। ऐसी स्थिति में इन अधिकारों का उपयोग एक प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश के द्वारा किया जायेगा जिसको एक वर्ष तक की सजा देने का अधिकार होगा। लेकिन यदि न्यायाधीश यह समझते हैं कि मामला इस प्रकार का है कि दण्ड एक वर्ष से अधिक की सजा देने का है तो वे मामले को सुनकर ऐसा आदेश दे सकते हैं तद्परान्त किसी भी गवाह को सुनने या पुनः सुनने के लिए नियमानुसार कार्य कर सकते हैं।

यदि न्यायाधीश सरसरी तौर पर किसी मामले की सुनवायी कर एक महीने से अधिक की सजा या दो हजार रुपये से अधिक जुर्माना या दोनों नहीं देते हैं तो ऐसे आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती है।

(6) **अधिकारों का उपयोग** (Utilization of Powers)—अधिनियम में प्राप्त अधिकारों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने बहुत से आदेश जारी किये हैं जैसे न्यूजप्रिंट कण्ट्रोल आदेश, 1962; चीनी नियन्त्रण आदेश, 1966; दवाई (मूल्य नियन्त्रण) आदेश, 1970; मिट्टी का तेल (उपयोग पर नियन्त्रण) आदेश, 1960; वनस्पति तेल नियन्त्रण आदेश, आदि। इस समय 61 वस्तुओं के सम्बन्ध में इस प्रकार के आदेश जारी किये गये हैं।

(VI) एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ अधिनियम, 1969

(THE MONOPOLIES AND RESTRICTIVE TRADE PRACTICES ACT, 1969)

इस अधिनियम का उद्देश्य इस बात के लिए सुनिश्चित करना है कि देश की आर्थिक प्रणाली सामान्य हितों के विरुद्ध आर्थिक शक्ति केन्द्रीयकरण नहीं करती

है और ऐसी एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियों को रोकना है जो जनहित के विरुद्ध हैं।

एकाधिकार जाँच आयोग, 1964 की सिफारिशों के आधार पर यह अधिनियम बनाया गया है जो संसद द्वारा 18 दिसम्बर, 1969 को पास होकर और 27 दिसम्बर, 1969 को राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ अधिनियम, 1969 के रूप में बनाया गया। यह अधिनियम 1 जून, 1970 से सारे देश में लागू हो गया है। **इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्न हैं :**

(1) **एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ आयोग की स्थापना** (Establishment of Monopolies & Restrictive Trade Practices Commission)—इस अधिनियम के अन्तर्गत एक आयोग को स्थापित करने की व्यवस्था की गयी है जिसकी सदस्य संख्या कम से कम 2 और अधिक से अधिक 8 तक हो सकती है। इसके अतिरिक्त इसका एक अध्यक्ष होगा। इन सभी की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करेगी। इस आयोग का अध्यक्ष या तो उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों का वर्तमान या निवर्तमान न्यायाधीश या न्यायाधीश की योग्यता रखने वाला कोई भी व्यक्ति बनाया जा सकता है। प्रथम नियुक्ति में आयोग के सदस्यों का कार्यकाल अधिक से अधिक 5 वर्ष तक का हो सकता है जिसको अगले पाँच वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता है। लेकिन कोई भी सदस्य 65 वर्ष की उम्र तक ही आयोग के सदस्य के रूप में कार्य कर सकता है।

इस अधिनियम की धारा 10 के अनुसार यह आयोग (i) स्वेच्छा से, या (ii) सरकार के अनुरोध पर, या (iii) जनता अथवा उपभोक्ता की शिकायतों पर, या (iv) रजिस्ट्रार, प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियों के आग्रह पर किसी भी प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक कार्य की जाँच का आदेश दे सकता है। इस सम्बन्ध में आयोग को न्यायालय के अधिकार प्राप्त हैं। इस आयोग को यह भी अधिकार है कि यदि वह जनहित में आवश्यक समझे तो चल रहे व्यापारों को बन्द करा दे या उन्हें नियन्त्रित करने के लिए उनके समझौते को रद्द कर दे या उनमें संशोधन का आदेश दे दे। इस आयोग की स्थापना जून, 1970 में की जा चुकी है। इसके अध्यक्ष सहित तीन सदस्य हैं।

(2) **एकाधिकारी व्यापारिक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण** (Control on Monopolistic Trade Practices)—यदि कोई एकाधिकारी व्यापारिक प्रवृत्ति (i) प्रतिस्पर्द्धा को कम करती है; या (ii) बाजार में वस्तुओं का अभाव पैदा करती है; या (iii) वस्तुओं या सेवाओं के गुणों में गिरावट लाती है; या (iv) वस्तुओं के मूल्यों में अभिवृद्धि करती है; या (v) वस्तु अथवा सेवा की उत्पादन लागत, वितरण, या पूर्ति की लागत में अन्यायोचित ढंग से वृद्धि करती है तो एकाधिकार आयोग

(MRTPC) की सिफारिश पर सरकार द्वारा इन प्रवृत्तियों पर आवश्यक रोक लगायी जा सकती है।

(3) **प्रतिबन्धात्मक व्यवहारों सम्बन्धी समझौतों का रजिस्ट्रेशन** (Registration of Restrictive Trade Practices Agreements)—धारा 33 के अनुसार ऐसे सभी प्रतिबन्धात्मक व्यवहारों सम्बन्धी समझौतों का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक है जो निम्न में से किसी भी प्रकार की श्रेणी में आते हैं :

(i) वह समझौता जो किसी तरीके से उस व्यक्ति या व्यक्तियों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है या प्रतिबन्ध लगा देता है जिन्हें माल बेचा जाता है या जिनसे माल खरीदा जाता है। (ii) कोई समझौता जो क्रेता को माल खरीदते समय किसी अन्य माल को खरीदने की शर्त लगाता है। (iii) कोई समझौता जो क्रेता को अपने व्यवसाय के दौरान किसी अन्य विक्रेता के माल में व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगाता है। (iv) कोई समझौता जो माल को निश्चित मूल्य पर या शर्तों पर क्रय करने या बेचने के लिए बेचने या क्रय करने वालों के द्वारा किया गया है। (v) कोई भी समझौता जो व्यवहारों में रियायत या सुविधा देने के लिए है जिसमें भत्ता, छूट या साख शामिल हैं। (vi) कोई समझौता जो किसी वस्तु के उत्पादन या पूर्ति को सीमित करता है या उस पर प्रतिबन्ध लगाता है या माल की बिक्री के लिए क्षेत्र या बाजारों को आबंटित करता है। (vii) कोई समझौता जो माल की पुनः बिक्री पर यह शर्त लगाता है कि विक्रेता द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही माल बेचा जायेगा। (viii) कोई समझौता जो माल के बनाने में किसी तरीके, मशीन या प्रक्रिया के काम में न लेने का है या इनके प्रयोग को प्रतिबन्धित कर देता है। (ix) कोई समझौता जो ट्रेड एसोसियेशन से किसी व्यक्ति को अलग करने का हो। (x) कोई समझौता जो माल को ऐसे मूल्य पर बेचने के लिए है जिसका प्रभाव प्रतियोगिता या प्रतियोगी को समाप्त करने का है। (xi) कोई भी समझौता जो उल्लिखित प्रकार का नहीं है। केन्द्रीय सरकार एकाधिकारी आयोग की सिफारिश पर अपने गजट में प्रकाशित कर सकती है। इस प्रकार के समझौते का रजिस्ट्रेशन भी अवश्य होगा। (xii) कोई भी समझौता जो उपर्युक्त प्रकार के समझौते को लागू करने के लिए किया गया हो।

रजिस्ट्रेशन करते समय (i) समझौते में शामिल पक्षों के नाम, तथा (ii) समझौते की शर्तें देना आवश्यक है। यह रजिस्ट्रेशन समझौते की तिथि से 60 दिन के अन्दर करा लिया जाना चाहिए। वे समझौते जो जनहित के विरुद्ध हैं उनको रद्द करने या उनमें संशोधन करने का आदेश देने का अधिकार एकाधिकार आयोग (MRTPC) को है।

(4) **आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकना** (Prevention of Concentration of Economic Power)—यदि कोई उद्योग जिसकी सम्पत्ति 20 करोड़ रुपये या इससे अधिक है या वह संस्था अपने व्यवसाय में $\frac{1}{3}$ से अधिक

भाग को नियन्त्रित करती है, अपना विस्तार करना चाहती है और विस्तार से उद्योग की सम्पत्ति या उत्पादन क्षमता में 85% की अभिवृद्धि होती है; तो वह अपना विस्तार तब तक नहीं कर सकती है जब तक कि केन्द्रीय सरकार इसके लिए अनुमति न दे दे। ऐसी अनुमति तभी दी जायेगी जबकि विस्तार कार्य के परिणामस्वरूप आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण का भय नहीं होगा।

इसी प्रकार 20 करोड़ रुपये से ज्यादा सम्पत्ति वाली संस्था बिना केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति के स्थापित नहीं हो सकती है और न संयोजन ही कर सकती है।

(5) **पुनः विक्रय मूल्य अनुरक्षण को रोकना** (Prohibition for Maintaining Re-sale Prices)—अधिनियम की धारा 39 के अनुसार कोई भी व्यक्ति ऐसा प्रसंविदा या समझौता अपने थोक या फुटकर विक्रेताओं के साथ नहीं कर सकता है जिसमें न्यूनतम मूल्य पर पुनः बिक्री करने को कहा गया है। ऐसा समझौता या प्रसंविदा व्यर्थ माना जायेगा।

कोई भी सप्लायर इस आधार पर अपनी वस्तु की पूर्ति उस व्यक्ति को नहीं रोकेगा जिसने पुनः विक्रय मूल्य से कम मूल्य पर बिक्री की है या उसके द्वारा उस पुनः विक्रय मूल्य से कम मूल्य पर बिक्री करने की सम्भावना है। लेकिन एकाधिकार आयोग को इसमें छूट देने का अधिकार है।

(6) **सूचनाओं को प्राप्त करने एवं निरीक्षकों को नियुक्त करने का अधिकार** (Power to obtain Information and Appoint Inspectors)—प्रतिबन्धित व्यापारिक पद्धतियों के रजिस्ट्रार को अधिकार है कि वह किसी भी पक्ष से सूचनाएँ प्राप्त कर ले जो कि समझौते में एक पक्ष है और जिस समझौते का इस अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रेशन होना था लेकिन नहीं किया गया है।

केन्द्रीय सरकार भी किसी साधारण या विशेष आदेश से किसी भी प्रकार के उद्यमों को समय-समय पर सूचनाओं को देने के लिए आदेश दे सकती है। यदि केन्द्रीय सरकार की राय में कोई उद्यम एकाधिकारी या प्रतिबन्धात्मक पद्धतियों में लगा हुआ है या किसी उद्यम पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न कर रहा है तो वह ऐसे उद्यम की जाँच के लिए निरीक्षक नियुक्त कर सकती है।

(7) **अपराध एवं दण्ड** (Offences and Penalties)—यदि कोई व्यक्ति बिना सूचना के अपने उद्यम का विस्तार कर लेता है तो उसको एक लाख रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति ऐसा नया उद्यम स्थापित कर लेता है जो अन्त.सम्बन्धित (inter-connected) की परिभाषा में आता है या बिना अनुमति के सम्मिश्रण या विलय (amalgamation or merger) कर लेता है तो ऐसे व्यक्तियों को एक लाख रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है लेकिन यदि इसके बाद भी अपराध चलता रहता है तो जब तक अपराध चलता रहता है तब तक

एक हजार रुपये प्रतिदिन तक जुर्माना किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी समझौते को रजिस्टर नहीं कराता है जिसे इस अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर कराना था तो ऐसे व्यक्ति पर एक हजार रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। यदि इसके बाद भी अपराध चलता रहता है तो जब तक अपराध चलता रहे पचास रुपये प्रतिदिन तक जुर्माना और किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति के द्वारा माँगने पर सूचनाएँ नहीं दी जाती हैं तो उसको तीन माह की सजा व दो हजार रुपये जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं। यदि गलत सूचनाएँ दी जाती हैं तो 6 माह तक की सजा या पाँच हजार रुपये जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं।

धारा 39 व 40 के अन्तर्गत यदि पुन: विक्रय मूल्य नीति जारी रखी जाती है तो ऐसे व्यक्ति को तीन माह की सजा या 5 हजार रुपये तक का जुर्माना या दोनों दिये जा सकते हैं।

सचार समिति
(SACHAR COMMITTEE)

केन्द्रीय सरकार ने न्यायाधीश श्री राजिन्दर सचार की अध्यक्षता में 11 व्यक्तियों की एक उच्च अधिकार विशेषज्ञ समिति (High-Powered Expert Committee) की नियुक्ति की थी जिसमें न्यायाधीश श्री राजिन्दर सचार अध्यक्ष, तीन संसद सदस्य, तथा कानून, उद्योग एवं श्रम के प्रतिनिधि तथा कानून न्याय, एवं कम्पनी मामलों के मन्त्रालय के कम्पनी मामलों के विभाग के सचिव श्री के के. राय इस समिति के सदस्य-सचिव थे। इस समिति को कम्पनी अधिनियम, 1956 एवं एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ अधिनियम, 1969 को सरल करने, प्रभावकारी बनाने एवं व्यक्तियों की बाधाओं को दूर करने के लिए आवश्यक सुझाव देने को कहा गया था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट दे दी है जो सरकार के विचाराधीन है।

(VII) अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम, 1952
(FORWARD CONTRACTS REGULATION ACT, 1952)

अग्रिम सौदों के नियमन के लिए एक अधिनियम अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम, 1952 देश में लागू है। इस अधिनियम का उद्देश्य उन अग्रिम सौदों पर प्रतिबन्ध लगाना है जो जनहित के विरुद्ध हैं। इस :अधिनियम की विस्तृत व्याख्या 'भविष्य बाजारों का नियमन' वाले अध्याय में की गयी है।

(VIII) प्रतिभूति अनुबन्ध नियमन अधिनियम, 1956
(SECURITIES CONTRACTS REGULATION ACT, 1956)

प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में अवांछित सौदों को रोकने, विकल्प व्यवहारों को समाप्त करने व ऐसी परम्पराएँ डालने के लिए जो अवांछित परिकल्पना को समाप्त करें और सभी सौदे निर्धारित नियमों के अनुसार हों, यह अधिनियम बनाया गया है।

इस अधिनियम की विस्तृत व्याख्या 'स्कन्ध विनिमयों का नियमन' वाले अध्याय में की गयी है।

(IX) भारत सुरक्षा नियम
(DEFFNCE OF INDIA RULES)

केन्द्रीय सरकार को भारत सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत बहुत ही व्यापक अधिकार मिले हुए हैं जिनके अनुसार सरकार किसी भी वस्तु के निर्माण, वितरण, क्रय-विक्रय, मूल्य, स्टॉक, आदि के मम्बन्ध में आदेश गजट में प्रकाशित कर उन अधिकारों का उपयोग कर सकती है।

पैकेजिंग एवं लेबलिंग के सम्बन्ध में सरकारी नीति
(GOVERNMENT POLICY REGARDING PACKAGING AND LABELLING)

अमरीका में 'Fair Packaging Labellig Act' के नाम से कानून है जिसके अन्तर्गत एक पैकेज पर उसमें रखी हुई वस्तु की मात्रा, उसका वजन, उसके निर्माता का नाम आदि लिखना अनिवार्य है जिससे कि उपभोक्ता के द्वारा वस्तुओं की तुलना की जा सके और उसके द्वारा उचित निर्णय लिया जा सके। भारत सरकार ने अभी हाल ही में भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत एक आदेश जारी किया हैं जिसके अनुसार प्रत्येक पैकेज पर वस्तु को पैक करते समय शुद्ध मात्रा, अधिकतम मूल्य, बनने की तारीख एवं निर्माता का नाम एवं पता होना अनिवार्य है। यह आदेश 1 जनवरी, 1976 से लागू किया गया है। इस आदेश का नाम पैकेज्ड वस्तु नियमन आदेश, 1975 (Packaged Commodities Regulation Order, 1975) है जिसका विवरण निम्न प्रकार है :

पैकेज्ड वस्तु नियमन आदेश, 1975 (Packaged Commodities Regulation Order, 1975)

भारत सरकार ने 28 जुलाई, 1975 को भारत सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत पैकेज्ड वस्तु नियमन आदेश, 1975 जारी किया है जो 1 जनवरी, 1976 से लागू हो गया है। इस आदेश का उद्देश्य पैकेज्ड वस्तु को उचित मूल्य पर वितरण एवं उपलब्ध करना है (For securing the distribution and avalability of packaged commodities at fair prices)। यह आदेश पहले 1 सितम्बर, 1975 से लागू होना था लेकिन बाद में इसके लागू होने की तारीख दो बार बदली गयी और अन्त में यह 1 जनवरी, 1976 से लागू कर दिया गया है। इस आदेश की मुख्य बातें निम्न हैं :

(1) कोई भी व्यक्ति वस्तुओं को बेचने के लिए पैक नहीं करेगा जब तक कि प्रत्येक पैकिट पर एक लेबिल निम्न बातों के सम्बन्ध में नहीं लगा देता : (i) पैकिट के अन्दर वस्तु की पहचान। (ii) पैकिट में रखी हुई वस्तु की मात्रा या वजन

या माप। (iii) तारीख जिस दिन पैकिट तैयार किया गया है माह एवं वर्ष सहित। (iv) पैकिट का विक्रय मूल्य। (2) कोई भी व्यक्ति ऐसे पैकिट को न बेचेगा, न वितरित करेगा और न देगा जिस पर उपर्युक्त (1) मे लिखी हुई बातें नहीं हैं। (3) पैकिट या लेबिल पर जो मूल्य दिया गया है उससे अधिक मूल्य पर कोई भी डीलर उस वस्तु को नहीं बेचेगा। (4) प्रत्येक पैकिट पर निर्माता या पैक करने वाले का पूरा नाम एवं पूरा पता होगा। (5) लेबिल या पैकेज पर जो विवरण वजन, माप या नम्बर के बारे में दिया है वह किसी भी प्रकार से शर्त सहित नहीं होगा। (6) वे वस्तुएँ जिन पर सरकारी मूल्य नियन्त्रण लागू है उन पर नियन्त्रित मूल्य ही दिये जायेंगे। (7) पैकिट के मूल्य में स्थानीय टैक्स शामिल नहीं होंगे। (8) पैकिट में वस्तु के वजन की घोषणा में उसके पैकिंग सामान का वजन शामिल नहीं होगा। (9) यदि किसी वस्तु को रैपर (wrapper) या आधानपात्र (container) में बेचा जाता है तो उस रैपर या आधानपात्र पर यह सभी सूचनाएँ दी जायेंगी। (10) यदि किसी पैकिट पर net contents व मूल्य लिखना असम्भव या अव्यावहारिक (impracticable) हो तो पैकिट के साथ एक लेबिल या मुहर लगा दी जाय जिस पर net contents व मूल्य दिया हो।

सरकार द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार उपर्युक्त आदेश उन वस्तुओं पर लागू नहीं होता है जो किसी उद्योग में कच्चे माल के रूप में काम में आती हैं या थोक पैकिट के रूप में बेची जाती हैं या वे वस्तुएँ जो खाने के काम में आती हैं। यह आदेश बहुत छोटे पैकिटों पर भी लागू नहीं होता है। बीड़ी व अगरबत्ती इस आदेश की सीमा से बाहर हैं। यह आदेश उन वस्तुओं पर लागू होता है जो आम जनता के उपभोग की वस्तुएँ हैं जैसे कॉफी, चाय, खाने का तेल, वनस्पिति तेल, साबुन, बिस्कुट, सीमेण्ट, बच्चों का दूध, दवाइयाँ, सौन्दर्य प्रसाधन वस्तुएँ, आदि।

भूतपूर्व उद्योग एवं नागरिक पूर्ति मन्त्री श्री जार्ज के अनुसार भारत में उपभोक्ता को करीब 2,000 करोड़ रुपये के प्रतिवर्ष (पैक किये हुए पैकिटों में कम वजन या नाप से) ठगा जाता है। वास्तव में यह आदेश उपभोक्ता की भलाई एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने में एक कदम है। भूतपूर्व काँग्रेस सरकार ने Fair Trade Practices Bill के नाम से एक बिल बनाया था जिसको संसद के समक्ष पेश किया जाना था लेकिन यह सरकार इस बिल को पेश न कर सकी तथा संसद भंग हो गयी। आशा है कि केन्द्रीय सरकार शीघ्र ही इस प्रकार का बिल प्रस्तुत करेगी।

इस आदेश के जारी होने से उपभोक्ता को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि वस्तु पर जो अधिकतम मूल्य डाले गये हैं दुकानदार उससे कहीं अधिक मूल्य स्थानीय करों के नाम से वसूल करता है। साथ ही निर्माताओं ने इस आदेश के लागू होने के समय जो मूल्य में उससे कहीं अधिक हैं अधिकतम मूल्य

निर्धारित कर दिये हैं। इस प्रकार यह आदेश जनता के लिए अधिक लाभकारी नहीं हो रहा है यद्यपि कम वजन या माप की शिकायतों में अवश्य कमी हुई है।

प्रश्न

1. भारत के कुछ प्रमुख विपणन विधानों के बारे में बताइए।
   Explain some principal marketing Act of India.
2. उन अधिनियमों की मुख्य बातें बताइए जो वस्तुओं की पूर्ति, वितरण व मूल्य पर नियन्त्रण रखने से सम्बन्धित हैं।
   Explain the main provisions of the Acts which are related to the control of the supply, disribution and price of commodities.
3. भारत में विपणन विधान पर टिप्पणी लिखिए।
   Write short notes on 'Marketing Legislastion in India'.

SELECTED BIBLIOGRAPHY

Books :

A. H. R. Delens	Principles of Market Research.
Armstrong	The Book of the Stock Exchanges.
Benerji, Mrutinjoy	Business Organisation.
Berl E. Shultz	The Securities Market.
Benham	Economics.
Bombay Stock Exchange	History and Present Position of the Stock Market in India.
Canverse, Huegy and Mitchell	The Elements of Marketing.
Cournot	Principles of Economics.
Crick, W. F.	The Economics of Instalment Trading and Hire Purchase.
Cundiff & Still	Basic Marketing.
Dantwala	Marketing of Raw Cotton.
Davar, R. S.	Modern Marketing Management.
Duddy and Revzan	Marketing.
Erdman	American Produce Markets.
Garg, K. L.	Stock Exchanges in India.
Govil, K. L.	Marketing in India.
Heidingsfield and Blankenship	Marketing.
Huebner	The Stock Market.
Jesness, O. B.	Co-operative Marketing of Farm Products
Jevons	Theory of Political Economy.
John F. Luick & William Lee Ziegler	Sales Promotion & Modern Merchandising.
Kulkarni	Agricultural Marketing in India.
Lazo & Corbin	Management in Marketing.
Mc Carthy	Basic Marketing.
Marshall	Trade, Industry and Commerce.
Mason & Rath	Marketing and Distribution.
Mathur, M. P.	Co-operative Marketing in U. P.
Mehta, J. K.	Advanced Economic Theory.

Memoria & Joshi	Principles and Practices of Marketing in India.
Mukherji, M. L.	Agricultural Marketing in India.
Natu, W. R.	Regulation of Forward Markets.
Otto Klepner	Advertising Procedure.
Pathak, K. N.	Origin and Progress of Regulated Markets in India.
Phillips and Duncan	Marketing Principles and Methods.
Presbrey Frank	History and Development of Advertising.
Pyle	Marketing Principles.
Richard Buskrik	Principles of Marketing.
Reserve Bank of India	Statistical Statements Relating to the Co-operative Movement in India.
Salvi, P. G.	Commodity Exchanges.
Srivastava, R. S.	Agricultural Marketing in India and Abroad.
Tousley, Clark and Clark	Principles of Marketing.
William J. Stanton	Fundamentals of Marketing.
William Pickels	Accountancy.

Government Publications :

Government of India	The Securities Contracts (Regulation) Act, 1956.
,,	The Securities Contracts (Regulation) Rules, 1956.
,,	India, 1977-78
,,	Economic Survey 1978-79

State Governments :

Govt. of Madhya Pradesh	Madhya Pradesh Agricultural Produce Markets, Act, 1960.
,, ,, *U.P.*	U. P. Krishi Utpandan Mandi Adhiniyam, 1964.

Reports :

Government of India	Report on the Marketing of Rice in India 1955.
,, ,,	Report on the Marketing of Castor seed in India 1950.
,, ,,	Report on the Marketing of Rape seed and Mustard seed in India 1949.
,, ,,	Report on the Marketing of Linseed 1950.

Government of India	Report of the Indian Fiscal Commission 1948.
,, ,,	Report of the Forward Markets Review Committee 1967.
,, ,,	Report of the Transport Policy and Co-ordination Committee 1966.
,, ,,	Report of the Committee on Proposed Legislation for the Regulation of Stock Exchanges & Contracts in Securities, Gorwala Committee 1954.
,, ,,	Report of The National Planning Committee on Rural Marketing & Finance 1948.
,, ,,	Report of The National Planning Committee on Transport 1948.
,, ,,	Report of the Co-operative Planning Committee 1945.
Indian Central Jute Committee, Calcutta	Report on the Marketing and Transport of Jute in India 1957.

Annual Reports :

Administration Reports, Directorate of Marketing.
Central Warehousing Corporation.
U. P. State Warehousing Corporation.
Indian Standard Institution.
State Trading Corporation of India.
Minerals & Metals Trading Corporation.
Food Corporation of India.

Journals :

Commerce.
Economic & Political Weekly.
The Indian Journal of Commerce.
Transport.
Eastern Economist.

Newspapers :

The Economic Times,
The Financial Express.